भारतीय श्रमिक-वर्ग आन्दोलन

लेखक

डॉ० जगन्नाथस्वरूप माथुर, एम०काम०, डी०लिट्

रीडर वाणिज्य विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर-4

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजना के अंतर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण—१९७२

मूल्य—२० ००

प्रकाशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-२६/२, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर
जयपुर-४

मुद्रक—
अणिमा प्रिंटर्स,
पुलिस मेमोरियल,
जयपुर-४

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी मे इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध नही होने से यह माध्यम-परिवर्तन नही किया जा सकता था। परिणामत भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत पीछे १९६९ मे पाँच हिन्दी भाषी प्रदेशो मे ग्रंथ अकादमियो की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी हिन्दी मे विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रंथ निर्माण मे राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानो तथा अध्यापको का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्राय सभी क्षेत्रो मे उत्कृष्ट पाठ्य ग्रंथों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंत तक तीन सौ से भी अधिक ग्रंथ प्रकाशित कर सकेगी ऐसी हम आशा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम मे तैयार करवायी गयी है। हमे आशा है कि यह अपने विषय मे उत्कृष्ठ योगदान करेगी।

चंदनमल बैद
अध्यक्ष

गो० श० सत्येन्द्र
निदेशक

भूमिका

पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका के बाहर के देशों में श्रमिक संघवाद पर अच्छी पुस्तकों का अब भी अभाव है। फिर भी विभिन्न देशों के आन्दोलन की विशेषताओं और विकास की प्रवृत्तियों का स्पष्ट करके तथा देशों के बीच उपमा और व्यतिरेक द्वारा वे वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं। श्रमिक संघवाद के मूल तत्त्व प्रत्येक देश में समान होते हैं किन्तु प्रत्येक देश के आन्दोलन की राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों तथा ऐतिहासिक उद्भव और सामाजिक परम्पराओं पर आधारित अपनी विशेषताएँ होती हैं।

देश के आर्थिक और औद्योगिक विकास तथा उसके औद्योगिक श्रमिकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो जाने से भारतीय श्रमिक संघवाद का विशेष महत्त्व है। स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटेन से सम्बन्धित होने के कारण प्रारम्भिक अवस्था में भारतीय श्रमिक संघों की वैधिक स्थिति वहां के विधान के अनुरूप थी जबकि अनुवर्ती रूप से आन्दोलन पर दीर्घकालीन स्थापित सिद्धान्तों और ब्रिटेन के संघों की सफलता का बहुत अधिक प्रभाव था। आन्दोलन के आरम्भिक दिनों में महात्मा गांधी द्वारा उसके संगठन और नीतियों में सक्रिय रुचि लिए जाने से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई थी। स्वतन्त्रता अभियान के साथ यह आन्दोलन निकट रूप से सम्बद्ध था। इसलिए प्रारम्भ से ही श्रमिक संघों ने राजनैतिक कार्यवाही की ओर अपना अधिक ध्यान दिया और जिससे औद्योगिक संबंधों के क्षेत्र में वे कम प्रभावशाली रह गये।

इस पुस्तक के लेखक ने पहले ही १९५७ में भारतीय श्रमिक संघवाद पर अपना एक ग्रंथ प्रकाशित करके बहुमूल्य योगदान दिया है। उसकी मांग इतनी अधिक थी कि तुरन्त ही सारी प्रतियां समाप्त हो गई। वैसे भी आन्दोलन के रूप में इतने त्वरित परिवर्तन हो रहे हैं कि वर्तमान ग्रंथ में आगे की स्थिति का आकलन समयोचित है। इसके लिए लेखक ने आधिविद्य अनुभव के साथ उद्योग और श्रम के क्रियात्मक अनुभव का निदर्शन किया है। इसलिए उसकी यह नई पुस्तक उन लोगों के लिए जो उद्योग में सेवी वर्ग के मामलों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध हैं जो श्रम प्रशासन में सरकारी उत्तरदायित्वों को वहन करते हैं तथा आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक विज्ञानों और औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र के विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए रुचिकर होगी।

यद्यपि भारतीय श्रमिक संघवाद पचास वर्ष से भी कम पुराना है किन्तु इसने देश के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक जीवन में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह

किया है तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने भी कांग्रेस दलीय और प्रमुख मन्त्रियों और राज्यपालों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले सार्वजनिक जीवन और राजनीतिक कार्यवाही का अपना प्रारम्भिक अनुभव श्रमिक संघ आन्दोलनों से प्राप्त किया है। सर्वप्रथम जबकि भय अनेक स्थानों में हुआ भारतीय संघों ने साथ सरकार ने अपराधिक षड्यन्त्रों के रूप में व्यवहार किया। तदुपरान्त आन्दोलन को संघों की बहुलता, नियोजकों से मान्यता प्राप्त करने में कठिनाइयों, वयक्तिक प्रतिष्ठानों में बारम्बार सामूहिक सौदाकारी की सीमाओं तथा प्रान्तिक और राष्ट्रीय-स्तर पर प्रभावशाली संगठन बना पाने की असफलता में क्षति उठानी पड़ी। इसके अलावा राजनैतिक कार्यवाही को अनावश्यक रूप से महत्व दिया गया था। पदाधिकारियों में 'बाहरी लोगों' की संख्या जिनके पास उद्योग के श्रमिक के रूप में कोई अनुभव नहीं था, पर्याप्त रही है तथा संघों और नियोजकों के बीच विवादों को सुलझाने के लिए सामूहिक सौदाकारी का मुख्य साधन अपनाने और सरकार की अपेक्षा प्राय: ही पंचनिर्णय को प्राथमिकता दी गई है।

समस्याएँ इसलिए उत्पन्न हुई हैं क्योंकि भारत अब भी एक कृषि प्रधान देश है। वस्तु रूप में पारिश्रमिक पर आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था से मुद्रा भृति औद्योगिक अर्थव्यवस्था में श्रमिकों के परिवर्तन के कारण भी निर्भरता और असुरक्षा से जिस के भूमिहीन श्रमजीवी वर्ग का एक अंग हटकर तथा ग्रामीण जीवन की परम्परागत संरक्षणात्मक स्थिति की क्षति महसूस करता है, अनेक कठिनाइयों का जन्म हुआ है। यद्यपि औद्योगिक प्रगति आवश्यक है किन्तु परीवर्तन काल में घोर कष्ट सन्निहित हो गए हैं जिन्हें दूर करने में आन्दोलन को अबतक सफलता नहीं मिली है।

यदि किसी भी देश में श्रमिक संघ आन्दोलन का सफल होना है तो उसमें पर्याप्त लचीलापन होना चाहिए ताकि वह राजनैतिक उद्भव आर्थिक नियोजन, कल्याणकारी राज्य की अवधारणाओं तथा नवीन औद्योगिक प्रक्रियाओं और प्रविधियों में जिसमें स्वचालन भी सम्मिलित है, इन परिवर्तनों के अनुरूप अपने को बना सके। वह जड़ नहीं रह सकता है। पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका के देशों में कार्यों प्रक्रियाओं में परिवर्तन तथा नये यन्त्र और प्रविधि के आविष्कार धीमी गति से हुए हैं जबकि भारत में नवीनतम यन्त्र और विधियां का प्रगतिशील पश्चिमी देशों से आयात किया गया है। इसलिए भारतीय श्रमिकों को उनका उपयोग करने के लिए त्वरित रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

लेखक ने इन सभी तथ्यों पर प्रकाश डाला है। उसने भारतीय श्रमिक संघ वाद की उत्पत्ति और उद्भव का निरूपण किया है उसके विकास की बाधाओं की विवेचना की है तथा उसकी संरचना वित्त नेतृत्व और वर्तमान स्थिति पर विचार किया है। यह स्वीकार करते हुए कि आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों के

भूमिका

आर्थिक और सामाजिक हितों को आगे बढाना और उनकी रक्षा करना है लेखक ने वग सघष, उस भूमिका को जिसका निर्वाह श्रमिक सघो को उद्योग के प्रबध म करना पडता है कल्याणकारी राज्य को लेकर सघो की अभिवृत्ति तथा सरकार द्वारा समर्थित समाजवाद के रूप के प्रति आन्दोलन की नीति की विवेचना की है।

सदस्यता म वृद्धि तथा विभिन्न उद्योगो और क्षेत्रो मे उसके वितरण को स्पष्ट करने के लिए विशद आँकडे प्रस्तुत किये गये हैं। निरक्षर श्रमिको के सघो की दुबलताओ की तुलना मे सापेक्ष रूप से शिक्षा मे उच्च स्तर वाले श्रमिको के सघो, उदाहरण के लिए डाक और तार सेवाओ तथा रेलवे के सघ की शक्ति म व्यतिरेक स्पष्ट किया गया है।

राष्ट्रीय सघानो के गठन पर विचार विमश किया गया है तथा श्रमिक सघो के राजनतिक महत्त्व को इस तथ्य द्वारा स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक महत्त्वपूण राजनतिक दल की एक अपनी श्रमिक सघ शाखा अथवा सगठन है इससे एकल राष्ट्रीय सभा, जो सम्पूण भारतीय श्रमिको का प्रतिनिधित्व कर सके, के गठन म बाधा पडी है। इसका परिणाम एक ही फक्ट्री के विभिन्न सघो के बीच सस्पर्धाओ मे भी होता है।

श्रम विधानो द्वारा विनिर्मित काय की अवस्थाओ की सीमा, काय के घटे और मजदूरी निर्धारण की सरकारी पद्धति तथा विवाचन न्यायालयो और न्यायाधिकरणो के उपयोग की पूण रूप से समालोचना की गई है। किन्तु इन विधियो मे श्रमिक सघ के काय क्षेत्र को सकुचित कर देने की प्रवृत्ति पायी जाती है तथा वे सघो के विकास मे बाधा भी डाल सकती हैं। यदि काय की अवस्थाओ के मुख्य प्रमाण सरकार द्वारा निश्चित किये जाते है तो श्रमिक सघो को करने के लिये बहुत कम रह जाता है। फिर भी यदि श्रमिक सघ काय की अवस्थाओ को सामूहिक सौदाकारी द्वारा प्रभावशाली ढग से विनियमित कर पान मे समथ नही हैं तो सरकारी हस्तक्षेप ही विकल्प रह जाता है। भारत म वतमान परिस्थितियो के अन्तगत यह दुविधा स्पष्ट है। श्रमिक सघो की दुबलता का एक प्रमुख कारण श्रमिको के ऊपर कज का बोझ और उनकी निधनता है जिसके परिणामस्वरूप वे सशक्त सु प्रशासित सगठन को स्थापित करने तथा पारस्परिक अथवा मैत्रीय लाभो के लिए कोषो के सधारण हेतु पर्याप्त अशदान देने मे समथ नही होते हैं। प्राय ही अनेक श्रमिको द्वारा जिन्ह सदस्यता आँकडो मे सम्मिलित किया जाता है अशदान की छोटी राशि भी अदत्त रह जाती है तथा विशेषकर हडतालो को आधार प्रदान करने के लिए स्वल्प कोषो को विशेष शुल्क लगाकर अनुपूरित करना पडता है जाति सम्प्रदाय और समुदाय के विभेद भी एक सशक्त आन्दोलन के विकास म बाधा डालते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सगठन द्वारा अपनायी गई निरूढियो के परिप्रेक्ष्य म सघ बनाने की स्वतन्त्रता, सगठित होने और सामूहिक रूप से सौदाकारी करने के अधिकार

की चर्चा की गई है। भारतीय विधान में श्रमिक संघों के अनिवार्य पंजीकरण तथा परिभाषित अनुचित कार्यवाहियों के लिए दोनों ही श्रमिक संघों और नियोजकों पर दण्ड आरोपित कर सकने की व्यवस्था है। श्रम न्यायालय श्रमिक संघों, जो निर्दिष्ट शर्तों को पूरा करते हों, को मान्यता देने के लिये नियोजकों को बाध्य कर सकते हैं।

लेखक ने रचनात्मक ढंग से भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन की यदि उसे अपने सदस्यों के स्तर और कल्याण के उन्नयन में अधिक प्रभावशाली होना है, भविष्य की आवश्यकताओं पर विचार किया है। अधिक उत्तरदायी और अनुभवी नेतृत्व, सामूहिक सौदाकारी और संराधन के उपयोग तथा समझौतों की कड़ाई से पालन करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में श्रमिक संघवाद के प्रत्येक पक्ष पर क्रमबद्ध रूप से विचार किया गया है तथा निष्कर्ष विस्तृत ज्ञान तथा ठोस निर्णय पर आधारित हैं। इसके अधिकांश निष्कर्ष कट्टरता से परे हैं जो त्वरित परिवर्तनशील भारतीय परिस्थितियों में सहायक होगा। बिना किसी हिचक के लेखक को सर्वोत्तम कार्य के लिए बधाई दी जा सकती है।

जे० हेनरी रिचार्ड्सन

प्राध्यापक, औद्योगिक सम्बन्ध, लीड्स विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

लगभग दो दशों से मैं भारतीय श्रम समस्याओं का अध्ययन कर रहा हू। देश के श्रमिक आन्दोलन के प्रति मेरी रुचि ने वर्तमान ग्रन्थ लिखने के लिए मुझे प्रेरित किया है। हमारे देश के आर्थिक विकास में श्रमिक सगठन जिस भूमिका का निवाह कर सकते है वह महत्त्वपूर्ण है। बिना उनके सक्रिय सहयोग के आर्थिक विकास की गति धीमी पड जायगी। श्रमिक सघ कैसे प्रभावशाली हो सकते हैं उचित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की उपलब्धि में वे क्या योगदान दे सकते हैं भारत की विशिष्ट परिस्थितियों के अन्तर्गत उन्हें अपने कार्यों पर कौन से प्रतिबंध लगाने चाहिये कौन सी कमियां और समस्याएं हैं जिनका सामना श्रमिक वर्ग आन्दोलन को करना पडता है राज्य नीति ने कैसे उनके क्रियाकरण को प्रभावित किया है—ये तथा इसी तरह की अन्य समस्याए पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। मैंने अपने देश के श्रमिक वर्ग आन्दोलन का व्यापक अध्ययन करने का प्रयत्न किया है।

श्रमिक सघों की वृद्धि और विकास के बारे में सामग्री सकलित करने का मैंने प्रयत्न किया था। विभिन्न श्रमिक सघ सघानों श्रमिक सघों श्रमिक नेताओं, सरकारी विभागों तथा अन्यों को पत्र लिखे गये थे लेकिन जिन लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने का मैंने प्रयत्न किया उनसे मुझे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। यहा तक कि बार बार लिखने पर भी कोई उत्तर नहीं प्राप्त किया जा सका। इससे मुझे कार्य में कई की बाधा पडी है।

इन परिस्थितियों मे मुझे प्रकाशित सामग्री को ही अपने अध्ययन का आधार बनाना पडा। मैंने कुछ सीमा तक अपनी पूर्व पुस्तक भारत में श्रमिक सघ आन्दोलन को भी जिसे मैंने अपने भाई श्री ए० एस० माथुर रीडर इंस्टीट्यूट आफ सोशल साइंस आगरा के साथ मिलकर लिखा था आधार बनाया है। आंकडों के लिये मैंने सरकारी प्रकाशनों भारतीय श्रम वर्ष पुस्तिका भारतीय श्रम साख्यिकी आदि की सहायता ली है। उद्धरणों की अभिस्वीकृति दी गई है।

मैं श्री बगराम तुलपुले हिन्द मजदूर सभा के महा सचिव और श्री वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, सहायक सेवायोजन अधिकारी तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के भूत पूर्व शोधछात्र का अनुगृहीत हू। श्री तुलपुले ने मेरे पत्रों और प्रश्नों का तत्परता से उत्तर दिया था। उन्होंने हिन्द मजदूर सभा के सम्बन्ध में उपयोगी साहित्य भी प्रदान किया था। श्री श्रीवास्तव ने पाण्डुलिपि तैयार करने में पर्याप्त सहायता की थी और मूल्यवान सुझाव भी दिये थे।

मैं अपने भाई का भी अनुगृहीत हूँ जिनके साथ मैंने अनेक समस्याओं पर विचार विमर्श किया था। उन्होंने प्रारूप देखा और पुस्तक में सुधार करने के लिये सुझाव दिए थे। उन्होंने 'भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन' पुस्तक में से जिसे मैंने उनके सहयोग से लिखी थी, मेरे द्वारा लिखे अंश का उपयोग करने की अनुमति दे दी थी। वर्तमान ग्रंथ में व्यक्त विचारों के लिए मैं पूर्णतया उत्तरदायी हूँ।

इण्डियन जर्नल आफ इकनामिक्स इलाहाबाद के प्रबंध संपादक का मैं आभारी हूँ जिन्होंने पत्रिका के खण्ड ४२ भाग ४ संख्या १६७ मास अप्रल १९६२ में प्रकाशित मेरे लेख 'श्रमिक संघ एकता की समस्या' को पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति दी थी।

पुस्तक के लिये 'प्रस्तावना' प्रोफेसर एच० जे० रिचार्डसन ने लिखी है। मुझे उनकी सलाह से लाभ हुआ था जब मैंने आगरा में आयोजित द्वितीय अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र सम्मेलन के अवसर पर उनसे भेंट की थी। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे अपने ओजस्वी व्यक्तित्व का लाभ प्रदान किया है। यह एक ऐसा ऋण है जिससे मैं कभी पूर्णतया उऋण नहीं हो सकता।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
१० मई, १९६४

जगन्नाथस्वरूप माथुर

विषय-सूची

पृष्ठ-सख्या

सारणियों की सूची

सारणियों की सूची

१

श्रमिक आन्दोलन का बदलता स्वरूप

१८वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति में जो परिवर्तन हुए वे इतने उग्र तथा व्यापक थे कि उस समय प्रचलित मानवीय व्यवस्था का स्वरूप बिलकुल ही बदल गया। क्रान्ति के बाद जो परिवर्तन हुए वे इतनी शीघ्रता एवं आश्चर्यजनक ढंग से हुए कि सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में किसी प्रकार का समंजन स्थापित नहीं किया जा सका। क्रान्ति के पूर्व इस प्रकार का समंजन स्थापित किया जा सकता था किन्तु क्रान्ति के बाद वह सम्भव नहीं हो सका। शीघ्रता से होने वाले औद्योगिक परिवर्तनों, आविष्कारों तथा भौतिक उन्नति के कारण उचित तथा सम्यक् संस्थानिक समंजन में बाधा पहुँची। जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में विशेषकर औद्योगिक क्षेत्र में अनुकूलन की कमी दृष्टिगत हुई। फलतः श्रमिक समस्यायें महत्त्वपूर्ण हो गई। इस अवस्था को दूर करने के लिए विभिन्न प्रयत्न किये गये। राज्य ने श्रमिक विधानों द्वारा तथा संगठित श्रमिकों ने सामूहिक सौदाकारी द्वारा औद्योगिक सामंजस्य की दिशा में प्रयत्न किये। प्रभावोत्पादक और सन्तोषपूर्ण समंजन के अभाव में स्थिति भयंकर होकर क्रान्ति का जन्म दे सकती है।

उत्पादन के क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति द्वारा जिस फैक्टरी-पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ उसमें कृषि युगीन आर्थिक-ढांचा पूर्ण रूप से बदल गया। पहले का आर्थिक जीवन विकेन्द्रित उत्पादन पद्धति और व्यक्तिगत आधार पर स्थित था। इसके विपरीत औद्योगिक सबंध अन्योन्याश्रित होने पर भी परोक्ष तथा अवैयक्तिक हैं फैक्ट्रियों के विस्तार से यहाँ तक कि छोटी फैक्ट्रियों के संदर्भ में भी श्रमिक और उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के बीच अलगाव पैदा हो गया। उसे भी फैक्ट्री के अन्य कर्मचारियों की श्रेणी में आना पड़ा। बड़े स्तर पर उत्पादन करने तथा श्रम के सूक्ष्म विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पादन के लिए सामूहिक प्रयत्नों पर निर्भर रहना आवश्यक हो गया। उत्पादन की इस पद्धति में स्वामी तथा कर्मचारियों के हितों में समरसता की कमी दृष्टिगोचर हुई। जो औद्योगिक व्यवस्था रूढ़ि और परम्पराओं पर आधारित थी उसे नवीन फैक्टरी पद्धति ने छिन्न भिन्न कर दिया और उसके स्थान पर नए सम्बन्धों की स्थापना किए बिना पुराने परम्परागत

मजदूरों को विनष्ट कर डाला। फैक्ट्री प्रणाली ने मालिकों की शक्ति को काफी बढ़ाया और श्रमिकों को उनका आश्रित बना दिया। मालिक वर्ग ने अपनी बढ़ी हुई शक्ति का अनुचित लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया, जिससे अस्तव्यस्तता तथा क्षोभ फैला। फैक्ट्री में काम करने वाले श्रमिकों की स्थिति बिलकुल गुलामों के समान हो गई। बच्चों को संख्या में कारखानों में ठूंस दिया जाता था जहां उन्हें अमानवीय परिस्थितियों में काम करना पड़ता था। नवीन आर्थिक पद्धति ने श्रमिकों के सम्मुख नई विकट समस्याएं तथा चुनौती प्रस्तुत की जिससे छुटकारा पाने के उद्देश्य से श्रमिकों ने मजदूर संघ (Trade Unions) के नाम से अपने संगठन बनाने प्रारम्भ कर दिए ताकि वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें तथा जीवन निर्वाह और काम की स्थितियों में सुधार ला सकें।

प्रारम्भ में मजदूर संघों के संगठनकर्ताओं का कार्य सुगम तथा आसान नहीं था। उन्हें बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था सतर्कता से अपनी विशेष प्रकार की संस्कृति की रक्षा करती है और उन सभी कार्यों का दमन करती है जिनसे उसे भय रहता है। फैक्ट्री प्रणाली का उदय व्यक्ति और व्यक्ति के बीच संविदा की स्वतन्त्रता की धारणा पर आधारित था। इसलिए यह आशा की जाती थी कि यदि किसी समुदाय या संगठन से इस मूलभूत धारणा को भय हो तो उसे प्रताड़ित किया जायगा। ग्रेट ब्रिटेन में काम्बीनेशन एक्ट्स और संयुक्त राज्य अमरीका में सम्मन एक्ट, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर पारित किए गए ताकि श्रमिकों का संगठन जिसे अपराधिक षड्यन्त्र का नाम प्रदान कर प्रताड़ित किया गया बनाने से रोका जा सके। प्रारम्भिक अवस्था में मजदूर संघों के कार्यकर्ताओं पर अनेक बार अभियोग लगाये गये और उन्हें दण्डित किया गया। पथ-प्रदर्शकों को सदा ही कीमत चुकानी पड़ती है। अन्ततः ज्यों-ज्यों आर्थिक स्थिति बदलती गई मजदूर संघों को सहन किया गया और फिर उन्हें प्रोत्साहित भी किया गया। आज के आर्थिक जीवन में वे अत्यन्त सार्थक संस्थायें हो गई हैं। श्रमिकों को संगठन की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है और प्रजातान्त्रिक देशों में यह स्वतन्त्रता जिसके लिए हजारों स्त्री-पुरुषों ने बलिदान किए हैं न केवल सुरक्षित रखी जाती है वरन् उसको सजाया जाता है।

प्रारम्भिक श्रमिक संगठन के लिए सामूहिक रूप से काम करना इसलिए आवश्यक हो गया क्योंकि यह अनुभव किया गया कि व्यक्तिगत रूप से एक श्रमिक नियोजक की तुलना में अत्यधिक कमजोर है। फैक्ट्री प्रणाली के प्रादुर्भाव के तनिक पहले भूमिहीन श्रमिकों का एक वर्ग पैदा हो गया था जिन्हें भुखमरी और काम के बीच एक को चुनना था चाहे वह किसी भी शर्त पर मिले। भिखारियों को चुनने का अधिकार नहीं होता। शक्तिशाली मालिकों के समक्ष उनकी स्थिति बिल्कुल नगण्य थी, और उन्हें अत्यन्त बुरी स्थितियों में काम करना पड़ता था।

काम करने की अच्छी स्थिति प्राप्त हेतु मजदूर सघियो ने सामूहिक रूप से काय करने की प्रभावोत्पादकता का महत्त्व समझा। वे अपनी प्रतिस्पर्धा समाप्त करके एक सस्था के रूप मे समझौता करना चाहते थे। चूंकि श्रम नाशवान वस्तु है इसलिए श्रमिक प्रतीक्षा नही कर सकता। दूसरी ओर नियोजक अत्यधिक शक्तिशाली होता है, क्योंकि उसके पास विशिष्ट ज्ञान तथा धन के स्रोत और उधार की सुविधायें होती है। वह स्वय मे एक समूह है। इसलिए कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत रूप से सौदेबाजी की निरर्थकता और श्रमिको को अपने आर्थिक स्तर को उन्नत करने की भावना यही दो मूल तत्त्व थे जिनके कारण श्रमिक सगठनो का विस्तार हुआ। यह आशय नही है कि केवल श्रमिक सगठनो ने ही श्रमिको के उत्थान के लिए प्रयत्न किए। लोक हितैषियो ने उन प्रघातकीय निकृष्ट व्यवस्थाओ की जिनमे महिलाए और बच्चे फक्ट्रियो मे काय करते थे, बडी निन्दा की। इसके अलावा रॉबर्ट ओवेन जैसे कुछ अच्छे नियोजक भी थे जो अपने श्रमिको के जीवन स्तर की उन्नति मे रुचि रखते थे। किन्तु लोकहितैषियो और अच्छे नियोजको के प्रयत्न अधिकाश मे प्रभावशाली न हो सके। वस्तुत केवल श्रमिक आन्दोलन द्वारा ही श्रमिको की भलाई के लिए स्थाई रूप से कुछ किया जा सकना सम्भव था।

श्रमिक सघो का स्वरूप निरतर बदलता रहा है। उद्योग विधि और उत्पादन की पद्धति मे प्रत्येक नया विकास नई समस्याओ और स्थितियो को जन्म देता है, और जिनके अनुरूप श्रमिक सघो का अनुकूलन करना पडता है। इसके लिए उन्हे अपनी कार्यविधियो मे आवश्यक हेर फेर तथा नवीन विधियो को विकसित करना होता है। श्रमिक सघो की कार्यविधियो की अनिमता नही हो सकती। श्रमिक सघो के शनै शनै विकास ने उन्हे आज आधुनिक औद्योगिक ससार मे एक प्रमुख स्थिति पर अवस्थित कर दिया है। वे अब अपराधिक और अवध सस्थाये नही, बल्कि वधानिक और मान्य सगठन हैं। अब वे छोटी सस्थाये नही हैं बल्कि विकसित होकर वृहद् सगठनो का रूप ले चुकी है। अब वे सस्थाए नही जो केवल अपने सदस्यो के हितो तक ही प्रभूत सीमित रहे बल्कि अब वे सस्थाये देश की सामाजिक सास्कृतिक और राजनीतिक उन्नति से सम्बद्ध है। उनकी यह प्रगति असाधारण है।

विभिन्न विचारधाराओ ने श्रमिक सघो के विकास को प्रभावित किया है। *सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आन्दोलनो का प्रभाव भी इन पर किसी न किसी* रूप मे पडा है। श्रमिक सघो के स्थान और उद्देश्य के सबध मे विभिन्न विचारको ने भिन्न मत व्यक्त किये है। कुछ आदर्शों का प्रभाव श्रमिक सघठनो पर पर्याप्त और स्थाई रूप से पडा है।

मार्क्स और ऐंजिल्स के वर्ग सघर्ष सिद्धान्त ने श्रमिक सघवाद को विभिन्न

रूपों में प्रभावित किया है। वर्ग संघर्ष तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्तों के आधार पर श्रमिक संस्थाओं का एक विशिष्ट वर्ग हो गया है जो श्रमिक संगठनों को इस समाजिक पद्धति में विसम्भव रहते हैं क्रान्तिकारी और मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक साधन समझते हैं। उनका विचार है कि वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में कुछ अन्तर्विरोध हैं जिनका निराकरण आवश्यक है। पूँजी वर्ग को हटाकर राज्य की सत्ता श्रमजीवियों या उनके प्रतिनिधियों में करके एक वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहिए। उनका विश्वास है कि वर्तमान राज्य व्यवस्था श्रमिकों का शोषण करने में योग देता है। उनके विचार से मजदूर संघ तथा श्रमिक संगठन के द्वारा ही पूँजीवाद को हटाया जा सकता है। उनका धारणा युद्धकारी है और उनके आदर्श क्रान्तिकारी हैं।

वेब्स के अनुसार औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिक संघवाद द्वारा प्रजातांत्रिक सिद्धान्त का अनुसरण होता है। उनका विश्वास है कि प्रबन्धकों की तानाशाही समाप्त करने के लिए श्रमिकों की व्यक्तिगत शक्ति बढ़ाने के लिए तथा कार्य की अवस्थाओं में सुधार करने के लिए श्रमिक संघ आवश्यक है। श्रमिक संघों के अभाव में श्रमिकों की शक्ति क्रमशः क्षीण होती है और उनका नियोजकों द्वारा शोषण किया जाता है। श्रमिक संघवाद द्वारा इस बुराई को रोका जा सकता है। मजदूर संघों की अल्पकालिक भूमिका नहीं अदा करनी होती। उनका महत्व तबतक रहेगा जब तक आधुनिक फैक्ट्री पद्धति है। यदि प्रजातांत्रिक राज्य को पूर्ण और उत्तम विकास करना है तो यह आवश्यक है कि सेवायोजन की शर्तों को निर्धारित करते समय मानवीय अभिरुचियों की वास्तविक आवश्यकताओं और इच्छाओं को प्रमुख स्थान दिया जाय। इस स्थिति में इस उद्योग के प्रशासन में श्रमिक संघ के लिए विशेष कार्य होते हैं।[1] उनकी इच्छा है कि वे उद्योग की संचालन नीति सार्वजनिक हाथों में होनी चाहिए। यह आवश्यक है कि उत्पादकों की प्रत्येक श्रेणी या अनुभाग इतना सुव्यवस्थित होना चाहिए कि सार्वजनिक मत को उनका दावा सुनने के लिए बाध्य किया जा सके और वे इतनी मजबूती से संगठित हों कि यदि आवश्यकता पड़े तो सार्वजनिक न्यायाधिकरण के न्याय अथवा स्वतंत्र रूप में, स्वतंत्र रूप में प्रतिनिधि सभा के निर्णय के अभाव में, अन्तिम हथियार के रूप में राजतंत्र की जड़ता अथवा सरकारी पीड़न का विरोध करते हुए सामूहिक अनुपस्थिति के माध्यम से अपनी मांगें पेश करें।'[2] वेब्स स्वीकार करते हैं कि वर्ग संघर्ष स्थायी है किन्तु उनका विचार है कि समानता तथा सामूहिक सहमति के द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है।

---

१ इण्डस्ट्रियल डिमोक्रेसी पृ० ८२१।
२ ,, ,, पृ० ८२५।

जी० डी० एच० कौल का मत है श्रमिक संघों का उद्देश्य अन्तत उद्योग का अपने नियंत्रण म करने का होना चाहिए। श्रमिक संघवादी होने के नाते उनका कथन है श्रमिक संघवाद श्रमिकों के लिए न केवल ऊँची मजदूरी का दावा करता है बल्कि कुछ और भी जिसे साधारणतया औद्योगिक नियंत्रण की संज्ञा दी जाती है। इसकी माग ह कि व्यक्ति को नागरिक अथवा उपभोक्ता न समझकर उत्पादक समझा जाय, उनके काय उनके जीवन के केन्द्रीय लक्ष्य मान जायें और उपभोक्ता के दृष्टिकोण की अपेक्षा उनके हितों के अनुसार उद्योगों का पुनगठन किया जाय। श्रमिक संघों का भविष्य औद्योगिक नियंत्रण पर निभर है। कौल के अनुसार मजदूर संघों की स्थिति वग-संघष के लिये है ना अनिवाय है। वग-संघष का उपदेश इस आधार पर नहीं दिया जाता है कि यह अभीष्ट है वरन् इस आधार पर कि यह विकराल एव अकाट्य सत्य ह। हमारी सामाजिक संस्थाओं म वर्गीय ढाचा सुव्यवस्थित है और वग संघष द्वारा ही इससे छुटकारा पाया जा सकता है।[1] उद्योगों पर नियंत्रण स्थापित करने तथा वग संघष छेड़ने के लिए कौल श्रम संघों की संरचना का पुनसंगठन करना चाहते है। बडे और शक्तिशाली औद्योगिक संघों का गठन होना चाहिए जिसकी सदस्यता प्रत्येक श्रमिक के लिए अनिवाय हो। कोई भी श्रमिक उसके क्षेत्र म बाहर न रहे। कौल यह मानते हैं कि निकट भविष्य म इस लक्ष्य की पूर्ति की सम्भावना कठिन है। इस लिए अनन्तर लक्ष्य ऊँची मजदूरी तथा स्थितियों म सुधार हो सकता है किन्तु अन्तिम लक्ष्य श्रमिकों का उद्योगों पर नियंत्रण होना चाहिए।

एक साधारण व्यक्ति के लिए श्रमिक संघ का अर्थ है श्रमिकों का एक संगठन जो अपने सदस्यों के लिये आर्थिक लाभों की प्राप्ति म सहयोग देता है। इसका विस्तार इतना अधिक हो सकता है कि कई उद्योगों को सम्मिलित करलें *अथवा यह इतना सीमित हो सकता ह कि इसमें एक उद्योग अथवा व्यवसाय ही हो* किन्तु श्रमिक संघ का उद्देश्य श्रमिकों की सुरक्षा और उनके आर्थिक हितों का अर्जन होना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं है कि श्रमिक संघों का उद्देश्य केवल श्रमिकों की आर्थिक उन्नति तक सीमित है। एक श्रमिक संघ अपने सदस्यों के सामाजिक राजनैतिक और सांस्कृतिक हितों के लिए भी प्रयत्न कर सकता ह। अभी हाल में श्रमिक संघों के लक्ष्य और कार्यों म द्रुत विकास हुये हैं, और अनेक समस्याओं ने उनका ध्यान केन्द्रित किया ह। अनेक कार्यों म से उनका यह भी एक काय ह कि प्रशासन द्वारा सलाह लेने पर व विभिन्न महत्वपूर्ण नीतियों के संबंध म अपनी राय और सलाह दें। फिर भी अपने सदस्यों के आर्थिक हितों की सुरक्षा और पूर्ति उनका मुख्य काय है।

---

१ दि वल्ड आफ लेबर, पृ० २१।

एक श्रमिक संघ अनिवार्यतः श्रमिकों का स्वयं के हितों के लिये संगठन है। उस तथ्य की पूर्ति हेतु सामूहिक व्यवहार प्रणाली का सहारा लिया जाता है। जिसमें आर्थिक मामलों में सफलता मिल सके क्योंकि इस सम्बन्ध में वैयक्तिक समझौता क्षीण और प्रभावहीन होता है। नियोजकों से वैयक्तिक समझौता में असफलता मिलती है इसलिए श्रमिक संघ उनकी सहायता करता है और सामूहिक प्रयत्नों से काम की अवस्थाओं में सुधार प्राप्त करता है। वैधिक परिभाषा के अनुसार भारतवर्ष में नियोजक संगठन भी श्रमिक संघ के रूप में पंजीकृत कराये जा सकते हैं। यद्यपि कुछ नियोजक संगठन वस्तुतः श्रमिक संघ की तरह पंजीकृत हो गये हैं किन्तु श्रमिक संघ साधारणतया श्रमिकों का ही सामूहिक रूप माना जाता है।

वेब ने अनावश्यक रूप से श्रमिक संघ की संकुचित परिभाषा दी है—मजदूरी अर्जित करने वालों का ऐसा सतत् संगठन है, जिसका उद्देश्य उनकी काम की अवस्थाओं का सुधार अथवा पोषण है।' यह परिभाषा वेतन भोगी श्रमिकों के शक्तिशाली संगठनों को बहिष्कृत करता है।

परिभाषा के अनुसार श्रमिक संघों का कार्यक्षेत्र भी सीमित होकर श्रमिकों की काम अवस्थाओं का सुधार अथवा पोषण तक ही रह जाता है, जबकि एक श्रमिक संघ का विभिन्न प्रकार से काम प्रतिपादित करते देखते हैं जिनमें शैक्षणिक और सामाजिक काम भी हो सकते हैं। श्रमिक संघ श्रमिकों में समाज के एक सदस्य के रूप में अधिकाधिक रुचि लेने लगे हैं।

हाल ही में ब्रिटेन के श्रम मंत्रालय ने श्रमिक संघ को परिभाषित किया है कि 'कर्मचारियों के सभी संगठन—जिनमें वेतन पाने वाले, और व्यावसायिक श्रमिक, साथ ही शारीरिक श्रम द्वारा मजदूरी अर्जित करने वाले भी सम्मिलित हैं—जिनके कार्यों में सेवायोजन की अवस्थाओं को नियमित कराने के लक्ष्य को लेकर नियोजकों से बातचीत करना सम्मिलित है। इस प्रकार श्रमिक संघ का मुख्य तत्व कर्मचारियों की सदस्यता है ताकि उनकी सेवायोजन सम्बन्धी अवस्थाओं के नियमन के लिये नियोजकों से बातचीत की जा सके। यह परिभाषा भी श्रमिक संघ के आर्थिक कार्यों पर बल देती है। किन्तु एक साधारण व्यक्ति के लिये यह परिभाषा भी अपूर्ण है क्योंकि तदनुरूप यह विश्वविद्यालय शिक्षक संगठन या बार ऐसोसियेशन आदि विभिन्न संगठनों की वास्तविक श्रमिक संघों के रूप में कभी मान्यता नहीं देगी भले हो वे श्रमिक संघ के रूप में पंजीकृत हों। सामान्य व्यक्ति के लिये श्रमिक संघ पीड़ित और निम्न वर्ग के व्यक्तियों के संगठन हैं, जिसका शोषण किया जाता है। श्रमिक संघ ऐसे संगठनों के रूप में माने जाते हैं, जिनका मुख्य काम बातचीत करना अथवा मजदूरी या काम के घंटों का नियमन कराना न होकर विशेषाधिकार होने वर्ग की ओर से प्रतिवाद करना है। श्रमिक संघवाद एक ऐसा आन्दोलन है जो सामाजिक न्याय पर आधारित सामाजिक संरचना

के हेतु प्रयत्नशील है। साधारण व्यक्तियों के लिये श्रमिक संघ का यही कार्य है।

श्रमिक संघ का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों के आर्थिक हितों की रक्षा और उन्नति करना ही चला आ रहा है। श्रमिक संघों ने हाल ही में शोध और शिक्षा में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया है। शोध और शिक्षा की सुविधाओं की ओर अनुगमन वस्तुतः गौण उद्देश्य ही है। मुख्य उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त ही उनका दर्शन किया जा सकता है। यद्यपि अब भी श्रमिक संघों का मुख्य उद्देश्य मजदूरी, कार्य के घंटे तथा अन्य कार्य अवस्थाओं से सम्बन्धित है तथापि दूसरे उद्देश्य भी शनैः शनैः महत्त्वपूर्ण होते जा रहे हैं। श्रमिक संघ इन अपने सीमित क्षेत्र सदस्यों की कार्य संस्थाओं में सुधार और पोषण में ही केवल रहना नहीं चाहते। उनकी कार्यप्रणाली नानाविधि होती जा रही है।

श्रमिक संघवाद आर्थिक वृत्ति में ही सीमित नहीं है। वह स्वयं सामाजिक सेवाओं से सम्बद्ध है। 'श्रमिक संघ की समस्या आर्थिक, न्यायिक, नैतिक तथा सामाजिक अवस्थाओं का मिश्रित रूप होता है जिसे तभी समझा जा सकता है जब संगठित श्रमिकों की विविधता, उनके विरोध और बदलते स्वरूप को ध्यान में रखकर विकसित होती सामाजिक अवस्थाओं तथा सामाजिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में उनपर विचार किया जाय। आज के श्रमिक संघ बहुमुखी, अनेकवादी एवं व्यावहारिक हैं तथा उनके तरीके निरंतर बदलते रहते हैं, यदि ऐसा न होता तो वे सत्वर बदलती हुई परिस्थितिगत समस्याओं के सम्मुख टिक नहीं सकते।'[1] युद्ध के उपरान्त पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने अपने युद्धकालीन प्रतिवेदन में तीन मुख्य लक्ष्य प्रस्तुत किये हैं। प्रथम, श्रमिकों की मजदूरी कार्य की अवस्थाओं तथा घंटों को सुधारना और पोषण करना। मजदूरी केवल द्रव्य के परिप्रेक्ष्य में ही नहीं आंकी जाती अपितु उसमें कितनी सामग्री खरीदी जा सकती है। वस्तुओं के सामान्य मूल्य स्तर तथा निर्वाह व्यय से मजदूरी का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। वस्तुतः हम राष्ट्रीय आय को बढ़ाने और उसमें से कितना अंश श्रमिकों को मिलना चाहिए इसमें रुचि रखते हैं। दूसरा प्रश्न है कि श्रमिकों को कितने अवसर उपलब्ध हैं। 'पूर्णसेवायोजन' श्रमिक संघ आन्दोलन का उद्देश्य है। तीसरे श्रमिक संघ आन्दोलन के द्वारा उद्योगों की नीति तथा संचालन पर श्रमिकों का प्रभाव डालना तथा उनके द्वारा प्रबन्ध कार्यों में भाग लेने का प्रयत्न करना है।

नियोजित अर्थ व्यवस्था के इस काल में श्रमिक संघ दर्शक मात्र नहीं रहना चाहते। वे योजनायें बनाने तथा उन्हें कार्यान्वित कराने में सहयोग देना चाहते

१ लास्की : ट्रेड यूनियनिज्म इन दी न्यू सोसाइटी, पृ० २८।

हैं। वे पूर्ण सेवायोजन के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। वे केवल मजदूरी और सामूहिक सौदाकारी से ही सम्बद्ध नहीं बल्कि बड़ी बड़ी आर्थिक समस्याओं तथा नीतियों के निर्धारण से भी सम्बद्ध हैं जिनमें उनकी रुचि बढ़ती जा रही है। श्रमिक संघ राष्ट्रीय उद्योगों के प्रबन्ध में एक महत्त्वपूर्ण स्थान चाहते हैं।

आधुनिक युग में श्रमिक संघ आन्दोलन के मुख्य लक्ष्य इस प्रकार हो सकते हैं (१) मजदूरी तथा श्रमिकों की अवस्थाओं की रक्षा करना और उनमें सुधार करना, (२) समाज तथा उद्योग के नागरिक के रूप में श्रमिक के जीवन स्तर की उन्नति करना तथा (३) राष्ट्रीय आर्थिक जीवन पर सामाजिक नियन्त्रण रखना और उक्त नियन्त्रण में भाग लेना।[१]

इसका यह अर्थ नहीं कि सभी जगहों के श्रमिक संघ इन्हीं लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। प्रत्येक देश का अपनी उन्नति और उसमें विशिष्ट अवस्थायें श्रमिक संघवाद को गढ़ती और प्रभावित करती हैं। सामाजिक अवस्थाओं का औद्योगिक उन्नति तथा प्रचलित राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं पर उल्लेखनीय प्रभाव अवश्यमेव पड़ता है।

श्रमिक संघों के आर्थिक कार्यक्रमों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। विभिन्न समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण नकारात्मक न होकर सकारात्मक है। वे बेकारी या कम करने के स्थान पर पूर्ण सेवायोजन के लिए प्रयत्नशील हैं। उनकी महत्त्वाकांक्षाओं का काम के घंटे कम करके, अधिक वेतन देकर अथवा किसी प्रकार के अन्य मैत्रीपूर्ण लाभों के द्वारा छला नहीं जा सकता। वे काम, नौकरी तथा वेतन की ऐसी अवस्था लाना चाहते हैं, जिसमें विभिन्न वर्गों और समुदायों की असमानतायें समाप्त हो जायें, अधिक से अधिक संख्या में लोगों का जीवन स्तर उन्नतिशील बने और मानवीय व्यक्तित्व की सर्वांगीण उन्नति हो।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए श्रमिक संघों ने तीन प्रकार की विधियाँ प्रयोग में लाई हैं, जो वेब्स के अनुसार इस प्रकार हैं (१) पारस्परिक सहयोग की विधि (२) सामूहिक सौदाकारी की विधि, तथा (३) वैधिक अधिनियमन की विधि। ये विधियाँ अपने में स्वतंत्र नहीं हैं बल्कि एक दूसरे की पूरक हैं। एक श्रमिक संघ इन सभी विधियों को एक साथ नियोजित कर सकता है। श्रमिक संघ की कार्यविधि में इनका महत्त्व सापेक्षिक है जो उनके विकास और सम्मुख आई समस्याओं पर आधारित है।

हम श्रमिक संघों को कौन सा स्थान देना चाहिए? अहस्तक्षेप से कल्याणकारी राज्य के संधि काल में उनके प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल गया है। पहले से

१ बलान्डस एण्ड बलग सिस्टम ऑफ इण्डस्ट्रियल रिलेशंस इन ग्रेट ब्रिटेन पृ० १६२।

किसी प्रकार के संगठन का विरोध किया जाता था, क्योंकि उन्हें व्यवसाय की स्वतंत्र नीति के प्रतिकूल और बाधक माना जाता था। अर्थशास्त्रियों ने भी श्रमिक संघों की कार्यविधियों का समर्थन नहीं किया क्योंकि उनके अनुसार वे आवश्यक आर्थिक विधियों का विरोध करते थे। धीरे-धीरे अर्थशास्त्रियों की विचारधारा में परिवर्तन हुए और यह अनुभव किया गया कि विपण्यीय आर्थिक व्यवस्था हमेशा अधिकाधिक लोगों की भलाई के लिये सहायक होती है। बार बार होने वाली तेजी और मंदी ने बढ़ते हुए सरकारी हस्तक्षेप को प्रश्रय दिया। इसी बीच प्रजातान्त्रिक विचारों की दृष्टि से साथ साथ संगठन की स्वतन्त्रता पर लगाये गये प्रतिबन्ध भी धीरे-धीरे तिरोहित होने लगे। आज यह विश्वास किया जाता है कि जटिल आर्थिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए श्रमिक संघ बहुत आवश्यक हैं। प्रजातान्त्रिक देशों में उनकी भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। श्रमिक संघों का स्तर ऊँचा हो गया है और जो कार्य परम्परागत रूप में उनके क्षेत्र में आते थे अब सरकार स्वयं कर रही है। आधुनिक राज्य उदाहरणार्थ बेकारी या पूर्ण सेवायोजन जैसी समस्याओं का सुलझाना, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के विस्तार और असमानता को दूर करने के लिये स्वयं ही प्रयत्नशील हैं। सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों की वृहद् योजनाओं में राज्य श्रमिक संघ का बहुमूल्य सहयोग चाहता है।

जनजीवन के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में श्रमिक संघों की भूमिका प्रत्येक देश में एक सी नहीं होती। प्रजातान्त्रिक देशों में इनकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे स्वतन्त्र संगठन हैं जो प्रजातान्त्रिक प्रणाली पर कार्य करते हैं। वे राज्य, जो साधारणतया उनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते, के अधीन नहीं हैं। सर्वाधिकारी राज्यों में श्रमिक संघ स्वतन्त्र संगठन नहीं होते बल्कि उनकी स्थिति अधीनस्थ होती है। वे विविध रूपों में अमूल्य सेवायें प्रदान करते हैं। वे राज्य की सामाजिक बीमा योजनाओं का संचालन, सम्मिलित सलाहकार समिति में भाग लेना, कर्मचारियों की वैयक्तिक शिकायतों का प्रतिनिधित्व करना तथा सभी प्रकार के अन्य कार्य कर सकते हैं। उनके प्रतिवेदनों तथा सवालों पर ध्यान दिया जाता है। किन्तु सर्वाधिकारी राज्यों में श्रमिक संघ उपयोगी और महत्त्वपूर्ण होते हुए भी, राज्य के नियंत्रण से स्वतन्त्र नहीं होते उनके स्वेच्छिक व्यवहार और हड़ताल करने के अधिकार छिन जाते हैं। वस्तुतः श्रमिक संघ स्वेच्छिक संगठन होने चाहिए। प्रजातान्त्रिक भावना बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है।

श्रमिक संघवाद औचित्यपूर्ण है अथवा नहीं यह एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इसका उत्तर देने के लिए उनके योगदान और उपलब्धियों की समीक्षा करनी होगी। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था कुछ मूल्यों पर आधारित होती है। जिन्हें

उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक माना जाता है और इन मूलभूत मूल्यों को बदलने के लिए किसी भी प्रयास का कठोरता से विरोध किया जाता है। श्रमिक संघवाद ने वैयक्तिक संविदा के सिद्धान्त पर प्रहार किया जिस पर अहस्तक्षेप की आर्थिक नीति आधारित थी। धनी वर्ग के लाभ खतरे में पड़ गये और तब आन्दोलन का विरोध किया गया। कुछ तो हो जनता के कुछ वर्गों के लिए की गयी सेवाओं से श्रमिक संघवाद की वास्तविक उपयोगिता नहीं आँकी जा सकती। "श्रमिक संघवाद का मूल्यांकन किसी निश्चित समय पर किसी विशेष वर्ग के श्रमिकों की उन्नति के लिए किये गये कार्यों की सफलता से नहीं वरन् राष्ट्र की कार्य-कुशलता पर पड़े स्थायी प्रभाव के द्वारा किया जाता है। यदि श्रमिक संघवाद के किन्हीं नियमों अथवा विधियों के द्वारा कम कुशल उत्पादन के साधनों का चुनाव होता है जिनका उपयोग अन्यथा किया गया होता, यदि वे निम्न श्रेणी के संगठन को प्रोत्साहन के लिए बाध्य करते हैं जो उनके बिना भी संभव होता, और वे विशेषकर शारीरिक श्रम करने वाले अथवा बुद्धिजीवियों की क्षमता को कम करने या उनके स्वभाव को क्षति पहुँचाते हैं तो श्रमिक संघवाद का यह रूप किसी विशेष वर्ग के श्रमिकों के लिए कितना ही लाभप्रद क्यों न प्रतीत होता है, निन्दनीय है। दूसरी ओर यदि किसी श्रमिक संघ के नियम और विधियाँ ऐसी हैं जिनसे अति कुशल उत्पादन के साधनों के चुनाव में प्रोत्साहन मिले, चाहे वह पूँजी, बुद्धि अथवा श्रम हो, यदि उनके द्वारा इन साधनों का अधिक अच्छा संगठन हो, और सर्वोपरि रूप में यदि उनके प्रयत्नों से कार्यक्रम में वृद्धि हो तथा बुद्धिजीवी और शारीरिक श्रम करने वालों के स्वभाव में उन्नति हो तो पूँजीवाद की वैयक्तिक शक्ति के बिना अन्तर्विरोध के आबद्ध उस सम्पूर्ण समुदाय की क्षमता की वृद्धि करने तथा अधिकाधिक सुख पहुँचाने वाले संगठन के रूप में मान्यता दी जायगी।[1]

वेब्स ने नियमन की तीन विशिष्ट विधियाँ बतायी हैं जिन्हें श्रमिक संघ अपना सकते हैं, यथा—स्वार्थ निहित सिद्धान्त, माँग और पूर्ति का सिद्धान्त तथा निर्वाह मजदूरी का सिद्धान्त। स्वार्थ निहित सिद्धान्त श्रमिक संघों की शक्ति पर निर्भर करता है, जिससे वे अपनी सदस्यता बढ़ाकर उन्हीं क्षेत्रों में नियन्त्रण कर सकें, जहाँ श्रम की स्थिति विशेषकर अनुकूल हो। स्वाभाविक रूप से सुविधाएँ और लाभ प्राप्त करने के लिए वे नियन्त्रित श्रम की पूर्ति चाहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रवृत्ति अस्वस्थ है, और श्रमिक संघों ने नियमन की इस विधि को छोड़ दिया है।

माँग और पूर्ति का सिद्धान्त सामूहिक सौदेबाजी की विधि पर आधारित है

१ वेब्स : इण्डस्ट्रियल डिमोक्रेसी, पृ० ७०३।

जिसका अर्थ है कि श्रमिकों के सामूहिक कार्यों से श्रमिक संघ अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होगा। जहाँ भी सामूहिक सौदेकारी की विधि अपनायी जाती है, श्रमिक संघ अपनी माँग को मनवाने के लिए अन्तत हडतालो का सहारा लेते है। आजकल माँग और पूर्ति के सिद्धान्त का प्रयोग बहुत सीमित है। क्योंकि श्रमिक संघवाद के हाल के विकास नियोजक संगठनो के विस्तार, नियोजक और कर्मचारियों के बीच सम्बन्धो में परिवर्तन तथा उद्योग में राज्य की नयी भूमिका से इसका प्रयोग यदा-कदा ही होता है। इन सबमे महत्वपूर्ण वे परिवर्तन हैं जो श्रमिक संघवाद में हुए हैं। श्रमिक संघ आन्दोलन में विविध जातीय तत्वो का समावेश बढता जा रहा है अत वे सामूहिक हडताल को उचित नही मानते। एक स्थायी प्रभाव यह भी हुआ है कि श्रमिक संघो में स्थायी अधिकारी वर्ग का महत्त्व बढता जा रहा है। इसके अलावा मजदूरी और काम की अवस्थाओ के स्थान पर विस्तीर्ण राजनैतिक उद्देश्यो का महत्त्व बढ जाने से नियमन के उद्देश्य से हडताल का महत्व कम हो गया है।

आधुनिक उद्योग मे राज्य की बदलती भूमिका के कारण माँग और पूर्ति का सिद्धान्त भी उत्तरोत्तर क्षीण हो गया है। राज्य ने श्रमिकों को बहुत से लाभ पहुँचाये हैं तथा मजदूरी और काम की अवस्थाओ का राज्य द्वारा नियमन होने लगा है। इसके अतिरिक्त सरकार स्वयं श्रमिकों का एक बहुत बडा नियोजक है। इससे काम और नौकरी की अवस्थाओ का स्तर सुधरा है। अत औद्योगिक संघर्ष की संभावना कम हो गयी है। इसके अतिरिक्त सरकार और प्रबंधको में सम्पर्क स्थापित होने के कारण श्रमिक संघ के नेताओ में उत्तरदायित्व की भावना में भी वृद्धि हुई है।

श्रमिक संघ अब निर्वाह मजदूरी के सिद्धान्त को अधिक महत्त्व देते है और इस कारण विधिक अधिनियमन पर उनका अधिक विश्वास है। निर्वाह मजदूरी सिद्धान्त का अर्थ है कि राज्य राष्ट्रीय न्यूनतम निर्धारित कर दे तथा किसी भी उद्योग को इससे कम पर काम करने की अनुमति न दी जाय। राष्ट्रीय न्यूनतम का निर्धारण यद्यपि काफी समय लेता है किन्तु इससे औद्योगिक संघर्ष कम होता है तथा निम्नतर श्रेणी के श्रमिको के स्तर में सुधार होता है। इससे काय कुशलता मे वृद्धि होती है और उद्योगो को लाभ मिलता है।

यह कहा जा सकता है कि निर्वाह मजदूरी के सिद्धान्त पर अधिकाधिक विश्वास करने मे हडताल बिलकुल समाप्त नही हो गयी। हडताल अब भी होती है और कभी-कभी बडा विकट रूप धारण कर लेता है। इनमे विभिन्न उद्योगो से हजारो श्रमिक भाग लेते हैं और जनता को कठिनाइयों का सामना करना पडता है। हडतालो से समाज को पहुँचने वाली क्षति यद्यपि सही-सही नही आँकी जा सकती, बहुत अधिक होती है। यह प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष दोनो होती

है। मजदूरी और उत्पादन की हानि के अतिरिक्त हड़तालों के और भी परिणाम होते हैं— जैसे अधिक संख्या में श्रमिकों का काम से अनुपस्थिति, अनिश्चितता, सामाजिक और आर्थिक विक्षिप्तता और असंतोष।

यह सत्य है कि हड़ताल तथा श्रमिक संघों की कुछ प्रवृत्तियाँ जनता को असुविधा पहुँचाती हैं। किन्तु यह श्रमिक संगठनों के विरोध में तर्क नहीं है। परन्तु यह तर्क हड़ताल करने के लिए तथा वर्तमान सामाजिक पद्धति को बदलने का तर्क अवश्य है। यह समाज जो शोषण का मौन समर्थन करता है श्रमिकों का विरोध करने का अधिकारी नहीं है जो इस अन्याय के विरुद्ध हथियार उठाते हैं। जबतक समाज में असमानतायें रहेंगी, औद्योगिक विवाद होते रहेंगे क्योंकि हड़ताल का आधार ही असमानता और अन्याय है।[1] जनता की असुविधायें भी एक अनिवार्य अंग हो गयी हैं। श्रमिक संघ जिन वस्तुओं को न्याययुक्त मानते हैं उनकी प्राप्ति के लिए शान्ति और निश्चिन्त जनता को चौंकाना और उन परिस्थितियों से अवगत कराना स्वयं साधन मात्र के रूप में एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है। आर्थिक संघर्ष में अनाक्रामकता-वाद रूप में इस कदम के लिए जनता की असुविधा होनी ही चाहिए क्योंकि यदि शोषितों के प्रति इस युद्ध रूप में कोई चोट नहीं होती तो जनता को असुविधा न हो। जब शान्ति आती है तब जनता निराकरण के लिए स्थिति में शक्ति तथा आरम्भ कर देती है।'[2]

इस प्रकार श्रमिक संगठन वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की आलोचना और कमियों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुआ है। इसने उन कठिनाइयों को प्रस्तुत कर दिया है जिनका सामना वर्तमान समय में अधिकांश लोगों को करना पड़ता है। यह अकाट्य सत्य है कि इस संसार में मूलरूप में कहीं शीघ्र अवश्य ही जिसका आमूल परिवर्तन आवश्यक है ताकि मनुष्यों के रहने के लिए एक अच्छा स्थान बन जाय। हम इन समस्याओं पर विचार करते हैं। इससे यह सिद्ध हो गया है कि अतिशीघ्र ध्यान नहीं गये वरन् वे नाममात्र विनियोग रहे हैं।

---

१ कोल : दि वर्ल्ड ऑफ लेबर, पृ० [illegible]८८।

२ लास्की : स्ट्राइक्स (इन) स्टडी इन इण्डस्ट्रियल कॉन्फ्लिक्ट [illegible] द्वारा सम्पादित, पृ० २६[illegible]–२६[illegible]।

२

भारतीय श्रमिक-वर्ग आन्दोलन का इतिहास

प्रारम्भिक प्रयत्न
(१८७५–१९१८)

आधुनिक श्रमिक समस्याएँ पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था और उत्पादन की फैक्ट्री पद्धति की एक अनिवार्य देन है। आधुनिक फैक्ट्रियों में एक बड़ी संख्या में लोगों की नियुक्ति की जाती है। कर्मचारियों को कम मजदूरी, नौकरी की शर्तें, नौकरी की सुरक्षा, वहाँ के प्रबन्ध, सामाजिक सुरक्षा और उद्योगों पर प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण की एक ही सी समस्यायें हैं। इन समस्याओं पर विचार करने और यदि संभव हो तो सामान्य हल खोजने या सामान्य दृष्टिकोण अपनाने की उन्हें सुविधा है। नियोजक कर्मचारियों के अवैयक्तिक सम्बन्ध, नियोजकों का बढ़ता हुआ लाभ और श्रमिकों का कम मजदूरी तथा निम्न जीवन स्तर उनमें वर्ग चेतना पैदा करता है जो श्रमिकों को संगठित होने तथा सामूहिक कार्यवाही करने को प्रोत्साहित करता है।

भारत में सर्वप्रथम १८५१ में बम्बई में पहली सूती मिल तथा १८५५ में बंगाल में पहली जूट मिल की स्थापना हुई। इससे भारत में आधुनिक फैक्ट्री प्रणाली का श्रीगणेश हुआ। १८५१ और १८५५ के बाद बम्बई और बंगाल में फैक्ट्रियों की संख्या बढ़ने लगी। बम्बई सूती वस्त्र तथा बंगाल जूट उत्पादन का केन्द्र बन गया। औद्योगीकरण के साथ उसकी बुराइयाँ भी आयीं जैसे महिलाओं और बच्चों का रोजगार, काम के लम्बे और अत्यधिक घंटे, कठिन परिश्रम, नैतिक पतन, शिक्षा की कमी, आवास की निम्न व्यवस्था तथा अधिकाधिक बढ़ती मृत्यु दर। भारत के राज्य सचिव को आधुनिक फैक्टरी प्रणाली की इन सभी बुराइयों से सूचित किया जाता रहा तथा १८७५ में बम्बई में फैक्टरी कमीशन की स्थापना हुई और १८८१ में प्रथम फैक्ट्रीज एक्ट पास हुआ।

१८८१ का एक्ट अपर्याप्त साबित हुआ। इस एक्ट की सुरक्षा से सम्बन्धित धाराओं तथा महिला श्रमिकों के लिये कोई धारा न होने से बड़ी निराशा हुई। १८८४ में एक दूसरा फैक्ट्री कमीशन नियुक्त किया गया। श्री लोखण्डे ने बम्बई में श्रमिकों का एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमें ५३०० श्रमिकों ने अपने हस्ताक्षरों से

एवं स्मरण-पत्र फैक्ट्री कमीशन को दिया। भारत में यह श्रमिक संघवाद का प्रारम्भ था। इस सभा में प्रस्तुत और स्वीकार किये गये स्मरण-पत्र में साप्ताहिक अवकाश, आधे घंटे का भोजन विश्राम, दुर्घटनाओं के लिये क्षतिपूर्ति, मास की अर्जित मजदूरी का आगामी मास की १५ तारीख तक भुगतान और ६ बजे प्रातः से सूर्यास्त तक ही काम के घंटों का परिसीमन की माँग सम्मिलित थी।

चूँकि श्रम की अवस्था में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ था, इसलिये १८९० में सरकार को एक दूसरा अभिवेदन दिया गया और उसमें १८८४ की माँगों को दोहराया गया। इसमें लगभग २७००० श्रमिकों के हस्ताक्षर थे। उसी वर्ष श्री लोखण्डे की अध्यक्षता में बम्बई मिल हैण्ड्स एसोसियेशन की स्थापना हुई। भारत में श्रमिकों का यह प्रथम संघ था। श्रमिकों की आकांक्षाओं और शिकायतों को जनता के समक्ष लाने के लिये 'दीन-बन्धु' नामक श्रमिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। फैक्ट्री श्रमिक आयोग (१८९०) के एक अधिवेशन में बम्बई मिल हैण्ड्स एसोसियेशन ने अपनी माँग प्रस्तुत की। वास्तव में बम्बई मिल हैण्ड्स एसोसियेशन को वास्तविक अर्थों में श्रमिक संघ नहीं माना जा सकता। वह एक सुसंगठित संस्था नहीं थी। उसके पास न सदस्यों की सूची थी, न ही कोई कोष और नियम थे। अभी तक श्रमिकों की अपनी कोई संगठित संस्था नहीं थी।

१८९० के पश्चात् श्रमिकों के अनेक संघ स्थापित हुए। १८९७ में अमलगमेटेड सोसायटी ऑफ रेलवे सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया एण्ड बर्मा की स्थापना हुई। १९०५ में प्रिन्टर्स यूनियन कलकत्ता, १९०७ में बम्बई पोस्टल यूनियन, १९१० में कामगार हितवर्धक सभा और सोशल सर्विस लीग की स्थापना हुई। अमलगमेटेड सोसायटी ऑफ रेलवे सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया एण्ड बर्मा कम्पनी एक्ट के अन्तर्गत पंजीकृत था। इस विभाग में काम करने वाले सभी वर्गों के कर्मचारी इसके सदस्य हो सकते थे। इसके नियम व्यापक थे तथा विभिन्न पदाधिकारियों के चुनाव की व्यवस्था, वार्षिक सामान्य बैठक का आयोजन, विभिन्न शाखाओं का प्रशासन, विभिन्न पदाधिकारियों के अधिकार, उनके चुनाव और वेतन अथवा मानदेय की विधि का उसमें उपबन्ध था। चन्दे के विषय तथा विभिन्न वर्गों के सदस्यों को विभिन्न सुविधायें देने के सम्बन्ध में विस्तृत व्याख्या की गई थी। किन्तु बम्बई श्रम गजट में इस समिति को यद्यपि श्रमिक संघों के रूप में वर्गीकृत किया गया था। समिति और अन्य श्रमिक संघ जो इस काल में संगठित किये गये वे मुख्यतः श्रम हितकारी संगठन थे। उन्हें आधुनिक श्रमिक संघों की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती। इन संस्थाओं का उद्देश्य फैक्ट्री प्रणाली की बुराइयों को दूर करना तथा श्रम का जीवन स्तर सुधारना था। समस्याओं पर विचार करना, श्रमिकों की कठिनाइयों को सूचित करना, सरकार

के सम्मुख उन्हें प्रस्तुत करना तथा समुचित श्रम अधिनियम के लिये जोर देना उनकी कार्य प्रणाली थी।

आधुनिक श्रमिक संघों की उत्पत्ति के लिये अनुकूल परिस्थितियां उस समय नहीं थी। आधुनिक श्रमिक संघवाद के लिए औद्योगिक श्रम जीविका का फैक्ट्री सेवायोजन पर आश्रित होना पूर्वापेक्ष्य है। फैक्ट्री पद्धति स्थापित हो गयी थी। उस समय औद्योगीकरण में तो शीघ्र उन्नति हुई, किन्तु एक स्थायी श्रमिक वर्ग का अभाव था। श्रमिकों में अधिकांश संख्या उन लोगों की थी जो गांवों से आकर अस्थायी सहारे के लिये औद्योगिक कार्य कर लेते थे। जैसे ही सुविधायें मिल जाती थी वे अपने गांवों को वापस चले जाते थे। इन श्रमिकों में न तो वर्ग चेतना थी और न ही वे फैक्ट्री पद्धति की बुराइयों को पूरी तरह और वास्तविक रूप में समझते थे। श्रमिक गांवों से आते थे और यदि उन्हें शहरी जीवन या फैक्ट्री कार्यों से असन्तोष होता था वे वापस जा सकते थे। उनके प्रवासी स्वभाव और गांव के बन्धन ने उन्हें प्रारम्भ में श्रमिक संघवाद की आवश्यकता का अनुभव नहीं होने दिया। कुछ स्थानीय कठिनाइयों की अनुभूति ने कभी-कभी श्रमिकों को इस दिशा में प्रयत्न करने के लिये प्रेरित किया परन्तु इन सीमित प्रयासों में संगठित कार्यों को जाति सम्बन्ध तथा निवासी होने की भावना से बल मिलता था। एक बार यदि स्थानीय कठिनाइयों से मुक्ति मिली तो संघ अथवा श्रमिक संघ की आवश्यकता समाप्त हो जाती थी।

इस काल की दूसरी विशिष्टता यह थी कि साधारणतया शिक्षित वर्ग जैसे डाक तथा तार श्रमिक और रेलवे कर्मचारियों ने ही अपने को श्रमिक संघों में संगठित किया था। इन दो वर्गों में सबसे पहले संगठन बने। यह इसलिये सम्भव हुआ क्योंकि इन संस्थाओं के अधिकांश कर्मचारी साक्षर अथवा अर्द्ध साक्षर थे तथा इन वर्गों के श्रमिकों में एक उचित अनुपात यूरोपियन तथा एंग्लो इंडियन समुदाय का भी था।

उपर्युक्त कारणों तथा आमूल परिवर्तन वादी नेतृत्व के अभाव में संघों अथवा श्रमिक संगठनों ने इस काल में वैधानिक रीति से ही अपनी कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न किया। नेतृत्व और श्रमिक आन्दोलन का दृष्टिकोण मुख्यतः सामाजिक कल्याण था। उन्होंने विभिन्न योजनाओं में सरकार के साथ सहयोग किया। प्रतिवेदन करने याचिका प्रस्तुत करने तथा श्रमिक कानूनों के अधिनियम के लिये प्रयत्न करते रहने में ही नेतृत्व का मुख्यतः विश्वास था। राजनैतिक मामलों में श्रमिकों का प्रत्यक्ष दखल नहीं था। वे राजनैतिक जीवन में तभी दृष्टि डालते थे जब उन पर उसका कोई प्रभाव पड़ता था और तत्पश्चात् उसकी भर्त्सना करते थे।

इस समय की सबसे प्रमुख विशेषता थी कि औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिये हड़तालें नहीं होती थीं। राजकीय श्रम आयोग के अनुसार १९१८ के पूर्व हड़तालें दुर्लभ थीं। इसका अर्थ यह नहीं था कि हड़तालें हुई ही नहीं। १९१८ के पहले ही कुछ हड़तालें हुई। अहमदाबाद के बुनकरों की अपनी पहली अधिकारिक हड़ताल १८९५ में थी जबकि अहमदाबाद के मिल मालिक संघ ने साप्ताहिक मजदूरी के स्थान पर मासिक मजदूरी देने का निश्चय किया। यद्यपि बुनकरों ने काम करना बन्द कर दिया, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। १८९७ में प्लेग की महामारी के बाद बम्बई में हड़तालें हुई। उनमें से काफी सफल अथवा अर्द्ध सफल रहीं। मद्रास सरकार ने मुद्रणालय में अतिरिक्त वेतन के बिना अधिक घंटे काम करने के विरोध में मुद्रण तथा मशीन विभाग में असफल हड़ताल हुई। १९०५ में कलकत्ता केन्द्रीय मुद्रणालय के कर्मचारियों ने लगभग एक महीने तक हड़ताल की तथा १९०७ में समस्तीपुर रेलवे वर्कशॉप के कर्मचारियों ने वेतन वृद्धि के सम्बन्ध में हड़ताल की थी। ये हड़तालें नियोजित रूप में आयोजित नहीं की गयी। उनका उद्देश्य स्थानीय शिकायतों को दूर करना था। हड़ताल एक ऐसा अस्त्र है जिसका सफल प्रयोग स्थायी तथा सुसंगठित संघों के द्वारा ही किया जा सकता है। चूंकि इस काल में श्रम संघ नहीं थे इसलिये हड़तालें बहुत कम हुई।

डा० पुनेकर ने इस काल को हमारे प्रारम्भिक श्रमिक संघ आन्दोलन का सामाजिक कल्याण काल कहा है।[1] डा० आर० के० दास ने इस काल को दो भागों में विभाजित किया है। उसके अनुसार प्रथम काल में १८७५ से १८९१ तक भारतीय फैक्ट्रियों में महिलाओं और बाल श्रमिकों के नियमन का उद्देश्य था। १८९१ से १९१७ तक के दूसरे काल में ब्रिटिश उपनिवेशों तथा विदेशों में भारतीय प्रवासियों की अवस्थाओं में सुधार करने की ओर ध्यान दिया गया।

आन्दोलन का आरम्भ
(१९१८ से १९२४)

१९१४ में युद्ध की घोषणा से भारत में श्रमिक आन्दोलन के विकास को प्रोत्साहन मिला। इस काल में सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुये। युद्ध के कारण जहाजरानी की सुविधाओं में कमी हुई। फलतः वस्तुओं का आयात सीमित हो गया। उसी समय मित्र तथा तटस्थ देशों में भारतीय माल की मांग अत्यधिक बढ़ गयी। इन कारणों से आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के भाव बहुत बढ़ गये। सट्टे की व्यापकता ने इस स्थिति को और भी भयंकर कर दिया। उद्योग और व्यापार में अपूर्व तेजी हो गयी जिससे मालिकों ने अत्यधिक लाभ अर्जित किया। निर्वाह

1 ट्रेड यूनियनिज्म इन इण्डिया।

परिव्यय में निरंतर वृद्धि होती जा रही थी और मजदूरी इस गति से नहीं बढ़ पा रही थी। बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति ने श्रमिकों में केवल असंतोष ही नहीं फैलाया बल्कि उनमें वर्ग चेतना का भी उदय किया। श्रमिकों का परम्परागत धैर्य चुकने लगा तथा नियोजकों के प्रति पितृक भावना को भी जबरदस्त धक्का लगा। इन आर्थिक कठिनाइयों से उत्पन्न अशान्ति ने श्रमिकों को संगठन बनाने तथा सामूहिक कार्य करने के लिये विवश किया। श्रमिकों को गुजारे लायक भी कठिनाई से मिल पाता था। उनके पास कोई काम नहीं था जिस पर निर्भर हो पावें। उनका पहले का ही निम्न जीवन स्तर और भी निम्न हो गया। श्रमिक संगठनों के लिये यह संकेत था। नियोजक इस बदलते स्वरूप को नहीं समझ पाये। परिस्थितियाँ बदल गयी थीं किन्तु उनके मनमाने कार्य करने के तरीकों में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ।

राजनैतिक नेताओं के लिये सहज था कि वे श्रमिकों की आर्थिक कठिनाइयों और परेशानियों से अपना मतलब निकालें। सारे देश में स्वराज्य आन्दोलन और पंजाब में सैनिक शासन के विरोध की धूम थी। राजनैतिक आन्दोलनकारियों ने अनुभव किया कि शहरों के संगठित श्रमिक एक बहुत बड़ी शक्ति है और जिनका सहयोग उनके उद्देश्य की पूर्ति में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। श्रमिकों को बहुत-सी शिकायतें थीं। उन्हें सचमुच निर्देशन और नेतृत्व की आवश्यकता थी। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन तथा उनके जनसम्पर्क के आदर्श ने श्रमिक आन्दोलन को सघार तथा सही नेतृत्व प्रदान किया। गांधी जी की पुकार पर हजारों विद्यार्थियों ने जिन्होंने स्कूल और कालिज छोड़े और वकीलों ने जिन्होंने अपनी वकालत छोड़ी और उनकी तरह अनेकों ने श्रमिक आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया। इन लोगों में सामान्य व्यक्तियों के लिये कार्य करने का अदम्य उत्साह था और उनके लिये वे मैं बड़ा त्याग करने के लिए तत्पर थे। अभी तक श्रमिक वर्ग को अच्छे नेता नहीं मिले थे जो उनकी मांगों और आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति दे सकते। अब उन्हें मार्ग प्रदर्शन करने के लिये उचित प्रकार के व्यक्ति मिल गये थे।

रूसी क्रांति और यूनियन आफ सोवियत सोशलिस्टिक रिपब्लिक की स्थापना का भी हमारे श्रमिक संघ आन्दोलन पर काफी प्रभाव पड़ा। क्रान्ति की सफलता से नसित और शोषित व्यक्तियों के हृदयों में प्रसन्नता की लहर उठी और उन्हें नयी आशा मिली। इसने सामान्य व्यक्तियों के लिये एक नई सामाजिक व्यवस्था का आश्वासन दिया। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि रूसी क्रान्ति ने भारतीय श्रमिक आन्दोलन को अत्यधिक प्रेरणा दी।

श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना और उसकी त्रिदलीय संरचना से भी श्रमिक संगठनों के विकास को सहायता मिली। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने श्रमिकों के संगठन की स्वतन्त्रता में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और श्रमिक संघों के संगठनों को जो न्यायिक अभ्याघातों का सामना करना

पड़ता था, जो कि प्रारम्भिक अवस्था में ब्रिटिश श्रमिकों को करना पड़ा था, उसका विरोध किया। इसकी विभिन्न सभाओं और सम्मेलनों में श्रमिकों के प्रतिनिधि स्वतन्त्रता पूर्वक अपने दृष्टिकोण रख सकते थे और रखा करते थे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना के बाद साधारण मनुष्यों ने श्रमिकों की समस्याओं में रुचि लेना आरम्भ कर दिया। श्रमिक समस्याओं पर विचार करने के लिये इससे अनुकूल वातावरण का निर्माण हुआ। संक्षेप में, इन प्रगतियों के द्वारा श्रमिकों में चेतना बढ़ी।

उपरोक्त कारणों से श्रमिक आन्दोलन को एक नई दिशा मिली। श्रमिक समझौता करने अथवा समस्याओं को यूँ ही पड़ा रहने देने के लिये तैयार नहीं थे। इस आम जागृति ने श्रमिक आन्दोलन को और बढ़ावा दिया। ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना, जो मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों के सम्मेलनों और सभाओं में प्रतिनिधि भेजने के लिये हुई थी, से श्रमिक आन्दोलन को प्रतिष्ठा मिली तथा श्रम समस्याओं पर विचार करने और परिसंवाद करने के लिए एक स्थान की भी व्यवस्था हुई।

१९१८ के बाद बहुत से श्रमिक संघों को संगठित किया गया। भारत में मद्रास श्रमिक संघ आधुनिक ढंग का पहला श्रमिक संघ था। इसके अध्यक्ष श्री बी० पी० वाडिया की लगन तथा त्याग के फलस्वरूप इसकी उन्नति हुई। 'मद्रास श्रमिक संघ की सदस्यता वस्त्र उद्योग के श्रमिकों तक ही सीमित नहीं थी। प्रत्येक श्रमिक इसमें प्रवेश पा सकता था। यद्यपि इसकी सदस्यता मुख्य रूप से वस्त्र-उद्योग के श्रमिकों तक ही सीमित रही परन्तु फिर भी मद्रास श्रमिक संघ ने निरन्तर प्रगति की। मद्रास शहर के वस्त्र उद्योग का एक भी श्रमिक श्रमिक संघ के बाहर नहीं रह गया और थोड़े से ही समय में संघ अधिक से अधिक शक्तिशाली होता गया।'[1] बिन्नी कर्नाटक मिल के भारतीय श्रमिकों के प्रति यूरोपियन निरीक्षकों द्वारा किये जाने वाले दुर्व्यवहार तथा श्रमिकों की गिरती हुई आर्थिक दशा के कारण ही मद्रास श्रमिक संघ की स्थापना की गई थी। संघ ने माँग की कि दोपहर में एक घंटे का अवकाश दिया जाय, मजदूरी में २५ प्रतिशत की वृद्धि की जाय, मजदूरों का भुगतान प्रत्येक मास की सात तारीख तक किया जाय तथा भारतीय श्रमिकों के साथ यूरोपियन प्रबंधक अच्छा बर्ताव करें और साथ ही साथ वर्णभेद की भावना समाप्त की जाय। श्री वाडिया होमरूल लीग के सक्रिय सदस्य थे। संघ से उनका संबंध और वर्णभेद समाप्त करने की माँग के कारण यह लाँछन लगाया गया कि देश के प्रथम श्रमिक संघ संगठन के पीछे राजनैतिक उद्देश्य हैं। वस्तुतः उद्देश्य और कारण आर्थिक थे और श्री वाडिया का संबंध केवल आकस्मिक था।

---

१ लोकनाथन इंडस्ट्रियल वेलफेयर इन इण्डिया, पृ० १६०।

श्री वाडिया के नेतृत्व में संघ ने अपने व्यवहार में एक उग्र दृष्टिकोण विकसित किया। संघ ने श्री वाडिया द्वारा चिरअनुमोदित हड़तालों की नीति नहीं अपनाई। प्रबन्धकों ने ही मिलों में तालाबन्दी घोषित करके आक्रामक नीति अपनाई। काफी उकसाने पर भी श्रमिकों ने हड़ताल नहीं की। संघ की कार्यप्रणाली में श्री वाडिया ने सक्रिय रुचि ली। संघ ने वाचनालय भंडार खोले तथा आसान उधार की व्यवस्था की। श्री वाडिया ने शैक्षणिक पक्ष और आत्मोन्नति की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने यह भी सलाह दी कि प्रत्येक श्रमिक कम से कम एक आना प्रतिमाह चन्दा दे। जनता को सूचित करने तथा उसका सहयोग प्राप्त करने के लिये संघ ने सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया और पंच निर्णय-मंडल के सम्मुख रखने के लिए अपनी मांगों को प्रस्तुत किया। श्रमिकों के मताधिकार की भी मांग की गई ताकि वे विभिन्न वैधानिक संस्थाओं के निर्वाचन में कुछ प्रभाव रख सकें। श्री वाडिया पर अभियोग चलाया गया तथा संघ के विरुद्ध १९२० में निषेधाज्ञा जारी की गई। श्री वाडिया के अभियोजन के फलस्वरूप ही इतनी जल्दी १९२६ में श्रमिक संघ अधिनियम (Trade Union Act) पारित किया गया। मद्रास श्रमिक संघ की असफलता का कारण वस्तुतः जाति विभेद का विस्तार ही था।

१९१८ में सात नये संघ संगठित किये गये। इनमें से चार मद्रास में, दो बम्बई में तथा एक कलकत्ता में प्रारम्भ किये गये। इनमें से महत्वपूर्ण संघ थे—श्रमिक संघ मद्रास, भारतीय समुद्र कर्मचारी संघ कलकत्ता और लिपिक संघ बम्बई। १९१९ में दस और संघों का गठन किया गया—५ बम्बई में, २ मद्रास में तथा एक एक बंगाल, उत्तर प्रदेश और पंजाब में। १९१९ में गठित संघों में कर्मचारी संघ कलकत्ता, समुद्रकर्मचारी संघ बम्बई, तथा एम० एन० एम० रेलवे संघ मद्रास अधिक महत्त्वपूर्ण थे।

१९२० तक एक बड़ी संख्या में संघ बन चुके थे। उसी वर्ष अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का संगठन किया गया और ६४ श्रमिक संघ जिनकी कुल सदस्यता १४०८५४ थी, इससे सम्बद्ध हुए। निम्नलिखित सारणी से १९२० में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस से सम्बद्ध श्रमिक संघों की स्थिति स्पष्ट हो गयी है।

सारणी १–अ

१९२० म ग्रखिल भारतीय मजदूर काग्रेस मे सम्बद्ध ग्रौर ग्रनुकम्पी श्रमिक सघ

	सम्बद्ध ग्रौर ग्रनुकम्पी सघो की सख्या	सम्बद्ध सघो की सख्या	सम्बद्ध सघो की सदस्यता
१–प्रदेशो के ग्रनुसार			
बम्बई	५६	४४	४६ ८८१
बगाल	८	१	२,५०५
यू० पी०	८	३	१५,८००
सी० पी०	६	२	१७८
सिंध	२	१	१२८
सीलोन	१	—	—
मद्रास	१६	८	३,५५९
बिहार	१	—	—
पजाब	९	४	७०,२८३
दिल्ली	७	—	—
भारतीय राज्य	१	१	१,६००
योग १०८		६४	१४०,८५४

सारणी १–ब

१९२० म ग्रखिल भारतीय मजदूर काग्रेस से सम्बद्ध तथा ग्रनुकम्पी श्रमिक सघ

	सम्बद्ध ग्रौर ग्रनुकम्पी सघो की सख्या	सम्बद्ध सघो की सख्या	सम्बद्ध सघो की सदस्यता
१–प्रदेशो के ग्रनुसार			
रेलवे	२१	११	९१ ४२७
वस्त्र उद्योग	१२	९	७,७१९
जहाजरानी	४	३	१९ ८००
यातायात	४	२	२,४७०

१	२	३	४
रसायन	७	६	८५६
प्राविधिक	८	७	७५६०
डाक तथा तार	१५	५	१६८५
छपाई तथा कागज	७	३	१८४४
अन्य	२६	१८	७४६३
योग	१०७	६४	१४०८५४

अहमदाबाद वस्त्र श्रमिक संघ १६१८ में प्रारम्भ हुआ और १६२० में इसकी सदस्य संख्या १६४५० हो गई। अखिल भारतीय डाक तथा रेलवे डाक सेवा संघ की सातों शाखाओं में लगभग २००० सदस्य थे। इनके अतिरिक्त भी बहुत से संघ थे जिनका विवरण प्राप्त नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारतीय श्रमिक संघों की कुल सदस्य संख्या ५ लाख आंकी। डा० पुनेकर इस संख्या को अतिशयोक्ति मानते हैं। उनके अनुसार १६२० में १२५ संघ थे जिनकी सदस्यता २५०००० थी।

श्रमिक संघों की वृद्धि के कारण बहुत सी हड़तालें हुईं। १६१६ में मद्रास में १६ हड़तालें हुईं। श्रमिकों की मांगें मजदूरी में वृद्धि, बोनस, चावल भत्ता, काम के घंटों में कमी तथा अतिरिक्त छुट्टियों से संबंधित थीं। बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा आसाम में भी हड़तालें हुईं। बम्बई में एक सार्वजनिक हड़ताल आयोजित की गई। अहमदाबाद में भी कई बार काम बन्द हुआ। अन्य प्रान्तों में भी यहां वहां हड़तालें घोषित की गईं। १६२० में आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ी तथा सम्पूर्ण देश में लगभग २०० हड़तालें हुईं। १६२० की महत्वपूर्ण हड़तालें—बम्बई में सभी मिलों में हड़ताल, अहमदाबाद में सभी कतकों की हड़ताल और बड़ौत तथा शोलापुर में सार्वजनिक हड़तालें थीं। पंजाब में रेल श्रमिकों ने काम बन्द कर दिया। मद्रास में ६२ हड़तालें घोषित की गईं। बंगाल, उड़ीसा तथा आसाम के प्रायः सभी उद्योग प्रभावित हुए। १६२१ में भारतीय सरकार ने हड़तालों के बारे में सूचना एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया। कुल ४०० विवाद जिनमें ५२३१५१ श्रमिक संनिहित थे अभिलिखित किये गये। १७४ विवादों में मजदूरी में वृद्धि तथा ७५ विवादों में बोनस की हड़तालियों ने मांग की। ६३ मामलों में वैयक्तिक प्रश्न संनिहित थे। दस मामलों में छुट्टी तथा अन्य औद्योगिक विषय संनिहित थे। १६२ हड़तालें बम्बई में तथा १३५ बंगाल में घोषित की गईं। सूती तथा ऊनी मिलों में १६४ हड़तालें हुईं। २१ हड़तालें इंजीनियरिंग उद्योगों में हुईं तथा जूट उद्योग और रेलवे में २८-२८ हड़तालें हुईं। इन हड़तालों में से

८८ सफल रहीं और ८४ में स्वत्व आंशिक सफलता मिली। १९२७ में २७८ हड़तालें जिनमें १,३१,६५६ श्रमिक सम्मिलित थे घोषित किये गये जिनमें से केवल ६ हड़तालें ही सफल थीं। १०७ मामलों में श्रमिकों ने अधिक मजदूरी की मांग की तथा अन्य ३० हड़तालों में काम के घंटों का विषय सम्मिलित था। बम्बई, बंगाल, बिहार और उड़ीसा औद्योगिक अशांति के मुख्य प्रान्त थे। कुल हड़तालों में से १०४ हड़तालें सूती वस्त्र में, ६१ जूट उद्योग में, १२ रेलवे में और १० इंजीनियरिंग कारखानों में घटित हुईं। १९[illegible] के बाद हड़तालों में कमी होने लगी। १९३३–१९३४ में क्रमशः केवल १३६ तथा ११२ हड़तालें हुईं।

हड़तालों की इस बाढ़ का विश्लेषण करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस काल में जितने भी संघ बने वे सभी स्थायी श्रमिक संगठन नहीं थे। इनमें अधिकांश संगठन मालिकों से संघर्ष करने अथवा हड़तालें चलाने के लिए ही बनाये गये थे। ज्यों ही हड़ताल समाप्त होती, उनका भी अस्तित्व समाप्त हो जाता था। बंगाल में औद्योगिक अशांति समिति ने १९२१ में कहा था कि "इस प्रान्त में पाये जाने वाले अधिकांश संगठन वस्तुतः [illegible] हैं, यद्यपि, कुछ निजी व्यक्तियों का सम्बन्ध उन चार और [illegible] श्रमिकों का, जो कि सामान्य औद्योगिक श्रमों से बाहर हैं, सर्वोत्तम श्रमिक संघ संगठित करने में दिखाई पड़ता है।" ऐसी संस्थाओं में उत्पन्न हुए ये संघ केवल नाममात्र के ही संघ थे। डा० [illegible] ने कहा है कि इस काल में संघों में न तो एकरूपता थी और न विभिन्नता थी कि उनके कोई नियम (लिखित मुद्रित और प्रकाशित नियम) नहीं थे तथा विभिन्न व्यवसायों में ऐसी संस्थाओं के संघों का संगठन और नियंत्रण कुछ ही बाहरी व्यक्तियों द्वारा किया गया था। डा० [illegible] ने कहा है कि प्रारम्भिक संघ अस्थायी और शिथिल संगठन थे और इन प्रारम्भिक संगठनों में से प्रायः ७५ प्रतिशत का १९२० के बाद के वर्षों में समाप्त हो जाना हो गया। ऐसी अधिक विभिन्नता के कारण श्रमिक संघवाद का विकास होता गया। श्रमिक संघ समाप्त हो गए परन्तु श्रमिक संघवाद जीवित रहा।

श्रमिक संघों की सफलता के लिए आर्थिक स्थितियाँ उत्तरदायी थीं। राजनैतिक तत्वों ने भी श्रमिकों के संगठन में सहायता पहुँचाई। यद्यपि इस देश में हुए राजनैतिक विरोधों का श्रमिक संघों पर अच्छा प्रभाव पड़ा किन्तु श्रमिक संगठनों का केवल राजनैतिक तत्वों का देन समझना भूल होगी।

१९२१ और १९२५ के बीच श्रमिक संघों की शक्ति के विभिन्न अनुमान लगाये गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने १९२१ में कुल सदस्यता १५०–२०० हजार के लगभग आँकी थी। डा० आर० के० दास ने अपनी 'भारत में श्रमिक आन्दोलन' में ८७ श्रमिक संघों के साथ लगभग १,०००,००० कुल सदस्यता का

सन् १९२१ के लिये अनुमान लगाया। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस ने १९२२ मे सघो की सख्या ११३ दी। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस द्वारा १९२५ म प्रकाशित श्रमिक सघो की डायरेक्ट्री म १९२४ म श्रमिक सघो की सूचना निम्न प्रकार से दी गई है।

सारणी २

१९२४ म श्रमिक सघो की शक्ति

	वर्ग	सघो की सख्या	विवरण भेजने वाले सघ	सदस्यता
१	परिवहन			
	रेलवे	२५	१०	१९७ ७०२
	जहाज रानी	६	३	१८५००
	अन्य यातायात	६	३	६,३००
२	वस्त्र उद्योग			
	सूती	२३	१७	३० ७९५
	जूट	—	—	—
३	इजीनियरिंग			
	रसायन ग्लास तथा			
	बर्तन आदि	३	१	५००
	लोहा, इस्पात धातु	३	२	९ ०००
	अन्य	५	२	८२५
४	सेवाय			
	बैंकिंग	३	२	१ ६१०
	मुद्रा	४	३	१ १२०
	लिपिक तथा अध्यापक	४	१	५००
	व्यापार	४	१	२,६००
५	विविध			
	सरकारी तथा नगर			
	पालिका कर्मचारी	३८	४	९ १५०
		७	१	४००
	कागज तथा छपाई	५	२	७१०

	१	२	३	४
	डाक तार	१८	१४	३७,६७५
६	सामान्य श्रमिक	१९	१	१०,०००
	योग	१६७	६८	१२३,३३७

भारत में श्रमिक संघों की शक्ति का अनुमान सम्भवतः अतिरंजित करते हैं। डा० लोकनाथन ने सरकारी कर्मचारियों के संगठनों को छोड़कर श्रमिक संघों की संख्या १०० तथा सदस्यता १२०००० का अनुमान लगाया है। उन्होंने निम्न आँकड़े दिये हैं।

सारणी ३

अनुमानित श्रमिक संघों की शक्ति

श्रमिक संघ	सदस्यता
डाक तथा तार कर्मचारियों के संघ	१००००
रेलवे कर्मचारी	१००००
सामुद्रिक (६ संघ)	२००००
बन्दरगाहों के कर्मचारी	५०००
ट्राम कर्मचारी (२ संघ)	२०००
वस्त्र उद्योग श्रमिक (लगभग २० संघ)	५२०००
छापाखाने (४ संघ)	६०००
इस्पात श्रमिक	६०००
लिपिक तथा व्यावसायिक संस्थानों के सहायक	१०००
अन्य	३०००
योग लगभग १०० संघ	१२००००

इस काल में भारतीय श्रमिक संघवाद की एक विशेषता यह रही कि सुसंगठित उत्पादन उद्योगों में यह अधिक प्रगति करने में असमर्थ रहा। वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग तथा खानों के श्रमिकों में श्रमिक संघ कमजोर और अस्थायी थे किन्तु सरकारी कर्मचारियों के संघ शक्तिशाली तथा स्थायी थे। भारत में इस वर्ग में श्रमिक संघवाद श्रमिकों से पूर्व तथा उनके साथ ही साथ विकसित हुआ। दूसरे देशों में लिपिक तथा सरकारी कर्मचारियों ने बहुत बाद में अपने श्रमिक संघ संगठित किये थे।

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की अधिकारिक पत्रिका 'अखिल भारतीय श्रमिक संघ बुलेटिन' में भारतीय श्रमिक संघों की संख्या १८३ बताई गई है। इन १८३ संघों में से ६१ संघ बम्बई में थे, ५१ बंगाल में और ३६ मद्रास में। श्रमिक संघों की संख्या का लगभग ८०.८ प्रतिशत केवल इन्हीं प्रान्तों में था।

श्रमिक संघ निर्देशिका में ८ श्रमिक संघानों की सूची दी गई है जिनकी सदस्य संख्या १६५८०० थी। निम्न सारणी में ये आँकड़े प्रस्तुत हैं—

सारणी ४

श्रमिक संघान

संघान के नाम	निर्माण वर्ष	सम्बद्ध संघों की संख्या	सदस्यता
अहमदाबाद श्रमिक संगठन	१९२०	५	१४०००
अखिल भारतीय मुद्रा संघ	सभी प्रान्तीय शासनों		८००
अखिल भारतीय डाक तथा रेलवे सेवा संगठन कलकत्ता	१९२०	८	३००००
रेलवे कर्मचारी संघान कलकत्ता	१९२१	—	२००००
अखिल भारतीय व्यवसाय संघ सभा बम्बई	१९२०	४०	१०००००
बंगाल व्यवसाय संघ संघान	१९२२	३	५०००
केन्द्रीय श्रमिक मंडल, बम्बई	१९२२	७	६०००
दक्षिण भारतीय रेलवे श्रमिक मंडल कोयम्बटूर	१९२४	५	१००००

श्रमिक संघों की शक्ति के बारे में विवादग्रस्त अनुमान हो सकते हैं किन्तु इसके बारे में संदेह नहीं किया जा सकता कि श्रमिक संघवाद स्थायी हो चुका था। १९१८ से १९२४ तक के थोड़े से समय में कुछ शक्तिशाली और स्थायी श्रमिक संघों जैसे अहमदाबाद श्रमिक संगठन की नींव पड़ चुकी थी। श्रमिकों में एक नई जागरूकता आ गई थी तथा भविष्य के महत्त्वपूर्ण विकास की भूमिका तैयार हो गयी थी। १९२२ में बम्बई औद्योगिक विकास समिति ने भी यही राय व्यक्त की थी "हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि श्रमिक संघ आन्दोलन के प्रारम्भिक दिन प्रायः कठिनाई पूर्ण होते हैं। हड़ताल समितियाँ जो अपने को श्रमिक संघ कहती हैं उभरती हैं और दायित्वों के निर्वाह कर सकने के साधनों के अभाव में श्रमिक संघों की सुविधाओं की माँग करती हैं। किन्तु ये श्रमिक संघवाद की जात-व्याधि हैं जिन्हें प्रचलित करने की अपेक्षा उनका उपचार करना ही उचित है। इसलिए हम यह

निश्चित आशा व्यक्त करते हैं कि श्रमिक संघ आन्दोलन के स्वतंत्र विकास में न तो राज्य की ओर से और न ही उद्योग की ओर से किसी प्रकार का प्रतिरोध किया जायगा।

साम्यवाद का प्रभाव
(१९२४–१९२८)

इस काल में साम्यवादी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ा। १९२४ के बाद देश में कपड़ा उद्योग में गम्भीर हड़तालें हुई। १९२४ में १३८ हड़तालें हुई जिनमें लगभग ३ प्रतिशत सफल रहीं। बम्बई सूती मिलों में १८ सितम्बर १९२४ में हड़ताल प्रारम्भ हुई जबकि लगभग ३३,२८८ श्रमिकों ने कार्य बन्द कर दिया। हड़ताल बढ़ती गई और २ अक्तूबर तक सभी मिलों में काम बिलकुल बन्द हो गया। हड़ताल का मूल कारण मिल मालिकों का यह निश्चय था कि श्रमिकों को दिये जाने वाले मँहगाई भत्ते में २० प्रतिशत की कटौती करदी जाय। हड़ताल के दौरान हिंसा का सहारा लिया गया। हड़ताल लगभग दो महीने बाद दिसम्बर १९२५ में सूती वस्त्रों पर उत्पादन शुल्क की समाप्ति और मिल मालिकों के इस निश्चय के साथ की मँहगाई भत्ते में कटौती लागू नहीं होगी समाप्त हुई। इस काल की अन्य महत्त्वपूर्ण हड़तालें बंगाल की उत्तर रेलवे और उत्तर पश्चिम रेलवे वर्कशाप गोरखपुर तथा लखनऊ कागज मिलों में घटित हुई।

१९२६ में औद्योगिक झगड़े कम हुए किन्तु इस वर्ष खड़गपुर बंगाल-नागपुर रेलवे संघ के एक अधिकारी के पकड़े जाने के विरोध में बंगाल-नागपुर रेलवे में हड़ताल घोषित की गयी। हड़तालियों द्वारा हिंसा का प्रयोग किया गया। उन्होंने खड़गपुर स्टेशन पर हमला किया तथा सारा यातायात ठप्प कर दिया। अन्ततः पुलिस और मिलिट्री को बुलाना पड़ा तथा भीड़ के नियंत्रण के लिये गोली भी चलानी पड़ी।

१९२७ में हड़तालों में वृद्धि हुई तथा खड़गपुर वर्कशाप में दो लम्बी हड़तालें हुई। हड़ताल सूती वस्त्र श्रमिकों द्वारा मुख्यतः बम्बई में की गयी।

१९२८ में बहुत हड़तालें हुई। विवादों की कुल संख्या २०३ थी। कुल ५,०६,८५१ श्रमिकों ने भाग लिया तथा ३१५ लाख काम के दिनों का नुकसान हुआ। टाटा लोहा और इस्पात उद्योग जमशेदपुर में घटित हड़ताल उल्लेखनीय थी। १८ अप्रैल १९२१ में शीटमिल में हुई हड़ताल धमन भट्टी विभाग द्वारा अनुसरित की गई। मिल के प्रबन्धकों ने ८ मई को तालाबन्दी की घोषणा की तथा श्रमिकों को नौकरी से हटा देने की आज्ञा जारी की। २५ मई को पूरी हड़ताल रही और २ जून को दो दिन की हड़ताल हुई। बहुत से बाहरी लोगों ने विवाद को सुलझाने के प्रयत्न किए। श्री सुभाषचन्द्र बोस के हस्तक्षेप और उनके सहयोग से ११ सितम्बर १९२८ को समझौता हुआ। फलतः १३ सितम्बर से श्रमिकों ने काम पर जाना

प्रारम्भ कर दिया। हड़ताल के फलस्वरूप जमशेदपुर श्रमिक संघ की स्थापना हुई जो एक पंजीकृत संघ था और जिसे प्रबन्ध की मान्यता देनी पड़ी।

१९२८ में बम्बई की सूती मिलों में सार्वजनिक रूप में हड़ताल हुई। सर्वश्री ससन एण्ड कम्पनी द्वारा प्रबंधित नौ सूती मिलों में १४१८७ श्रमिकों द्वारा लगभग ५८ दिन हड़ताल करने के बाद सार्वजनिक हड़ताल हुई। कुल ५,३४६०२ कार्यकर दिनों का नुकसान हुआ। हड़ताल उस पद्धति में परिवर्तन के कारण हुई जिसके अनुसार उसमें श्रमिकों को अधिक संख्या में करघे और कम सधार देखने थे। श्रमिकों को बिना किसी शर्त के हड़ताल समाप्त कर काम पर आना पड़ा। प्रफुल्ल मंडल की सिफारिशों के आधार पर कार्यविधि का जो प्रमाणीकरण किया गया था उससे श्रमिकों को भय था कि काफी श्रमिक बेकार हो जायेंगे। आम हड़ताल १६ अप्रैल १९२८ को प्रारम्भ हुई जिसमें १४७६४४ श्रमिकों ने भाग लिया तथा लगभग २२० लाख कार्यकर दिनों की हानि हुई। हड़ताल ४½ महीने चलती रही। यह ६ अक्तूबर १९२८ तक रही जबकि सरकार ने फक्वेट जांच समिति की नियुक्ति की।

यह बात उल्लेखनीय है कि बम्बई के वस्त्र उद्योग श्रमिकों का कोई शक्तिशाली और स्थायी संघ नहीं था। १९२५ के तीसरे चतुर्थक तक में वस्त्र उद्योग श्रमिकों के संगठन की दिशा में कदम बढ़ाया गया और चार संघ बनाये गये। विभिन्न क्षेत्रों और मिलों के नौ संघों को मिलाकर बम्बई वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ की स्थापना की गयी। इसने ७००० सदस्यों का दावा किया। चंदे की दर प्रति सदस्य चार आना प्रतिमास थी। गिरनी कामगर संघ का जो बाद में गिरनी कामगर महामंडल हो गया १९१९ में संगठित किया गया। यह १९२३ तक निष्क्रिय रहा। १९२५ में मंडल में फूट पड़ी और चार पृथक संघ संगठित किये गये। संघों तथा मंडल का सारा प्रबन्ध स्वयं श्रमिकों द्वारा ही किया जाता था। महामंडल के संस्थापक का मुख्य उद्देश्य यही था कि इन संघों के प्रबन्ध और कार्य विधि में बाहरी हस्तक्षेप न रहे। सार्वजनिक हड़ताल के परिणामस्वरूप बम्बई गिरनी कामगर संघ का संगठन किया गया। इसने तेजी से प्रगति की और इसकी सदस्यता ३२४ से बढ़कर ५४००० हुई जो बाद में बढ़कर ६५००० हो गई। इसी प्रकार बम्बई मिल श्रमिक संघ की स्थापना श्री भटावाला द्वारा मार्च १९२८ में हुई। समय में श्रमिक संघ कार्य-कलापों में द्रुत गति में उन्नति हो रही थी फलतः श्रमिक संघों की सदस्यता लगभग ७० प्रतिशत से बढ़ गई। बम्बई सूती उद्योग श्रमिक संघ का नेतृत्व सार्वजनिक हड़ताल के खिलाफ था। लेकिन उन्हें अन्य वर्गों का सहयोग न मिल सका और सार्वजनिक हड़ताल घोषित कर दी गई। नरम तथा उग्रवादी दोनों ने हड़ताल में सहयोग दिया। मई १९२८ में संयुक्त हड़ताल समिति बनाई गई जिसने श्रमिकों के कष्टों का विवरण तैयार किया। फक्वेट जांच समिति की नियुक्ति के बाद हड़ताल

समाप्त हो गई। हड़ताल का संचालन अनुकरणीय ढंग से किया गया। सूती वस्त्र उद्योग श्रमिकों के बार बार की शिकायतों और सुसंगठित संघ के अभाव के बावजूद नेताओं ने संगठन की असाधारण क्षमता का प्रदर्शन किया तथा सामान्य श्रमिकों का व्यवहार अनुशासित था।

१९२९ के बाद विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस वर्ष औद्योगिक विवादों की कुल संख्या १४१ थी जिसमें लगभग ५,३१,०५९ श्रमिकों ने भाग लिया और कुल १,२१,६५,६९१ कार्यकारी दिनों की हानि हुई। जुलाई १९२९ में बंगाल की जूट मिलों में काफी व्यापक हड़तालें हुईं जिनमें २,६७,[illegible] श्रमिकों ने भाग लिया। डिगबोई के तेल क्षेत्र के मजदूरों ने वेतन एवं रविवार की हड़ताल घोषित की। फॉसेट जाँच समिति का प्रतिवेदन प्रकाशित हो जाने के बाद भी जो अधिकतर श्रमिकों के पक्ष में था, उद्योग की दशा स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ। बम्बई गिरनी कामगार संघ ने अपनी संस्था में शिकायतें प्रस्तुत कीं जिनमें नियोजकों द्वारा कर्मी करण के मामले भी सम्मिलित थे। संघ ने आम हड़ताल की घोषणा की जो असफल रही। बम्बई सरकार ने जाँच न्यायालय की स्थापना की जिसने बम्बई गिरनी कामगार संघ के नेतृत्व पर नियोजकों और श्रमिकों के बीच झगड़ा तथा कुत्सित आरोपों प्रचार द्वारा विद्वेष पैदा करने का आरोपारोपण किया। संघ पर छोटी छोटी हड़तालें करने, धरना देने, हड़तालियों को हिंसात्मक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने तथा हड़ताल में भाग न लेने वाले श्रमिकों के साथ दुर्व्यवहार करने के आरोप लगाये गये। आम हड़ताल की असफलता और न्यायालय द्वारा लगाये गये आरोपों के कारण गिरनी कामगार संघ को मार्ग में बट्टा लगा। इससे श्रमिकों ने सहयोग देना बन्द कर दिया और इसकी सदस्यता घटकर केवल ८०० रह गई।

अप्रैल १९२९ में टिनप्लेट कम्पनी, गोलमुरी के श्रमिकों ने हड़ताल घोषित की। नये संगठन संघ के दो अध्यक्षों श्री डांगे और श्री होमी की सलाह से विप्लवकारी हड़ताल की घोषणा की गई। हड़तालियों को नव संगठित श्रमिक किसान पार्टी ने सहयोग दिया। हड़ताल पूर्णतया असफल रही। श्रमिक संघों के विकास पर इन असफल हड़तालों का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। संघों की संख्या के साथ में उनकी सदस्यता भी गिर गई।

बाद के वर्षों में औद्योगिक विवादों व हड़तालों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। १९३० में १४८ हड़तालें हुईं जिनमें १,९६,३०१ श्रमिकों ने भाग लिया और २२,६१,७३१ कार्यकारी दिनों की हानि हुई। इनमें से ६१ प्रतिशत हड़तालें असफल रहीं। केवल ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे विवाद जिसमें ४ फरवरी १९३० को हड़ताल घोषित की गई थी, महत्वपूर्ण रहा। हड़तालियों ने जनता के सहयोग के लिए प्रयत्न किये। जी० आई० पी० रेलवे कर्मचारी संघ एवं समिति बम्बई

युवक मडल, बी० बी० एण्ड सी० आई० रेल कर्मचारी सघ तथा बम्बई प्रादेशिक काग्रेस समिति ने हड़ताल के कारणो के समर्थन में प्रस्ताव पारित किये। बी० बी० एण्ड सी० आई० रेल कर्मचारी सघ ने हड़ताल कोष में एक हजार रुपये दिये और बम्बई प्रादेशिक काग्रेस समिति ने आर्थिक सहायता के लिये जनता से अपील की। हड़ताल असफल साबित हुई और १९ अप्रैल १९३० को इसे समाप्त कर दिया गया।

१९३१ में १९६ हड़ताले हुई जिनमे २०३ ००८ श्रमिको ने भाग लिया और २४,०८,१२३ कार्यकर दिनो का नुकसान हुआ। पिछले वर्ष की भाँति लगभग ६० प्रतिशत हडतालें असफल सिद्ध हुई। १९३२ में हडतालो की संख्या १८८ थी जिनमे १,०१,२८०८६ श्रमिक सम्मिलित थे और १६,२२ ४२७ कार्यकर दिनो की क्षति हुई। केवल २६ प्रतिशत हड़तालो में श्रमिको को कुछ लाभ प्राप्त हुए।

१९३३ के वर्ष में भी श्रमिको को कुछ अधिक लाभ नहीं मिले। १४६ हड़तालो में से जिनमे २ ६४ ९६१ कार्यकर दिनो की हानि हुई श्रमिक केवल ३१ प्रतिशत विवादो में कुछ सुविधायें प्राप्त कर सके।

इस अवधि में जो अशाति तथा असतोष और बडी संख्या में विवाद तथा हड़तालें हुई उनका कारण वाममार्गी तत्व थे जो भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन में सचारित हो चुके थे। १९२० से ही साम्यवादी प्रभाव स्पष्ट होने लगा था। इस प्रभाव से हडतालो के स्वरूप में परिवर्तन हो गया। कठोर तथा उद्दण्ड भाषा तथा नृशस विधियो का प्रयोग साधारणतया किया जाने लगा। हडताल में भाग न लेने वालो को समय समय पर प्रताडित किया जाने लगा तथा हिंसा के उद्भेद की भी संभावना बनी रहती थी।

श्रमिक सघो पर साम्यवादियो के बढते हुये प्रभाव को सरकार रोकना चाहती थी। हिंसात्मक साधनो द्वारा सरकार को पलट देने के षडयत्र को सगठित करने के आरोप में साम्यवादी नेताओ पर १९२४ में कानपुर में मुकदमा चलाया गया। कानपुर मुकदमे का साम्यवादियो के बढते हुये प्रभाव और प्रसार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने बम्बई में श्रमिक किसान पार्टी और पंजाब में कीर्ति किसान और नवजवान सभा का सगठन किया। सरकार द्वारा साम्यवादी आन्दोलन को समाप्त करने के लिये १९२९ में एक दूसरा प्रयास किया गया जबकि प्रसिद्ध मेरठ मुकदमा हुआ। इसमे सरकार ने १ ६० ००० पौंड खर्च किये तथा मुकदमा साढे चार साल तक चलता रहा। युवक श्रमिक सघियो को कठोर दण्ड दिये गये जो बाद में अपील करने पर कम कर दिये गये। वस्तुत सरकार श्रमिक आन्दोलन पर साम्यवादियो के बढते हुये प्रभाव को रोकने में असफल रही।

निम्नलिखित सारणी में १९२५–२९ के बीच अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस की प्रगति का विवरण दिया गया है जिसमे यह स्पष्ट है कि इस अवधि में श्रमिक सघो की उन्नति द्रुत गति से हुई है।

सारणी ४

१९२५–२९ के बीच अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की प्रगति

संघ	५वां सत्र फरवरी १९२५	६वां सत्र जनवरी १९२६	७वां सत्र दिसम्बर १९२७	८वां सत्र दिसम्बर १९२७	९वां सत्र दिसम्बर १९२८	१०वां सत्र नवम्बर १९२८
प्रान्तों के अनुसार						
बंगाल	८	१५	२०	२२	१३	—
बिहार और उड़ीसा	१	[illegible]	३	३	३	—
बम्बई	१०	१६	१६	१६	११	—
सी० पी० और बरार	[illegible]	४	४	[illegible]	३	—
मद्रास	४	६	८	८	८	—
उत्तरप्रदेश	[illegible]	२	३	[illegible]	२	—
भारतीय राज्य	—	—	—	—	—	—
बर्मा	—	१	१	१	१	—
सिंध	—	—	—	—	—	—
उद्योगों के अनुसार						
रेलवे	१२	११	१२	१२	१०	—
जहाजरानी	४	[illegible]	८	४	[illegible]	—
अन्य यातायात	[illegible]	७	[illegible]	७	२	—
सूती	२	८	६	१०	६	—
जूट	१	१	१	१	१	—
खान	—	१	१	१	१	—
इंजीनियरिंग		[illegible]	२	३	२	—
छपाई तथा कागज	[illegible]	२	२	४	४	—
अशारीरिक श्रम वाले	—	[illegible]	१	४	२	—
कृषि	—	—	—	—	—	—
अन्य	८	६	१०	१२	११	—
योग	[illegible]	५२	५७	५६	४२	५१
कुल सदस्यता	६००००	१२५०००	१२५०००	१२५०००	९८६००	१८६४३६

दसवें अधिवेशन की सूचनायें उपलब्ध नहीं हैं।

श्रमिक संघों के पंजीकरण की निम्नलिखित प्रगति भी यह स्पष्ट करती है कि इस काल में श्रमिक संघवाद का विकास हुआ है।

सारणी ६

पंजीकृत श्रमिक संघों की प्रगति

वर्ष	पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या	विवरण भेजने वाले संघ	विवरण भेजने वाले संघों की कुल सदस्यता
१९२७–२८	२९	२८	१००६१९
१९२८–२९	७५	६५	१८१०७७
१९२९–३०	१०४	९०	२४२३५५

केवल बम्बई प्रांत में मार्च १९२५ को समाप्त होने वाले त्रिमास में श्रमिक संघों की संख्या ३४ तथा सदस्यता ४९५५१ थी जो मार्च १९१९ को समाप्त होने वाले त्रिमास से बढ़कर क्रमशः ९० और १९७०५२ हो गई। १९२८ के पिछले त्रिमास में (सितम्बर दिसम्बर १९२८) श्रमिक संघों की सदस्यता ७२.१४ प्रतिशत से बढ़ी।

उग्रवादी भावनाओं के विकास का मुख्य कारण श्रमिकों की आर्थिक कठिनाइयाँ जैसे मंदी, मजदूरी में संभावित कटौती तथा बेरोजगारी थी।

आर्थिक संकटकाल में ही साम्यवाद प्रगति करता है। इसने नये नेतृत्व के लिए भूमिका तैयार की। नरम वर्ग के नेता समय के अनुकूल साबित नहीं हुए। उनकी नीतियाँ सामान्य श्रमिकों का अनुमोदन प्राप्त करने में असफल रहीं। नियोजकों के रुख ने भी नये नेतृत्व के पनपने में सहयोग दिया। उन्होंने अपनी गलतियों को सुधारने तथा श्रमिकों की उचित मांगों को मानने से इन्कार कर दिया। वे तभी संघ के प्रतिनिधियों से मिलने अथवा उनकी मांगों को मानने के लिए तैयार होते थे जब सीधी कार्यवाही का सहारा लिया जाता। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की सभाओं में काफी संख्या में विदेशी साथी प्रतिनिधियों ने भाग लिया और वाममार्गी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया।

बढ़ती हुई उग्रवादी प्रवृत्तियों के फलस्वरूप हड़तालों में काफी वृद्धि हुई जैसा कि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है। इससे अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस में फूट भी पड़ी। साम्यवादियों ने वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त और पूंजीवादी व्यवस्था का अन्तत उखाड़ फेंकने के उपदेश दिये। नरमदलों तथा उग्रवादी दोनों साथ नहीं चल सके। १९२९ के नव अधिवेशन में मुख्य संगठन से अलग होकर नरम दल के नेताओं ने भारतीय श्रमिक संघ संघान की स्थापना की। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस में एक दूसरी फूट के फलस्वरूप एक वर्ग ने लाल श्रमिक संघ का संगठन किया।

१९२९ में हुई बम्बई में याग हड़ताल की असफलता काफी मात्रा में प्रतियोजित और जल्दबाजी में संगठित की गई हड़तालों की असफलताओं तथा अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस में फूट से श्रमिक संघों में मतभेद होने लगे। श्रमिक संघों की सदस्यता तथा कार्यवाहियों में कमी होने लगी। अरजिस्टर्ड श्रमिक संघ किसी भी अखिल भारतीय संस्था में सम्मिलित होने से घबड़ाते थे। भारतीय श्रमिक संघ संघान की प्रगति के निम्नलिखित आँकड़ों से श्रमिक संघवाद की प्रगति के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी ७

भारतीय श्रमिक संघ संघान की प्रगति

तिथि	संघों की संख्या	सदस्यता
२० जुलाई १९३०	७	१८३००
३१ दिसम्बर १९३०	२६	५२०३९
१ दिसम्बर, १९३१	२८	६६४००
३० जून १९३२	८०	७८०००
१० मई १९३३	८१	७८६७७

केन्द्रीय संघों में भारतीय श्रमिक संघ संघान अधिक निर्बल था। १९३२ में ८० संघ जिनकी सदस्यता ७८००० थी तथा मई १९३३ में ४१ संघ जिनकी सदस्यता ७८६७७ थी इससे सम्बद्ध थे। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस तथा लाल श्रमिक संघ कांग्रेस के बारे में विश्वसनीय आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। पंजीकृत श्रमिक संघों के नीचे दिये गये आँकड़ों में भी श्रमिक संघों की सदस्यता तथा कार्यवाहियों में कमी प्रकट होती है।

सारणी ८

पंजीकृत श्रमिक संघों की प्रगति १९२८–८

वर्ष	पंजीकृत संघों की संख्या	विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	विवरण भेजने वाले संघों की कुल सदस्यता	माध्य सदस्यता
१९२८	२९	२८	१०० ६१९	३ /९४
१९२९	७५	६५	१८१ ०७७	२ ७८६
१९३०	१०४	९०	२४२ ३५५	२,६९३

१	२	३	४	५
१९३१	११९	१०६	२१९,११५	२०६७
१९३२	१३१	१२१	२३५,६९३	१९४८
१९३३	१७०	१४७	२३७,३६९	१६१४
१९३४	१९१	१६०	२०८,०७१	१३००

बम्बई में, जहाँ साम्यवादियों का बहुत अधिक प्रभाव था और जहाँ आम हड़ताल असफल हो गई थी मार्च १९२६ में श्रमिक संघों की सदस्यता १६७०५२ थी जो घटकर दिसम्बर १९२१ में ९८८१६ हो गई और जून १९२५ में केवल ६७७१६ रह गई।

१९३० के बाद साम्यवादियों का प्रभाव कम होना प्रारम्भ हो गया। उनके द्वारा आयोजित १९२९–३० में आम हड़ताल की असफलता के परिणाम हानिकर सिद्ध हुए। अन्य हड़तालें भी श्रमिकों को सुविधाएं दिलाने में अप्रभावकारी रहीं। उद्योग मंदी की स्थिति से गुजर रहे थे इसलिए हड़तालों की सफलता की बहुत कम सम्भावना थी। इन असफलताओं में श्रमिकों का विश्वास साम्यवादी नेतृत्व से उठ गया। उसके अलावा आन्दोलन को अनुभवी साम्यवादी नेताओं के निर्देशन की भी कमी थी क्योंकि वे मेरठ मुकदमा में फंसे हुए थे। फिर अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस में फूट पड़ जाने तथा साम्यवादियों द्वारा कांग्रेस पर नियन्त्रण रखने के लिए अपनाई गई सन्धि प्रणाली से उनकी साख समाप्त हो गई। देश में राजनैतिक घटनाओं जैसे कांग्रेस के नागरिक अवज्ञा आन्दोलन से जनता का ध्यान उधर आकर्षित हो गया। साम्यवादियों ने देश में राजनैतिक आन्दोलन से दूर रहकर जनता की सहानुभूति भी खो दी।

इस अवधि में दो अन्य महत्वपूर्ण विकास हुए। प्रथम तो १९२६ में श्रमिक-संघ अधिनियम का पारित किया जाना था। इसके अन्तर्गत एच्छिक पंजीकरण की व्यवस्था थी तथा पंजीकृत श्रमिक संघों को कुछ दायित्वों के बदले विशेष अधिकार प्रदान करने का आयोजन था। मद्रास श्रमिक संघ के अध्यक्ष श्री बी० पी० वाडिया पर मुकदमा चलाये जाने तथा न्यायालय द्वारा निषेधाज्ञा जारी करने के बाद से ही श्रमिक संघ अधिनियम की माँग की जाती रही थी। दूसरे श्री आर० आर० बाखले श्री एन० एम० जोशी तथा अन्य नेताओं द्वारा श्रमिक संघ आन्दोलन के विभिन्न वर्गों के बीच एकता स्थापित करने का प्रयास था। वस्तुतः इन प्रयत्नों को केवल आंशिक सफलता मिली जब १९३३ में राष्ट्रीय श्रमिक संघ संघान की स्थापना की गई और जिसने ४७ संघों की १३५००० सदस्यता के साथ, सम्बद्ध होने का दावा किया।

लोकप्रिय मन्त्रिमंडल
(१९३५–१९३९)

यह इंगित किया जा चुका है कि १९३४ में श्रमिक संघों की सदस्यता तथा क्रियाकलापों में काफी कमी हो गई थी। उद्योग पर्याप्त मंदी अनुभव कर रहे थे। बड़ी संख्या में श्रमिकों की छंटनी की जा रही थी तथा मजदूरी कम कर दी गई थी। इन स्थितियों में श्रमिक संघों का सक्रिय रहना सरल नहीं था। श्रमिक संघवाद के स्वस्थ विकास में एक प्रतिकूल तथ्य था नेताओं में आपसी मतभेद।

१९३४ के बाद उद्योग और व्यापार में पुनर्जीवन आया। मिलमालिकों द्वारा अभिनवीकरण, छंटनी तथा मजदूरी में कटौती की गई योजनाओं से श्रमिक संघों के क्रियाकलाप पुनः ऊर्जस्वी हो उठे और विवादों की संख्या बढ़ गई। कुल १५९ हड़तालें घोषित की गई जिनमें २२०८०८ श्रमिकों ने भाग लिया और ४७७५५९९ कार्यकर दिनों की क्षति हुई। श्रमिकों ने अभिनवीकरण की योजनाओं का विरोध किया। अभिनवीकरण, छंटनी और मजदूरी में कटौती के प्रतिवाद के लिए जनवरी १९३४ में अखिल भारतीय वस्त्र उद्योग श्रमिक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने पूरे देश में वस्त्र उद्योग श्रमिकों में आम हड़ताल की प्रस्तावना की। बम्बई, नागपुर तथा शोलापुर में आम हड़तालों की घोषणा की गई। साम्यवादी प्रभाव पुनः दिखाई पड़ने लगा। १९३४ में सरकार ने साम्यवादी दल को गैरकानूनी घोषित कर दिया।

१९३५ में भारत में नया संविधान अपनाया गया। इस संविधान में श्रमिकों द्वारा या श्रमिक संघ क्षेत्रों में श्रम प्रतिनिधियों के निर्वाचन की व्यवस्था थी। आम चुनावों की प्रत्याशाओं और इस अनुभूति ने कि नेताओं के बीच मतभेद श्रमिकों के हितों को हानि पहुँचा रहे हैं, नये सिरे से श्रमिक संघ एकता को स्थापित करने के प्रयत्नों को प्रेरणा दी। १९३५ में लाल मजदूर कांग्रेस स्वयं ही अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस में सम्मिलित हो गई। श्रमिक संघ एकता समिति ने दो वर्गों—राष्ट्रीय श्रमिक संघ संघान तथा अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस में एकता लाने के लिए और भी प्रयास किये।

इस बार श्रमिकों में बढ़ रहे असंतोष का निराकरण इस अवधि में हुई काफी संख्या में हड़तालों द्वारा हुआ। १९३७ में ३७९ हड़तालें हुईं जिनमें ६४७,८०१ श्रमिकों ने भाग लिया तथा ८,९८२,२५ कार्यकर दिनों की हानि हुई। १९३७ में एक आम हड़ताल घोषित की गई। १९३८ में जूट मिल श्रमिकों की एक आम हड़ताल कलकत्ता में हुई जिसमें २००,००० श्रमिक सम्मिलित थे। हड़ताल लगभग एक महीने तक चली। १९३८ में ३९९ विवाद हुए जिनमें ४०१०७५ श्रमिकों ने भाग लिया तथा ९१९८३० कार्यकर दिनों का नुकसान हुआ। १९३९ में डिग्बोई तेल क्षेत्रों की प्रसिद्ध हड़ताल हुई। संघ बहुत शक्तिशाली था तथा सर

प्रतिशत श्रमिक इसके सदस्य थे। हड़ताल आठ मास तक चलती रही। हड़तालियों की विजय निकट ही थी कि युद्ध छिड़ गया। वाइसराय तथा गवर्नर के दमन तथा युद्ध के अभिस्थन पर समझौता करा दिया गया।

श्रमिक संघों के कार्यकलाप पुनर्जीवित हो चुके थे। निम्नलिखित सारणी द्वारा प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी ६

१९३४ की अवधि में भारत में पंजीकृत श्रमिक संघों की प्रगति

वर्ग	पंजीकृत संघों की संख्या	विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	सदस्यता
१९३४	१९१	१६०	२०८ ०७१
१९३५	२१३	१८३	२८४ ९१८
१९३६	२४१	२०५	२६८ ३२५
१९३७	२७१	२२८	२६१ ०४७
१९३८	४२०	३४३	३९० ११२
१९३९	५६२	३९४	३९९ १५९
११४०	६६७	४५०	५११ १३८

बम्बई में जून १९३५ को अन्त होने वाले त्रिमास में श्रमिक संघों की संख्या १०१ तथा सदस्य संख्या ६७७१६ थी जो बढ़कर जून १९३८ को समाप्त होने वाले त्रिमास में १३२ तथा १२० ८१६ जून १९३९ को समाप्त होने वाले त्रिमास में १६६ तथा १४३ ४५५ और जून १९४० को समाप्त होने वाले त्रिमास में १८० तथा १९९ २२० हो गई। इसी प्रकार बंगाल में श्रमिक संघों की संख्या जो १९३३–३४ में ५४ थी १९३६–३७ में ७६ तथा १९३७–३८ में बढ़कर १७२ हो गई। उत्तरप्रदेश, मद्रास तथा पंजाब में भी श्रमिक संघों की संख्या बढ़ी।

श्रमिक संघों के कार्य कलापों में पुनर्जीवन तथा हड़तालों में वृद्धि के मुख्य कारण निम्नलिखित थे। प्रथम प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रिमंडलों का बन जाना था। कांग्रेस ने सात प्रान्तों में मन्त्रिमंडल बनाये थे। चुनाव पत्रों में की गई घोषणाओं के अनुसार वे श्रमिकों के साथ अच्छे व्यवहार के लिये बाध्य थे। श्रमिकों ने लोकप्रिय नेताओं से अच्छे व्यवहार की आशा भी की थी। श्रमिकों की स्थितियों में सुधार के लिये कांग्रेस सरकार ने अपनी योजनायें बनाई थीं। कुछ हड़तालों जैसे—१९३८ की कानपुर की हड़ताल तथा १९३९ में आसाम तेल कम्पनी की हड़ताल में श्रमिकों ने लोकप्रिय मन्त्रिमंडलों के दखल देने पर ही कुछ सुविधाएँ प्राप्त की थीं।

विधानमंडल में श्रमिक प्रतिनिधियों की व्यवस्था इसका दूसरा कारण था। श्रमिकों को श्रमिक निर्वाचन क्षेत्र अथवा पंजीकृत श्रमिक संघ निर्वाचन क्षेत्र से अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार दिया गया था। एक श्रमिक संघ को चुनाव के लिये मान्यता हेतु निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी थी—(१) औद्योगिक अथवा भविष्य निधि के लिये पुराने या अर्जन संघ की स्थिति प्रमाणित होनी चाहिये, (२) इसका दो वर्ष अथवा एक वर्ष पूर्व का पंजीकरण होना चाहिये (३) प्रमाण-पत्र दिये जाने वाले वित्तीय वर्ष के पहले वर्ष के दौरान कम से कम २५० सदस्य होने चाहिये जिन्होंने उस पूरे वर्ष के लिये चन्दा दिया हो और (४) श्रमिक-संघ अधिनियम १९२६ के अन्तर्गत लगाये गये सभी दायित्वों का, रजिस्ट्रार श्रमिक संघ द्वारा पुस्तकों के निरीक्षण और लेखा परीक्षा से सम्बद्ध पूरा किया हो।

नियोजकों के परिवर्तित दृष्टिकोण ने भी श्रमिक संघों के विकास को प्रोत्साहित किया। अन्त में नियोजकों ने यह अनुभव किया कि श्रमिक संघ अत्यावश्यक थे। वस्तुतः सरकार द्वारा नियुक्त विभिन्न आयोगों और समितियों के विशेषज्ञों द्वारा व्यक्त विचारों के आधार पर ही नियोजकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक हो गया। यह सुझाव दिया गया था कि श्रमिक संघों के प्रति नियोजक प्रतिरोधी होने के बजाय मित्रवत् रहें। राजकीय श्रमिक आयोग ने भावी औद्योगीकरण में श्रमिकों की भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि "जबतक मानवीय सम्बन्धों के सुधार की ओर ओजस्वी प्रयत्न नहीं किये जाते बृहद् उद्योग धंधों का विकास कठिन और संदिग्ध होगा"। बाद में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक-संगठन के श्री बटलर ने अपने पूर्व में उद्योगों की समस्यायें शीर्षक प्रतिवेदन में भी कहा कि सम्भवतः भारतीय उद्योगों की मुख्य समस्या पूँजी और श्रम के सम्बन्ध थे और "जबतक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन का विकास नहीं किया जाता और ठोस आधार पर सामूहिक सौदाकारी की स्थापना नहीं की जाती औद्योगिक विवाद समय समय पर होते रहेंगे।"[1] नई स्थितियों के प्रभाव से नियोजक अपना दृष्टिकोण धीरे धीरे बदल रहे थे।

सामान्यतः यह ध्यान देने की बात है कि १९३५ से प्रान्तीय सरकारों ने विशेषकर कांग्रेस, औद्योगिक शांति बनाये रखने के लिये श्रमिकों के सम्बन्ध में एक ऐसी नीति अपनाई थी जिससे श्रम-संगठनों को दबाने या उनकी मांगों को अस्वीकार करने के स्थान पर जीवन के निम्न स्तर को बनाये रखकर और नागरिकों के सामान्य अधिकार देने की व्यवस्था की गई थी 'प्रान्तीय स्वायत्त शासन के प्रतिष्ठापन से श्रमिकों को अधिक स्वतन्त्रता मिली, काफी सुधार किये गये जिनके लिये कांग्रेस ऐसी

---

१ शिवा राव, डा० पुनेकर द्वारा अपनी पुस्तक 'ट्रेड यूनियनिज्म इन इण्डिया' पृ० १०१

राजनतिक संस्थाएँ वचन-बद्ध थी, विभिन्न विधान सभाओ मे सगठित श्रम को अत्यधिक प्रतिनिधित्व दिया गया और श्रमिक सघवाद के प्रति विभिन्न नियोजको के प्रतिरोध म कम, आ जाने स हाल क वर्षों म आन्दोलन का अधिक सक्रिय प्रसार हुआ।'

इस अवधि का एक उत्साहवधक तथ्य विभिन्न श्रमिक सघ वर्गों क बीच *एकता की प्राप्ति थी। भारतीय श्रमिक सघ सघान के राष्ट्रीय श्रमिक सघ सघान म* सविलीन होने के प्रयत्नो का आशिक सफलता मिली थी। राष्ट्रीय श्रमिक सघ सघान की प्रगति सारणी १० म स्पष्ट की गई है। लाल श्रमिक सघ कांग्रेस और अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस भी सम्मलित हो चुके थे। अन्तत १९३८ के एक समझौते द्वारा राष्ट्रीय श्रमिक सघ सघान अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस से सम्बद्ध हो गया।[1]

१ विस्तार के लिये 'राष्ट्रीय सघान—आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' अध्याय देखें।

सारणी १०

भारतीय व्यवसाय संघ संधान तथा राष्ट्रीय व्यवसाय संघ संधान की प्रगति १९३२–४० राष्ट्रीय

सत्र स्थान वर्ष	प्रथम भारतीय व्यवसाय संघ संधान मद्रास, १९३२ संघ	सदस्यता	प्रथम राष्ट्रीय व्यवसाय संघ संधान बम्बई १९३३ संघ	सदस्यता	द्वितीय राष्ट्रीय व्यवसाय संघ संधान नागपुर १९३५ संघ	सदस्यता	तृतीय राष्ट्रीय व्यवसाय संघ संधान कलकत्ता १९३७ संघ	सदस्यता	चतुर्थ राष्ट्रीय व्यवसाय संघ संधान बम्बई, १९४० संघ	सदस्यता
प्रांतो के अनुसार										
बंगाल	७	२०,०१४	१०	४५ १४०	६	६५,१४०	१०	६५,८९०	१०	४१,१५०
बिहार और उड़ीसा	१	२,०००	२	३,०००	२	३८२५	२	३,८२५	२	२८२५
बम्बई	८	२९,७१२	१०	३३ ०८९	१४	३५ २३९	१६	३७,३०९	१६	४३,५५७
सी० पी० और बरार	३	१,१२२	४	२५१३	६	३,२७६	६	३,२७६	६	३,२३९
मद्रास	१६	१५,४१७	१६	३४,२८६	२१	४०,९८१	२१	४०,९८१	२१	३७,९०२
पंजाब	४४	९,१३६	४	९,१३६	४	९,१३६	४	९,१३६	५	११,१३६
सिंध	—	—	२	७७६	२	७७६	२	७७६	२	२,१७६

१	२		३		४		५		६	
भारतीय राज्य	१	६००	२	८८९३	२	८,८९३	२	८८९३	२	७,७९५
उद्योगों के अनुसार					११	६०,६००	११	६०६००	१०	६८,६३१
रेलवे	३	५,७५८	८	५७१८७	८	(६०,२००)				
जहाजरानी	[illegible]	८४,७३७	६	४५,७२६	(५)	४५,७२६ (४१,१८२)	६	४३,७१६	१०	४२,८६६
अन्य यातायात	५	२१७८	४	२८४७	५	२४५७ (३२१)	६	२,२३३	३	१,४५६
वस्त्र उद्योग (जूट को छोड़कर)	१०	१४३४५	६	१६९४३	११	२०२६२	११	२०,३६२	७	७७१६
जूट	१	१२००	१	१२००	२	२२००	[illegible]	२,२००	१	१,०००
खनन	१	२०००	२	२,२००	१	२०००	१	२२००	१	१,०००
इंजीनियरिंग	३	१०६२	१	८८६	६	१६४६	४	१८३०	६	४,८६६
					(५)	(१८२१)				
बागान और दूसरे	[illegible]	१३५०	२	१५०५	२	१५०४	२	१५०४	२	१५०४
अशारीरिक	१	३७७	१	३३३	१	३३३	१	३३३	१	४३३

१	२		३		४		५		६	
कृषि	—	—	—	—	१	१६०८	१	१६०८	१	१,६०८
सामान्य	७	५०१८	१०	४,६३६	१३ (१७)	५८०२ (६४००)	१४	६,५३८	१६	१६,३००
योग	४०	७८,००१	५०	१३६,७८३	६०	१४७२१६ (१४७,५१७)	६३	१५०,०३६ (१५१,३३६)	६४	१५०,७३० (१२० ०४७)

कोष्टक मे दी हुई सख्याएं महा सचिव के प्रतिवेदन मे दी गई हैं जबकि उपरोक्त सख्याएं सघो की सूची के आधार पर एकत्रित की गई हैं। द्वितीय सत्र के महासचिव के प्रतिवेदन में सदस्यों की सख्या प्रातो तथा उद्योगो के अनुसार दी गई है। (प्रतिवेदन को पृ० स० ३४–३५) कुछ आंकडे अनुमेलित नहीं हैं। अतर को स्पष्ट पाना कठिन है।

युद्धकाल

(१९३९–१९४५)

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान आर्थिक क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुए। युद्ध के कारण आवश्यक वस्तुओं और यातायात में कमी हो गई। फलस्वरूप युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में बहुत से उद्योगों ने हानि उठाई। उन्हें काम के घंटे कम करने पड़े जिसमें श्रमिकों पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई। कुछ भी हो जब युद्ध बढ़ा परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन हो गया। परोक्ष रूप से युद्ध ने उद्योगों को अपूर्व संरक्षण दिया। भारतीय बाजार में विदेशी माल नहीं आ रहा था क्योंकि एक ओर तो जहाजरानी की सुविधाएं सीमित हो गई थीं दूसरी ओर भारत और विदेशों के शान्तिकालीन उद्योगों ने युद्ध सामग्री का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप भारतीय उद्योगों की क्रियाएं बढ़ गईं। जापान द्वारा युद्ध घोषित कर देने तथा संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा युद्ध में प्रवेश कर लेने से भारत न केवल युद्ध का आधार समझा जाने लगा बल्कि पूर्ववर्ती देशों को शस्त्रास्त्र भेजने का केन्द्र भी बना। भारत में औद्योगिक उत्पादन बहुत बढ़ा तथा उत्पादन के नये उपक्रम स्थापित हुए। कीमतें बराबर बढ़ती ही गई। भारत में ग्रेट ब्रिटेन द्वारा स्टर्लिंग प्रतिभूतियों के बदले निरन्तर खरीददारी के कारण मुद्रा स्फीति हो गई। लाभों में तेजी से वृद्धि हो रही थी किन्तु मजदूरी में कोई भी वृद्धि नहीं हुई। फलस्वरूप श्रमिक संघों के कार्य-कलाप बहुत बढ़ गये। श्रमिक संघों की संख्या के साथ-साथ उनकी सदस्यता में भी वृद्धि हुई। सारणी ११, १२ तथा १३ से युद्ध काल में श्रमिक संघवाद के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी ११

युद्धकाल में श्रमिक संघवाद का विकास

वर्ष	पंजीकृत संघों की संख्या	विवरण भेजने वाले संघ	विवरण भेजने वाले संघों की सदस्यता	माध्य सदस्यता	महिला सदस्य
१९३९–४०	६६७	४५०	५११,१३८	१ १३६	१८,६१२
१९४०–४१	७२७	४८३	५१३ ८३२	१ ०६४	१९ ४१७
१९४१–४२	७४७	४५५	५७३,५२०	१ २६०	१७ ०९४
१९४२–४३	६९३	४८९	६८५ २९९	१ ४०१	२५ ९७२
१९४३–४४	७६१	५६३	७८० ९६७	१ ३८६	२६ ८६६
१९४४–४५	८६५	५७३	८८९ ०८८	१ ५६२	२६ ३१५

इन सारणियों से स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिक संघों के कार्य-क्षेत्रों में सर्वतोमुखी प्रगति हुई है। इस काल में, केवल नगरपालिका कर्मचारियों को छोड़कर जिनकी सदस्यता २८९७ प्रतिशत से कम हो गई, श्रमिक संघों की सदस्यता उद्योग की सभी शाखाओं में बढ़ी। इंजीनियरिंग संघ में सबसे अधिक वृद्धि, ८२४,७२ प्रतिशत हुई। यद्यपि सभी उद्योगों को मिलाकर कुल वृद्धि ७०४ प्रतिशत ही हुई। ऊँची मात्रा में संघवादिता तथा उनकी युद्धनीति तथा शक्तिशाली सौदाकारी की स्थिति के कारण इंजीनियरिंग श्रमिकों को मजदूरी में काफी सुविधाएं मिलीं। किन्तु अधिकांश श्रमिक संघ सदस्यता रेलवे और वस्त्र उद्योग में ही सीमित थी। लगभग सभी राज्यों में श्रमिक संघ कार्यों में वृद्धि हुई थी। सबसे अधिक प्रगति बिहार में हुई, जहाँ श्रमिक संघ सदस्यता में ४८० ०७ प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। अन्य प्रान्त जहाँ श्रमिक संघ सदस्यता में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। उड़ीसा (१९९ ८७%), आसाम (१५३ ९६%), बंगाल (१२२ ९३%) तथा उत्तरप्रदेश (१ २ ३३%) थे। अजमेर, मेवाड़, उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रान्त और पंजाब ही केवल ऐसे क्षेत्र थे जहाँ सदस्यता में क्रमशः ३२ ७१%, १२ ०१% और २८ २२% का ह्रास हुआ। १९३९–४० और १९४४–४५ के बीच पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या ६६७ से बढ़कर ८६५ हो गई अर्थात् २९ ७% तथा विवरण भेजने वाले संघों की कुल सदस्यता ५११,१३८ से बढ़कर ८८९ ३८८ हो गई अर्थात् ७० ८%। प्रति संघ की औसत सदस्यता १,१३९ से बढ़कर १,३५२ (२९ ६%) हो गई और महिला श्रमिक संघियों की संख्या १८,६१२ से ३६,३१५ (९५ १%) हो गई। बहुत से श्रमिक संघ अपना पंजीकरण नहीं करा सके। अपंजीकृत श्रमिक संघों से सम्बन्धित आँकड़े केवल बम्बई से ही उपलब्ध हैं। दिसम्बर १९४५ में कुल २०२ श्रमिक संघों में से जिनकी सदस्य संख्या ३२८ ५८८ थी, केवल ११८ संघ जिनकी सदस्यता २४८,८६८ थी श्रमिक संघ अधिनियम, १९२६ के अन्तर्गत पंजीकृत थे। कुल मिलाकर युद्ध काल में श्रमिक संघों की संख्या और उनकी सदस्यता में काफी वृद्धि हुई।

श्रमिक संघों की संख्या और सदस्यता के साथ-साथ उनके कोष में भी वृद्धि हुई। विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों की आय १९४४–४५ में १९३९–४० की तुलना में ७३ ७५ प्रतिशत बढ़ी तथा इस काल में व्यय ९९ ५४ प्रतिशत बढ़ा। किन्तु ये आँकड़े वास्तविक स्थिति नहीं बताते क्योंकि साधारणतः श्रमिक संघों का लेखा उचित रूप में नहीं रखा जाता। सदस्य रजिस्टर में ऐसे सदस्यों के नाम पा जाना कठिन नहीं है जो अपना चन्दा जमा नहीं करते हैं।

सारणी १२

युद्ध काल में व्यावसायिक संघों का औद्योगिक वर्गीकरण

उद्योग की शाखा	सदस्यता						१९३९–४० से १९४४–४५ की प्रतिशत वृद्धि
	१९३९–४०	१९४०–४१	१९४१–४२	१९४२–४३	१९४३–४४	१९४४–४५	
रेलवे	१७६,३८१ (८६)	१७१ ३७२	२१६ ०८६	२४८,५१०	२६३ २६२	३०४,८८५ (८२)	६६ ७८
ट्राम वे	६,०८० (७)	५,६६६	५ ४५८	७ ६००	६,८७४	१० ३६० (६)	७० ८६
वस्त्र उद्योग	१३६ ६३१ (८५)	१५४,८६३	१४८,००७	१६१,१३२	२२२ ६६७	२१० ७१७ (१३)	५३ ८२
छापा खाने	११,८६० (३२)	८,४५०	६ ६१०	६ ६७२	६ ५३८	१३,५६० (२८)	१६ ०४
स्थानीय निकाय	१६,५८६ (३७)	२३,०३७	१८,२६४	२७,७०१	१८,८७४	११,६२८ (२३)	२८ ६७

१	२	३	४	५	६	७	८
समुद्री कर्मचारी	५२,७४२ (८)	२०,०३६	५६,६२८	७२ ८२६	७०,४०१	७९,५०१ (६)	५० ७५
डाक तार तथा बन्दरगाह	२३,४६५ (२३)	२५,०३६	२७,५६४	३८,२१६	३९ ८१५	३७,०९८ (२४)	५८ १०
इन्जीनियरिंग	६,७६८ (२०)	६,५४७	९,२९२	१७,७५४	२७,६१७	३५,५१३ (५३)	४२४ ७०
अन्य	७४,३३५ (१५२)	६५,६१८	७८,६११	६८,७८६	१२२ ४९९	१२६,२०० (४१)	१५० ४९
सभी उद्योग	५११,१३८ (४२०)	५१३,८३२	५७३,५२०	६८५,२९९	७८०,६६७	९३९,३८८ (५७३)	७० ४०

कोष्ठकों में दी हुई संख्या व्यावसायिक संघों की संख्या है।

सारणी १३

युद्ध काल में संघों का क्षेत्रीय वर्गीकरण

प्रदेश	१९३९–४०	१९४०–४१	१९४१–४२	१९४२–४३	१९४३–४४	१९४४–४५	१९३९ से १९४५ की प्रतिशत वृद्धि
अजमेर–मेवाड़	३ ४६८ (३)	२८१	२३८	४,७९४	१,०४७	९४६ (३)	७२ ७१
आसाम	९८२ (११)	१ ४७६	१,५०२	१,९४८	१ ५८०	२,४८६ (९)	१५३ १६
बंगाल	१२२ ५१८ (१८८)	१०३,६६२	१७३ ५९५	२२१,६३५	२८९ ६५८	२८६,२५५ (२३०)	१३३ ९३
बिहार	१३,५९६ (२७)	२९ ९२५	१०,३३७	१८,७३८	२१,९४७	७२,४२८ (४९)	४४० ०७
बम्बई	१०५ ७९९ (७२)	१११,८२६	१२०,१५३	१३०,६८८	१४९,३५९	१७२,६७९ (९३)	६३ २१
मध्यप्रदेश तथा बरार	११,५६० (४१)	१७ २६१	२३,९८४	२६,४३०	१४,८३३	१३,७४८ (५२)	१८ ९३
दिल्ली	२४,३७६ (२७)	२४,१८९	२१,५४६	१६,८९५	२४,७१२	२९ ५०४ (४०)	२१ १४

१	२	३	४	५	६	७	८
मद्रास	७१ ००२ (११०)	५३,६३७	४२,९२४	४६ ४५१	६४ ५६७	८२ २७० (१५४)	२४ १६
उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश	५८४ (७)	६११	३१७	४१८	४२३	३२८ (५)	५२ ०५
उड़ीसा प्रदेश	३७४ (२)	३२३	५३५	३५८	६५५	१ ४६४ (४)	२६६ ४७
पंजाब	११ ०५१ (६२)	६ ७४२	७ १११	१२,४६३	१३ ७१४	८ ३०८ (२२)	२८ ८२
सिंध	७ ८२६ (३०)	११ ०५१	११ ५००	८ ६३८	१० ६७७	१२ ४३१ (३६)	५८ ७८
उत्तर प्रदेश	१५ ८११ (४१)	१४ ८०७	१७ ४८३	२६ ६७६	३२ ६४४	३६ ७३३ (३४)	११७ ३३
केन्द्रीय संघ	१२२,११०	१२७ ६७३	१४०,२०५	१६८,५४०	१२८ ८०३	१६१ ७७८	३२ ४४
योग	५११,१२८ (६६६)	५१३,८३२	५०७,५००	६८५,२९९	७८०,९६७	८८९ ३८८ (८६५)	७४ ०

(कोष्ठकों में दी हुई संख्या व्यवसाय संघों की संख्या है।)

१९३९ की तुलना म सम्स्यता बडे-बडे सघा म केन्द्रित रही । १९३९–४० म १० प्रतिशत सदस्यता दो सघा म केन्द्रित थी । इसक विपरीत १९४४–४५ म नौ सघा की सदस्यता कुल सदस्य सख्या का लगभग एक तिहाइ भाग थी ।

निम्नलिखित आँकडा स यह स्पष्ट हा जायगा ।

सारणी १४

१९३९–४० तथा १९४४–४५ के बीच श्रमिक सघा की सदस्यता का मकेन्द्रण

सदस्यता	१९३९–४०			१९४४–४५		
	सघा की सख्या	सदस्यता	प्रतिशत	सघा की सख्या	सदस्यता	प्रतिशत
५० से कम	७२	१९१२	० ६	४४	१३११	० १
५० से ९९	३४	२६३७	० ५	५४	४००६	० ५
१०० से २९९	१४३	२६८१२	५ २	१४७	२८४७८	२ १
३०० से ४९९	५२	२०,५४९	४ ०	८४	३३३५४	२ ८
५०० स ९९९	६३	४३०२७	८ ४	९४	६४०२४	७
१००० से १९९९	३२	४६८०५	९ २	६४	८९०७२	९ ९
२००० से ४९९९	२७	७३७६९	१४ ४	५२	१५४९८८	१७ ४
५००० से ९९९९	१४	१०१८३४	१९ ७	१९	११२८३८	१२ ८
१०००० से १९९९९	९	१४४८८७	२८ ५	९	१२३५७०	१३ ९
२००० से अधिक	२	४९९०५	९ ८	९	२७८७४०	३१ २
योग	४५०	५११११८	१००	५७२	८८९२८८	१००

रोजगार म वृद्धि क परिणामस्वरूप श्रमिक सघवाद म सर्वतोमुखी प्रगति हुई थी । आर्डिनेन्स डिपो आर्डिनेन्स फक्टरी तथा युद्ध सामग्री का उत्पादन करने वाले अन्य उद्योगो म बहुत स लोगो को नौकरी मिली । उन उद्योगो ने भी काफी सख्या म लोगा को नौकर रखा जो युद्ध से प्रत्यक्ष रूप स सम्बन्धित नही थे । मिलो और फैक्टरियो ने दो और तीन पालियो म काय करना प्रारम्भ कर दिया था । रोजगार की सख्या जो १९३९ म १७५११३७ थी १९४६ म बढकर २६४२९७० हो गई । चूकि श्रमिको की सख्या म वृद्धि हुई इसलिए श्रमिक सघो और उनकी सदस्यता मे भी वृद्धि हुई ।

युद्ध के दौरान कीमतो म वृद्धि के फलस्वरूप श्रमिको की वास्तविक मजदूरी कम हो गई थी । जीवन निर्वाह मूल्यो म निरतर वृद्धि होने से मजदूरी का उसके साथ सामजस्य नही रहा । यद्यपि मजदूरी म वृद्धि हुई किन्तु यह वृद्धि बढते हुये

जीवन निर्वाह मूल्यों के अनुपात में कम थी। कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की वार्षिक आय तथा चुने हुए शहरों में निर्वाह मूल्य की सूचकांक सारणी १५ में दी गई है।

फिर भी सारणी १५ से यह स्पष्ट पता नहीं चलता कि वास्तविक मजदूरी सूचकांक में कितना ह्रास हुआ है। निर्वाह मूल्य सूचकांकों द्वारा इंगित वृद्धि से कहीं अधिक कीमतों में वृद्धि हुई थी और सरकार द्वारा आवश्यक सामग्रियों को अपने अधिकार में करने उनका वितरण करने, राशनिंग लागू करने तथा कीमतों को नियंत्रित और नियमित करने के लिये अन्य विधियों के अपनाये जाने के बावजूद प्रायः प्रत्येक सामग्री के सम्बन्ध में चोर बाजारी पनपी। भ्रष्टाचार में भी वृद्धि हुई। फलतः अधिकांशतः निर्वाह मूल्य सूचकांक वस्तुस्थिति प्रस्तुत करने में असफल रहे। श्रमिकों की आय में वृद्धि होने के बावजूद उन्हें अनुरूपी अनुलाभ नहीं मिला।

सारणी १५

१९३९–४५ के बीच कारखानों में वार्षिक आय का सूचकांक

	१९३९	१९४०	१९४१	१९४३	१९४४	१९४५
वस्त्र उद्योग	१००	१०७ २	१०७०	१६४ ७	२१५ ९	२०८ ९
इंजीनियरिंग	१००	१२० ९	१४१ ०	२०० ७	२२३ ८	२४७ ६
खनिज तथा धातु	१००	१०७ ५	१०४ १	१०९ ८	१२५ ८	१३१ ६
रसायन और रंग	१००	८३ ८	९७ २	१६२ ६	१९८ ०	१८१ ८
कागज तथा छपाई	१००	१०८ ३	९७ ६	१२४ ४	१४२ ५	१७० १
लकड़ी पत्थर						
तथा शीशा	१००	९० ४	१०२ ६	१५६ २	१८९ ९	२१३ २
आर्डिनेन्स फैक्ट्रीज	१००	११२ ९	११८ ७	१४५ ७	१५१ १	१७७ ६
टकसाल	१००	१२५ ९	१३३ ७	१५६ ३	१८९ २	१८१ ६
अन्य	१००	९२ ८	९२ ९	१३९ ४	१८२ ७	१७८ ९
सभी उद्योग	१००	१०७ ०	११२ ९	१८२ ६	२०४ ०	२०७ २
बम्बई	१००	१०७	११८	२१९	२२६	२२७
निर्वाह मूल्य सूचकांक						
मद्रास	१००	१०९	११४	१८०	२०७	२२८
कानपुर	१००	१११	१८१	३०६	३१८	३०८

इस अवधि में वास्तविक आय के सूचकांक भारत सरकार ने प्रस्तुत किये हैं। इससे भी यह स्पष्ट है कि श्रमिकों की वास्तविक आय में काफी ह्रास हुआ।

सारणी १६

१६३६-४५ के बीच श्रमिकों की वास्तविक आय का सूचकांक

वर्ष	आय का सूचकांक	अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक	वास्तविक आय सूचकांक
१६३६	१००	१००	१००
१६४०	१०५ ३	६७	१०८ ६
१६४१	१११ ०	१०७	१०३ ७
१६४२	१२६ १	१४५	८६ ०
१६४३	१७६ ६	२६८	६७ ०
१६४४	२०२ १	२६६	७५ १
१६४५	२०१ ५	२६६	७४ ८

मजदूरी वृद्धि तथा मँहगाई भत्ते की निरन्तर माग को ठुकरा देना सरल नही था। उद्योगो की समृद्धि के कारण नियोजको ने इस भत्ते को स्वीकार किया। १६४० के बाद श्रमिको द्वारा लाभ मे हिस्से की माग बोनस के रूप मे की जाने लगी। अधिक लाभकर लगाने के बाद भी उद्योगो को बहुत लाभ हो रहा था। इसलिए बोनस की माग की उपेक्षा नही की जा सकती थी। युद्ध के कारण काम के अधिक घटे तथा अतिसमय काम करने की समस्या भी उत्पन्न हो गई थी। इन समस्याओ तथा इसी तरह की अन्य समस्याओ को सुलझाने और लाभ प्राप्त करने के लिए श्रमिको की ओर से सामूहिक कार्यवाही आवश्यक हो गई। इन समस्याओ ने श्रमिको को सुदृढ और प्रभावकारी श्रमिक सघ सगठित करने के लिये भी प्रेरित किया।

नियोजको के दृष्टिकोण मे भी अन्तर आ गया था। यद्यपि वे अब भी श्रमिक सघ विधियो के विरोधी थे किन्तु वे अपने हितो की हानि नही करना चाहते थे। अत्यधिक लाभ कमाने का स्वर्ण अवसर उन्हे युद्ध ने दिया था जिसे वे श्रमिको को असन्तुष्ट रखकर गँवाना नही चाहते थे। अग्राकित सारिणी मे उद्योगो के अपूर्व लाभ और तेजी की स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

सारणी १७

१९३९-४५ के बीच कुछ उद्योगों में लाभ का सूचकांक

वर्ष	सभी उद्योग	जूट	सूती	कागज	लोहा तथा इस्पात	कोयला	सीमेंट
१९४०	४८०	४९१	४८५४	५२६३	१०२८	१००८	१०२८
१९४१	४८३०	४४६	९६६	५८४३	१२२३	८२६	१२८८
१९४२	५१८	४४४	४९१२	५१३	११०१	८०४	१९९९
१९४३	५६४०	५३६	६६००	२४५८	११९८	९४६	१६३६
१९४४	५९९	१०१	४९४	५३१४	११३८	२१३०	२९६६
१९४५	५ ९	५३६	६५	५३९४	१५०२	२४८२	५११६

जहाँ एक ओर मुनाफे बढ़ रहे थे, वहाँ यह भी कि श्रमिकों का बढ़ता हुआ रोष भी दबा दिया गया। भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत (श्रमिक-वर्ग के राष्ट्रीय उत्पादन शक्ति का विकास)। श्रमिक संगठनों के विवादों में श्रमिक विभाग का नियंत्रण नहीं रहा गया। इसके अतिरिक्त भारत के श्रमिक संघों को दबाने के लिए प्रयत्न थे। सरकार का दृष्टिकोण ही बदल गया। कार्यकारिणी परिषद् में जिस प्रवृत्ति का प्रभाव था, उसका समर्थन किया था, मैं श्रमिक संघों के बारे में भी चर्चा करूँगा। श्रमिक संघों के सम्बन्ध में अनेक मामलों में कानूनी संरक्षण पर श्रमिकों पर जो अत्याचार किया जाता था उस समय औद्योगिक विवाद अधिनियम १९२९ में संशोधन करके अधिकार प्राप्त कर लिया गया। सामान्य तथा हड़ताल एवं तालाबंदी के मामले में सरकार की अनुमति से ही श्रमिक को क्षतिपूर्ति दी जा सकती थी। किन्तु सरकार ने अपने विशेष आदेशों द्वारा श्रमिकों को अधिकार दिए थे और सरकार भी यही चाहती थी कि श्रमिकों का प्रतिरोध कम से कम हो। सरकार ने इस सम्बन्ध में नियम बनाए जिनके अनुसार उत्पादन जारी रखा। इस कारण सरकार ने अनेक कर्मचारियों को ही नौकरी का संरक्षण प्रदान कर दिया और यह आशा व्यक्त की कि अन्य मालिक भी इस प्रकार का व्यवहार करें। युद्धकालीन विभिन्न उद्योगों में उत्पन्न विवादों में श्रमिकों का उन्मूलन करना था। इसके बाद नौकरी की शर्तों का उल्लंघन करने में अधिकारों पर नियंत्रण लग गया। राष्ट्रीय सेना (प्राविधिक कर्मचारी) अध्यादेश १९४० के अन्तर्गत राष्ट्रीय सेवाश्रम न्यायाधिकरण को यह अधिकार दिया गया कि वे औद्योगिक संस्थाओं से प्राविधिक कर्मचारियों को सरकारी परियोजना अथवा राष्ट्रीय महत्त्व के कार्य के लिए ले सकते हैं। जिन व्यक्तियों की सेवाओं की आवश्यकता होती थी वे

इन्कार नही कर सकता था। एक बार राष्ट्रीय कार्यों के लिये सूचीबद्ध होने पर य व्यक्ति बिना न्यायाधिकरण की पूर्व अनुमति के नौकरी से नही निकाले जा सकते थे। दूसरी ओर किसी भी प्रतिष्ठान का कोई भी नियोजक सिवाय चिकित्सकीय अयोग्यता, गम्भीर अवज्ञा, गम्भीर दुर्व्यवहार या पुलिस की प्रतिकूल रिपोर्ट के प्राविधिक कर्मचारियों को बिना न्यायाधिकरण की लिखित अनुमति के न तो नौकरी से निकाला जा सकता था और न बर्खास्त कर सकता था। नौकरी से निष्कासन या बर्खास्त करने के, सभी आपवादिक मामले २४ घण्टा के भीतर न्यायाधिकरण को सूचित करने पड़ते थे। अध्यादेश १९४३ में संशोधन किया गया और उसके बाद सभी 'अधिसूचित फक्टियों' का जिन्होंने प्राविधिक कर्मचारियों के लिये प्रार्थनापत्र दिये थे केवल न्यायाधिकरण द्वारा भेजे व्यक्ति उसके द्वारा निर्धारित शर्तों पर ही रखने पड़ते थे। प्राविधिक कर्मचारियों के एक रोजगार से दूसरे रोजगार में स्थानान्तरण के लिये सरकार उत्तरदायी थी। इसकी भी व्यवस्था थी कि अनभिसूचित फक्ट्रियों के नियोजकों को जहां राष्ट्रीय सेवा में आने से पूर्व प्राविधिक कर्मचारी काम करते थे वापस आने पर उन्ही शर्तों और स्थितियों में पुन रखना पड़ेगा। किन्तु न्यायाधिकरण में अपील करने के बाद शर्तों में संशोधन किया जा सकता था या क्षतिपूर्ति की जा सकती थी। जो व्यक्ति इन आदेशों का पालन नही करते थे अथवा बाधा डालते थे वे भारी दण्ड के भागी होते थे जिसमें जुर्माना और कैद दोनो ही शामिल थे।

आवश्यक सेवा (सुरक्षा) अध्यादेश १९४१ भी ऐसी प्रकार का था। यह केवल सरकारी कर्मचारियों पर ही नही वरन् किसी भी संस्थान के उन सभी कर्मचारियों पर लागू होता था जिन्हे केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों ने आवश्यक घोषित कर दिया हो। काम से इन्कार करने वाला दण्डित किया जाता था। ऐसे संस्थानों में यदि कोई नियोजक बिना समुचित आधार के किसी व्यक्ति को सेवामुक्त करता था या काम को बन्द करता था तो उसे भी अध्यादेश के अन्तर्गत दण्ड दिया जा सकता था। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को अधिकार दिये गये थे कि वे घोषित संस्थानों में मजदूरी का नियमन करें तथा किसी भी व्यक्ति की नौकरी की अन्य अवस्थाओं का निर्धारण करें। सरकार अपनी ओर से इन अवस्थाओं के निर्धारण के लिये किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को अधिकार दे सकती थी। इस तरह निर्धारण मजदूरी और नौकरी की शर्तों को नियोजक और कर्मचारी दोनो को ही मानना था।

इन दो उपायों यथा राष्ट्रीय सेवा (प्राविधिक कर्मचारी) अध्यादेश तथा आवश्यक सेवा (सुरक्षा) अध्यादेश ने नियोजकों से अपने कर्मचारियों के प्रति परम्परागत अधिकारों को छीन लिया। मजदूरी और नौकरी की शर्तों के निर्धारण के उनके अधिकार भी बहुत सीमित कर दिये गये थे। श्रमिक संघों के कार्यों में भाग

जन पर श्रमिकों पर अत्याचार न हो। सहानुभूति सम्भव रही थी। इससे श्रमिक संघ कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास और शक्ति बढ़ी।

सरकार ने नियोजकों के अधिकार कभी भी सीमित नहीं किए जिससे वे मनमाने ढंग से श्रमिकों के साथ व्यवहार न कर सकें बल्कि इसके विपरीत और साथ ही युद्ध प्रयत्नों के लिए श्रमिक संगठनों का सहयोग मांगा। १९४१–४२ में भारत सरकार ने श्रमिकों और नियोजकों के प्रतिनिधियों का अलग अलग सम्मेलन बुलाया और १९४२ में इनके समन्वय के लिए एक त्रिदलीय सम्मेलन आयोजित किया गया। सरकारी प्रतिनिधियों के अतिरिक्त सम्मेलन में श्रमिकों और नियोजकों के समान संख्या में प्रतिनिधि थे। इस सम्मेलन में एक स्थायी त्रिदलीय सहयोगी तंत्र की स्थापना का निर्णय किया गया। फलतः एक सर्वांगीण सम्मेलन और एक स्थायी श्रम समिति की संरचना की गई। सम्मेलन जिसका अधिवेशन वार्षिक था, में ४४ सदस्य थे—केन्द्रीय, प्रान्तीय और राज्य सरकारों के २२ प्रतिनिधि और श्रमिकों तथा नियोजकों के ११-११ प्रतिनिधि। स्थायी श्रम समिति में २० सदस्य थे—विभिन्न सरकारों के १० प्रतिनिधि और श्रमिकों तथा नियोजकों के पाँच-पाँच। स्थायी समिति की बैठक आवश्यकता पड़ने पर कभी भी बुलाई जा सकती थी। इस त्रिदलीय-समिति की संरचना तथा श्रमिक नेताओं से सरकार द्वारा समय समय पर विचार विमर्श करने से श्रमिक संघ आन्दोलन का प्रभाव और सम्मान बढ़ गया। यहाँ तक कि सरकार ने श्रमिक संघों को प्रोत्साहन भी दिया। भारतीय श्रमिक संघान को सरकार प्रतिमास १३,००० रुपये देती थी।

इस अवधि में श्रमिक संघ आन्दोलन में भीतरी संघर्ष तथा फूट पड़ना ही थी। १९४० में राष्ट्रीय श्रमिक संघ संघान जो १९२९ में केवल अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस से सम्बद्ध था, निश्चित आधार पर संस्था में सम्मिलित हो गया। जल्द ही एकता की स्थापना हुई फूट के लक्षण स्पष्ट होने लगे। नेताओं के एक वर्ग ने अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की तटस्थता की नीति का विरोध किया तथा युद्ध प्रयत्नों के प्रति विशेषकर जब जर्मनी ने रूस पर युद्ध की घोषणा कर दी, इस वर्ग ने सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाने की वकालत की थी। उन्होंने अपना एक अलग अखिल भारतीय संघान स्थापित किया जो भारतीय श्रमिक संघान के नाम से विख्यात हुआ। संघान की प्रगति का आंशिक कारण यह भी था कि १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण कांग्रेसी और समाजवादी नेता कारावास में थे।

---

१ इंटरनेशनल लेबर रिव्यू खण्ड ५१।

सारणी १८

भारतीय श्रमिक संघान की प्रगति[1]

	लाहौर संघ	१९४१ सदस्यता	बम्बई संघ	१९४४ सदस्यता
प्रदेशों के अनुसार				
अजमेर मारवाड़	१	७५०	४	१ २५०
बंगाल	२६	२८ ९०७	८२	८५ ९२८
बिहार	८	५२ ६३१	१२	७८ ९२२
बम्बई	२३	१८ ५२१	४२	४९ ७८५
दिल्ली	४	३ ५६५	६	१६ ६६९
मद्रास	७	८ ६४०	१४	१४ २३७
पंजाब	४	४७ ५६०	८	५१ ४१२
सिंध	४	२ ५९४	५	९ ४०७
उत्तर प्रदेश	१९	११ २०२	४३	५६ ०८९
जोधपुर	—	—	१	३००
उद्योगों के अनुसार				
रेलवे	८	४१ ४९१	१२	४९ ०६७
जहाजरानी (बन्दरगाह आदि)	१०	१० ०२७	१५	५६ ६८८
यातायात	१०	१६ ३५२	१२	५ २८२
वस्त्र उद्योग (जूट को छोड़कर)	६	६ ८२९	१७	४६ २६६
जूट	५	९ ५६३	११	७ १६६
खान	६	५ ८४०	६	२१ ००६
इंजीनियरिंग	१२	५० ०१५	४६	८३ ६०२
छपाई और कागज	५	२ ६१२	९	६ ३०२
शारीरिक	१	५००	२	७३८
स्थानीय निकाय	७	१ ४२९	१५	११ २४२
अन्य	२३	३९ २६८	४७	६८ १८६
योग	९६	१७४ ९६०	१९२	२९९ ०८५

[1] पुनेकर की पुस्तक 'ट्रेड यूनियन इन इण्डिया' से सर्जित

१	२	३	४	५
बगान मजदूर सम्बन्धी यूनियन (सम्बद्ध सदस्य)	८७	१६८,४७२	८७	१६८,४३३
कुल योग	४९	४,४७	५८६	५२८,८१८

१९४२ में सरकार ने संघ को श्रमिकों की वास्तविक प्रतिनिधि संस्था स्वीकार किया परन्तु युद्ध समाप्त होने के बाद इसका प्रतिनिधित्व स्वरूप ही समाप्त हो गया।

इस काल में यद्यपि औद्योगिक विवादों की संख्या बढ़ी, किन्तु कार्यकर दिनों की हानि बहुत कम रही। सारिणी १९ द्वारा औद्योगिक विवादों की स्थिति स्पष्ट की गई है। केवल १९४२ को छोड़कर कार्यकर दिनों की हानि की संख्या १९३९ के आरम्भ से कम रही। १९४२ में कार्यकर दिनों की संख्या भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण अधिक रही। राजनैतिक नेताओं को जेल में बन्द किये जाने के विरोध में बड़े कारखानों के श्रमिकों ने हड़तालें कीं। अहमदाबाद के वस्त्र उद्योग श्रमिकों की हड़ताल तिरासी दिनों तक चलती रही।

सारणी १९

१९३९–४५ के बीच औद्योगिक अशान्ति

वर्ष	विवादों की संख्या	सम्मिलित श्रमिक	नष्ट हुए कार्य दिवस
१९३९	४०६	४०९,१८९	४,९९२,७९५
१९४०	३२२	४५२,५३९	७,५७७,२८१
१९४१	३५९	२९१,०५४	३,३३०,५०३
१९४२	६९४	७७२,६५३	५,७७९,९६५
१९४३	७१६	५५०,०१५	३,४४७,३०६
१९४५	८२०	७४७,५३०	४,०५४,४९९

औद्योगिक सम्बन्धों में यह शान्तिपूर्ण सुधार श्रमिक संघों की नीति और संगठन, युद्धकालीन आवश्यकताओं और इस काल में विद्यमान परिस्थितियों के कारण सम्भव हो सका। साम्यवादी नेताओं ने जिन्होंने युद्ध प्रयत्नों में सहयोग दिया हड़तालों का समर्थन नहीं किया। श्रमिक संघों के अन्य वर्गों में एक नेता नहीं थे जो आन्दोलन को दिशा प्रदान कर सकते या श्रमिकों की कठिनाइयों और

नीतियों को सूचित कर पाते । भारत रक्षा अधिनियम के अन्तर्गत हड़तालें रोकने, विवादों को पंच निर्णय के लिये सौंपने और पंचनिर्णय को लागू करने के अधिकार भारत सरकार ने ले लिये थे । एक सीमित संख्या में हड़ताल हुई और अधिकांश में श्रमिकों को सफलता मिली ।

सारणी २०

१९३९–४५ के बीच हुई हड़तालों का परिणामानुसार वर्गीकरण

	सफल	आंशिक रूप से सफल	असफल	अनिश्चित	प्रगतिशील	योग
१९३९	६३	१४४	१८५	—	१४	४०६
१९४०	८६	८०	१५०	—	६	३२२
१९४१	७५	१११	१६८	—	५	३५९
१९४२	११७	१६९	३७८	१७	१३	६९४
१९४३	१३८	२१०	३१४	४९	५	७१६
१९४४	११९	१७५	२९७	४९	१३	६५३
१९४५	१३४	१५५	३७०	१३५	२५	८२०

युद्धोत्तर काल

युद्धोत्तर काल में श्रमिक संघों के क्रिया-कलापों में वृद्धि होती रही । श्रमिक कार्यक्रमों में तीव्र गतिमयता थी । नये संघों के निर्माण, संघों के पंजीकरण तथा सदस्यता में उल्लेखनीय प्रगति हुई ।

सारणी २१

१९४४–४५ से १९५१–५२ के बीच श्रमिक संघवाद का विकास

वर्ष	पंजीकृत संघों की संख्या	विवरण भेजने वाले पंजीकृत संघों की संख्या	सदस्यता पुरुष	सदस्यता महिलाएं	योग	माध्य सदस्यता	कुल सदस्यता में महिलाओं का प्रतिशत
१९४४–४५	८६५	५७३	८ ५२ ०७२	३६ २१५	८ ८९ ३३८	१ ५५२	४१
१९४५–४६	१ ००७	५८५	८ २५ ४६१	[illegible]८ ५७	[illegible] ६४ ०३१	१ ४८०	४५
१९४६–४७	१ ८३३	९९८	१२ ६७ १६४	६४ ४९८	१३ ३१ ९६२	१ ३३५	४९
१९४७–४८	२ ७६६	१ ६२०	१५ ६० ६३०	१ ०२ २९९	१६ ६२ ०२९	१ ०२६	६९
१९४८–४९	३ १५०	१ ८४८	१८ ३१ ५१४	१ १९ ३५५	१९ ६० १०७	१ ०६१	६१
१९४९–५०	३,५२२	१ ९१९	१६ ८८,८५७	१ १९ ५६५	१८ ८१ १३२	९४९	६६
१९५०–५१	३,७६६	२,००२	१६,४८ ९६६	१ ०६,४२४	१७ ५६ ९७१	८७७	६१
१९५१–५२	३ ७४४	२,२९१	१७ २८,०८३	१,१६ ०६१	१८ ५३ २१३	८०८	६३

इस प्रकार १९४४-४५ और १९५०-५१ के बीच पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या जो १९४४-४५ में ८६५ थी १९५०-५१ में बढ़कर ३७६६ और विवरण भेजने वालों की संख्या ५७३ से २००२ हो गई। किन्तु विवरण भेजने वाले संघों की सदस्यता पंजीकृत संघों के अनुपात में नहीं बढ़ी। विवरण भेजने वाले पंजीकृत संघों की सदस्यता ८,८९,३८८ से बढ़कर १७५६,९७१ हो गई। संघों की संख्या लगभग ३०० प्रतिशत से बढ़ी जबकि विवरण भेजने वाले संघों की सदस्यता में केवल १०० प्रतिशत की ही वृद्धि हुई।

लगभग प्रत्येक राज्य में श्रमिक संघों के कार्यकलापों में वृद्धि हुई। परिशिष्ट में दिये हुये विवरण पत्र २ से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रान्त में जिसे अब राज्य कहते हैं, श्रमिक संघों की कितनी प्रगति हुई। उन आँकड़ों से सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण देश के पंजीकृत श्रमिक संघों की कुल सदस्यता का लगभग ८५ प्रतिशत पश्चिमी बंगाल, बम्बई, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास राज्यों में था क्योंकि ये भारत के उद्योग प्रधान राज्य थे। श्रमिक संघ आन्दोलन ने प्रायः सभी महत्वपूर्ण औद्योगिक वर्गों में प्रगति की। जैसाकि सारणी २२ से स्पष्ट है। पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या तथा सदस्यता दोनों ही में प्रत्येक औद्योगिक वर्ग में उन्नति हुई थी।

श्रमिक संघों में महिला सदस्यों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई। १९४४-४५ में केवल ३६,३१५ महिलाएँ श्रमिक संघों की सदस्य थी। १९४९-५० में यह संख्या बढ़कर ११९, ५६५ हो गई यद्यपि १९५०-५१ में थोड़ी कमी हो गई जब यह १०६४२४ थी। यह कमी १९५१-५२ में पूरी हो गई जबकि सदस्यता १,१९०६१ थी। यह वृद्धि लगभग २०० प्रतिशत हुई। महिला श्रमिक संघियों की न केवल निरपेक्ष संख्या में वृद्धि हुई बल्कि उनकी सापेक्ष स्थिति में भी काफी सुधार हुआ। इस प्रकार जबकि १९४४-४५ में महिलाएँ केवल कुल सदस्यता का ४१ प्रतिशत थी १९४९-५० में उनका प्रतिशत ६६ था। १९५०-५१ में उनका प्रतिशत घटकर ६१ रह गया किन्तु १९५१-५२ में थोड़ी सी वृद्धि के साथ ६५ हो गया। श्रमिक संघों में महिला सदस्यता मुख्य रूप से बिहार, बम्बई, पश्चिमी बंगाल तथा आसाम के राज्यों में ही सीमित रही।

सारणी २१ से पता चलता है कि युद्धोत्तर काल में काफी संख्या में छोटे संघों का गठन किया गया। श्रमिक संघों के निर्माण में वस्तुतः एक होड़ सी लग गई थी। इस काल में तुलनात्मक रूप से छोटे छोटे संघ बनाये गये। यह इससे भी स्पष्ट है कि विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों की औसत सदस्यता में ह्रास हो गया। १९४४-४५ में औसत सदस्यता १५५२ थी जो १९५०-५१ में घटकर ८७७ हो गई।

यद्यपि श्रमिक संघों की संख्या में वृद्धि हुई थी किन्तु राज्य संघों की औसत सदस्यता में निरंतर ह्रास होता रहा। औसत सदस्यता में ह्रास से छोटे संघों की बहुलता

स्पष्ट है। १९६७-६८ में औसत सदस्यता ८६६ थी। १९६८-६९ में यह घटकर ८४६ रह गई और १९६९-७० में ८८९ हो गई। १९७०-७१ में घटकर ७६६ रह गई तथा १९७१-७२ में बढ़कर ६६६ हो गई। राज्य संघों के विपरीत केन्द्रीय श्रमिक संघों की औसत सदस्यता निरन्तर बढ़ती रही। १९६८-६९ में औसत सदस्यता ७३८ थी। १९६९-७० में २३११ और १९७१-७२ में बढ़कर ६९१६ हो गई। इससे स्पष्ट है कि अनेक राज्य संघों में अधिक शक्तिशाली होने की प्रवृत्ति थी। यह स्वस्थ चिह्न है। परिशिष्ट के विवरण-पत्र में संघों के आकार के विषय में अधिक विस्तृत सूचना दी गई है जो छोटे आकार के श्रमिक संघों के विषय में सम्बन्धित हमारी धारणा की पुष्टि करता है। विवरण-पत्र से स्पष्ट है कि छोटे आकार के संघों की प्रधानता है। १९६९-७० में १०० से भी कम सदस्यों वाले श्रमिक संघों की संख्या कुल संघों की संख्या का २८.१% थी। यदि हम उन श्रमिक संघों को भी इस वर्ग में ले लें जिनकी सदस्य संख्या ३०० से कम थी तो यह प्रतिशत १९६९-७० में ५८.८, १९७०-७१ में ५२.६ और १९७१-७२ में ६६.२ हो जाता है। इनकी सदस्य संख्या कुल सदस्यता का १९६९-७० में ७.०%, १९७०-७१ में ८.३ प्रतिशत तथा १९७१-७२ में ६% थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि छोटे आकार वाले संघों की प्रचुरता रही है। यह सन्तोषजनक अवश्य है कि बड़े आकार वाले संघों की शक्ति बढ़ भी रही है। १९५५-५६ में ६ संघों की सदस्यता २०,००० या इससे अधिक थी। विवरण भवन वाले संघों की संख्या में ये २.११% ही थे, किन्तु उनकी सदस्य संख्या कुल संख्या का ३१.२% थी। १९६९-७० में २१ संघ इस वर्ग में आते थे। इन संघों की संख्या कुल संख्या का ०.८% तथा सदस्यता कुल सदस्यता की २६.१% थी। १९७०-७१ में यह संख्या २३ तक अर्थात् विवरण भवन वाले संघों की कुल संख्या का ०.८% तथा सदस्यता कुल का २९.६% और १९७१-७२ में १६ संघ अर्थात् कुल संघों का ०.५% और सदस्यता कुल सदस्यता की २६.१% थे। इससे विदित होता है कि १९५५-५६ की तुलना में सदस्यता की दृष्टि से बड़े आकार वाले संघों में अधिकाधिक केन्द्रण था।

सारणी २२

१९४४-४५ से १९४८-४९ के बीच विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों का औद्योगिक वर्गीकरण

सदस्यता

	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८	१९४८-४९
१ रेलवे (जिसमें वर्कशाप तथा अन्य शामिल है, किन्तु ट्राम को छोड़कर)	२०४ ८८२	२६६ ४६१	४८१ ९९०	३८४ ८६३	५७५,०८०
	(८२)	(७५)	(११७)	(१५०)	(१९२)
२ ट्राम	१० ३९०	१०,३३६	१८ ३७४	१७,६८६	१८,७७४
	(४)	(४)	(४)	(६)	(८)
३ वस्त्र उद्योग	२१०,७१२	२५८,७५१	३७८ ९१२	५३० ८८८	४२९ ६६७
	(११०)	(९१)	(१६६)	(२२२)	(२२१)
४ छापखाने	१३ ५६०	१५ २४८	२२ ०३१	२५ ७३७	३० ३६७
	(२८)	(३७)	(४२)	(६३)	(७१)
५ नगरपालिका	११ ९२८	२३ ०७०	३५ ६५९	३९ १५४	५१,६६३
	(२३)	(३०)	(८५)	(७०)	(७६)

१	२	३	४	५	६
६ सामुद्रिक	७६,५०१ (६)	७६,१४२ (६)	६५ १६६ (११)	६४ ६१६ (६)	५० ७३७ (११)
७ गोदी बन्दरगाह तथा यास	३७,०६८ (२४)	२६,६२५ (१८)	४२ ६८८ (२८)	६३ ०६३ (३०)	५० ३६७ (२४)
८ इंजीनियरिंग	३५ ५१३ (५३)	३१,८७५ (५६)	५६ २१६ (१०१)	६८ ३३३ (१६२)	७८ ६७१ (१६८)
९ कृषि					८ १४१ (१२)
१० विविध	१८६,२०० (२४१)	१७३,५२० (२६४)	३०६ २५१ (४८४)	५६७ ६७६ (८६)	६७२ ७७६ (१ ०३७)
११ सभी उद्योग	८८६,३८८ (५७३)	८६४,०३११ (५८५)	३३१ ६६२१ (६६८)	६६२ ६२६१ (१६२०)	६६० १०७ (१८६८)

१ १९४९-५० से वर्गीकरण में परिवर्तन कर दिया गया है इस कारण पुराने वर्गीकरण के अनुसार आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। कोष्ठक में दी हुई संख्या संघ है।

सारणी २३

फैक्ट्री श्रमिकों की आय की सूचनाएँ तथा चुने हुए केन्द्रों में निर्वाह मूल्य सूचनांक

(आधार १९३९=१००)

	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७	१९५८	१९५९	१९६०
वस्त्र उद्योग	२१६ ९	२११ ९	२१४ ९	२६३ ८	२१८ ८	२६३ १	३३९ २
दर्जीनिर्माण	१७७ ६	१९१ ३	२१२ २	२२० ६	२८० ४	२८८ १	३२२ ७
खनिज तथा धातु	१३६ ३	१४१ ०	१३५ २	२१२ ३	२१५ ०	२२७ ८	२७३ ३
रसायन तथा रंग	२२७ ७	२१० २	२२० ४	२८८ ९	३३८ ०	२५७ ७	४३० ३
कागज तथा छपाई	२२९ ०	१६५ ०	१८८ ०	२१५ ९	२४७ ७	२७० ४	२९२ २
लकड़ी पत्थर तथा शीशा	२०३ ४	२३८ १	२४४ १	२८१ ०	३१७ २	३४० ९	३४९ ७
खाल तथा चमड़ा	१८१ ६	१७७ ८	१८८ ६	४०७ ९	२८५ ४	३१२ ४	२५१ २
आर्डिनेंस फैक्ट्रीज	१७५ ०	२०० २	२२१ ०	२२५ ८	२८४ ८	३५१ ९	३२७ ३
विविध	२०२ ६	१८८ १	२४२ ४	२५५ ७	३१६ ५	३४६ २	४१४ ०
सभी उद्योग	२०२ १	२०१ ५	२०८ ६	२५३ २	३०४ ०	३४० २	३३४ २
निर्वाह मूल्य देशनांक							
बम्बई	२२६	२२४	२४६	२६५	२८८	२९२	२९८
मद्रास	२०७	२२८	२३९	२७७	३१५	३३०	३३२
कानपुर	३१४	३०८	३२८	४०८	४७१	४७८	४३४

उपरोक्त विश्लेषण में भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन की एक सब से बड़ी कमी स्पष्ट रूप में सामने आती है। ये छोटे संघ कमजोर और बुरी तरह संगठित हैं। न प्रभावकारी रूप में सामूहिक सौदाकारी नहीं कर सकते हैं और न पंच निर्णयों और समझौतों को भलीभांति क्रियान्वित करवा सकते हैं। छोटे आकार के श्रमिक संघ अपने ही सदस्यों में अनुशासन बनाये रखने के लिये शक्तिहीन होते हैं। वे पारस्परिक हितकारी योजनाओं की भी व्यवस्था नहीं कर सकते। पूरे समय के लिये वेतनयुक्त कर्मचारी रखना या अन्वेषण आदि कराना उनकी क्षमता के बाहर है। इसलिए आवश्यकता बड़े श्रमिक संघों की है। मूल्य, मजदूरी तथा अन्य स्थितियाँ अब एक दूसरे पर आश्रित होती जा रही हैं। सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था ही अन्ततः सम्बन्धित है। इसमें सन्देह नहीं कि क्षेत्रीय भिन्नतायें होती हैं। किन्तु इन क्षेत्रीय भिन्नताओं के ऊपर एक समानता होती है। प्रवासी स्वभाव, अशिक्षा, अज्ञानता, नियोजकों का कठोर दृष्टिकोण, कम मजदूरी और कर्ज की शक्तियाँ हैं जो हर जगह श्रम समस्याओं को प्रभावित करती हैं। ये और इसी तरह की अन्य शक्तियाँ को स्थानीय आधार पर नहीं हल किया जा सकता। इसके अलावा बड़े और शक्तिशाली श्रमिक संघ प्रभावकारी सामूहिक सौदाकारी के लिये अति आवश्यक हैं। नियोजकों के संगठन पहले ही शक्तिशाली हो चुके हैं। वे केन्द्रित संगठन हैं। सरकारी अधिनियमों का प्रभाव प्रत्येक राज्य के श्रमिकों पर पड़ता है। श्रमिकों को चाहिए कि वे बड़े और शक्तिशाली श्रमिक संघ संगठित करें ताकि वे शक्तिशाली संगठित नियोजकों का सामना कर सकें और श्रम अधिनियमन के दौरान सरकार पर प्रभाव डाल सकें। अन्तर राज्यीय उद्योगों के सामने में यह और भी आवश्यक हो जाता है विशेषकर वहाँ जहाँ कर्मचारी को एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरण किया जाता है।

श्रमिक संघों के कार्यों में जो निरन्तर वृद्धि हो रही थी उसके नानाविध कारण थे। मुख्य कारण था श्रमिकों की आर्थिक स्थिति भी जो बुरी से बदतर होती जा रही थी। युद्ध की समाप्ति से श्रमिकों को कोई महत्त्वपूर्ण लाभ नहीं हुआ। युद्धोत्तर काल में मूल्यों और निर्वाह परिव्यय में हुई वृद्धि में कमी के कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ रहे थे। मुद्रा स्फीति, सट्टा तथा काला बाजार का बोलबाला था जिससे श्रमिकों को बड़ा कठिनाइयाँ हो रही थीं। सारणी २३ में फैक्ट्री श्रमिकों की आय तथा चुने हुए नगरों में निर्वाह मूल्य का सूचकांक दिया गया है। इन दोनों की तुलना से यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा।

कुछ चुने हुए केन्द्रों में मजदूरों की जीवन से किस सीमा तक पीछे रह गई यह अग्रांकित सारणी में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है।

सारणी २४

१६३६ की तुलना म १६४८ म प्रतिशत वृद्धि

	आय	निर्वाह मूल्य	केन्द्र
बिहार	१६१ ६	२४६	जमशेदपुर
बम्बई	२०८ ३	१८८	बम्बई
दिल्ली	२२८ ८	२४८	दिल्ली
		२२३	अहमदाबाद
मद्रास	२४७ ८	२१५	मद्रास
उडीसा	२७८ ६	३२४	कटक
उत्तर प्रदेश	२७६ ८	२७१	कानपुर
बगाल	१६१ १	२३६	कलकत्ता

किन्तु इन आकडो म पूरी तरह नहीं मालूम हो पाता कि वास्तविक मजदूरी मे कितना ह्रास हुआ है। यह आकडे यह भी स्पष्ट नहीं करते कि काले बाजार और भ्रष्टाचार के जो मूल्य नियन्त्रण तथा राशनिंग के काल म पनप थे निर्वाह मूल्यो म किस सीमा तक वृद्धि हुई। युद्ध और युद्धोत्तर काल म औद्योगिक श्रमिको की वास्तविक आय का अखिल भारतीय सूचकाक यह स्पष्ट करता है कि इस अवधि म वास्तविक मजदूरी म काफी ह्रास हुआ।

सारिणी २५

फैक्टरी कर्मचारियों की वास्तविक आय का सूचकाक जो प्रतिमास २०० रुपय से कम अर्जित करते हैं

वर्ष	आय देशनाक	अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य देशनाक	वास्तविक आय का देशनाक
१६३६	१००	१००	१००
१६४०	१०५ ३	६७	१०८ ६
१६४१	११११ ०	१०७	१०३ ७
१६४२	१२६ १	१४५	८६ ०
१६४३	१७६ ६	२६८	६७ ०
१६४४	२०२ १	२६६	७५ १
१६४५	२०१ ८	२६६	७४ ६
१६४६	२०८ ६	२८५	७३ २

१	२	३	४
१९४७	२१२ ७	२२२	७८ ४
१९४८	०६०	२६०	८४ ६
१९४९	२६० २	७१	९१ ७
१९५०	२२६ ७	२३१	९० १
१९५१	२१६ ८	८३	९२ २
१९५२	३८४ ७	२३६	१०१ ८
१९५३	२८४ ६	२८१	९९ ९
१९५४	२८१ ७	२७१	१०२ ७

इस सूचकांकों से यह ज्ञात होता है कि युद्ध के पूर्व आय के अनुपात में उस समय श्रमिकों की वास्तविक आय घटकर ६७% रह गई थी। युद्ध पूर्व की वास्तविक आय का स्तर केवल १९५१ में पहुँच पाया और १९५२ तथा १९५४ में १९३९ के आँकड़ों से वृद्धि हुई। किन्तु औद्योगिक लाभ बढ़ते ही रहे। १९३९ को आधार मानकर सभी उद्योगों के औद्योगिक लाभों के सूचकांक १९४८ में २२८ ६, १९४४ में २३३ ६, १९४६ में २२९ ६, १९४७ में १९१ ६ और १९४८ में २५९ ७ थे। औद्योगिक लाभों के साथ कीमतें और निर्वाह मूल्य भी इस काल में निरन्तर बढ़े। मजदूरी भी बढ़ी किन्तु बढ़ते हुए मूल्यों में मजदूरी का सामंजस्य नहीं हो पाया। मौद्रिक तथा वास्तविक मजदूरी में सदा भिन्नता रही। फलतः श्रमिकों का जीवन स्तर गिरता गया। जैसे जैसे आर्थिक स्थिति बिगड़ती गई श्रमिकों के बीच वर्ग चेतना की वृद्धि हुई और उन्होंने अनुभव किया कि उनके और नियोजकों के हितों में अन्तर है। उन्होंने यह भी महसूस किया कि वे केवल सामूहिक क्रिया द्वारा ही अपने उचित ध्येय को प्राप्त कर सकते हैं। वर्ग चेतना तथा मिलजुल कर या सम्मिलित कार्य करने की प्रवृत्ति ही युद्धोत्तर काल में श्रमिक संघों के प्रबल कार्यकलापों को उकसाने वाली शक्तियाँ थीं।

देश के राजनैतिक विकास ने भी श्रमिक संघवाद की प्रगति को प्रोत्साहन मिला। इस काल में तीव्र राजनैतिक क्रियाएँ घटित हुई। युद्ध के बाद छोड़े गये कांग्रेसी नेताओं और अन्य श्रमिकों ने श्रमिक संघ आन्दोलन को विश्वस्त नेतृत्व प्रदान किया। उग्र राजनैतिक गतिविधियों ने श्रमिक संघों पर प्रबल प्रभाव छोड़ा। प्रारम्भिक वर्षों में गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन तथा बीसवीं शताब्दी की अन्य राजनैतिक घटनाओं ने श्रमिक संघवाद के विकास और देश में अपनी जड़ें मजबूत करने के लिए प्रोत्साहन दिया। इसी प्रकार युद्धोत्तर काल में राजनैतिक और श्रम क्षेत्रों में व्यापक कार्यवाही हुई।

विभिन्न दलो द्वारा श्रमिक वर्ग पर अपना अधिकाधिक प्रभाव जमाने की आकांक्षा स्पष्ट थी। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी श्रमिक आन्दोलन में अपना पैर जमा लेना चाहती थी। कांग्रेसियों का प्रभुत्व भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस पर साम्यवादियों का अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस पर समाजवादियों का हिन्द मजदूर सभा पर तथा उन्मूलनवादियों का युनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर था। जनसंघी लोगों का अपना भारतीय मजदूर संघ था। समाजवादी पार्टी ने हाल ही में एक पृथक राष्ट्रीय सगठन हिन्द मजदूर पंचायत की स्थापना की है। इस प्रकार राजनैतिक कार्यकर्ताओं ने उनके सम्पर्क में आय इससे श्रमिक संघ आन्दोलन के लिए नेता आसानी से सुलभ हो गये।

श्रमिकों को मिली अधिक स्वतन्त्रता और सताये जाने का भय कम हो जाने से श्रमिक संघों को प्रोत्साहन मिला। विभिन्न अधिनियमों के पारित होने के कारण श्रमिक संघों को अधिक अधिकार और सुविधाएं मिली। श्रमिकों को सताना इतना सरल नहीं रहा। निर्धारित प्रणाली का उल्लंघन करके न तो नियोजक अपने कर्मचारियों को नौकरी से हटा सकते हैं और न ही निलम्बित कर सकते हैं।

सरकार के रुख ने भी श्रमिक संघ आन्दोलन की सहायता की। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने श्रमिक आन्दोलन को दबाने की अपेक्षा यह अनुभव किया है कि बदली हुई परिस्थितियों में श्रमिकों को एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। पुरानी समाज व्यवस्था के स्थान पर एक समाजवादी समाज की स्थापना होनी है। यह भी स्पष्ट अनुभव किया गया कि श्रमिकों के प्रति समाज के कुछ दायित्व हैं और बिना सगठित श्रमिकों के देश की प्रगति सभव नहीं है।

तदनुरूप यह निश्चय किया गया कि सयुक्त विचार विमर्श हो उचित मजदूरी निर्धारण और पूंजी पर उचित प्रत्यावर्तन के लिये समितियां नियुक्त की जाय तथा श्रमिकों के गृह निर्माण को अधिक प्राथमिकता दी जाय।

स्वराज्य के बाद की अवधि में सरकार ने कई त्रिदलीय समितियों की स्थापना और सम्मेलनों का आयोजन किया। इन समितियों और सम्मेलनों में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का अनुसरण करते हुये, नियोजकों और श्रमिकों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया। इस काल के श्रम अधिनियम पारित करने में श्रमिक सगठनों से विधिक विचार विमर्श किया गया। सरकार की श्रम नीति में परिवर्तन श्रमिक संघों के लिये बहुत महत्वपूर्ण रहा। उनको एक नई प्रतिष्ठा मिली।

सरकार की औद्योगिक सम्बन्धों की नीति में पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या बढ़ी है। औद्योगिक विवादों का समाधान के लिये विभिन्न अधिनियमों द्वारा विस्तृत तन्त्र की स्थापना की गई। सयुक्त विचार विमर्श मध्यस्थता समाधान तथा विवाचन की व्यवस्था तन्त्र में निहित है। किन्तु अपंजीकृत श्रमिक संघ सरकार द्वारा स्थापित औद्योगिक सम्बन्धों के तन्त्र का लाभ नहीं उठा सकते। दूसरी ओर पंजीकृत श्रमिक

संघों को अन्य विशेष सुविधाएं भी मिलती हैं। श्रमिक संघों की नियोक्ता द्वारा अनिवार्य मान्यता के लिए उपायों के बारे में सुझावों को पूरा करने, श्रमिक संघ अधिनियम में १९४७ में संशोधन किया गया। किन्तु १९४७ का संशोधित अधिनियम अभी तक लागू नहीं किया गया है। पंजीकृत श्रमिक संघों को न्यायाधिकरणों पर निर्णय करने और विवादों में संयुक्त श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने के अधिकार दिए गए हैं। यह श्रमिक संघों का पंजीकरण कराने की प्रेरणा थी।

भारत में औद्योगिक श्रम नीतियों का नया युग और शुरू हो गया। पहले श्रमिक फैक्टरियों की नौकरी को अस्थायी रूप में स्वीकार करते थे जिससे जब ही सम्भव हो लौट सकें। उनका अन्तिम लक्ष्य गांव को लौट जाना था। इसलिए साधारणतया वे अपनी नौकरी और काम की स्थितियों में सुधार के लिए आन्दोलन करने को उत्सुक नहीं थे। परन्तु गत वर्षों में फैक्टरियों में स्थायी श्रमिकों की संख्या काफी बढ़ी है। अब वे फैक्टरी की नौकरी को अस्थायी नहीं मानते बल्कि उसे मुख्य जीविका का साधन समझते हैं। इससे स्वभावतः श्रमिक अपनी आय और नौकरी की अवस्थाओं में सुधार के लिए उत्सुक हो गए। यह तथ्य है कि इनमें सम्भव ऐसा वर्ग है जो अपने जीवन यापन के लिए पूर्णतया फैक्टरियों के काम पर निर्भर है। बढ़ता हुआ वर्ग चेतना और राष्ट्रीय का सर्वांगीण कार्यों पर आस्था से श्रमिक वर्ग अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक संगठनों के लिए तत्पर है।

इस बीच स्वतन्त्र भारत में नियोजकों ने अपने अधीन श्रमिक संघों को अधिनियम के अन्तर्गत मान्यता दिलाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार सरकारी संघों को भी वही सुविधाएं प्राप्त करना सम्भव हो गया जो पंजीकृत संघों के लिए उपलब्ध थीं। नियोजक द्वारा वास्तविक श्रमिक संघों को उनके अधिकारों और विशेषाधिकारों से वंचित करने का यह भी एक प्रयत्न है। न्यायाधिकरण तथा विवाचक मण्डल के समक्ष ऐसे मामले आए हैं जहां नियोजकों ने अपने अधीन श्रमिक संघों को मान्यता देकर वास्तविक श्रमिक संघों को मान्यता से वंचित किया है।

श्रमिक संघों के सिद्धान्तों में वृद्धि के साथ साथ औद्योगिक अशान्ति भी काफी बढ़ी। हड़ताल और तालाबन्दी के फलस्वरूप काम के दिनों की हानि १९४६ और १९४७ में सबसे अधिक थी। १९४८ के बाद औद्योगिक विवादों में वृद्धि निम्नलिखित सारिणी द्वारा स्पष्ट की गई है।

सारणी २६

१९४५–१९५४ के बीच औद्योगिक विवाद

वर्ष	कामबन्दी की संख्या	संन्निहित श्रमिकों की संख्या	व्यर्थ गये कार्य दिवस
१९४५	८२०	७ ४७ ५२०	४०,५४,४९९
१९४६	१ ६२९	१९ ६१ ९४८	१ २७ १७ ७६२
१९४७	१ ८११	१८ ४० ७८४	१ ६५ ६२ ६६६
१९४८	१ २५९	१० ५९ १२०	७८ ३७ १७३
१९४९	९२०	६ ८५ ४५७	६६ ०० ३९५
१९५०	८१४	७ १९ ८८३	११ २८ ०६ ७०४
१९५१	१,०७१	६ ९१ ३२१	३८ १८ ९२८
१९५२	९६३	८ ०९ २४२	३३ ३६ ९६१
१९५३	७७२	४ ६६ ६०७	३३ ८२ ६०७
१९५४	८४०	४ ७७ १३८	३३ ७२ ६३०

विवादों की संख्या १९४६ में १६२९ से बढ़कर १९४७ में १८११ हो गई। कामबन्द दिनों की हानि की संख्या क्रमशः १२ १८ और १६५६३ लाख थी। तत्पश्चात् कई कारणों से विवादों, संन्निहित श्रमिकों और कामबन्द दिनों की हानि की संख्या में कमी होती गई। औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार का श्रेय सरकार के बढ़ते हुए दखल, समझौते और पंचनिर्णय तन्त्र की स्थापना, नियोजकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन जिससे वे श्रमिकों की उचित मांगों को स्वीकार करने के लिये तैयार थे तथा श्रमिक संघ नेताओं के अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार को था।

देश में औद्योगिक सम्बन्धों की बिगड़ती हुई दशा को परिशिष्ट के विवरण ५ में स्पष्ट किया गया है जिसमें प्रत्येक राज्य के औद्योगिक विवादों को दिखाया गया है। जहां तक औद्योगिक विवादों का प्रश्न है बम्बई तथा पश्चिमी बंगाल प्रमुख राज्य हैं जहां आधे से अधिक क्षति हुई। मद्रास और उत्तरप्रदेश और अन्य महत्वपूर्ण राज्य थे जहां औद्योगिक विवादों से काफी हानि हुई। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विवाद किसी एक उद्योग या एक वर्ग के उद्योगों तक ही सीमित नहीं थे। उनका विस्तार काफी था और सभी उद्योग प्रभावित हुए। जिन उद्योगों में सबसे अधिक हानि हुई उनमें वस्त्र उद्योग, धातु निर्माण, खान तथा खाद्य पेय और तम्बाकू वर्ग के उद्योग मुख्य थे। कामबन्दी से सूती उद्योग में सूती वस्त्र तथा खनन वर्ग में कोयले की खानों को बहुत क्षति पहुंची।

अब भी औद्योगिक विवादों का एक महत्त्वपूर्ण कारण मजदूरी ही थी यद्यपि आनुपातिक दृष्टि से मजदूरी उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रही जितनी पहले थी। १९४८ में मजदूरी के कारण कामबन्दी का प्रतिशत ८२.४ था जबकि १९५३ में यह २७.४ प्रतिशत ही रहा। व्यक्तिगत समस्याएँ जैसे बर्खास्तगी, निलम्बन, नवानियुक्ति, छटनी आदि औद्योगिक विवादों के मुख्य कारण थी। १९५१, १९५२, १९५३ तथा १९५४ में मजदूरी की अपेक्षा व्यक्तिगत प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण थे। १९५४ में व्यक्तिगत प्रश्न ३७ प्रतिशत कामबन्दी के लिए जिम्मेदार थे जबकि १९४९ में यह केवल १७.७ प्रतिशत ही था। अवकाश और काम के घंटे भी सामयिक रूप से औद्योगिक अशांति के महत्त्वपूर्ण कारण हो गये।

अधिकांश में हड़तालों की असफलता एक स्पष्ट लक्षण रही थी। ४० से ५० प्रतिशत तक के विवादों में हड़तालें असफल रहीं और १० से १३ प्रतिशत मामलों में सफलता आंशिक रही। केवल १८ से २० प्रतिशत विवादों में ही श्रमिकों को सफलता मिली।

विवरण पत्र ८ से यह स्पष्ट है कि श्रमिक संघ नेताओं द्वारा हड़तालें अनुत्तरदायी ढंग से आयोजित की गईं जिन्होंने अपने कार्यों की प्रतिक्रियाओं को अच्छी तरह नहीं समझा, श्रमिक संघों की वास्तविक शक्ति नहीं आँकी, और न ही वे सामान्य सदस्यों से मिलने वाले सहयोग का अनुमान लगा सके। प्रायः ऐसी हड़तालें हुईं जिनके कारण नगण्य थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि असफल हड़तालों का श्रमिक संघों के संगठन की चेतना और नैतिकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

श्रमिकों ने अपनी मांगों को मनवाने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया। काफी संख्या में हड़तालें हुईं जिनमें श्रमिकों ने नियोजकों को बिना सूचना दिये काम बन्द कर दिया। अन्य सामान्य प्रचलित प्रविधियों में कामरोको हड़ताल, बैठ जाओ हड़ताल व कलम नीचे रखो हड़ताल थी। जिनमें श्रमिक कारखाने या दफ्तर जाते थे किन्तु काम करने से मना कर देते थे। इस तरह की क्रियाएं काफी प्रभावकारी सिद्ध हुईं क्योंकि नियोजक बिना साथियों को बाहर निकाले हड़ताल तोड़ने वालों का उपयोग नहीं कर सकते थे और संघ सरलता से श्रमिकों की नैतिकता को बनाये रखने में सफलता प्राप्त कर सकते थे। ऐसी हड़तालों में धरना देने की भी आवश्यकता नहीं रही। किन्तु इस प्रकार की हड़तालों में कठोर अनुशासन के अभाव में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है।

युद्धोत्तर वर्षों में श्रमिकों ने एक दूसरी प्रविधि 'धीरे काम करो' को भी अपनाई। काम की गति जानबूझकर कम कर दी जाती थी और श्रमिक अपनी पूर्ण क्षमता से काम नहीं करते थे। प्रबन्धकों को श्रमिकों की मांग स्वीकार करने को बाध्य करने के लिए ऐसी हड़तालें की जाती थीं। चूंकि 'धीरे काम करो' हड़तालों से उत्पादन व्यय पर बुरा प्रभाव पड़ता था इसलिये नियोजकों को या तो श्रमिक संघ

की मांगें माननी पड़ती थी या तालाबन्दी घोषित करनी पड़ती थी। १९५३ में कानपुर श्रमिक संघ मुख्यतः श्रमिकों की धीरे काम करो प्रविधि से ही प्रारम्भ हुआ। लेकिन ऐसी प्रविधियां श्रमिकों के हित में नहीं हैं। क्योंकि जनता की सहानुभूति समाप्त होने का भय रहता है। ऐसी विधियां समाज में सर्वोत्तम हित के विरुद्ध हैं अतएव इनका त्याग करना चाहिये। श्रमिकों को अपनी कठिनाइयां दूर करने के लिए अन्य साधनों को अपनाना चाहिये।

संकेत हड़तालें भी सामान्य हो गयी। प्रबन्ध के विशेष कार्यों अथवा नीतियों के विरोध में श्रमिकों की कठिनाइयां को संकेत हड़तालों के माध्यम से व्यक्त किया जाता था। ये हड़तालें श्रमिक संघ द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यवाही का संकेत होती थीं। वस्तुतः संकेत हड़तालें जनता की सहानुभूति प्राप्त करने और समझौता तंत्र को गतिशील करने के लिए उपयोग की जाती हैं। इसलिये संकेत हड़तालें अपने सीमित क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होती हैं।

श्रमिकों की एकता और समन्वय को सिद्ध करने के लिये युद्धोत्तर काल में सहानुभूतिक हड़तालों की संख्या बढ़ी। इन्हें राज्य का समर्थन नहीं मिला। क्योंकि इनमें काफी उलझनें बढ़ जाती हैं। किन्तु जहां तक श्रमिकों के समन्वय पर बल देने की बात है ये हड़ताल करने वाले श्रमिकों के मनोबल को ऊँचा उठाता है। यदि श्रमिकों द्वारा केवल एक दूसरे के प्रति सहानुभूति प्रकट करने हेतु ही इनका सहारा लिया जाता है तो इन्हें रोकना नहीं चाहिये। किन्तु यदि उनका कोई परोक्ष उद्देश्य या सरकार पर राजनैतिक प्रभाव डालना है तो इन्हें प्रोत्साहित भी नहीं करना चाहिए। परन्तु दोनों के बीच विभेद करना बहुत कठिन है। सरकार अपनी उलझनों के आधार पर सहानुभूति और समन्वय की ऐसी सभी अभिव्यक्ति प्रव्यंजनायें समाप्त करने के लिये प्रेरित हो सकती है। इसलिए जबतक ऐसी हड़तालों को आपत्तिजनक मानने का प्रचुर प्रमाण न हो इन्हें बर्दाश्त करना चाहिये।

अभाग्यवश श्रमिकों द्वारा हिंसा अपनाने की प्रवृत्ति इन वर्षों में प्रबल हो गई। बहुत से महत्त्वपूर्ण विवादों में श्रमिकों पर आरोप लगाया गया है कि उनका व्यवहार इतना उत्तेजनात्मक हिंसात्मक तथा निरंकुश रहा कि नियोजकों को तालाबन्दी के लिये विवश होना पड़ा। १९४८ में सुरक्षा इन्सपेक्टर पर प्रहार करने के आरोप में जब एम्प्रेस मिल नागपुर में एक बुनकर को निलंबित किया गया हड़ताल हुई। पश्चिमी बंगाल की बड़ी जूट मिलों में तीन में तालाबन्दी घोषित की गई क्योंकि मिलों की सम्पत्ति को हिंसात्मक कार्यों से हानि पहुँचाने का अभिकथन था। उसी वर्ष विजगापट्टम जिले की चित्तवाला जूट मिल में फैक्टरी के अहाते के अन्दर दंगा हो गया। टाट बुनकरों के प्रबन्ध के प्रति हिंसात्मक दृष्टिकोण से फरवरी १९४९ में गंगा मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी में तालाबन्दी की गई। फोर्ट ग्लास्टर जूट मिल हावड़ा में जब होली के त्यौहार पर छुट्टी की मांग करने समय श्रमिकों का

व्यवहार निरंकुश और हिंसात्मक हो गया था। शांति बनाये रखने के लिए गोली चलानी पड़ी। कानपुर टेक्सटाइल मिल, जितनपुर व अन्य जगह पर श्रमिकों द्वारा प्रहार करने से दिसम्बर १९५० में लाठीचार्ज करनी पड़ी। बाटो फैक्टरी, बानीगंज व प्रेमधरा से जुलाई १९५१ में विवाद हो जाने पर श्रमिकों ने हिंसा का आश्रय लिया। भारत कॉटन मिल के क्रुद्ध श्रमिकों की कतार हिंसात्मक कार्यवाहियों से दिसम्बर १९५१ में मिल को बिना हानि के बचाना पड़ा। १९५३ में कानपुर श्रमिक संघर्ष में हिंसा का सहारा लेने के कारण गोली चलानी पड़ी। ऐसे और बहुत से हिंसात्मक घटनाओं के उदाहरण हैं जहाँ कानून की रक्षा और शांति बनाये रखने के लिए पुलिस को गोली चलानी पड़ी और काफी संख्या में श्रमिक संघ नेताओं को गिरफ्तार किया गया। यह कहना कठिन है कि किन मामलों में पुलिस की गोली चलाना आवश्यक या उचित था और किन मामलों में संघर्ष टाला जा सकता था तथा शान्तिपूर्ण ढंग से समझौता हो सकता था। हिंसा, गोली चलाना तथा गिरफ्तारी न तो सरकार और न श्रमिक संघ नेताओं की कीर्ति को बढ़ाता है। दोषी दोनों हैं। इस स्थिति का ठीक ढंग से नियन्त्रित न कर पाने के लिए और दूसरा अनुत्तरदायी नीतियों, समुदाय पर प्रभाव का ध्यान न रखना तथा अनुशासन बनाये रखने की अक्षमता के लिए इस तरह के कार्य श्रमिक संघों के विकास और श्रमिकों के हितों के अनुरूप नहीं होते।

बढ़ता हुआ औद्योगिक अशान्ति से उत्पादन में कमी हो गई। औद्योगिक स्थिति की बिगड़ती हुई दशा से सरकार अत्यधिक चिन्तित थी। समय की माँग से उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हुई। सरकार ने अनुभव किया कि उत्पादन में वृद्धि बिना श्रमिकों के पूर्ण सहयोग के सम्भव नहीं है। सामाजिक न्याय तथा समाज में समानता के उद्देश्य की पूर्ति भी सरकार चाहती थी। अतः इस दिशा में सरकार ने सम्मिलित कदम उठाये। दिसम्बर १९४७ में एक औद्योगिक शान्ति सभा (Industries Truce Conference) का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न सरकारों, श्रमिकों तथा नियोजकों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सभा ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया —

'इस सभा की यह धारणा है कि औद्योगिक उत्पादन जो देश की आर्थिक व्यवस्था के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण है श्रम और प्रबन्ध के बीच पूर्ण सहयोग तथा आत्मीय सम्बन्धों की स्थापना के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। नियोजकों को उद्योग में श्रम की उचित भूमिका की मान्यता देनी चाहिए और श्रमिकों के लिए उचित मजदूरी तथा कार्य की अवस्थाओं की आवश्यकता समझनी चाहिए, श्रमिकों को अपनी ओर से राष्ट्रीय आय में वृद्धि के हेतु अपने दायित्वों को समान रूप से महत्त्व देना चाहिए क्योंकि इसके बिना जीवन-स्तर स्थाई रूप से ऊँचा नहीं उठाया जा सकता है। नियोजक और श्रमिकों का यह ध्येय होना चाहिए कि सभी

सामान्य समस्याओं का हल तथा सभी विवादों के निर्णय या निश्चय बिना उत्पादन में बाधा या धीमा किये ही पारस्परिक विचार विमर्श द्वारा किया जायेगा। पूजी और श्रम के पारिश्रमिक की पद्धति इस प्रकार से प्रवन्धित करनी चाहिये कि जहां उपभोक्ताओं और प्राथमिक उत्पादकों के हित में करों या अन्य उपायों द्वारा अत्यधिक लाभ पर नियन्त्रण रखा जाय वहीं दोनों उपन प्रयत्नों के फल को श्रमिकों को उचित मजदूरी के भुगतान उद्योग में लगाई गई पूजी के उचित प्रतिलाभ व्यवसाय के विस्तार और उसकी व्यवस्था को बनाये रखने के लिये उचित कोष की व्यवस्था के बाद आपस में बांट लें।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सभा ने निम्नलिखित सुझाव दिये—(अ) शान्तिपूर्ण ढंग से औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिये प्राविधिक और अन्य तन्त्रों का पूरा उपयोग करना चाहिये जहां यह नहीं है इसकी तुरन्त स्थापना की जानी चाहिये (ब) उचित मजदूरी और श्रम की स्थितियां तथा पूजी पर उचित प्रतिलाभ के अध्ययन तथा निर्धारण और औद्योगिक उत्पादन से सम्बन्धित सभी मामलों में श्रम के सहयोग की विधियों के लिये केन्द्रीय क्षेत्रीय और कार्यशील तन्त्र की, जैसे केन्द्रीय क्षेत्रीय तथा यूनिट समितियां की स्थापना की जाय (स) दिन प्रतिदिन के झगड़ों को सुलझाने के लिये प्रत्येक औद्योगिक प्रतिष्ठान में कार्य समितियां बनाई जाय जिनमें श्रमिकों द्वारा निर्वाचित सदस्य तथा प्रबन्ध के प्रतिनिधि रहें (द) श्रमिकों के जीवन-स्तर को उठाने के लिये पहले कदम के रूप में औद्योगिक श्रमिकों के लिये गृह निर्माण की समस्या पर तुरन्त ध्यान दिया जाय गृह निर्माण पर व्यय उचित अनुपात में सरकार नियोजकों और श्रमिकों के बीच बांट लिया जाय तथा श्रमिक अपना हिस्सा उचित किराये के रूप में दें।

इस काल में इन उद्देश्यों ने सरकार की नीति को प्रभावित किया है। नीति सम्बन्धित मामलों से श्रमिक अधिकाधिक सम्बद्ध रहे हैं तथा उनका सहयोग आवश्यक समझा गया है। श्रमिकों और नियोजकों के बीच द्विदलीय समझौते के लिये कार्य समितियां, उत्पादन समितियां संयुक्त समितियां जैसी संस्थाओं के माध्यम से व्यवस्था की गई है। राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर त्रिदलीय समितियां की स्थापना की गई है जो श्रम समस्याओं पर विचार और वाद विवाद करती है। राष्ट्रीय स्तर के त्रिदलीय तन्त्र में भारतीय श्रम सम्मेलन स्थायी श्रम समिति औद्योगिक समितियां और अन्य संस्थाएँ जैसे उद्योगों की केन्द्रीय सलाहकार परिषद् केन्द्रीय न्यूनतम मजदूरी सलाहकार मंडल, केन्द्रीय सेवायोजन सलाहकार समिति कर्मचारियों की भविष्य निधि योजना को प्रशासित करने के लिये केन्द्रीय न्यासी मंडल खादी श्रमिक मंडल तथा कोयला और अभ्रक खान श्रमिक हितकारी कोष के लिये सलाहकार समिति सम्मिलित है। अधिकांश राज्य सरकारों ने भी त्रिदलीय संस्थाओं की स्थापना की है—यथा राज्य श्रमिक त्रिदलीय सम्मेलन कानपुर श्रमिक त्रिदलीय

सम्मेलन, स्थाई श्रम समिति, गृह निर्माण मण्डल, उत्तरप्रदेश के खानों, मिल तथा अवकाश प्राप्त व्यक्तियों के श्रम कल्याण तथा उन्नति कोष अधिनियम के अन्तर्गत सलाहकार समिति, औद्योगिक त्रिदलीय समिति, जिला श्रम हितकारी सलाहकार समितियाँ, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा ७ के अन्तर्गत सलाहकार मण्डल। इस प्रकार श्रमिक प्रतिनिधियों को त्रिदलीय संस्थाओं में सम्मिलित करने के अतिरिक्त श्रमिकों को प्रभावित करने वाली विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के लिए सरकार ने और समितियाँ स्थापित की हैं। श्रमिकों के प्रतिनिधि इन समितियों में नामांकित किये गये थे। सरकार [illegible]। श्रमिकों की अवस्थाओं का सुधार, आवासिक गृह-निर्माण और श्रमिक कल्याण की उन्नति करने तथा सामाजिक सुरक्षा हितों की रक्षा करने के लिए बहुत थोड़े समय में एक के बाद एक अधिनियम पारित किये गये। जितने अधिनियम इस काल में पारित किये गये उतने पहले कभी नहीं किये गये।

श्रम प्रबन्ध सम्बन्धों के क्षेत्र में और औद्योगिक विवादों को रोकने तथा सुलझाने में सरकार ने बहुत अधिक कार्य किया। औद्योगिक सम्बन्धों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए अधिनियम बनाये गये। आन्तरिक प्रणाली [illegible] जाने से अनिवार्य समझौता और पंचनिर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया तथा औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ में समझौता तन्त्र की नियुक्ति की व्यवस्था की गई। कुछ राज्यों ने अपने अलग से औद्योगिक विवाद बनाये। इन अधिनियमों के अन्तर्गत एक बड़ी संख्या में न्यायाधिकरणों की स्थापना की गई जिन्होंने कभी-कभी एक ही विषय पर परस्पर विरोधी विचारधाराएँ तथा सुझाव व्यक्त किये। अतः समन्वय और एकरूपता लाने के लिए १९५० में अपीलीय न्यायाधिकरण की स्थापना की गई। किन्तु आन्तरिक न्यायाधिकरणों के पंचनिर्णय से असन्तुष्ट होता था वे उसमें अपील कर सकते थे।

अनिवार्य निपटारे के प्रश्न पर बड़ा वाद-विवाद हुआ है। इसकी आलोचना करने वाले इसे शक्तिशाली, स्थिर, स्वतन्त्र तथा उत्तरदायी श्रमिक संघों के विकास में बाधक मानते हैं। इस बीच में श्रमिकों ने निष्पक्ष अनिवार्य निर्णयों से कुछ लाभ उठाये हैं। यह कहना असत्य न होगा कि यदि सरकार न्यायाधिकरणों और औद्योगिक न्यायालयों की स्थापना न करती तो श्रमिक संघों को बहुत कम सफलता का श्रेय मिलता। हड़तालों से मिले कष्ट और कठिनाइयों की तुलना में श्रमिकों को लाभ बहुत कम हुए। न्यायाधिकरणों, न्यायालयों तथा मण्डलों ने सर्वदा श्रमिकों के कल्याण में काफी सहयोग दिया। इन न्यायाधिकरणों द्वारा दिये गये निर्णय के आधार पर औद्योगिक मामलों जैसे मजदूरी, महगाई भत्ता, बोनस, कार्यावधि, सवेतन अवकाश और क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में नीतियाँ निर्धारित की गई। औद्योगिक विधिशास्त्र का विकास होने से औद्योगिक विवादों की संख्या में कमी हो गई। १९४८

के बाद हड़ताला सन्निहित श्रमिकों और बरबाद हुए कार्यकर दिनों की संख्या में कमी इस बात का प्रमाण है कि पंचनिर्णय को सफलता प्राप्त हुई है।

किन्तु अनिवार्य विवाचन की सफलता निरा वरदान नहीं रही है। भारत में श्रमिक संघवाद की प्रोन्नति में इससे बाधा पहुँची है। विशेषज्ञों ने श्रमिक संघों को केवल 'हड़ताल समितियां' की संज्ञा दी थी। उन्हें अब पंचनिर्णय समितियां कहा जा सकता है। श्रमिक संघों के स्वस्थ विकास में पंचनिर्णय से सहयोग नहीं मिला। बहुत से श्रमिक संघों की स्थिति बहुत मजबूत नहीं थी और जब पंचनिर्णय द्वारा उन्हें लाभ नहीं मिल सका वे निष्क्रिय हो गये। बहुत से श्रमिक संघ आज इस लिए कार्यशील हैं क्योंकि उन्हें पंचनिर्णय अल्पव्यय में आसानी से सुलभ हैं। मूल भूत कमजोरियां अब भी भारतीय श्रमिक संघों में विद्यमान हैं। पंचनिर्णय की जरा सी शिथिलता या उन्हें समाप्त करने पर बहुत से श्रमिक संघ आकस्मिक विघटन से पीड़ित हो सकते हैं। श्रमिक संघों की कमजोरी उन्हें शक्तिशाली स्थिति से विचार विमर्श करने और सामूहिक समझौते को स्वीकार करवाने के लिये असमर्थ बनाती है। अनिवार्य पंचनिर्णय पर पूर्ण आस्था कुकुरमुत्ते की तरह श्रमिक संघों के विकास को प्रेरित करती है और इस प्रकार श्रमिक संघवाद को कमजोर बनाती है। यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश मामलों में श्रमिकों द्वारा ही पंचनिर्णय की मांग की गई और उसे अनिच्छुक नियोजकों पर लादा गया। यह भी बहुत स्पष्ट है कि अनिवार्य पंचनिर्णय से श्रमिक संघ अधिक अनुत्तरदायी हो गये हैं। श्रमिक नेताओं द्वारा अतिशयोक्तिपूर्ण दावे किये जाते हैं। अनिवार्य पंचनिर्णय से सबसे पहली बात यह हुई कि पारस्परिक विश्वास और आदर समाप्त हो गया। यदि दोनों दलों ने एक दूसरे के दृष्टिकोण के प्रति जरा भी सम्मान दिखाया होता तो पंचनिर्णय के लिये इतने संदर्भों की आवश्यकता नहीं होती। आज तक भी दोनों ओर समझौता न करने का दृष्टिकोण बना हुआ है। प्रायः वे औपचारिक रूप से विचार विमर्श भी नहीं करते। सदस्यों के संतोष के लिये श्रमिक संघों के नेता अनिवार्य संराधन या पंचनिर्णय के समक्ष असम्भव मांगों को प्रस्तुत करते हैं। विवाचकों द्वारा विभिन्न मतों तथा परस्पर विरोधी निर्णयों से महत्वपूर्ण मामलों में और भी संभ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई है। अनिवार्य पंचनिर्णय की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसने श्रमिक संघ नेताओं को अपने उत्तरदायित्व के प्रति कम सचेत बना दिया है। श्री के० सी० सेन अध्यक्ष बम्बई औद्योगिक न्यायालय ने टिप्पणी की है कि इसमें संदेह नहीं कि अनिवार्य अधिनिर्णय ने इस देश में वादशीलता को बढ़ावा दिया है है तथा किसी सीमा तक श्रमिक संघों में उत्तरदायित्व की भावना को कम किया है।

केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व श्रममंत्री श्री गिरि ने अनिवार्य पंचनिर्णय को श्रमिक संघों का प्रथम श्रेणी का शत्रु माना है। इसके स्थान पर वे एक ऐसी

पद्धति स्थापित करना चाहते थे जिससे भारत के औद्योगिक विकास को द्रुत करने के लिये सामूहिक सौदेबाजी का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाय। आरम्भ करने के लिये प्रगतिशील उपयोगी संस्थाओं से सामूहिक सौदेबाजी के लिये पूर्ण अधिकार दिये जाने की योजना प्रस्तावित थी। किन्तु सरकार की मूल नीति का उल्लंघन सा था जिसे अस्वीकार किया। ७ जनवरी १९५८ को आयोजित भारतीय श्रम सम्मेलन में स्पष्ट हुआ कि श्रमिक विवादों के समाधान करने की जो सरकारी मूल नीति है उसमें परिवर्तन करने के लिये देश में परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हैं।

इसलिए उपर्युक्त विवेचन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अनिवार्य पंचनिर्णय श्रम प्रबन्ध सम्बन्धों के लिए कुछ समय तक और बना रहना चाहिए यद्यपि हम समझते हैं जो प्रतिनिधि श्रमिक संघ आन्दोलन के अन्तर्गत निर्माण में रुचि रखते हैं उन्हें यह समझना चाहिए कि औद्योगिक विवादों को सुलझाने में पारस्परिक वार्ता तथा सुलझाव की नीति को यथा-सम्भव सहयोग दें।

योजना काल मे श्रमिक आन्दोलन
(१९५१-१९६१)

इस काल म श्रमिक सघो की प्रगति निम्नलिखित सारणी स समझी जा सकती है।

सारणी १७

पजीकृत श्रमिक सघा की सख्या तथा विवरण भजन वाल सघा की सदस्यता

वष	पजीकृत श्रमिक सघा की सख्या	विवरण भेजने वाले सघा की सख्या	विवरण भेजन वाले सघा की सदस्यता पुरुष	महिलाए	योग	प्रति सघ माध्य सदस्यता	कुल सदस्य सख्या म महिलाओ का प्रतिशत
१९४७-४८	२७६६	१६२०	१५६०६३०	१०२२९९	१६६२९२९	१०२६	६ २
१९४८-४९	३१५०	१८४८	१८३१८१४	११९३५५	१९६०१०७	१०६१	६ १

१	२	३	४	५	६	७	८
१९४९–५०	३५२२	१९१९	१८८८८८७	११९५६५	१८२११९२	६९९	६६
१९५०–५१	३७६६	२००२	१६४८९६६	१०६४२४	१७५६९७१	५७७	६१
१९५१–५२	४६२३	२५५६	१८४६९९२	१३६२५७	१९९६३११	७८१	६८
१९५२–५३	४९३४	२७१८	१९३६२३३	१५६५६७	२०९९००३	७७२	७५
१९५३–५४	६०२९	३२९५	१९२५४४६	१७६४७६	२१११२९८५	६४१	८९
१९५४–५५	६६५८	३९४५	१९४०४२५	२२९२८७	२१७०४५०	६१२	१०२
१९५५–५६	८०९५	४००६	२०३४१९२	२९००४५	२२७४७३२	५६८	१०२
१९५६–५७	८५५३	४३९९	२०९६६९७	२८०१०४	२३७६७६२	५४०	११८
१९५७–५८	११०४५	५५२०	२६८१८५८	३३१८८२	३०१५०५२	५४६	११०
१९५८–५९	१०२२८	६०४०	३२५४७९४	३९२३५९	३६४७१९८	६०९	१०८
१९६०–६१ (अ)	११२०४	६५९४	३५२९०००	३९२०००	३९२१०००	५९५	१००

टिप्पणी (१) १९४७–४८ से १९५०–५१ तक के आँकड़े सूची अ तथा सूची स में कुछ राज्यों से सम्बन्धित हैं जबकि १९५१–५२ के बाद के आँकड़े जम्मू और कश्मीर को छोड़ कर सम्पूर्ण भारतीय संघ से सम्बन्धित हैं।

(२) कुछ मामलों में सदस्यों का यौनिक वर्गीकरण ना उपलब्ध नहीं है और इसलिए कालम ४ और ५ में दिये गये आँकड़ों का योग कालम ३ में प्राय नहीं मिलता जा सकता (?) ।

(अ) अनुमानित

इस अवधि में श्रमिक संघों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। १९५१–५२ में पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या ४ ९२ थी जो १९५८–५९ में १०२२८ की संख्या पर पहुँच गई। इस प्रकार लगभग सवा दो गुना वृद्धि हुई है। इस बीच सदस्यता केवल १८ % बढ़ी। यह छोटे आकार के संघों की बढ़ती हुई प्रवृत्ति की ओर स्पष्ट संकेत करती है जो पूर्वकाल में भी लक्षित थी। औसत सदस्यता के आँकड़े जो प्रकाशित किये जाते हैं कुछ अपूर्ण हैं। औसत सदस्यता के आँकड़ों में तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि छोटे संघों के संगठन की प्रवृत्ति सम्भवतः समाप्त हो रही है क्योंकि १९५७–५८ के बाद औसत सदस्यता के आँकड़ों में वृद्धि होने लगी है जबकि ये बढ़कर ८४७ हो गये और १९५८–५९ में ९०४। विवरण भेजने वाले संघों की संख्या में परिवर्तन से भी यह सम्भव है।

राज्य संघों की औसत सदस्यता इस काल में ६४५ से जो १९५१–५२ में थी घटकर १९५७–५८ में ५२९ रह गई। यह प्रवृत्ति पूर्वकाल में भी विद्यमान थी। एक नया आपदग्रस्त विकास यह भी रहा कि राष्ट्रीय श्रमिक संघों की औसत सदस्यता में निरन्तर ह्रास होता रहा जबकि १९५१–५२ के पूर्व काल में उन संघों की औसत सदस्यता बढ़ोत्तरी पर थी हाल के वर्षों में काफी कम हो गई। यदि हम इस काल में विवरण भेजने वाले संघों की बारम्बारता वितरण का तुलनात्मक अध्ययन करें तो हम उसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। १९५१–५२ में ३४% संघों की सदस्यता १०० से कम थी। यह प्रतिशत १९५७–५८ में बढ़कर ४२ ६८ और १९५८–५९ में ४२ ९२ हो गई। इन संघों की सदस्यता कुल सदस्यता का लगभग ८ प्रतिशत रही है।

तथापि यह अच्छी बात है कि एसे संघों की संख्या जिनकी सदस्यता ५००० से अधिक हो १९५१–५२ में ५ से बढ़कर १९५७–५८ में ७७ और १९५८–५९ में ८७ हो गई। इसी प्रकार जबकि १९५१–५२ में एक भी संघ नहीं था जिनकी सदस्यता २०००० से अधिक हो १९५७–५८ में एसे संघों की संख्या १६ और १९५८–५९ में २० थी।

हमारे देश में प्रचलित औद्योगिक अवस्था एसी नहीं रही जो इस प्रवृत्ति का प्रतिकार कर सके। हिन्द मजदूर सभा के ८वें वार्षिक अधिवेशन में महासचिव

की टीका करनी पड़ी थी कि 'हमने दस वर्ष पूर्व यह घोषणा की थी कि "नया राष्ट्रीय संगठन न केवल प्रतिद्वन्द्वी श्रमिक संघों को समाप्त कर देगा अपितु छोटे और बिखरे श्रमिक संघों को निरुत्साहित करेगा और औद्योगिक वृहद् संघों को प्रोत्साहित करेगा जो नये कार्यों और दायित्वों के अनुकूल आधारों पर अपना अधिकार कर पायेंगे।" हमें स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करना चाहिए कि इस दिशा में हमारे प्रयत्न विशेष प्रभावकारी नहीं रहे हैं ... इतना ही नहीं, हम छोटे और बिखरे संघों को निरुत्साहित करने में सफल नहीं हुए हैं बल्कि स्वयं उनके शिकार हो गये हैं।'[1] यह स्पष्ट रूप में अनुभव नहीं किया जा रहा कि छोटे आकार के संघ श्रमिक वर्ग के लिए अधिक हितकारी नहीं हो सकते। यह शोचनीय नहीं है कि कुछ सुसंगठित संघों को छोड़कर अन्य संघों के पास नियोजकों अथवा श्रमिक न्यायाधिकरणों के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए महत्त्वपूर्ण समाचार विवरण आदि तैयार करने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं है। ऐसे भी संघ हैं जो आवश्यक कोष के अभाव में अपने कार्यकर्ताओं के शिक्षा-चयन के लिए आवश्यक श्रमिक साहित्य भी नहीं जुटा पाते।[2]

हिन्द मजदूर सभा के ९वें वार्षिक अधिवेशन में बोलते हुए श्री अशोक मेहता ने कहा, 'क्या श्रमिक संघ आन्दोलन के आकार, शक्ति और प्रभाव में हम उसी प्रकार का विकास दिखा देते हैं जो उद्योगपतियों की बढ़ती हुई शक्ति का प्रतिकार कर सके? क्या समय और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप श्रमिक संघवाद की विधियों और प्रविधियों में सुधार और विकास हुआ है? श्रमिक संघ आन्दोलन में हम इस प्रकार की प्रगति नहीं पाते। परिणामस्वरूप एक गम्भीर असंतुलन अवस्थित हो गया है। सरकार पर पूंजीपतियों का प्रभाव बढ़ गया है, श्रमिक संघों का नहीं।'[3]

इस दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति के कारण क्या हैं? इस काल में श्रमिक अधिनियमों में जो ज्वार आया वही इस स्थिति के लिए प्रधान उत्तरदायी है। श्रम समस्याओं के विभिन्न पक्षों पर अधिक से अधिक प्रगामी अधिनियम पारित किये गये। लेकिन इसी के साथ साथ एक स्वार्थनिहित वर्ग का उदय हुआ जो श्रमिक वर्ग को गुमराह कर रहा है और जो श्रमिक वर्ग में वादशीलता के विकास के लिए उत्तरदायी है। कुछ संघों ने अपने कार्यालयों को सॉलिसिटर की संस्था में बदल दिया है।[4] श्रमिक

---

१ हिन्द मजदूर सभा, ७वाँ अधिवेशन, पृ० ४६

२ इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस, ९वाँ अधिवेशन, पृ० १११

३ हिन्द मजदूर सभा, ९वाँ अधिवेशन, पृ० ३२

४ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, ८वाँ अधिवेशन (संक्षिप्त रिपोर्ट) पृ० १६

सघा व उचित विराम म दन विधाना का बहुत बुरा प्रभाव पडा है। बृहद् आकार वाल सघा का सगठन जो प्रशासकारी उपाया की व्यवस्था कर सकत हैं और श्रमिका की कठिनाइया का निराकरण कर सकत हैं निम्नाकित किया गया है। जबतक श्रमिक सघा का अपन उद्देश्या की पूर्ति हतु बाहरी सस्थाओ पर निभरता कम करन के प्रयत्न नही किय जात तबतक यह प्रवृत्ति चलती रहगी।

हिन्द मजदूर सभा न भी इसी प्रकार क विचार व्यक्त किय हैं कुछ भी हो यह अनुभव किया जाना चाहिय कि न्यायाधिकरणा द्वारा मजदूरी निधारण के वतमान स्वरूप म और औद्योगिक विवादा पर प्रादशिक स्तर पर सम्पूण उद्योग के लिय विचार विमश हतु निवारण के सगठन क परम्परागत अभाव म यह आवश्यक होगा कि एक इकाई के आधार पर ही सामूहिक सौदाकारी का आश्रय लिया जाय। तबतक यह प्रवृत्ति रहगी श्रमिका क छोट छोट सगठन स्थापित होत रहग और बृहद् औद्योगिक सघा या सघाना के निणय की प्रक्रिया धीमी होगी।[1]

यह भी सुझाया जा सकता है कि श्रमिक सघवाद उन उन प्रदशा और क्षेत्रो मे भी फलता जा रहा है जहा इसका नाम भी नही था। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस तथा अन्य केन्द्रीय श्रमिक सघ कृषि और अन्य असगठित क्षेत्रा म सगठन करन के लिय प्रयत्नशील हैं। स्पष्टत प्रारम्भ म इन नये क्षेत्रा म छोट छोट श्रमिक सघ होगे। इस तथ्य के बावजूद कि दश म श्रमिक सघवाद व्यापक हो रहा है और इसकी परिधि म अधिक विस्तार से तथा काफी सख्या म श्रमिकगण आ रहे हैं सगठन की इस प्रक्रिया म न तो असगठिता को सहायता देना सम्भव हुआ और न सगठनात्मक आन्दोलन के लिय मुख्य उद्योगा को ही चुनने की स्थिति आ पाई।[2] यह कथन सही स्थिति पर प्रकाश डालता है।

राजनतिक आधार पर श्रमिक सघ आन्दोलन म प्रतिस्पर्धा के कारण अधिकाशत सघा का आकार छोटा है। सुसगठित उद्योगा म प्रत्यक केन्द्रीय श्रमिक सघ सगठन अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है। इससे उन्ह शक्ति प्रचार तथा राजनतिक महत्त्व मिलता है। इन सघा न असगठित उद्योगा का न अपना रक्षक या अधिमान कर लिया है क्योकि वहा कठिन और सद्भावी प्रणाली की आवश्यकता है तथा उचित दखभाल और भरण पोषण के बाद ही उनस फल निकल सकत हैं। यह भी समान रूप से सही है कि केवल केन्द्रीय श्रमिक सघा की प्रतिस्पर्धा क कारण ही सुसगठित उद्योगा का एक बहुत बडा भाग श्रमिक सघवाद क प्रभाव क्षेत्र म बाहर नही रह सका। कुछ सघो न विशेषकर जो राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस से सम्बन्धित है इस प्रतिस्पर्धा के कारण ही अपनी स्वतत्रता का प्रतिधारण किया। फिर भी

---

१ हिन्द मजदूर सभा ७वा अधिवेशन, पृ० १८

२ हिन्द मजदूर सभा ७वा अधिवेशन, पृ० १६

यह सुझाव नहीं दिया जा रहा है कि श्रमिक संघ आन्दोलन विभाजित ही रहे अन्यथा श्रमिक संघों की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं की जा सकती।

शक्तिशाली और दृढ़ श्रमिक संघों के अभाव में सम्पूर्ण आन्दोलन को ही हानि पहुँचती है। काफी मामलों में श्रमिक संघ तथा भी इन्टरनल समितियों की परम्परा का निर्वाह करते रहे हैं तथा प्रकार औद्योगिक विवाद छिड़ जाने पर या मांगों का प्रश्न उठाये जाने पर ये सक्रिय हो उठते हैं। अत्यधिक तनाव के ऐसे मौकों पर सदस्यों की संख्या उभर जाना है जो बाद अथवा क्षीण होना ही परिस्थितियों के साथ घट जाती है।[1] राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के प्रतिवेदन में भी कहा गया है कि "दुर्भाग्यवश अधिकांश मामलों में पुरानी प्रथाओं का ही पालन किया जा रहा है और नेतृत्व द्वारा विभिन्न स्तरों पर संघों को सुसंगठित और आत्मनिर्भर बनाने के लिये अधिक प्रयत्न नहीं किये जाते हैं।"[2]

जैसा कि विवरण पत्र २ में स्पष्ट है लगभग सभी राज्यों में श्रमिक संघ वाद ने पर्याप्त प्रगति की है। यद्यपि सभी राज्यों में प्रगति हुई है लेकिन सबसे अधिक प्रगति केरल राज्य में हुई जहाँ १९५१-५२ और १९५७-५८ के बीच सदस्य संख्या में साढ़े छ गुना वृद्धि हुई है। मसूर में लगभग ५ गुनी, आसाम में आठ गुनी तथा पश्चिमी बंगाल में सवा दो गुनी सदस्य संख्या हुई है। लगभग सभी राज्यों में सदस्यता की तुलना में श्रमिक संघों की संख्या काफी तेजी से बढ़ी है और फलत औसत सदस्यता कम होती गई है। केरल राज्य में तो कि संघों की संख्या लगभग सवा आठ गुनी बढ़ी सदस्यता में केवल साढ़े छ गुनी वृद्धि हुई है। मसूर व आसाम में क्रमश साढ़े छ गुना और पाँच गुना है।

पश्चिमी बंगाल बम्बई बिहार मद्रास आसाम और उत्तरप्रदेश प्रमुख राज्य हैं जिनकी सदस्य संख्या २८००६०६ थी जबकि १९५८-५९ में विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों की कुल सदस्यता ३६८,१८८ थी जबकि पश्चिमी बंगाल के विवरण भेजने वाले श्रमिक संघों की सदस्यता ७२९०७३ थी, राजस्थान में सदस्यता केवल २८२८१ ही था (१९५७-५८), मध्यप्रदेश और पूर्वी पंजाब की सदस्य संख्या लगभग ५०००० थी।

ये व्यापक क्षेत्रीय भिन्नतायें इन क्षेत्रों में आर्थिक विकास और औद्योगीकरण की भिन्नताओं को स्पष्ट करती हैं। पंचवर्षीय योजनाओं ने इन भिन्नताओं को सुस्पष्ट किया है। इन क्षेत्रों में श्रमिक संघ परम्पराओं के लिये उचित वातावरण का अभाव तथा कम संख्या में श्रमिक जनसंख्या की कमी के अन्य कारण हैं। यह भी सही है कि श्रमिक संघ नेताओं ने ऐसे क्षेत्रों की ओर ध्यान नहीं दिया क्योंकि पिछड़ी हुई

---

[1] हिन्द मजदूर सभा, ७वां अधिवेशन, पृ० २८

[2] इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ६वीं सत्र, पृ० १५६

आर्थिक व्यवस्था और श्रमिक जनसंख्या के बिखरे होने के कारण संगठन कार्य कठिन होता है।

इसी प्रकार पंजीकृत श्रमिक संघों विवरण भेजने वाले संघों तथा उनकी सदस्य संख्या में प्रायः सभी उद्योगों में बहुमुखी प्रगति हुई है। यह वृद्धि मुख्य रूप से विद्युत गैस जल तथा सफाई भवन निर्माण धातुरहित खनिज पदार्थ खाद्य पेय तम्बाकू तथा रोपण (Plantation) वर्गों के अन्तर्गत हुई है। वस्त्र उद्योग जूट यातायात संग्रह तथा संचार वर्गों के अन्तर्गत पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्यता में कमी हुई है। इन दोनों ही वर्गों में यद्यपि विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या में वृद्धि हुई है फिर भी सदस्यता में ह्रास हुआ है। संघों की औसत सदस्यता रेलवे तथा डाक और तार श्रमिकों को छोड़कर जिनके कुछ बड़े संघ हैं निरन्तर कम रही है। रोपण उद्योग में श्रमिक संघों की औसत सदस्यता में १९५८–५९ के बीच कुछ वृद्धि हुई क्योंकि १९५७–५८ में औसत सदस्यता २०५४ थी जो १९५८–५९ में ६६७० हो गई। इसका कारण यह था कि राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के आसाम में सभी श्रमिक संघों का संविलयन आसाम चाय मजदूर संघ में हो गया था और अनुगामी वर्ष में पश्चिमी बंगाल में ऐसा हुआ।

श्रमिक संघों में महिला सदस्यों की संख्या भी बढ़ी जो १९५०–५१ में १७,५९,९७१ थी और १९५८–५९ में ३,९६,४७,१४८ हो गई। उनकी सापेक्षिक शक्ति इस बीच ६.१ प्रतिशत से ११ प्रतिशत हो गई।

इस काल में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ संगठनों से भी अत्यधिक सहयोग स्थापित किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र व्यवसाय संघ प्रसंधान (ICFTU) तथा अन्य विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संघ संस्थाएँ भारतीय आन्दोलन के साथ निकट सम्बन्ध बनाये रहीं तथा उन्होंने श्रम और मुद्रा दोनों में सहायता प्रदान की। भारतीय श्रमिक संघ के प्रतिनिधियों ने सद्भावना तथा अध्ययन के लिए विदेशों की यात्राएं की।

भारत सरकार द्वारा केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठनों की सदस्यता के सत्यापन की पद्धति लागू करना इस काल का एक उल्लेखनीय विकास रहा। सत्यापित आंकड़ों और बताये गये आंकड़ों में काफी अन्तर रहता है। इस अन्तर के कई कारण हो सकते हैं और सत्यापन की भी आलोचना की जा सकती है। किन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता है ऐसे उपायों की आवश्यकता है तथा उनसे लाभ होगा। इनके द्वारा संघों को विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाध्य किया जा सकेगा। सत्यापन कार्य वस्तुतः बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है क्योंकि इसके द्वारा श्रमिक संघों और उनके केन्द्रीय संगठनों को यह देखने का अवसर मिलता है कि संघ निश्चित न्यूनतम स्तर का पालन कर रहे हैं। इससे संघों के नेता तथा श्रमिक वर्ग सचेत रहेंगे तथा श्रमिक संघ कर्मचारियों को दिन प्रतिदिन के श्रमिक संघ के कार्यों को सफलतापूर्वक करने का प्रशिक्षण मिलता रहेगा।

श्रमिक संघों की संख्या और उनकी सदस्यता में वृद्धि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि का एक कारण है। विभिन्न उद्योगों में श्रमिकों की संख्या में वृद्धि का अनुमान निम्नलिखित सारणी से लगाया जा सकता है। १९५१ की तुलना में, बागान उद्योग के अतिरिक्त अन्य श्रमिकों की भांति बढ़ती रही है अन्य सभी उद्योग क्षेत्रों में रोजगार में वृद्धि हुई है। उल्लेखनीय वृद्धि फैक्ट्री औद्योगिक वर्ग, खाद्य भण्डार यातायात केन्द्र तथा खान व सार्वजनिक निर्माण विभाग में प्रकट होती है।

सारणी २८

चुने हुये उद्योगो मे व्यवसाय सघ सदस्यता

उद्योग	१९५१–५२			१९५७–५८			१९५८–५९		
	सघ	सदस्यता	माध्य	सघ	सदस्यता	माध्य	सघ	सदस्यता	माध्य
कृषि तथा तत्सम्बन्धित	६०	११८,५०८	१९७८	२०५	२,९० ६८३	१,४१८	१२१	८,४७ ४४०	३,६६८
रोपण	३८	११३,२३४	३३३०	१२९	२ ६८,९०४	२,०५४	५९	३,९१,१६६	६,६३०
खान तथा उत्खनन	८१	१३२,६९१	१६३८	१८१	२,३०,३९२	१ ६३४	१२३	२,९९,८७५	२ १९४
कोयला	८७	९० ०४६	१८८०	७०	१,६३,९०८	२,३१४	६२	१ ९३,९२८	३,१२८
उत्पादन	९२४	७ १२ ६४३	७७१	२,४०३	१२ ५७,८७१	५२४	२,१०१	२,०२ ८३७	५७३
खाद्य पेय	२८१	१,२२ ९७९	८९०	६०८	२,८३ ६२७	८६६	५४२	२,३८,५१७	८३८
वस्त्र उद्योग	२१८	३ १७,६३१	१४५७	४८५	८,१४ ०८६	१,०६०	३९६	८ २०,३३३	१ ३१८
कपडे जूते आदि	१७	१५,७७५	९२८	३३	१२,८८१	३९०	८०	१८ ३७०	३८४
कागज	१३	७ १४४	५५०	३६	१६,०४०	४४६	३१	१५,३१९	४९४
मुद्रण प्रकाशन	७५	२९ ७९२	३१७	१९४	४३,२१७	२२३	१७८	४२,१३७	२३७
कपडा तथा चमडे की वस्तुए	१३	४४००	३३८	३१	७ ५८४	२४५	३१	१५ ०४८	४८५
रबर	८	४ ७७६	५९७	३५	१२ ०२७	३४४	२२	४ १४६	१८८
रसायन	७२	३० ५३५	४२४	१६३	५१,७१८	३१७	१५९	४१,९५५	२६४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
अधातु खनिज	४७	२३ ४६४	४९९	१६३	६६ ५९०	४०९	१२०	४, ४५७	२५७
मूल धातु उद्योग	४२	७६ १७१	१८१४	१०९	८५ ८३४	७८७	१२४	६८ ९९४	७७४
धातु की वस्तुएँ	३४	१० २२४	२०१	११३	३९ ०३०	२४५	९२	२३ २८६	२५३
मशीनरी	५०	१४ ०३०	२८१	९७	२७,५१०	२८४	११५	५९ ९२०	५२१
यातायात उपकरण	५	१ २३४	२६७	१९	९ ८४६	५१८	१०	१६ ४०१	८६२
निर्माण	३८	१४ ४५१	३८०	९५	६४ ५०७	६७९	६६	५० ०४०	७५८
विद्युत गैस, जल आदि	१६१	३१ १२४	१९३	३८३	१ ५ ८७८	२७६	२२३	१ ०६ २२१	३२९
वाणिज्य	३६९	९१ ६५१	२४८	५६८	१ २५ ०९१	२२०	६०२	१ ४१ ११४	२८४
यातायात संग्रह संचार	२७१	८,९२ ४२१	३२९२	५४८	५ ५४ ४०४	१०१२	४५४	५ ८३ २५२	१ २८५
रेलें	७०	४,०६ ९४६	५८१४	५१	२ ६८ १२८	५ १७९	५६	३ २२ १७१	५ ९४९
डाक तथा तार	९	६४,२४४	७१६०	९	४० २७५	४४७५	७	३४ २३३	४८९०
सेवाएँ	१९६	४७,५७४	२४३	४१४	१ १९ ८९४	२९०	२८७	१ ०६ १४७	३१९

श्रमिक सघो की सख्या म वृद्धि श्रमिको की इस अनुभूति क कारण भी हुई कि व और उनके सगठन अपन जीवन और काय की अवस्थाओ म सुधार के लिय बाहरी सस्थाओ पर निभर नही रह सकत मिश्रित आर्थिक व्यवस्था के अन्तगत याजना के सदभ म [illegible]

फक्ट्रियाँ
खान
रोपण
रेलवे
मोटर यातायात (र
ब दरगाह अधिकारी
डाक-तार
सावजनिक निमाण
नगरपालिकाएँ
के द्रीय सरकारी क
दुकान तथा वाणिज

गई थी । १९५१ मे नियोजित आर्थिक विकास के युग का श्रीगणेश हुआ । योजना आयोग की माच १९५० मे स्थापना की गई । इसका काय देश के साधनो का सतुलित और अत्यधिक प्रभावकारी ढग से उपयोग के लिय योजना बनाना था ।

१ अशोक मेहता हि द मजदूर सभा का ६वा अधिवेशन, पृ० ३२ ।

२ वही ।

३ हि द मजदूर सभा, ७वा अधिवेशन, पृ० १७ ।

आयोग ने प्रकट किया "वर्तमान स्थिति में भारत में योजना का मुख्य उद्देश्य विकास की ऐसी प्रक्रिया का सूत्रपात करना है जिससे जीवन-स्तर ऊँचा हो और लोगों को अधिक समृद्धशाली और व्यापक जीवन के लिए नए अवसर मिलें।"[1] और दूसरे स्तर में तब तक नहीं सोचा जा सकता जब तक हमारे सामाजिक आर्थिक ढाँचे में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन न हो। इसलिए समस्या यह नहीं है कि विद्यमान सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में आर्थिक क्रियाओं को केवल नया मोड़ दिया जाय, बल्कि उस ढाँचे को ही नए साँचे में ढालना है ताकि उन मूलभूत उत्कण्ठाओं को प्रगतिशील ढंग से इसमें समायोजित किया जा सके जो काम करने के अधिकार, उचित आय के अधिकार, शिक्षा के अधिकार तथा वृद्धावस्था, बीमारी और अन्य अशक्तताओं के विरुद्ध सुरक्षा के उपायों जैसी माँगों में अपने को व्यक्त करती हैं।"[2] बाद में दिसम्बर १९५४ में संसद ने सामाजिक और आर्थिक नीति और योजना के उद्देश्य के रूप में "समाज के समाजवादी स्वरूप की स्थापना को और जिसका निर्माण, प्रजातान्त्रिक साधनों द्वारा तीव्रगति से विस्तारित और प्राविधिक ढंग से प्रगतिशील ऐसी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था जो न्याय पर आधारित हो और जिसमें प्रत्येक नागरिक को समान अवसर मिले, निर्माण करना था। अतएव दूसरी योजना में इन उद्देश्यों का कथन किया —

'इन मूल्यों और मूलभूत उद्देश्यों का सार ही में समाज के समाजवादी स्वरूप' वाक्यांश के अन्तर्गत निहित किया गया है। अनिवार्यतः इसका अर्थ है कि प्रगति की दिशाओं के निर्धारण का मूल आधार व्यक्तिगत लाभ न होकर सामाजिक होना चाहिए तथा विकास का स्वरूप और सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों का ढाँचा इस प्रकार से नियोजित किया जाना चाहिए कि जिसका परिणाम न केवल राष्ट्रीय आय और सेवा नियोजन में प्रशंसनीय वृद्धि हो बल्कि आय और धन में भी अधिकाधिक समानता हो। आर्थिक विकास के लाभ अधिकाधिक सापेक्ष रूप से समाज के कम सुविधा प्राप्त वर्गों को मिलने चाहिएँ और प्रगतिशील ढंग से आय, धन और आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण में ह्रास होना चाहिए।

समाज के समाजवादी स्वरूप की ध्वनि यह है कि स्पष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जाय। जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना सभी के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करना असुविधा प्राप्त वर्ग के लिए स्त्रोतों का विकास करना तथा समुदाय के सभी वर्गों के बीच साझेदारी की भावना का पैदा करना।

इस दो पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी कर चुके हैं और तीसरी योजना प्रारम्भ की जा चुकी है। यह आशा किया जाता है कि इन पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक और

---

१ प्रथम योजना, पृ० ७ ।

२ ,, ,, , पृ० ८ ।

सामाजिक जीवन की नींव को मजबूत किया है तथा औद्योगिक और आर्थिक विकास और वैज्ञानिक तथा प्राविधिक प्रगतियों को उद्दीपित किया है।'[1] उपयुक्त विवरण की पुष्टि में तीसरी पंचवर्षीय योजना ने योजना के दस वर्षों का मूल्यांकन दिया है और जिसमें हमें पता चलता है कि कृषि उत्पादन का सूचकांक १९४९–५० को आधार मानकर, बढ़कर १३५, खाद्य वस्तुओं का १३२ और अन्य उपज का १४२ हो गया है। औद्योगिक उत्पादन का सामान्य सूचकांक जो १९५०–५१ में १०० था १९६०–६१ में बढ़कर १९४ हो गया है। इस बीच सूती वस्त्र उत्पादन का सूचकांक बढ़कर १३३, लोहा तथा इस्पात का २३८ मशीनरी का ५०३ और रसायन का २८८ हो गया। इस अवधि में राष्ट्रीय आय ४२ प्रतिशत बढ़ी जबकि प्रति व्यक्ति आय केवल १६ प्रतिशत ही बढ़ी। योजना आयोग ने इसका कारण योजना में निहित कोई दोष न होकर जनसंख्या में वृद्धि बताया है। अतः आयोग ने संतोषपूर्वक यह विचार प्रकट किया है कि 'पूरी दशाब्दि को लेते हुए तस्वीर सर्वांगीण उन्नति की बनती है,'[2] देश ने राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक शाखा में काफी उन्नति की है',[3] और प्रथम तथा दूसरी योजना से उपलब्ध प्रगति के परिणामस्वरूप तीव्रगति से आर्थिक विकास की नींव डाल दी गई है।[4]

फिर भी तथ्यों के आधार पर ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। योजनाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जायगा कि उनसे श्रमिकों को समान्यतः कोई लाभ नहीं पहुँचा और वे भविष्य को अधिक आशा और संतोष के साथ नहीं देख सकते।

श्रमिकों की दृष्टि में सबसे बड़ी आवश्यकता उनके तथा उनके बच्चों के लिये रोजगार की सुरक्षा की भावना है। योजनाबद्ध विकास के द्वारा बढ़ते हुये रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिये। किन्तु यह एक दुखद तथ्य है कि रोजगार के अवसर बहुत द्रुतगति से नहीं बढ़े। प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद ५० लाख व्यक्ति बेरोजगार थे जिनकी संख्या द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बढ़कर ९० लाख हो गई। तीसरी योजना के दौरान १४० लाख लोगों के लिये रोजगार के अवसरों का लक्ष्य रखा गया जबकि रोजगार के लिये उपलब्ध लोगों की संख्या १७० लाख होगी। देश की आवश्यकताओं की तुलना में तीसरी योजना में रखे गये लक्ष्य किसी भी तरह अधिक नहीं है और वस्तुतः कहीं-कहीं तो वे निश्चित रूप से अपर्याप्त हैं।[5] लेकिन

---

१ तीसरी पंचवर्षीय योजना की प्रस्तावना, पृ० १३।

२ योजना, पृ० ३४।

३ ,, पृ० ४६।

४ रिपोर्ट, पृ० ४८।

५ योजना, पृ० ७५।

यहाँ भी यह व्यवस्था है कि पूर्ण प्रयास से आरम्भ हुई योजनाएँ चतुर्थ योजना में पूर्ण हों।[1] इससे अधिक सम्भावना है कि यदि योजना की पूर्ति में कठिनाई पैदा हो जाय तो रोजगार की सम्भावना में और कमी हो जाय। अतः, वर्तमान की अपेक्षा भारी कठिनाइयों के बावजूद हम भविष्य की कल्पना को पूरा नहीं प्राप्त कर सकने जहाँ उन्हें बेरोजगारी की समस्या का जल्दी और सरल हल मिल सके।

सामान्य श्रमिक के लिए निरन्तर भविष्य की सुरक्षा का प्रश्न नहीं होता। इसके अतिरिक्त बेकार होने के बाद बेरोजगारी का भय निरन्तर उसके ऊपर रहता है। औद्योगिक क्षेत्र में अभिनवीकरण भी बढ़ता है। अभिनवीकरण का अर्थ है श्रमिकों की संख्या में कमी। बेरोजगारी के इस भय ने श्रमिकों को इस नीति के विरुद्ध सदैव संघर्ष के लिए प्रेरित किया। कानपुर के वस्त्र उद्योग श्रमिक सभा में अभिनवीकरण के भय से इतना अधिक था कि इस संघ ने नियमित रूप से १०० दिन तक हड़ताल जारी रखी। अभी हाल ही में बम्बई में मिल टाटा के ताले और अधिक का खतरा था, ५००० श्रमिकों को छँटनी का सामना करना पड़ा। इस स्थिति का सामना करने के लिए प्रयत्न किये गये और यद्यपि प्रबन्ध को अन्ततः इतनी बड़ी संख्या में छँटनी न करने के लिए बाध्य किया गया फिर भी लगभग २००० अस्थायी श्रमिकों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा और बिना किसी रोजगार के रहना पड़ा।"[2] कुछ वर्ष पहले कानपुर के वस्त्र उद्योग श्रमिकों ने अभिनवीकरण के विरुद्ध ८० दिन की हड़ताल की और सत्याग्रह में लगभग ५,००० श्रमिक जिनमें ५०० महिलाएँ सम्मिलित थीं, जेल गये। ऐसे उदाहरण अनेक हैं।

अभिनवीकरण की एक योजना जाति, श्रम, प्रबन्ध और आर्थिक व्यवस्था के हितों को ध्यान में रखते हुए बनानी चाहिए और इसका क्रियान्वयन सम्मति के आधार पर किया जाना चाहिए। प्रबन्ध के क्षेत्र के अभिनवीकरण की आवश्यकता पर भी बल देना चाहिए। इसका यह अनुभव करना चाहिए कि अभिनवीकरण का साधारणतया यह अर्थ नहीं है कि अधिक कर्मचारियों का कार्य भार बढ़ा दिया जाय, थोड़ी संख्या में काम पर लगे व्यक्तियों की छँटनी कर दी जाय और कर्मचारियों के वेतन में कटौती कर दी जाय। प्रबन्धकों को प्रगति के लिए शान्ति, श्रम और श्रम की समस्याओं के प्रति अपने दृष्टिकोणों को बदलना ही पड़ेगा। वस्त्र उद्योग के अध्ययन दल (Study group) के समक्ष राष्ट्रीय मजदूर यूनियन कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने इस बात पर जोर दिया कि प्रबन्ध अयोग्य होता जा रहा है। दल को यह विश्वास दिलाया गया कि वस्त्र-उद्योग के अन्य उद्योग की प्रविधियों का कम जानकारी रखने अनुभवहीन लोग तथा मिलों को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने

१ योजना, पृ० ७५

२ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, रिपोर्ट १९५९-६०, पृ० ८५।

के आवश्यक ज्ञान के अभाव मे अप्रभावकारी हो गये है।'[1]

अन्तराष्ट्रीय स्वतन्त्र व्यवसाय संघ प्रसंघान ने एशिया के क्षेत्रीय सम्मेलन मे, जो नई दिल्ली मे मार्च अप्रैल १६५७ मे आयोजित किया गया था इस बात पर बल दिया कि इन क्षेत्रो मे अभिनवीकरण की नीति ऐसी होनी चाहिये जिसमे उपलब्ध मानव शक्ति का उपयोग और पूर्ण सेवा नियोजन की व्यवस्था हो सके। सम्मेलन के मतानुसार आंशिक अभिनवीकरण के प्रस्तावो को ठुकरा देना चाहिये। श्रमिको के काम की अवस्थाओ मे सुधार तथा बेरोजगारी मे सुरक्षा पर बल देना चाहिये। अभिनवीकरण के परिणामो से सम्बद्ध तथ्य और सांख्यिकीय सूचना श्रमिक संघो को एकत्र करनी चाहिये।

बहुत से उद्योगो मे समय-समय पर कारखाने बन्द हुए और मजदूरो को जल्दी छुट्टी दी गई। सूती वस्त्र उद्योग मे मिलो के बन्द होने की घटनाएँ प्राय ही हुई हैं। हजारो श्रमिको के भाग्य को प्रभावित करते हुये हाल ही मे बहुत-सी मिलें पूर्ण या आंशिक रूप से बन्द रही। इसी तरह की समस्या का सामना जूट श्रमिको को भी करना पडा। जूट उद्योग को उत्पादन और काम के घंटे कम करने पड़े थे। सबसे बाद मे चीनी उद्योग को भी संक्रान्ति का सामना करना पडा। भारत सरकार ने पहले ही १० प्रतिशत से उत्पादन सीमित कर देने की अपनी नीति घोषित कर दी है। अधिकाधिक उत्पादन की सभी छूटें वापस ले ली गई हैं। इस उद्योग मे भी श्रमिक छँटनी से भयभीत हैं।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत श्रमिक वर्ग को रोजगार की सुरक्षा का कोई आश्वासन नही दिया गया है। इससे उत्साह भंग होता है। आयोग ने केवल यह आशा व्यक्त की है कि छँटनी किये गये श्रमिको जिन्हे असहाय अवस्था मे छोड दिया जाता है को सहायता पहुँचाने के लिये आवश्यक कदम उठाने ही पडेगे[2] तथा 'शीघ्र ही इस कार्य को आरम्भ करना चाहिये यह निश्चय किया गया है कि सीमित क्षेत्र मे एक योजना बनाई जावे जो वर्तमान परिस्थितियो मे यथासम्भव सहायता प्रदान कर सके।'[3]

मजदूरी का प्रश्न भी निरन्तर अव्यवस्थित रहा है। निर्वाह मजदूरी का आदर्श पूर्ववत् ही धूमिल है। श्रमिको की वास्तविक मजदूरी का स्तर पूर्व युद्ध के स्तर जिस काल को हम कुण्ठित समझते है पर ही है। निम्नलिखित सारणी से वास्तविक मजदूरी की गति का अनुमान लगाया जा सकेगा। किन्तु इस बात का ध्यान मे रखना चाहिये कि जनता के एक उत्तरदायी वर्ग का यह मत है कि निर्वाह मूल्य सूचनांक या

१ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, १२वें सत्र की रिपोर्ट, पृ० २६१।
२ योजना, पृ० २६१।
३ वही।

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक परिवार के निर्वाह का सही और पूरी तरह से प्रतिबिम्बित नहीं करते। कीमतों और मूल्यों का संकलन न्यायपूर्ण ही नहीं है वरन् यह आरोप भी लगाया जाता है कि यह श्रमिकों के हितों के विरुद्ध है। आधार वर्ष में जल्दी जल्दी परिवर्तन इस भय की पुष्टि करता है। आधार वर्ष में प्रायः जो परिवर्तन किये जाते हैं उससे तुलना में बाधा पड़ती है और अज्ञान से नियोजकों को सहायता मिलती है।

सारणी ३०

वास्तविक मजदूरी की गति (आधार १९५१)

	निर्वाह मूल्य सूचकांक	मजदूरी सूचकांक	वास्तविक मजदूरी सूचकांक (आधार–१९५१)	वास्तविक मजदूरी सूचकांक (आधार–१९३९)
१९५२	१०५	१०७.१	१०२	१०१.८
१९५३	१०४	११५.०	११०.६	९९.५४
१९५४	१०६	११४.९	१०८.४	९७.५६
१९५५	९९	११४.९	११६.०	१०४.४
१९५६	९६	१२१.३	१२६.४	११३.७६
१९५७	१०७	१२५.०	११६.८	१०५.१२
१९५८	११२	१२७.६	११३.९	१०२.५१
१९५९	११८	१३२.६	११२.४	१०१.१६
१९६०	१२३	१३५	१०९.७	९८.७३
१९६१	१२४	१३७	११०.५	९९.४५

(स्रोत तृतीय योजना)

सारिणी ३१

रोजगार में लगे प्रतिव्यक्ति द्वारा मूल्य में बढ़ोत्तरी तथा कुल लाभ सूचकांक (आधार–१९५०)

	१९५१	१९५२	१९५३	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७	१९५८
रोजगार में लगे प्रति व्यक्ति द्वारा मूल्य में बढ़ोत्तरी	२१२७	१९११	२०५३	२१७५	२३५२	२४८६	२४९९	२६९०

१	२	३	४	५	५	६	७	८
ग्रवमूल्यन का छोड कर कुल लाभ का सूचकाक	१३१ २	६४ १	१०५ ३	१२३ ५	१५० ३	१६४ १	१४० ६	१३० ५

१ योजना पृ० २६१। (स्रोत उत्पादन उद्योगो की सगठाना)

२ वही। "

सारणी ३२

चुने हुए उद्योगों में उत्पादन का सूचकांक (आधार [illegible])

	सामान्य उद्योग		सूती वस्त्र	जूट	खान तथा खानों की वस्तुएं	रसायन तथा रसायन की वस्तुएं	सामान्य तथा विद्युतीय इंजीनियरिंग		मूल धातु उद्योग	योग
	कोयला	चीनी								
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१९४२	१[illegible]	११[illegible]	१[illegible]१[illegible]	६१[illegible]	११[illegible]६	१[illegible]५	११८२	१[illegible]१५	१[illegible]११	१२५१
१९४३	१[illegible]८	१११	११८३	८[illegible]५	११२[illegible]	११[illegible]	१[illegible]	१२५[illegible]	१[illegible]८	१[illegible]८८
१९४४	११[illegible]	११०१	१[illegible]	६८१	११६२	१[illegible]६	१[illegible]५२	१[illegible]७७	१२४१	१[illegible]२[illegible]
१९४५	११२[illegible]	१२[illegible]	१[illegible]	८८७	१[illegible]	१२[illegible]२	११६[illegible]	१७६[illegible]	१११५	१५८६
१९४६	११४६	१३३३	१४२[illegible]	८७५	१४[illegible]८	१२७७	१[illegible]८१	१७२[illegible]	१[illegible]५७	१८२३
१९४७	१२०५	१[illegible]५८	१[illegible]१७	६३८	१[illegible]१८	१२६५	१५३६	१७७५	१०१[illegible]	१८२२
१९४८	१२१७	१३१५	१५३५	६[illegible]५	१५[illegible]६	१[illegible]८०	१६०[illegible]	१८[illegible]	६२[illegible]	१८३[illegible]
१९४९	१२१३	१३[illegible]८	१५६३	६४३	१६५०	१५४[illegible]	१५[illegible]	१७६४	१[illegible]६१	२११[illegible]
१९५०	१३३७	१[illegible]७०	१७[illegible]२	१[illegible]	१६५२	१[illegible]२	१[illegible]५६	१७६[illegible]	१[illegible]६[illegible]	२४१६

नियोजकों के प्रकाशित नफे और लाभ हानि के चिट्ठा से सही स्थिति मालूम नहीं होती है। लाभ का कम दिखाने के लिए अभिलेखों में अत्यधिक हेर फेर किया जाता है। अधिकांश व्यापारिक संस्थानों में दो या कभी-कभी उससे भी अधिक अभिलेखा पुस्तकें बनाई जाती हैं। क्योंकि हिसाब किताब प्राय इधर उधर करके तयार किये जाते हैं इसीलिए राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने लेखा परीक्षकों की सेवाओं के राष्ट्रीयकरण की मांग की। इन सभी सीमाओं के कारण यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पिछले दस वर्षों में लाभ और उत्पादिता बढ़ते रहे हैं। आय में बढ़ती हुई असमानताएँ भी इस बात की पुष्टि करती हैं।

वास्तविक मजदूरी की गति के सूचकांक का बढ़ना हुए लाभों के परिप्रेक्ष में समझना चाहिये। लाभों का सूचकांक ऊँचे से ऊँचा उठता गया है। न केवल लाभों का स्तर अत्यधिक बढ़ा है बल्कि उत्पादिता भी पर्याप्त बढ़ी है। सारणी ३२ में उत्पादिता की गति स्पष्ट की गई है।

श्रमिकों की गरीबी सम्भवत अधिक गहरी हो उठी है। मजदूरी में से श्रमिकों को जो सामाजिक सुरक्षा के लिये अंशदान देना पड़ता है उसकी व्यवस्था निर्वाह मूल्य सूचकांक या न्यूनतम मजदूरी की गणना में नहीं की जाती। पारिवारिक बजट में ब्याज का भुगतान भी अब एक महत्त्वपूर्ण मद हो गया है क्योंकि वास्तविक मजदूरी का स्तर और भी निम्न हो गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी मजदूरी की कोई ठोस नीति नहीं है। प्रथम पचवर्षीय योजना में करीब करीब मजदूरी बंधन की नीति का समर्थन किया गया है।[1] "इस अवस्था में मजदूरी में वृद्धि आर्थिक स्थिरता को और भी जोखिमपूर्ण बना देगी[2] फिर भी, विषमताओं को दूर करने के लिये जब मजदूरी की विद्यमान दरें बहुत ही निम्न है तथा मजदूरी के युद्ध पूर्व स्तर को लाने के लिये प्रतिष्ठानों के आधुनिकीकरण और अभिनवीकरण के फलस्वरूप उत्पादिता मे वृद्धि के द्वारा निर्वाह मजदूरी की ओर पहले कदम के रूप में मजदूरी बढ़ाई जा सकती है। प्रथम योजना में ढाढ़स देने वाले कुछ वक्तव्य है यथा— आय की असमानताओं में अधिक से अधिक सीमा तक कमी करने के लिये और सामाजिक नीति के व्यापक उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में मजदूरी में सभी समायोजन किये जाने चाहिये। श्रमिक को राष्ट्रीय आय में अपना भाग अवश्य मिलना चाहिये और श्रमिकों के विभिन्न वर्गों की मजदूरी तथा निर्वाह मजदूरी के स्तर के बीच जो फासला है उसे समाप्त करने के अनुपात से श्रमिकों की मांगों पर उदारता से विचार किया जाना चाहिये।[3]

---

१ प्रथम योजना पृ० ५८३।
२ ,, ,, पृ० ५८३।
३ ,, ,, पृ० ५८४।

द्वितीय योजना ने 'एक ऐसी मजदूरी नीति का जिसका उद्देश्य वास्तविक मजदूरी की बढ़ती हुई सरचना है' का प्रतिपादन किया है। यह नीति "उत्पादिता में वृद्धि के द्वारा ही मजदूरी में उन्नति हो सकती है" वक्तव्य के माध्यम से सीमित की गई है। मजदूरी की नीति को कार्यान्वित करने के लिये योजना ने त्रिदलीय संस्थाओं की नियुक्ति का समर्थन किया है।

निर्वाह मजदूरी की ओर उत्तरोत्तर अग्रसित होते हुये उचित मजदूरी का प्रारूप सर्वप्रथम १९४७ में औद्योगिक शान्ति-सभा के अवसर पर श्रमिक वर्गों के सम्मुख रखा गया। इसके अनुसार उचित मजदूरी समिति की नियुक्ति की गई थी। इस समिति के सुझावों को क्रियान्वित करने तथा श्रमिकों को उचित मजदूरी देने के लिये एक तरह से सरकार और नियोजक वचनबद्ध हैं। कम से कम न्यून आवश्यकताओं पर आधारित मजदूरी की प्रत्याभूति होनी ही चाहिये। बहुत से त्रिदलीय मडलों की स्थापना की गई और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पारित तथा कार्यान्वित किया गया। किन्तु तृतीय योजना में स्वीकार किया गया है कि ये "उपाय बहुत से मामलों में अप्रभावकारी सिद्ध हुए हैं।

द्वितीय योजना के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के दृष्टिकोण से भारतीय श्रमिक सम्मेलन ने अपनी १५वीं सभा में आवश्यकताओं पर आधारित मजदूरी की अवधारणा को मूलरूप देने का प्रयत्न किया। इसमें तीन उपभोक्ता इकाई डा० अक्रॉइड (Dr Akyord) द्वारा प्रस्तावित प्रमाण के अनुसार पर्याप्त पोषाहार, प्रतिवर्ष ७८ गज कपड़ा तथा औद्योगिक आवास सहाय्य योजना द्वारा सुझाई गई न्यूनतम आवास व्यवस्था के आधार पर न्यूनतम मजदूरी १२५ रुपया प्रतिमास न्यूनतम मजदूरी परिकलित की। भारतीय श्रमिक सम्मेलन एक त्रिदलीय संस्था है और भारत सरकार इसके विचार विमर्शों में भागीदार है। यह स्वाभाविक ही था कि श्रमिक-सम्मेलन द्वारा एक मत से पारित किये गये सुझावों को सरकार स्वीकार करती और कार्यान्वित करने का प्रयत्न करती। किन्तु द्वितीय वेतन आयोग को वित्त मन्त्रालय ने जो मेमो दिया वह प्रशसनीय है, यथा—

भारत सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि श्रमिक सम्मेलन के सुझाव सरकार के निर्णय नहीं माने चाहिये और न ही उन्हें औपचारिक रूप से केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुसमर्थन किया गया है। जो कुछ वे हैं उन्हें उसी रूप में मानना चाहिये अर्थात्, भारतीय श्रमिक-सम्मेलन के सुझाव जो एक त्रिदलीय संस्था है। किसी भी समय सरकार ने यह स्वीकार नहीं किया कि वह इन सुझावों को कार्यान्वित करने के लिये बाध्य है।' द्वितीय वेतन आयोग को भी अच्छी सलाह दी गई कि वह यही विचारधारा अपनाये। फलतः उन्होंने न्यूनतम मजदूरी की अपनी परिकलन में पोषकतत्वों के विशेषज्ञों की उच्च शक्ति समिति जिसके अध्यक्ष विश्वविख्यात डॉ० अक्रॉइड थे के एकमत से पारित किये गये सुझावों के विपरीत २३०० पोषकतत्वों

को आधार मानकर की और जने पर नमक छिडकने के लिये तृतीय पचवर्षीय याजना म कहा गया है कि "यह निश्चय किया गया है कि अधिकाधिक वज्ञानिक आँकडा के परिप्रेक्ष्य म श्रमिक वग के परिवारा के पोषकतत्वो की आवश्यकता पर पुर्नविचार *किया जा सकता है।' य वस्तुत ही खतरनाक* लक्षण है और कोई भी यह अनुभव कर सकता है कि नीतियो के अग्र स्थान पर होते हुए भी श्रमिक वग क निम्नस्तरा का और भी गिराने की यह एक असगत युक्ति है।

सरकार न ऐसा कोई आश्वासन नही दिया है कि कीमतो म स्थिरता लायी जायगी और यदि सरकार कीमत स्थिर रखन म असफल रही तो बढते हुए निर्वाह मूल्य को निष्प्रभावित करने की व्यवस्था की जायगी। मजदूरी कीमत कुण्डल (Wage pwu sprıl) का तक शरारतपूण है और जिसे श्रमिको का उनके समुचित अधिकारो तथा अधिक उत्पादन, उत्पादिता और लाभो के सदभ म उचित हिस्सा *बँटान म वचित करने के लिये प्रस्तुत किया जा रहा है।*

सरकार न कइ एक त्रिदलीय मडलो की स्थापना की और उनम से कुछ की रिपोट भी प्रकाशित हो गई हैं। यह आशा की जाती थी कि बिना किसी कठिनाइ क इन सुझावो को कार्यान्वित कर दिया जायगा। किन्तु जब उन सुझावो क कार्यान्वित न होन की शिकायते प्राय की जान लगी तो भारत सरकार को घोषणा करनी पडी कि इस सम्बन्ध म सरकार उचित विधान बनाने की सम्भावना पर विचार करेगी।

श्रमिको को वयक्तिक या एक वग के रूप म कोई लाभ नही हुआ। श्रमिक वग की आय का भाग नही बढा है। १६५० म फक्ट्री उद्योगो के उत्पादन म मजदूरी *क भाग का प्रतिशत ४४ ७ था। १६५४ म यह घटकर ३६ ६ प्रतिशत ही रह* गया। कुल लागत म जिसम ६ प्रतिशत ब्याज भी सम्मिलित है मजदूरी के भाग का प्रतिशत जो १६४६ मे १६ था १६५६ मे घटकर १२ रह गया।

उपरोक्त वणन से यह प्रतीत होता है कि द्वितीय पचवर्षीय योजना म जो लक्ष्य रखे गय कि आर्थिक विकास के लाभ अधिक से अधिक सापेक्ष दृष्टि से समाज के कम सुविधा प्राप्त वर्गों को मिलने चाहिय और तृतीय पचवर्षीय योजना का अवलोकन कि जहा एक बडी सख्या मे लोग निधनता की रेखा के काफी निकट रहते है वहा सामाजिक न्याय के दावो, न्याय करने का अधिकार समान अवसर और निवाह के एक न्यूनतम स्तर की आवश्यकता है ऐसे सत्य प्रतीत होत हैं जिन्ह पूरा करने के लिये कभी गम्भीर प्रयत्न नही किय गये।

सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र म बहुत सीमित प्रगति हुई है। कमचारी राज्य बीमा अधिनियम १६४८ म पारित किया गया था। अधिनियम के क्षेत्र म धीरे-धीरे विस्तार किया गया। प्रथम पचवर्षीय योजना के अत म ३३ २६ लाख श्रमिको म से १० २१ लाख श्रमिक इस अधिनियम के अन्तगत आ गये थे अर्थात् जो बीमा करा

[illegible] तिहाई से कुछ अधिक। तृतीय पंचवर्षीय योजना में सम्भवतः ५० लाख की अनुमानित श्रमशक्ति में से लगभग ३० लाख श्रमिक इस योजना के अन्तर्गत आ जायेंगे। तीसरी योजना के अन्त तक लगभग ३/५ श्रमिकों के लिए सुविधाओं की व्यवस्था होगी। १८ वर्ष की अवधि के बाद ही योजना के अन्तर्गत सभी श्रमिक लाये जा सकेंगे। सरकार का इरादा यह भी है कि योजना के अन्तर्गत चिकित्सा की सुविधाएँ श्रमिकों के परिवारों के लिए भी उपलब्ध कर दी गई हैं।

जिस प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध हैं, उनमें अभी बहुत सुधार की गुंजाइश है। श्रमिकों की यह शिकायत है कि अधिकांश केन्द्रों में, जो चिकित्सा सहायता दी जाती है अपर्याप्त है तथा लाभों की प्राप्ति में विलम्ब होता है तथा छुट्टी और चिकित्सा के लिए अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अस्पताल की सुविधाएँ बहुत स्थानीय हैं।

इन सुविधाओं का व्यय अधिकांश रूप में श्रमिकों द्वारा ही वहन किया जाता है। १९४८ में बनाई गई मूल योजनाओं में यह व्यवस्था थी कि प्रायः नियोजक का अंशदान श्रमिकों से दुगना होगा। लेकिन योजना को जिस रूप में कार्यान्वित किया गया है उसमें श्रमिकों पर ही व्यय भार पड़ा है। १९५७-५८ और १९५८-५९ में उनका अंशदान [illegible].२६ तथा ३८१.१७ लाख था, जबकि इसकी तुलना में नियोजकों ने क्रमशः [illegible] और १६०.[illegible] लाख ही दिया।

सामाजिक सुरक्षा का दूसरा उपाय भविष्यनिधि योजना (Provident Fund Scheme) है। योजना १९५२ में आरम्भ की गई और इसके अन्तर्गत ६ बड़े उद्योग आये। दूसरी योजना के अन्त तक यह योजना ५८ अधिसूचित उद्योगों में धीरे धीरे लागू की गई। तीसरी योजना काल में उन उद्योगों में (जिनका सर्वेक्षण किया जा चुका है) यह योजना लागू होगी जो आर्थिक भार उठाने में समर्थ हैं।[1] विभिन्न श्रमिक-सम्मेलनों ने अंशदान बढ़ाने के प्रश्न पर विचार किया और बार बार माँगें प्रस्तुत करने के बाद 'सिद्धान्त रूप में सरकार ने अंशदान की दर बढ़ाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है किन्तु विभिन्न उद्योगों की भिन्न समस्याओं को ध्यान में रखते हुए एक प्राविधिक समिति की स्थापना की गई है जो यह निश्चय करेगी कि इन कौन से उद्योग हैं जो इस अतिरिक्त आर्थिक भार को वहन करने में समर्थ होंगे।[2] इस प्रकार वृद्धावस्था के लिए इस अपर्याप्त व्यवस्था के होने के बावजूद भी भविष्य सुरक्षित नहीं प्रतीत होता है। योजना में महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किया गया है कि आगे आने वाले समय में काफी बड़े तक किसी न किसी

---

१ तृतीय योजना पृ० ५७।

२ तृतीय योजना पृ० २५७।

रूप मे समाज वग अपना परिवार ही सहायता का मुख्य स्रोत बना रहना चाहिये।'[1]

श्रमिक अपनी मजदूरी म स जो किसी भी आय से निर्वाह तो क्या उचित मजदूरी भी नही है आय का लगभग १० प्रतिशत सामाजिक सुरक्षा योजनाओ म लगा देता है। अत यह आवश्यक है कि श्रमिको को बचत की बढती हुई कीमतो के कारण अवमूल्यन न हो। यदि कीमतें बढती रही तो श्रमिक वास्तविक रूप म अपने अशदान को भी नही पा सकेगा। सम्भावना यही है कि कीमतें बढती रहेगी। 'विकास के साथ कीमतो की जडता असगति ह और कुछ कीमतें तो एसी हैं जो बढती ही हैं और 'कीमतो म महत्वपूर्ण या विक्षोभकारी वृद्धि की सम्भावना को पूर्णतया समाप्त भी नही किया जा सकता।'[2] इस प्रकार हम उस कहावत की याद दिलाई जाती है कि "नौ नकद तरह उधार। भारतीय श्रमिको को 'नौ नकद' छोडने के लिये बाध्य किया गया है (ताकि वतमान म वह उचित स्तर न बना सके) और तेरह उधार' मिलन की उसे कोई आशा नही है।

इन अवस्थाओ मे श्रमिको की व्यापक सुरक्षा के लिय एक सवतोमुखी सामाजिक सुरक्षा के बारे म सोचना, जबकि स्वास्थ्य की सुविधायें भी उपलब्ध नही हैं एक अच्छी दिमागी कसरत ही हो सकती है किन्तु व्यवहारिक उपसम नही।

काम की अवस्थाओ के नियमन के लिये साविधिक व्यवस्थाओ को कायरूप दने मे सफलता नही मिली है। इसलिए योजना म यह सुझाव दिया गया है कि सविधिक व्यवस्था को अधिक प्रभावकारी ढग से कार्यान्वित करने के लिये कदम उठाने ही पडे ग। औद्योगिक बीमारिया और व्यावसायिक खतरो की स्थिति बत्तर हो गई है। तृतीय योजना मे यह सूचित किया गया है कि औद्योगिक स्वास्थ्य स सम्बंधित अभी तक किये गय सर्वेक्षणो मे पता चलता है कि व्यावसायिक बीमारिया की सख्या बढ रही है।

श्रमिको की आवास की समस्या भी पूववत् है। सरकार न औद्योगिक आवास सहायता की एक योजना बनाइ थी जिसके अ तगत नियोजको, श्रमिको सरकारी समितियो तथा राज्य सरकारो को कज और श्रमिक आवास के लिये राज्य सहायता देन की व्यवस्था थी। दिसम्बर १९४७ म आयोजित औद्योगिक शाति सभा मे यह निश्चय किया गया था कि श्रमिको के आवास के प्रश्न को प्राथमिकता दनी चाहिये। प्रथम योजना काल मे ४००० घरो का निर्माण किया गया और यह अनुमान लगाया गया कि द्वितीय योजना के अ त तक लगभग १००००० मकान तयार हो जायेंगे। लेकिन जो मकान तयार हो गय हैं उनम श्रमिक किराया अधिक होने काय के स्थान से

---

१ तृतीय योजना, पृ० २५८।

२ तृतीय योजना पृ० २५७।

दूर स्थान अपर्याप्त यातायात और अन्य आवश्यक सुविधाओं के अभाव के कारण नहीं रह रहे हैं। औद्योगिक श्रमिकों की आवास व्यवस्था में कोई सुधार नहीं हुआ तथा बहुत से केन्द्रों में स्थिति और भी खराब हो गई है। वर्तमान मार्ग बिल्कुल ही अपर्याप्त सिद्ध हुआ है तथा नये उपाय तुरन्त ही खोजने होंगे ताकि श्रमिकों को उनके स्वास्थ्य और क्षमता के हित में समुचित लागत के भीतर आवास की न्यूनतम स्तर की व्यवस्था की जा सके। इस समय ऐसा कोई अनुमान नहीं है कि वे नये उपाय क्या हैं और वह समुचित अवधि क्या होगी जिसमें इस आदर्श की कल्पना की जा रही है। योजना में केवल आवास व्यवस्था की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है। यह स्पष्ट रूप से आवश्यक है कि औद्योगिक श्रमिकों की आवास की स्थिति निरन्तर बिगड़ती गई है और यदि इस दिशा में शीघ्र सुधार न किया गया तो औद्योगिक क्षमता तथा उत्पादन पर भी इसका कुप्रभाव पड़ेगा। तृतीय योजना में ३/००० मकानों का लक्ष्य रखा गया है।

गन्दी बस्तियों को हटाने की योजना भी इसी प्रकार अधिकांश में कागजों तक ही सीमित रह गई है। हमारे प्रधानमन्त्री ने गन्दी बस्तियों की अनवरत विद्यमानता को लेकर बार बार अपना क्षोभ और रोष व्यक्त किया है। उन्होंने यहाँ तक कहा कि गन्दी बस्तियों में आग लगा देनी चाहिये। लेकिन गन्दी बस्तियाँ अब भी हैं और वहाँ भी सुधार नहीं हुआ है।

श्रमिकों का यह भय है कि जो रियायतें या सुविधायें उन्हें मिल रही हैं उनमें कटौती हो जायेगी। केन्द्रीय वेतन आयोग के सुझावों ने इस दिशा में द्वार खोल दिया और इससे कम करने के लिये निरन्तर माँग की जा सकती है। वेतन आयोग के सुझावों के अनुसार कार्यालयों या संस्थानों में काम करने वाले लिपिकों की वार्षिक छुट्टियों में सात दिन की कमी कर दी गई है। उनमें आकस्मिक अवकाश में भी तीन दिन की कटौती कर दी गई है। काम के घंटे बढ़ा दिये गये हैं जिसके अनुसार उन्हें एक मास में दो शनिवारों को पूरे दिन काम करना होगा जिसका अर्थ हुआ १२ अतिरिक्त दिन और जिन लोगों का सेवाकाल कम है उनका उपार्जित अवकाश एक वर्ष में ११ दिन से कम कर दिया गया है। कुल मिलाकर केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को वर्ष में २० दिन अतिरिक्त काम करना पड़ेगा। रेलवे कर्मचारियों के लिये वेतन आयोग ने सुझाव दिया कि यात्रा पत्रों (P T O Pas es) की संख्या ६ से घटाकर २ कर दी जाय। उन्हें सस्ता कोयला देने वाली सुविधा को भी छीन लिया गया है तथा उनके मकानों का किराया बढ़ा दिया गया है।

इससे श्रमिकों ने द्वितीय योजना के लक्ष्यों को पूरा करने के लिये पर्याप्त अंशदान दिया — नगण्य रहा है। औद्योगिक सम्बन्धों का वातावरण बदतर हुआ है जैसा कि निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है—

सारणी ३३

१९५१-६० के बीच होने वाले औद्योगिक विवाद

वर्ष	काम बन्दी की संख्या	सन्निहित श्रमिकों की संख्या	व्यर्थ गये काम दिनों की संख्या
१९५१	१०७१	६९१३२१	३८१८९२८
१९५२	९६३	८०९२४२	३३३६९६१
१९५३	७७२	४६६६०७	३३८२६०८
१९५४	८४०	४७७१३८	३३७२६३०
१९५५	११६६	५२७७६७	५६९७८४८
१९५६	१२०३	७१५१३०	६९९२०४०
१९५७	१६३०	८८९३७१	६४२९३१९
१९५८	१५२४	९२८५६६	७७९७५८५
१९५९	१५३१	६९३६१६	५६३३१४८
१९६०	१५८३	९८ २५८	६२८२५०
१९६१	१३५७	५११८६०	४९१८३१४
१९६२ (अ)	१५०२	६६७८४८	४८००६२१

(अ) अनुमानित २८ फरवरी १९६२ तक प्राप्त सूचनाओं के आधार पर

सार्वजनिक क्षेत्र में वातावरण पर्याप्त बिगड़ गया है। केन्द्रीय श्रम मंत्री श्री नन्दा ने भी यह स्वीकार किया कि सार्वजनिक क्षेत्र समाजवादी स्वरूप का आदर्श नहीं है। राज्य स्वामित्वयुक्त या राज्य प्रबन्धित संस्थान जिनका संचालन कुछ उच्च अधिकारियों द्वारा किया जाता है राज्य पूंजीवाद से अधिक नहीं है।[1] सार्वजनिक क्षेत्र की बहुत सी इकाइयों में कई बार श्रमिक संघर्ष हुए। सरकार और उसके कर्मचारियों के बीच तीव्रगति से बिगड़ते हुए सम्बन्ध इस दिशा में पराकाष्ठा थी। डाक कर्मचारी रेलवे श्रमिक तथा अन्यों ने श्रम नीति और उसके सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यान्वन के प्रति अपना असन्तोष व्यक्त किया है। डाक कर्मचारियों ने अपने वेतन मानों के संशोधन को लेकर हड़ताल की धमकी दी। सरकार ने एक अध्यादेश पारित किया। बाद में द्वितीय वेतन आयोग की नियुक्ति की गई। आयोग के सुझाव तितयों के घोंसले में रख दिये गये जिसके परिणामस्वरूप १९६० में केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल हुई। सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिक सम्बन्ध जिसमें सरकारी कार्यालय भी सम्मिलित हैं उसी असन्तोषजनक और अव्यवस्थित अवस्था

१ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, ८ वां सत्र सम्मिलित रिपोर्ट पृ० १३।

में चल रहे हैं। न तो दृष्टिकोण और प्रमाणों में एकरूपता है न बाद तक स्थापित किया गया है और न अनुसरित आचरण एसे हैं जो किसी प्रबन्ध नियोजक के लिए गौरवकर हों।[1] इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने शिकायत की कि श्रमिकों के अनुभव ने पता लगाया है कि औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार और उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रबन्धकीय और निरीक्षण करने वाले सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों के दृष्टिकोणों में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है।[2] बाद में होने वाले अधिवेशन में भी इस संगठन ने अपना अभियोग दुहराया। दुर्भाग्यवश इन सार्वजनिक संस्थानों के प्रबन्ध और निरीक्षण से सम्बन्धित पदाधिकारी इन मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति आँखें बन्द किए हुए हैं। इन दृष्टिकोणों में आमूल परिवर्तन की जरूरत है।[3]

औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार हेतु १६वें भारतीय श्रमिक सम्मेलन ने, जो मई १९५८ में आयोजित किया गया, अनुशासन संहिता की रचना की। संहिता में नियोजकों और श्रमिकों के विभिन्न दायित्वों और अधिकारों की व्यवस्था की गई है ताकि उत्पादन निर्बाध गति से आगे बढ़ता रहे। श्रमिकों और नियोजकों के बीच अधिक समझदारी बनाये रखने और स्वस्थ वातावरण का विकास करने के लिए ही संहिता की रचना की गई। निर्माताओं द्वारा यह अनुभूति कि श्रमिक सदा एक स्वस्थ भूमिका अदा कर सकते हैं तथा कठिनाइयों का तुरन्त और शीघ्र निबटारा और उचित मतों को स्वीकार करने से स्वस्थ वातावरण का निर्माण सम्भव है। अतः यह व्यवस्था की गई कि पंचनिर्णयों तथा सुझावों को शीघ्रता से कार्यान्वित किया जाय और दूसरे दल को समुचित लाभों से वंचित करने के लिए अनावश्यक ढिलाई न बरती जाय। संहिता ने कठिनाइयों और विवादों को ऐच्छिक ढंग से सुलझाने को प्रोत्साहित करना चाहा।

इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने तुरन्त संहिता का अनुसमर्थन किया। कुछ प्रारम्भिक हिचकिचाहट के बाद अन्य तीन केन्द्रीय संगठनों ने भी इसे स्वीकार किया। नियोजक संगठनों ने भी वैसा ही किया। यह आशा की जाती थी कि सार्वजनिक प्रतिष्ठान भी सम्पूर्ण हृदय से संहिता का समर्थन करेंगे तथा उचित भावना के साथ इसको कार्यान्वित करेंगे। संहिता के प्रभावकारी परिपालन में योग देने के लिए केन्द्र में मूल्यांकन तथा परिपालन भवन तथा राज्यस्तर पर प्रतिरूप संगठन की स्थापना की गई।

किन्तु अनुभव निराशाजनक ही रहा। अपने अपने संगठनों के माध्यम से श्रमिक और नियोजकों द्वारा आरोप और प्रत्यारोप लगाए गए। श्रमिकों ने शिकायत

---

१ हिन्द मजदूर सभा दवां अधिवेशन पृ० ९७।

२ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस १०वें सत्र की रिपोर्ट पृ० ६।

३ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ११वें सत्र की रिपोर्ट पृ० ११।

की है कि नियोजक प्राय विचार विमर्श के लिये अनिच्छुक रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नियोजकों के संगठन अपने सदस्यों को अनुशासन संहिता की व्यवस्थाओं को मनवाने में सफल नहीं हुए।[1] इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की केन्द्रीय परिषद् को अपनी एक सभा में कहना पड़ा कि "परिषद् यह अनुभव करती है कि नियोजकों द्वारा अनुशासन संहिता का प्रयोग केवल श्रमिकों को बिना अपने दायित्वों को निभाये संहिता में दिये गये उनके कर्तव्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिये किया जाता है।[2] हिन्द मजदूर सभा ने भी इस प्रकार के भाव प्रकट किये। इसका तीव्र अनुभव किया जाने लगा कि अनुशासन संहिता केवल एकांगी दायित्व हो गया है जिसका प्रयोग बिना नियोजकों या सरकार को किसी रूप में बाँधे, श्रमिकों या उनके संघों के विरुद्ध किया जाता है।

ऐसी भी शिकायतें हैं कि सरकार ने भी संहिता का परिपालन निश्छल भाव से नहीं किया है। इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सामान्य समिति ने अपनी एक बैठक में सरकार से अपील की कि अनुशासन संहिता का पालन किया जाय विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र में अपने कर्मचारियों के सभी विवादों को सुलझाने के लिये विवाचन सिद्धान्त को स्वीकार किया जाय। राज्य सरकारों से भी प्रार्थना की गई कि सभी दलों द्वारा संहिता की व्यवस्थाओं को कार्यरूप देने के लिये प्रभावकारी कदम उठायें।[3] हिन्द मजदूर सभा ने भी इसी प्रकार की शिकायत की कि संस्था यह अनुभव करती है कि कुछ महीनों से जबसे इस संहिता का परिपालन किया गया है, उसमें यही खतरा पैदा हो गया है कि कहीं यह संहिता हड़ताल विरोधी या संघ विरोधी न बन जाय।[4]

अनिवार्य विवाचन की नीति के स्थान पर जिसे अब तक अनुसरित किया गया है संहिता द्वारा ऐच्छिक विवाचन को प्रोत्साहन दिया जाना था। द्वितीय योजना में कहा गया है कि नियोजकों और श्रमिकों के बीच विवादों को सुलझाने के लिये अधिकाधिक ऐच्छिक विवाचन के सिद्धान्त को अपनाने के बारे में उपाय खोजने होंगे ... नियोजकों को अब तक की अपेक्षा विवादों को विवाचन को सौंपने में अधिक तत्परता दिखानी चाहिये।

यह केवल इच्छामूलक विचार प्रतीत होता है। ऐच्छिक विवाचन की पूर्व *मान्यता है शक्तिशाली और स्थायी श्रमिक संघों का अस्तित्व तथा उनकी आवश्यकता* की व्यापक स्वीकृति ही नहीं अपितु स्वस्थ परिपाटी के विकास में उनकी उपयोगिता

---

१ वी० वी० कार्निक इण्डियन ट्रेड यूनियन्स पृ० २४२।

२ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ११वाँ सत्र, पृ० १३४।

३ वही।

४ हिन्द मजदूर सभा ८वाँ अधिवेशन, पृ० १७।

हस्ता तभी न्यायपूर्ण होगी जबकि दुखित व्यक्तियों को सर्वाधिक सहानुभूति प्रदान की जा चुकी हो। शीघ्र और सहानुभूतिपूर्ण कार्यवाही मदद दुःख स्थितियों को टालने में मदद करती है।[1] इसी संगठन ने अपने १०वें सत्र में कहा कि "श्रमिकों के अनुभव से ज्ञात होता है कि उत्पादन बढाने और औद्योगिक सम्बन्धों का सुधारने के लिये सार्वजनिक क्षेत्र में प्रबन्धकीय और निरीक्षक कर्मचारियों के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है।[2] फिर एक अन्य अवसर पर इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष को सार्वजनिक क्षेत्र में श्रमिकों के प्रति सरकार के विभ्रान्त दृष्टिकोण[3] की ओर इशारा करना पड़ा।

हाल ही में हुई सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल के समय सरकार ने जिस रूप में व्यवहार किया वह भी खेदजनक रहा। जब स्थिति बिगड़ जाती है तभी सरकार सचेत होकर समिति या आयोग की नियुक्ति तथा उनके सुझावों के और शीघ्र परिपालन का आश्वासन देती है। इन संस्थाओं के सुझाव भी सरकार इच्छानुसार संशोधित कर देती है। द्वितीय वेतन आयोग की सिफारिशों के साथ भी यह अनुभव रहा। आयोग के मुख्य सुझावों ने कर्मचारियों में अत्यधिक असंतोष फैला दिया। कर्मचारी विचार विमर्श पुनारम्भ करना चाहते थे किन्तु सरकार की ओर से उचित प्रत्युत्तर नहीं मिला। परिणामस्वरूप संयुक्त कार्यसमिति की स्थापना की गई और अनंत विचार विमर्श तथा कई समझौता कराने के प्रयत्न निष्फल हो जाने पर हड़ताल की घोषणा करा दी गई। आवश्यक सेवा सुरक्षा अध्यादेश जारी करके हड़ताल को निषिद्ध कर देने तथा भाग लेने या सहयोग देने के खिलाफ दंड प्रकार के दण्डों की व्यवस्था की गई। सरकार ने देश के श्रमिक आन्दोलन के इतिहास में अपूर्व दमनकारी भावना व्यक्त की। हड़ताल होने के पहले ही कर्मचारियों के अधिकांश नेता कैद कर लिये गये। सरकारी कर्मचारियों ने पांच दिन हड़ताल जारी रखी और फिर समाप्त कर दी। इस बीच २९५०० श्रमिकों को नौकरी से अलग कर दिया गया २००० कर्मचारियों को निलम्बित किया गया १६७०० गिरफ्तार कर लिये गये तथा १२०० पर मुकदमा चलाया गया और संघों की मान्यता समाप्त कर दी गई। गृहमन्त्री ने संसद में अधिकारिक विवरण दिया कि लगभग ५ लाख कर्मचारी अर्थात् कुल कर्मचारियों का ⅟₁₀ हड़ताल में सम्मिलित हुए। कुछ लोगों को इनकी वास्तविकता पर संदेह है तथा उनका विचार है कि इससे बड़ी संख्या में कर्मचारियों ने हड़ताल में भाग लिया। निर्मुक्त दमनकारी नीति के संदर्भ में ५ लाख कर्मचारियों के हड़ताल में भाग लेने से भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राज्य नीति के विरुद्ध एक

---

[1] इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ९वां सत्र पृ० ५७ ५८।

[2] १०वां सत्र पृ० ९।

[3] १०वां सत्र पृ० ३७।

बड़ी संख्या में सरकारी कर्मचारियों में प्रभाव असंतोष व्याप्त है। सरकार ने श्रमिक संघ कार्य-कलापों को रोकने के लिए आर्थिक पारितोषिक प्रदान करके विवादास्पद विधि भी अपनाई। पिछले वर्ष जुलाई में हुई केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल को तोड़ने के लिए केन्द्रीय सरकार ने दिल्ली पुलिस कर्मचारियों को ७८००० रुपये उपहार स्वरूप दिये गये थे।[1]

जिस समय हड़ताल वापस ले ली गई उसके बाद सरकार ने आश्वासन दिया था कि हड़तालियों के प्रति नर्मी का बर्ताव करेगा। इन आश्वासनों के बावजूद यह निश्चित नहीं रहा कि कर्मचारियों को बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके लिए नूतन और विलक्षण विधियाँ खोजी गईं—जिन लोगों ने आम हड़ताल में भाग नहीं लिया उन्हें प्रतिदान और इनाम स्वरूप इन का निर्णय तथा भाग लेने वालों की पदावनति और किसी भी विभागीय पदोन्नति परीक्षा में दो वर्ष तक बैठने की मनाही या इससे के उस काल तक जो भी अधिक हो।[2] आवश्यक सेवा सुरक्षा अध्यादेश की समाप्ति पर भी उसके अन्तर्गत की गई कार्यवाहियों के बहुत से मामलों की सूचना मिली।[3]

बाद में सरकार ने सरकारी कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली हड़तालों को निषिद्ध कर देने के बारे में सोचा। सरकार यह भी नहीं चाहती कि बाहरी लोग उनके संघों में शामिल हों। किन्तु इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने भी इसका अनुमोदन नहीं किया। वास्तविक रूप में सरकार अपने कर्मचारियों को श्रमिक संघ नेताओं के रूप में कार्य करने की आज्ञा देने के लिए तैयार नहीं है। कर्मचारियों की स्वतन्त्रता को न सहन करने की जटिलता अब भी सरकार में है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि सरकार के पिट्ठुओं द्वारा संघों का नेतृत्व किया जायगा।

गैर सरकारी क्षेत्रों ने भी अपने लिए इसी प्रकार के अधिकारों की माँग की। भारतीय टाटा लोहा तथा इस्पात कम्पनी की वार्षिक सभा में बोलते हुए अध्यक्ष ने निम्नलिखित विचार प्रकट किये —

सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सरकारी नीति अपने कर्मचारियों द्वारा की गई हड़ताल की व्यवस्था और उनके साथ किये गये व्यवहार के लिए गैर सरकारी क्षेत्रों में की गई हड़तालों से भिन्न है। बहुत से कर्मचारियों की निवृत्ति, दूसरों के स्थानान्तरण, विभिन्न प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाही यहाँ तक कि निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Dentention Act) के अन्तर्गत गिरफ्तारी सम्भवतः आवश्यक थी, और यद्यपि मेरा उद्देश्य

---

१ स्टेट्समैन दिनांक १-१०-६०।
२ ,, ,, १२-११-६०।
३ ,, ,, १२-१२-६०।

सरकारी कार्यवाहियों की मीमांसा करना नहीं है, किन्तु सभी हड़तालों का प्रभाव समाज विरोधी होता है तथा उन्हें चाहे कर्मचारियों की दृष्टि में वे कितनी ही तर्कसंगत हों सहज रूप में नहीं लेना चाहिये। फिर भी जो बात मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि गैर सरकारी क्षेत्र में किसी भी नियोजक को आत्मसुरक्षा के लिये ऐसे कोई भी साधन अपनाने की अनुमति नहीं है उसे तो बस चुपचाप हड़ताल के परिणामों को भुगतना पड़ता है।'[1] इसलिए अध्यक्ष ने यह अनुरोध किया कि जो भी व्यवस्थाएँ केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए बनाई जाती हैं उनका विस्तार गैर सरकारी क्षेत्र में विशेषकर लोहा और इस्पात तथा इंजीनियरिंग उद्योगों में करना चाहिये। कुछ समय के लिये सरकार ने इन व्यवस्थाओं को स्थगित कर दिया है और संघों को फिर से मान्यता दे दी गई है। १९६२ के आम चुनाव ने सम्भवतः इन निर्णयों को प्रभावित किया हो। हड़तालों पर प्रतिबन्ध लगाने और राज्य को और भी शक्तिशाली बनाने का बहुत बड़ा प्रलोभन हो सकता है। श्रमिक योजनाओं की सफलता की सुनिश्चितता के लिये हड़तालें रीति विपरीत समझी जा सकती हैं और जिनके लिये प्रजातान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था में कोई स्थान नहीं होना चाहिये। फिर भी हम यह याद रखना चाहिये कि हमारे समय में राज्य दुर्जेय मन्त्र हो गया है जो अद्भुत शीघ्राचार से कार्य करता है जिसकी साधना की सूक्ष्मता और मात्रा के कारण आश्चर्यजनक क्षमता है। समाज के बीच एक बार इसकी स्थापना हो जाय फिर इसके असंख्य उद्यमों को कार्य प्रारम्भ करने और किसी भी स्थिति में अपनी महाभूतकारी शक्ति का प्रयोग करने के लिये, चाहे जो भी सामाजिक ढांचा हो, एक बटन दबाना ही पर्याप्त है।[2] इस प्रवृत्ति का परिणाम घातक होगा। राज्य के हस्तक्षेप से समाज की स्वाभाविक क्रियाएँ बार-बार विश्रृंखलित होंगी। कोई भी नया बीज पनपने में असमर्थ होगा। समाज को राज्य के लिये और व्यक्ति को सरकारी यन्त्र के लिये जीना पड़ेगा।[3] मैं राज्य की शक्ति में वृद्धि को भयाकुल होकर देखता हूँ, क्योंकि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से शोषण को कम करके समाज का भला दीखता है परन्तु उन्मूलन से जो सभी प्रगतियों के मूल में है मानवता को इससे अत्यधिक हानि पहुँचती है। हम ऐसे बहुत से उदाहरण जानते हैं जहां व्यक्ति ने न्यासिता को अपनाया है लेकिन ऐसा कहीं नहीं है जहां राज्य वास्तविक रूप में निर्धनों के लिये जिया हो। यह राष्ट्रीयता की सलाह थी।

---

१ स्टेट्समैन नवम्बर २२, १९६०।

२ ओर्टेगा वाई गसेट, दि रिवोल्ट आफ दि मासेज पृ० ८७।

३ ,, पृ० ८८।

४

श्रमिक संघवाद का प्रसार

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में श्रमिक संघ शक्ति के कार्य क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई। अपने को संगठित करने तथा सामूहिक रूप से कार्य करने में श्रमिकों को आर्थिक कारणों तथा राजनैतिक संस्थाओं से श्रमिक को सहायता मिली। और और नियोजकों ने श्रमिक संघ के महत्त्व को समझा और प्रगतिशील नियोजकों ने श्रमिक संघों को सही दिशा में बढ़ने में सहायता दी। कुछ चुने हुए संस्थानों के प्रबन्ध में श्रमिकों द्वारा भाग तथा हाल ही में नियोजकों और कर्मचारियों के बीच बढ़ते हुए सम्बन्ध श्रमिक संघों के महत्त्व के सूचक हैं। लेकिन श्रमिक संघवाद की बढ़ती हुई शक्ति के बावजूद इस देश में श्रमिक वर्ग का एक छोटा सा भाग ही संगठित किया जा सका और यह आन्दोलन केवल पश्चिमी रहा। अपनी शिकायतों को प्रस्तुत करने तथा हितों की सुरक्षा के लिए श्रमिक वर्ग का काफी बड़ा भाग अब भी असंगठित है। संगठित और चतुर्थ वर्गों में भी एक बड़ी संख्या में श्रमिक श्रमिक संघ के सदस्य नहीं बने।

भारत में श्रमिक संघवाद के विस्तार का विश्लेषण करते समय उन सीमाओं को जिनके अन्तर्गत हम अनुमान लगाते हैं ध्यान रखना चाहिए। विश्वसनीय और सही आँकड़ों के पूर्ण अभाव में यह काम और भी कठिन है। प्रकाशित आँकड़े उतने सही नहीं हैं जितने प्रतीत होते हैं क्योंकि सरकारी अधिकारियों द्वारा उनकी सत्यता की जाँच नहीं की गई। सदस्यता के आँकड़ों में हेर-फेर करके विरोधी संगठन अपने प्रतिनिधित्व स्वरूप का दावा करते हैं। श्रमिकों के नाम जिन्होंने काफी पहले से श्रमिक संघ को चन्दा देना बन्द कर दिया हो सदस्यता रजिस्टर में चलते रहते हैं। कुछ संघों में चन्दा न देने वाले सदस्यों का प्रतिशत ८० या ९० है जो अपनी स्वयं कहानी कहते हैं। न सदस्य समय पर चन्दा देने की परवाह करते हैं और न नेता स्थिर तथा नियमित सदस्यता बनाये रखने के लिए प्रयत्न करते हैं। चन्दा न देने वालों को संघ की कार्यवाहियों से वंचित नहीं किया जाता। शक्ति परीक्षण के समय श्रमिक संघी नेता उनकी सहायता के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। बहुत से श्रमिक संघ सदस्यता का पूरा विवरण भी नहीं रखते।

इन सीमाओं और सही तथा विश्वसनीय आँकड़ों की अनुपलब्धि के कारण

श्रमिक संघवाद के प्रसार के बारे में सही अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। ऐसा अनुमान स्थूल रूप से केवल सदस्य संख्या से निकाला जा सकता है। फिर भी यह इसके द्वारा असंगठित श्रमिक संघों तथा वास्तविक श्रमिक संघों के बीच भेद की व्याख्या की जा सकती है। इस दृष्टि से यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि इस देश में श्रमिक संघवाद की गणना इस दृष्टि से की जाती है तो हमारे देश में कम प्रतिशत श्रमिक संघ होना चाहिये।

श्री गिरि राम[1] ने १९३६ में अनुमान लगाते हुए श्रमिक संघवाद के प्रसार की संगणना केवल ४ प्रतिशत की थी। उनका अनुमान उस समय संगठित उद्योग, यातायात तथा खानों जहाँ तुरन्त संगठन सम्भव था के श्रमिकों तक ही सीमित था।

डा० एस० डी० पुनेकर[2] ने अनुमान लगाया कि १९३१ की जनगणना के अनुसार लगभग ६७८ लाख श्रमिक श्रमिक संघों के सदस्य हो सकते थे किन्तु १९३९–४० में श्रमिक संघों की सदस्य संख्या केवल ६ लाख थी। इससे सदस्यता का प्रतिशत बहुत कम होकर केवल ०.९ रह जाता है। यदि ३१५ लाख कृषि से सम्बन्धित श्रमिकों को अलग कर दिया जाय क्योंकि उनका अनुमान सम्पूर्ण श्रमिकों जो खाना उद्योगों, बागानों, यातायात, प्रशासकीय तथा घरेलू सेवाओं में काम करते हैं, से सम्बन्धित है तो भी संगठित श्रमिकों का प्रतिशत केवल १.८ निकल पाता है।

१९५१ की जनगणना में हमारी अर्जन करने वाली जनसंख्या की संरचना के विषय में निम्नलिखित सूचना प्राप्त होती है —

सारणी ३४

१९५१ की जनगणना के अनुसार आत्मनिर्भर तथा अर्जनकारी आश्रित (लाखों में)

वर्गीकरण	आत्मनिर्भर	अर्जनकारी आश्रित	योग
ग्रामीण पुरुष	७०६	११९	८२५
शहरी पुरुष	१६६	१५	१८१
ग्रामीण महिलाएँ	१५१	२३२	३८
शहरी महिलाएँ	२१	३३	३४
योग	१०४४	३७९	१४२१

१ स्टेट इन रिलेशन टू लेबर, पृ० ९३।

२ ट्रेड यूनियनिज्म इन इण्डिया, पृ० ११८–११९।

इस प्रकार १९५१ की जनगणना के अनुसार इस देश में १४२० लाख लोगों को श्रमिक संघों में संगठित किया जा सकता है।

१९५०-५१ में पंजीकृत संघों की संख्या ३७६६ थी। उनमें से २००२ संघों ने विवरण भेजे। विवरण भेजने वाले संघों की कुल सदस्यता १७ ५६ ९७१ थी। इन संघों की औसत सदस्यता ८७७ थी। इस वर्ष १७६४ संघ विवरण नहीं भेज पाये। विवरण भेजने वाले संघों की औसत सदस्यता के आधार पर यदि हम १७६४ पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्यता की गणना करें जिन्होंने विवरण नहीं भेजे तो उनकी सदस्यता १५ ४७ ०२८ आती है। इस प्रकार सभी पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्यता ३३ ०३ ९९९ अनुमानित की जा सकती है। १९५०-५१ में चारों केन्द्रीय श्रमिक संघों की सदस्य संख्या ३२ २७ ६३० थी। सभी पंजीकृत श्रमिक संघों की कुल सदस्यता की इस विधि से गणना करने पर यह सम्भावना रहती है कि जो आंकड़े प्राप्त हों वे वास्तविकता से अधिक हों। प्रायः बड़े संघ समय पर और सही तरीके से विवरण भेज देते हैं। इसलिए सम्भावना यही रहती है कि साधारणतया छोटे छोटे संघ ही विवरण नहीं भेजते। इसके अलावा श्रमिक संघों में छोटे संघों का बाहुल्य है। १९५०-५१ के वर्ष में ६८% संघ ऐसे थे जिनकी सदस्य संख्या ३०० से कम तथा ७३% संघों की ५०० से कम थी जबकि १२.७ प्रतिशत संघों की सदस्यता ६९९-९९९ के बीच थी। विरोधी श्रमिक संघों में यह अवलोकनीय प्रवृत्ति पाई जाती है कि अपनी सदस्य संख्या को अतिरंजित करके बताते हैं। उन व्यक्तियों के नाम, जो सदस्य नहीं हैं या जिन्होंने नियमित रूप से चन्दा देना बन्द कर दिया है, सदस्यता रजिस्टर में चलते रहते हैं। इन अवस्थाओं के कारण यह कोई आश्चर्य की बात नहीं यदि पंजीकृत श्रमिक संघों की कुल सदस्यता का हमारा अनुमान संगणना वास्तविकता की अपेक्षा उत्तर प्रतीत हो।

अपंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्यता का भी हम अनुमान लगाना है। काफी संख्या में विद्यमान श्रमिक संघ अपने को व्यवसाय संघ अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत नहीं कराते। इन संघों की संख्या और सदस्यता के आंकड़े सारे देश के उपलब्ध नहीं हैं। केवल बम्बई राज्य द्वारा श्रमिक संघों की कुल सदस्यता के आंकड़े प्रकाशित किये जाते हैं और निम्नलिखित आंकड़ों में पंजीकृत तथा अपंजीकृत श्रमिक संघों की सापेक्षिक सदस्यता का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी ३५

बम्बई में पंजीकृत तथा अपंजीकृत व्यवसाय संघों की सदस्यता

छमाही अंत होने वाले	श्रमिक संघों की संख्या	सदस्यता	पंजीकृत श्रमिक संघ	पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्यता
अप्रैल १९५१	१०८०	७९२ २०६	६२५	६२३ ४९७
अक्तूबर १९५१	११४७	८०४ ३७१	७१५	६४० ५७१

इस प्रकार बम्बई में अपजीकृत श्रमिक सघो की सदस्यता पजीकृत श्रमिक सघो की सदस्यता का लगभग ७५ प्रतिशत है। बम्बई चूकि औद्योगिक प्रगतिशील राज्य है इसलिए यहाँ अन्य राज्यो की अपेक्षा अपजीकृत श्रमिक सघो की सख्या अधिक है। बम्बई राज्य के आधार पर यदि गणना की जाय अर्थात् अपजीकृत श्रमिक सघो की सदस्यता पजीकृत श्रमिक सघो की सदस्यता का लगभग ७५ प्रतिशत है तो १९५०-५१ मे अपजीकृत श्रमिक सघो की सदस्यता ८२५ ७५० आती है। अब स्थिति को निम्नलिखित रूप मे स्पष्ट किया जा सकता है —

१९५०-५१ वर्ष के लिए	
विवरण भेजने वाले पजीकृत श्रमिक सघो की सदस्यता	१७ ५६ ९७१
विवरण न भेजने वाले पजीकृत श्रमिक सघो की अनुमानित सदस्यता	१५ ४७ ०२८
अपजीकृत श्रमिक सघो की अनुमानित सदस्यता (सभी पजीकृत श्रमिक सघो की अनुमानित सदस्यता का ७५ प्रतिशत)	८ २५ ७५०
सभी पजीकृत और अपजीकृत श्रमिक सघो की कुल सदस्यता का अनुमान	४१ २९ ७४९

श्रमिक सघो की कुल सदस्यता इस प्रकार ४१ ०० ००० के आस पास अनुमानित की जा सकती है। १९५१ की जनगणना के अनुसार एसे कुल व्यक्तियो की सख्या लगभग १४०० लाख थी जिन्हे श्रमिक सघो मे सगठित किया जा सकता था। अत श्रमिक सघवाद का प्रसार बहुत कम केवल २ ९ प्रतिशत ही हुआ।

जनगणना की रिपोर्ट मे उन व्यक्तियो के बारे मे भी सूचना मिलती है जो अपने जीविकोपार्जन के लिये मजदूरी या वेतन का अर्जन करते हैं। १४९ लाख व्यक्ति कृषीय श्रमिक थे जबकि १४८ लाख व्यक्ति शहरी क्षेत्रो मे काम कर रहे थे। इस प्रकार कम से कम २९७ लाख व्यक्ति मजदूरी या वेतन का अर्जन करते थे और जिन्हे श्रमिक सघो मे सगठित किया जा सकता था। यदि हम श्रमिक सघो की अपनी अनुमानित ४१ लाख सदस्यता की तुलना २९७ लाख मजदूरी अर्जित करने वाले व्यक्तियो की सख्या से करे तो भी श्रमिक सघवाद का प्रसार केवल १३ प्रतिशत ही था।

कृषीय श्रमिको को सगठित करने मे स्पष्ट और सुपरिचित कठिनाइया होने से भारत मे श्रमिक सघवाद मुख्य रूप से एक शहरी आन्दोलन है। अत शहरी क्षेत्रो के कर्मचारियो जिनकी सख्या १९५१ की जनगणना के अनुसार १४८ लाख थी के बीच ही श्रमिक सघवाद के प्रसार का आकलन हम करेंगे। इस सीमित क्षेत्र मे भी श्रमिक सघो की सदस्यता मुश्किल से कुल श्रमिको की सख्या का एक चौथाई ही होगी।

हमारे देश मे श्रमिक सघो का विकास कुछ सुसगठित उद्योगो तक ही

सीमित रहा है। अतः इन उद्योगों में ही श्रमिक संघवाद का विकास जोरदार होना उचित होगा। श्रमिक संघ सदस्यता के आँकड़े विवरण [illegible] श्रमिक संघों से ही सम्बन्धित हैं क्योंकि विवरण न भेजने वाले [illegible] श्रमिक संघों का औद्योगिक वर्गीकरण उपलब्ध नहीं है। ये आँकड़े निम्नलिखित सारिणी में दिये गये हैं। इन सारिणियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ ही उद्योगों में श्रमिक संघवाद का विकास हुआ है। उनमें से बहुतों में उसका प्रभाव नहीं पड़ा है। बन्दरगाहों और तथा कुटीर व्यापार यातायात का समावेश करने वाले उद्योग, बागान तथा रसद का सम्पूर्ण बिजली गैस जल स्वास्थ्य सेवायें सड़क यातायात (श्रमिक संघों के आँकड़े सड़क यातायात में सम्मिलित हैं) तथा रेलों के अतिरिक्त प्रारम्भिक उद्योग हैं जहाँ श्रमिक संघवाद आत्मनिर्भर स्थितियों को सुधारने में [illegible] गया है और बहुत कम है [illegible] संघों ० ६ से [illegible] प्रतिशत [illegible] है। सेवायें और तथा कुटीर व्यापार और यातायात के समावेश करने वाले संख्या [illegible] संघों ० ६ प्रतिशत है। कुछ कुछ उद्योगों में [illegible] सदस्य संख्या काफी अधिक है। [illegible] में [illegible] तथा [illegible] यातायात (श्रमिक संघ के आँकड़े सामुद्रिक बन्दरगाहों तथा [illegible] में सम्मिलित हैं) तथा [illegible] और [illegible] उद्योग आते हैं। उनका प्रतिशत क्रमशः ७२० ३० [illegible] ८८ [illegible] तथा [illegible] है। [illegible] उद्योगों में श्रमिक संघों का प्रतिशत [illegible] से कम है तथा अधिकांश उद्योगों में [illegible] प्रतिशत से कम। यह आश्चर्य की बात है कि वस्त्र उद्योगों में श्रमिक संघों का प्रसार केवल [illegible] प्रतिशत है और सूती वस्त्र उद्योगों में [illegible] प्रतिशत। विभिन्न वर्गों के प्रतिशत इस प्रकार हैं प्रारम्भिक उद्योग [illegible]% बागान तथा [illegible] ३२ [illegible]%, [illegible] उद्योग ७ [illegible]% निर्माण और [illegible] [illegible] ३% वाणिज्य [illegible] ६ [illegible] यातायात [illegible] तथा [illegible] [illegible]% और [illegible] ० ६%।

यदि कुल वयस्क कर्मचारियों में से श्रमिक संघों के प्रसार पर विचार करें तो [illegible] विकास [illegible] नहीं मिलता। [illegible] प्रतिशत यातायात [illegible] से ० ६ से ० ८ [illegible] में ० [illegible] से [illegible], [illegible] कुटीर [illegible] में ० ६ से [illegible] ३, [illegible] तथा [illegible] के उत्पादन में ० ८ से [illegible] निर्माण और उपयोगिताओं में [illegible] ७ से ६ ६ और सड़क यातायात में (श्रमिक संघ के आँकड़े सड़क यातायात में सम्मिलित हैं) [illegible] से ७ ३ बढ़ जाता है। यह प्रतिशत [illegible] तथा [illegible] में बढ़कर [illegible] ० , [illegible] में ३० [illegible] जल यातायात में (श्रमिक संघ के आँकड़े सामुद्रिक, नदी और बन्दरगाह कर्मचारियों में सम्मिलित हैं) ६६ ० [illegible] तथा [illegible] में [illegible] रबर और रबड़ के उत्पादन [illegible] और [illegible] मुद्रण प्रकाशन और [illegible] में [illegible] कागज और कागज उत्पादन तथा कागज की वस्तुओं में २६ और सूती वस्त्र उद्योग में २६ ६ हो जाता है। अन्य उद्योगों में प्रतिशत [illegible] से कम रहता है।

सारणी ३६

कुछ चुने हुए उद्योगों में संघता का विस्तार

	१९५१ की जनगणना			श्रमिक संघता	
	स्व निर्भर व्यक्ति	कर्मचारी	१९५१ में पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्या	स्व निर्भर व्यक्तियों के अनुपात में प्रतिशत	रोजगार में लगी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिशत
१ कृषि के अतिरिक्त प्रारम्भिक उद्योग	२४ ०० ६७६	१२ ५३ २८७	१ १८,५०४	५	१०
२ रोपण	१०,४६ ०१८	६ ६२ ८३०	१ १३ २३८	१० ८	११ ७
खनन तथा खदान	५ ६६ ८७०	५ ५५,११३	१ ३२,९६१	२८ ५	२९ ६
कोयले की खान	३,११ ६००	३ ०४ ६६९	९०,०४६	२८ ९	२९
३ विधापन तथा निर्माण	९१,१६,२६८	३६ ७९,९९१	७ १२ ६४३	७ ७	१९ ८
अ–खाद्य पेय तथा तम्बाकू	१४ ९० ७७२	६,७३,६५५	१,२२,९७९	८ २	१९ ८

१	२	३	४	५	६
ब–वस्त्र उद्योग	२७ ७२ ६५२	१४४५,२८७	३,४८ ५३२	१२ ५	२३ ५
(१) सूती	२० ६१,७५१	६ ८१ ५५१	२,५७ ८५१	१२ ४	२६ ३
(२) जूट	७ ११,२०१	८,६३ ७३६	६०,६८१	१३	११ ८
स–कागज तथा कागज की वस्तुएँ	३१,२११	२४ ०६२	७,१४९	२२ ६	२६ २
द–मुद्रण प्रकाशन और तत्सबंधित	१,२६,६३६	६५ १६७	२६,७८२	२३ ८	३१ ६
ध–चमड़ा तथा चमड़े की वस्तुएँ	५,७७,६७६	८२ २६०	४,४००	० ८	५ ३
ट–रबर और रबर की वस्तुएँ	११ २४१	१५ १६१	८,७७६	२५ ३	३२
ल–लोहा तथा इस्पात	१ १२ ३७३	६५ ६६६	७१ ६६१	७२	७५
व–मशीनरी	१,६७ ७३८	१,३२,७५३	१४ ०३०	८ १	१० ८
(१) सामान्य	१,२४ ६६८	१,०२,६६०	१० ८६०	८ ८	१० ७
(२) विद्युतीय	४२,७७०	२६,७६३	३ १७०	७ ०	१० ०

१	२	३	४	५	६
ह–यातायात उपकरण	२ १६,२७४	१ ७०,८३७	१,३३४	० ६	० ८
४ विद्युत, गस, जल तथा स्वास्थ्य सेवाएँ	१६,८५ ७२७	७,१३,२०३	६५,५७५	२ ७	६ ६
५ वाणिज्य	५६,०१ ३१३	११ ३४ ८३६	६१,६५१	१ ६	८ ४
(१) थोक तथा फुटकर	५५,७७,८५१	६,७७,०३७	३३ ३३४	० ६	३ ७
(२) बंक बीमा तथा अन्य	३,२३,४६२	१,५७,८४६	४८,३१७	१ ०	३२
६ यातायात संग्रह तथा संचार	१६ ०१ ६७१	१२,६० ३७३	८ ६३,४२१	४७४	६६ २
(१) रेलवे	२,७२ ७१६	५,४६ २०४	४,०६,६४६	७० २	७० ५
(२) ट्रामवे					
(३) सडक यातायात	८ ६३ ५५६	३ ८८,८०२	२६,५६०	३ ३	७ ७
(४) जल तथा जल यातायात	३ १६,७५८	१,५८ ६०६	६६,६६६	४८ ५	६६ २
(५) डाक तथा तार	१ ७५ १०६	१,५४,८४७	६४,२५५	३६ ६	४१ ३
७ सेवाएँ	७५ ४३ ७२५	३४ ४६ १३४	४७,५७४	० ६	१ ४

उपर्युक्त विश्लेषण से जो, यद्यपि पूर्ण विश्वसनीय नहीं है तथापि इससे उन उद्योगों में श्रमिक संघता के विस्तार का उचित अनुमान लगाया जा सकता है। अनुमान इसलिए सही नहीं है क्योंकि श्रमिक संघों के सदस्यता रजिस्टर में सदस्यों के मिथ्या नाम चलते रहते हैं। श्रमिकों के नाम एक से अधिक संघों के सदस्यता रजिस्टर में पाया जाना असामान्य नहीं है।

फैक्ट्रियों तथा कुछ अन्य उद्योगों में सम्बन्धित सेवायोजन के आँकड़े भारत सरकार द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं। उनमें सम्बन्धित विवरण भेजने वाले श्रमिक संघों की सदस्यता की सूचना भी उपलब्ध है। इन आँकड़ों के अध्ययन से श्रमिक संघता के विस्तार के बारे में एक अधिक सम्यक् दृष्टिकोण बनाया जा सकता है। फिर भी यह बात ध्यान देने की है कि संघता की स्थिति का अनुमान विवरण भेजने वाले संघों की सदस्यता के आधार पर लगाया गया है। यदि हम विवरण भेजने वाले और न भेजने वाले सभी संघों की सदस्यता को लें तो प्रतिशत निश्चित रूप से बढ़ जायगा। किन्तु यह वृद्धि अधिकांश मामलों में एक चौथाई से अधिक नहीं होगी।

सारणी ३७

१९५१ में फैक्ट्री कर्मचारियों में संघता की स्थिति

	सेवायोजन	विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्यता	संघता की स्थिति %
१ फैक्ट्री सेवायोजन	२५,३६,९७०	६,९८,४१५	२७.९
अ—खाद्य, पेय, तथा तम्बाकू	४,६३,८३६	८६,७८३	१८.७
ब—वस्त्र उद्योग	१०,४५,०७८	३,९१,९३७	३७.५
सूती	६,४५,८५५	२,६१,७००	४०.५
जूट	३,०२,२०७	७२,२२५	२४
स—लकड़ी और कार्क	२४,३४२	३,२८२	१३.७५
द—कागज तथा कागज की वस्तुएँ	२२,७६२	६,६५३	२९.२
य—मुद्रण तथा प्रकाशन आदि	७१,२०९	२२,९२१	३२.२

१	२	३	४
र–चमडा तथा चमडे की वस्तुयें	१५ ६८४	७ ८५०	४९
ल–रबर तथा रबर की वस्तुयें	२२ ५०८	२,३७८	१० ६
व–रसायन तथा रसायन की वस्तुयें	७८,०२०	२३ ४५१	३०
श–धातुरहित खनिज	१ १० ६४१	१६ ०१८	१४ ४
सीमेंट	१२,६४२	६ ७४६	५३ २
स–मूल धातु उद्योग	६५ ०२७	६१ ६७५	६ ५
ष–मशीनरी सामान्य	६७ ४७०	११,७७७	१२ २
ह–मशीनरी विद्युतीय	२८,७७२	१ ०६२	३ ५
क्ष–यातायात उपकरण	१ ८४ ४२६	१ १५०	० ६
२ खनन और खदान	५ ४६ ०४८	१,०५ ६५३	१९ ३
कोयले की खानें	३ ५१,६७५	६८,२८८	१९ ३
३ रोपण	१२,१२ ३५१	४६ ०८९	१२ २
४ रेलवे	६,२३ १५४	३,३५,६६४	३६ ४
डाक तथा तार	१ ६३ ३०२	११ १४२	५ ७
ट्रामवे (जनवरी ५२)	१७ ७६६	२ ३३०	१३ ०
सामुद्रिक	६४ ०००	४३	६७
गोदी तथा बन्दरगाह	५७ ४१५	५० ६२७	८६ ५

सारणी १८

१९५२ मे फक्टी कमचारियो मे सघता की स्थिति

१	२	३	४
१ फक्ट्री सेवायोजन	२४ ४३ ४४६	७ १२ ६४३	२९ २
अ–खाद्य, पेय तथा तम्बाकू	४,२८,४४०	१,२२,६७६	२६ ४

१	२	३	४
ख–वस्त्र उद्योग	१० ४१ ८६२	३ ८८ ४२२	३२ ५
सूती	६ ५२ ६६४	२ ५७ ८५१	३६ ७
जूट	२ ९२ ९२७	५६ ६९१	१९ ५
ग–लकड़ी तथा कार्क	२४ २४०	३ २११	१३ २
घ–कागज तथा कागज की वस्तुएँ	२२ ७८७	७ १४४	३० ४
ङ–मुद्रण और प्रकाशन आदि	७१ २९१	२०,७९२	२९ ५
च–चमड़ा तथा चमड़े की वस्तुएँ	१२ ९०६	४४००	३४ १
छ–रबड़ और रबड़ की वस्तुएँ	२२ ४२८	४ ७७६	२१ ४
ज–रसायन तथा रसायन की वस्तुएँ	७३ ५९८	३०,५३४	४१ ६
झ–धातुरहित खनिज	१ ०२,९३७	२३,४६४	२२ ८
सीमेंट	अ	१२,९२४	—
ञ–मूल धातु उद्योग	९०,४२८	७६,१७१	८२ २
ट–मशीनरी सामान्य	८० ७४६	१०,८६०	१३ ५
ठ–मशीनरी विद्युतीय	२७,८४७	३ १७०	११ २
ड–यातायात उपकरण	१,८२,१८२	१ २२४	० ७
३ खनन तथा खदान	५ ५९,१९६	१ २२ ६९१	२२ ८
कोयले की खानें	३,४८,६६३	९० ०४६	२५ ८
४ बागान	अ	११२ २३४	—
५ यातायात (१९५०-५१)	६,२१ ८२५	४ ०६ ९४६	६२ ६
डाक तथा तार	२ १२,३८०	६४ २४४	२० २
ट्रामवे (जनवरी ५२)	१७,८५५	८ ५७७	४१ ९
सामुद्रिक	५६,२५०	२८,०६२	५० ९
गोदी तथा बन्दरगाह	अ	६८,९०३	—
५ केन्द्रीय तथा राज्य सार्वजनिक निर्माण विभाग (रेल यातायात को सम्मिलित करते हुए)	६ ६२ ४५५	१४ ४५७	२ २

इस अध्ययन से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुछ उद्योगों के सिवाय जैसे सूती वस्त्र उद्योग चमड़ा तथा चमड़े की वस्तुयें रसायन तथा रसायन की वस्तुयें सीमेंट, मूल धातु उद्योग रेलवे सामुद्रिक, ट्रामवे तथा बन्दरगाह श्रमिक श्रमिक संघता का विकास नगण्य है। कुछ वर्गों के श्रमिकों में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि श्रमिक संघता नाम मात्र को भी नहीं है। निर्माण वर्ग के अन्तर्गत १९५१–५२ में कुल सदस्यता १८४५१ बताई गई थी। १९५१ में केन्द्र तथा राज्य सार्वजनिक निर्माण विभागों तथा बड़ी नदी घाटी योजनाओं में कुल श्रमिकों की संख्या लगभग २० ६४ ८७२ थी। इसी प्रकार घरेलू नौकरों, होटल आहारगृहों तथा भोजनालय के कर्मचारियों और गृह तथा सौंदर्य प्रसाधन की दुकानों के कर्मचारियों धुलाईगृहों धार्मिक धर्मार्थ तथा कल्याणकारी सेवाओं में कोई भी ऐसा श्रमिक संघ नहीं है जिसका नाम लिया जा सके।

निम्नलिखित सारणियों द्वारा विभिन्न राज्यों में श्रमिक संघ सदस्यता के अनुमान स्पष्ट किये गये हैं। इन आंकड़ों की तुलना उन व्यक्तियों से, जो श्रमिक संघों के अन्तर्गत लाये जा सकते हैं की जा सकती है। हमने अपना अध्ययन उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रखा है जो मुख्य रूप से जीविकोपार्जन के लिये मजदूरी अथवा वेतन पर आधारित हैं। एक राज्य से दूसरे राज्य के आंकड़ों में काफी भिन्नता है। बिहार राज्य में लगभग ५५% कर्मचारियों को श्रमिक संघों में संगठित किया जा चुका है। दिल्ली में यह प्रतिशत ४२ उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल में ३५ आसाम में ३२ बम्बई में ३० उत्तरप्रदेश में १३ मध्य प्रदेश में ११ तथा पंजाब में केवल ३ प्रतिशत है।

सारणी ३६

१९५१ मे विभिन्न राज्यो म कुल श्रमिक सघ सदस्यता का अनुमान

	पजीकृत श्रमिक सघो की सख्या	विवरण भेजने वाले श्रमिक सघो की सख्या	विवरण भेजने वाले सघो की सदस्यता	औसत सदस्यता	विवरण भेजने वाले पजीकृत सघ	विवरण भेजने वाले पजीकृत सघो की अनुमानित सदस्यता	अपजीकृत सघो की अनुमानित सदस्यता अर्थात् पजीकृत सघो की सदस्यता का २५ प्रतिशत	सभी श्रमिक सघो की अनुमानित सदस्यता
राज्य सघ								
आसाम	६०	३५	११२ ७३६	३,२२१	२५	८० ५२५	४८,३१५	२४१ ५७६
बिहार	४५४	२१५	१६४,००७	७६३	२३९	१८२,३५७	८६,५९१	४३२,४५५
बम्बई	५९१	३६६	३५०,९१७	५५९	२२५	२१५ ७७५	१४१ ६७३	७०८ ३६५
मध्यप्रदेश	६६	५८	३९ ३०७	६७८	३८	२५,७६४	१६,२६८	८१ ३३९
मद्रास	७४३	२२६	१३८ ०३७	५३९	४८७	२६२,८९३	१००,१९५	५००,७०५
उडीसा	४४	२६	६१,०९७	६१९	१८	११,१४२	१८,०६०	९०,२९९
पजाब	४९	४८	९ ७२०	२०३	१	२०३	३,४८१	१२,४०४
उत्तरप्रदेश	३५७	३६५	१७०,५८४	४६७	१९२	८९,६६४	४०,०६२	२००,३१०

१	२	३	४	५	६	७	८
पश्चिमी बंगाल	९१२	४४३	३३८,७३५	७६५	४९६	३५८,७८८	१७४,३८०	८७१,६००
अजमेर	१८	१७	६,४६२	३८०	१	३८०	१,७१०	८,५५२
भोपाल	७	५	१,२२७	२४५	१	४६०	४२६	२,१४६
कुर्ग	२	२	५६४	२८२	—	—	१४१	७०५
दिल्ली	७४	६०	७८,६३१	१,३११	१४	१८,३५४	२४,२४६	१२१, २३

सारणी ४०

१९५१ में विभिन्न राज्यों में श्रमिक संघता का प्रसार

	अकृषीय कर्मचारी	अनुमानित व्यवसाय संघ सदस्यता	व्यवसाय संघता का विस्तार प्रतिशत
उत्तर प्रदेश	१५,००,०००	१,००,०००	१३
बिहार	७८७०००	४,३३,०००	५५
उड़ीसा	२५६,०००	९० ०००	३५
पश्चिमी बंगाल	२८ ०० ०००	८,७२,०००	३८
आसाम	७,४०,०००	२ ४०,०००	३२
मद्रास	२४ ०० ०००	५ ००,०००	२१
बम्बई	२३ ०० ०००	७ ००,०००	३०
मध्य प्रदेश	७,२७ ०००	८१,०००	११
पंजाब	३,९०,०००	१२,०००	३
दिल्ली	२ ६१,०००	१,२१,०००	४२

यद्यपि १९६१ की जनगणना के अंतिम और विस्तृत आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं किन्तु विभिन्न राज्यों की जनसंख्या के कुछ अन्तःकालीन अनुमान उपलब्ध हैं। सारणी ४१ में विभिन्न राज्यों और सम्पूर्ण देश में संघता की स्थिति स्पष्ट की गई है। यह अनुमान लगाया गया है कि कुल जनसंख्या का लगभग ४० प्रतिशत जिसमें काम करने वाली अवस्था के लोग होते हैं, श्रमिक संघों के, अन्तर्गत संगठित किया जा सकता है। मार्च १९५८ को समाप्त होने वाले वर्ष में विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्य संख्या से स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिक संघता बहुत ही निम्न स्तर पर चल रही है और इसके विस्तार में १९५१ की जनगणना के बाद कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। सम्पूर्ण देश में संघता का विस्तार बहुत कम मात्रा में है। प्रत्येक १०० व्यक्तियों में से जो संघों में सम्मिलित हो सकते हैं केवल २ १ प्रतिशत विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों के सदस्य रहे हैं। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में यह प्रतिशत ० ५ से २० ५ के बीच घटता बढ़ता है। छः राज्यों— मध्यप्रदेश उड़ीसा पंजाब, राजस्थान उत्तरप्रदेश और हिमाचल प्रदेश में श्रमिक संघता १ प्रतिशत से भी कम है। केवल दिल्ली में सदस्यता २० ५ प्रतिशत है।

यदि हम विवरण न भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्यता को भी सम्मिलित कर लें तो भी कोई विशेष अन्तर नहीं आयगा। प्रायः यह छोटे संघ ही हैं जो विवरण नहीं भेजते।

सारणी ४१

विभिन्न राज्यो म व्यवसाय सघता का विस्तार
(१९६१ की जनगणना पर अनुमान आधारित है)

	जनसख्या (हजारो म)	काय शक्ति (१००० का ४०%)	विवरण भेजने वाले पजीकृत व्यवसाय सघो की सदस्यता १९५८–५९	सघता की स्थिति
आन्ध्र	३५ ९८२	१४,३९३	१७७ ९४७	१ २
आसाम	११,८७३	४,७४९	२४८ २१९	५ २
बिहार	४६,४५६	१८,५८२	३७१ १६८	२ ०
बम्बई	२०,६३३	८ २५३	६१३ ४६५	२ ५
गुजरात और महाराष्ट्र	३९,५५४	१५ ८२१		
केरल	१६,९०४	६ ७६२	३७५ ८५७	५ ६
मध्य प्रदेश	३२,३७२	१२ ९४९	६२ ५६७	० ५
मद्रास	३३ ६८७	१३ ४७५	३८४ ६८०	२ ९
मैसूर	२३ ५८७	९ ४३५	१०८ ७०६	१ २
उडीसा	१७,५४९	७ ०२०	४४ ८३६	० ६
पजाव	२०,३०७	८ १२२	५७ ६४३	० ७
राजस्थान	२०,१५६	८ ०६२	३९ ७८१	० ५
उत्तर प्रदेश	७३ ७४६	२९ ४९८	२४६ ४४२	० ८
पश्चिमी बगाल	३४ ९२६	१३ ९७०	७३५ ४९६	५ ३
अडमान	६३	२५	२ ९६९	११ ८
दिल्ली	२ ६५९	१ ०६४	२१७ १६६	२० ४
हिमाचल प्रदेश	१ ३५१	५४०	२,४८८	० ५
त्रिपुरा	१ १४२	४५७	७ ७१८	१ ७
भारत	४३९,२३५	१७५,६९४	३ ६४७ १४८	२ १

विभिन्न केन्द्रीय श्रमिक सघ सगठनो की सदस्यता के सत्यापन से यह स्पष्ट हो गया है कि बनाई गई और सत्यापित सदस्यता म कितना अन्तर है। इसी प्रकार यह भी अनुभव किया जा रहा है कि मुश्किल से ही कोई महत्त्वपूर्ण अपजीकृत

श्रमिक सघ होगा । इसलिए सरलता से यह कहा जा सकता है कि इस ग्रवधि म सम्पूर्ण रूप से कोई उल्लेखनीय सघता म उग्रता नहीं ग्राई है ।

फिर भी यदि हम विवरण भेजने वाले पजीकृत श्रमिक सघो की सदस्यता की तुलना विभिन्न फक्ट्रियो खाना, रोपण क्षेत्रो, ग्रादि के सवायोजन स करें तो यह पता चलता है कि इस ग्रवधि म श्रमिक सघो की सदस्यता मे वृद्धि हुई है । १६५८ म उत्पादन उद्योगो म सघता की स्थिति ३८ ४ प्रतिशत थी, खाना तथा लदाना म ३७ २ प्रतिशत, रोपण म ४७ ६ प्रतिशत जबकि इसकी तुलना म १६५१ म यह प्रतिशत क्रमश २७ ६ प्रतिशत, १६ ३ प्रतिशत ग्रौर १२ २ प्रतिशत ही था । लगभग सभी उद्योगो मे श्रमिक सघो की शक्ति म वृद्धि हुई है यद्यपि सूती वस्त्र उद्योग चमडा, रलवे ग्रौर डाक तथा तार कमचारियो म कुछ ह्रास प्रतीत होता है । इन परिवतनो को सारणी ४२ म दिखाया गया है ।

सारणी ४२ के ग्रध्ययन म पता चलता है कि जिन क्षेत्रो ग्रथवा प्रदेशो म पहले श्रमिक सघ नही थे वहाँ श्रमिक सघ सदस्यता म कोई विस्तार नही हुग्रा है तथा जिन उद्योगो म सगठित कार्यों का ग्रनुभव है वहाँ श्रमिक सघता उत्तरोत्तर उग्र होती जा रही है । हम यह ग्राशा कर सकते हैं कि ग्राने वाले वर्षों मे श्रमिक सघता का शन शन ग्रन्य क्षेत्रो म भी प्रसार होगा ।

सारणी ४२

१६५८ म कुछ चुने हुए उद्योगो म व्यवसाय सघता की स्थिति

उद्योग	सवायोजन	विवरण भेजने वाले पजीकृत सघो की सदस्यता	सघता की स्थिति%
१–निर्माण उद्योग	३ ४१२,६४७	१,३११,१२८	३८ ४
(१) खाद्य पेय तथा तम्बाकू	६८७,४०५	२६२,३४८	४२ ५
(२) वस्त्र उद्योग	१,१४०,७६६	५३७,८६८	४७ २
(ग्र) सूती	७६८ ६६४	२६०,७११	३३ ६
(३) लकडी तथा काक	४३,१६०	११,६५४	२७ ७
(४) कागज तथा कागज की वस्तुएँ	३५ २६३	१६,१००	४५ ६
(५) मुद्रण तथा प्रकाशन	६४,२११	४३,८२८	४६ ५
(६) चमडा	१६,७८०	७ ७६३	३६ ४
(७) रबर ग्रौर रबर की वस्तुएँ	३१ ३८८	१२ ०२७	३८ ३

१	२	३	४
(८) रसायन	११६ ४६४	५२ ८०५	४४ २
(९) धातुरहित खनिज	१५८ २१६	६७ ९१५	४२ ९
(म) सीमट	२७,०८४	२१ ४७५	७९ ३
(१०) मूल धातु उद्योग	१३३ ०२९	९१ ९६५	६९ १
(११) मशीनरी सामान्य	१४६,२०५	२८ ५००	१९ ५
(१२) मशीनरी विद्युतीय	४६,१७४	१० ९८५	२३ ३
(१३) यातायात उपकरण	३०० ६७४	६ ८४६	२ ३
२–खनन तथा खदान	६४९ ३६०	२४१ ६२०	३७ २
(म) कोयले की खानें	३८२,१७२	१६३,८४३	४२ ९
३–रोपण	१ २६७ ९९५	२७९ ०२७	४२ ९
४–रेलवे	१,११८,८४८	२६४ २२८	२३ ६
५–डाक तथा तार	३०८ ६१८	४० २७५	१३ ०

५

महिला सदस्यता

महिला श्रमिकों के श्रमिक संघ संगठित करने के लिये पहले काफी प्रयत्न किये गये थे। १९२७ में ही बम्बई की महिला श्रमिकों ने नगर के विभिन्न कर्मचारियों को संगठित करने के लिये सभा की। दूसरे व्यवसायों में भी महिलाओं को संगठित करने के प्रयत्न किये गये। सितम्बर १९३३ में बम्बई प्रेसीडेंसी महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। हमारे देश में केवल महिलाओं का कोई श्रमिक संघ नहीं है। महिलाओं ने जहाँ भी और जब भी चाहा उन्हें पहले से ही विद्यमान श्रमिक संघों में सम्मिलित कर लिया गया।

१९८१ की जनगणना के अनुसार १५१ लाख ग्रामीण महिलायें और २१ लाख शहरी महिलायें आत्मनिर्भर हैं। इनके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों की २३२ लाख महिलायें अर्जन आश्रित हैं। उन महिलाओं की संख्या जो शहरी क्षेत्रों में अर्जन आश्रित हैं केवल १२ लाख हैं। इस प्रकार कुल १७२ लाख महिलायें स्वनिर्भर हैं और २४४ लाख महिलायें अर्जन करके अपने परिवार की आय को अनुपूरित करती हैं। महिला श्रमिकों की शक्ति और महत्त्व पर बल देने की आवश्यकता नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला श्रमिकों का अधिक महत्त्व है जहाँ उनमें से लगभग ८० प्रतिशत खेतिहर की तरह काम करती हैं। संगठित उद्योगों में भी उनकी संख्या संतोषजनक है। १९५१ में फैक्ट्रियों में काम करने वालों की प्रतिदिन की औसत संख्या २८,३१,६६६ थी जिसमें से २,८३,८२४ अर्थात् ११.४% महिलायें थीं। महिला श्रमिकों की संख्या लगभग ११ प्रतिशत चल रही है। यद्यपि उनकी संख्या १९५७ और १९५८ में घटकर क्रमशः ३,४६,१३१ और २,४३,७६६ हो गई थी। इसके अलावा खानों में महिला श्रमिकों का सापेक्ष महत्त्व काफी अधिक है। विभिन्न राज्यों में खानों की कुल श्रमशक्ति ५,४९,०४८ में से १९५०–५१ में १,०९,६०७ महिलायें थीं। श्रमशक्ति में वह लगभग २० प्रतिशत थीं। १९५८ में खानों में काम करने वालों की संख्या [illegible]६९,३६० था जिसमें महिला श्रमिक १,१७,८४० अर्थात् कुल का लगभग १८ प्रतिशत थीं। महिलाओं को जमीन के नीचे काम करने की मनाही है। यदि हम महिला श्रमिकों के सेवायोजन की मूल और सतह (भूमि के ऊपर) में काम करने के आधार पर संगणना करें तो सेवायोजन का प्रतिशत बढ़कर

३० हो जाता है। रोजगार क्षेत्र में कृषीय स्वभाव के कारण श्रमशक्ति का लगभग ४०% महिलाओं द्वारा सरचित है। १९५०-५१ में आसाम चाय बागानों में कुल श्रमिक ६०३,८६३ काम करते थे जिनमें से महिलाओं की गणना २४७८८७ थी। १९५५ में उनके सेवायोजन का प्रतिशत ४१ था। १९६० में रलवे रेलवे मंडल और रलवे कार्यालयों में कुल काम करने वाले लोगों में महिलायें ६.१% थी।

बहुत कम महिलायें श्रमिक संघों की सदस्य हैं। श्रमिक संघों के प्रति महिलाओं में कम रुचि होने के कई कारण हैं। उनमें से कुछ को घरेलू काम अच्छे लगते हैं और महिला श्रमिकों के लिये बच्चों की देखभाल करना तो हर जगह एक प्रमुख काय है। उद्योगों में काय करने के अलावा उन्हें घर के कार्यों को भी देखना पड़ता है जिससे श्रमिक संघ कार्यों के लिये न उन्हें समय मिल पाता है और न शक्ति अथवा रुचि रह जाती है। भारत में इस प्रकार की सीमायें और भी अधिक बाधक हो गई हैं क्योंकि काम के घंटे अधिक हैं यातायात की कठिनाइयां हैं बड़े-बड़े परिवार हैं और घरों में आधुनिक सुविधायें प्राप्त नहीं हैं। महिला श्रमिकों की सघता में हमारे देश में कुछ अन्य विशिष्ट बाधायें हैं। महिलाओं में काफी अधिक निरक्षरता है तथा उनका घर और बाहर का जीवन धार्मिक सामाजिक प्रथाओं और परम्पराओं द्वारा सीमित कर दिया गया है। ये तथ्य महिलाओं के जीवन और विचारों को इस प्रकार प्रभावित करते हैं कि उनमें श्रमिक संघों में शामिल होने के प्रति हतोत्साह रहता है। कुछ व्यवसायों में श्रमिक संघों की संरचना पर लोग नाक भी सिकोड़ते हैं कुछ ऐसा संयोग है कि उन्हीं व्यवसायों में से कुछ में महिला श्रमिकों की काफी संख्या है।

भविष्य में महिला श्रमिकों की संख्या उद्योगों में बढ़ जाने की सम्भावना है। आर्थिक विकास के लिये हमारी योजनाओं में महिलाओं को अधिकाधिक रोजगार देने की व्यवस्था है। अधिकाधिक यन्त्रीकरण सामाजिक अधिनियम शिक्षा के प्रसार परिवार की आवश्यकतायें पारिवारिक आय की अपर्याप्तता और आर्थिक स्वतन्त्रता की इच्छा के कारण उनकी शक्ति पिछले बीस वर्षों में गत्‍न शन बढी है। आने वाले वर्षों में औद्योगिक रोजगार के अतिरिक्त महिलाओं की संख्या कार्यालयों तथा नर्सिंग और अध्यापन जैसे-व्यवसायों में तीव्रगति से बढ़ेगी।

मजदूरी के लिये महिलाओं द्वारा बाहर काम करने के फलस्वरूप पारिवारिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। इसकी तथा अन्य दूसरे दुष्परिणामों की आसानी से अवहेलना नहीं की जा सकती। यदि बचपन में मां की उचित देखभाल न मिले तो उसके दुष्प्रभावों से जन्म भर छुटकारा नहीं मिलता है। पश्चिमी देशों में बढ़ती हुई संख्या में बाल अपराध गर्भपात महिलाओं की अस्वस्थता गर्भिणी होने के समय की दुर्घटनायें गर्भ नष्ट हो जाना असहज प्रसूति और समय से पहले बच्चों को जन्म देना आदि महिलाओं को रोजगार देने के विरुद्ध चेतावनी के प्रतीक हैं। वे इसी भावना

के पोषक हैं कि पारिवारिक कल्याण और राष्ट्रीय सम्पन्नता के लिए यह अहितकारी है। महिलाओं की सेवामुक्ति के कुछ दुष्प्रभावों को उचित और पर्याप्त सुरक्षा साधनों को अपनाकर नियंत्रित और कम किया जा सकता है।

उद्योगों और कार्यालयों में महिलाओं को रोजगार देने से कुछ विशेष समस्यायें, जैसे—काम के घंटे, रात्रि में काम, अतिरिक्त समय तक काम, स्वास्थ्य, सफाई, कल्याण, स्नानघरों और प्रसाधन कोष्ठों की सुविधायें, बच्चों के लिए शिशुशाला का प्रबन्ध, काम के समय में बच्चों की देखभाल और खिलाने-पिलाने की सुविधा, बच्चों के जन्म से पूर्व तथा बाद में अवकाश तथा मातृत्व की सुविधायें, पैदा हो गई हैं। महिला श्रमिकों के हितों की रक्षा, उनके बच्चों के भविष्य और स्वस्थ पारिवारिक जीवन के लिए समाज, सरकार और सेवायोजकों को इन सभी सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिए। श्रमिक संघों को भी यह देखना चाहिए कि महिला श्रमिकों की काम और नौकरी की अवस्थायें उचित रहें। इसलिए यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक संख्या में महिलायें श्रमिक संघों में शामिल हों, उनके कार्यों में रुचि लें। श्रमिक संघों को भी अपनी परिषदों और समितियों में महिलाओं का विशेष प्रतिनिधित्व रखना चाहिए।

श्रमिक संघों की महिला सदस्यता धीरे-धीरे बढ़ती रही है। निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है कि निरपेक्ष और सापेक्ष रूप में उनकी संख्या और शक्ति दोनों ही की स्थिति काफी अच्छी है।

सारणी ४३

१९२७–२८ से १९४८–४९ के विवरण भेजने वाले पंजीकृत श्रमिक संघों की महिला सदस्य संख्या

वर्ष	कुल सदस्यता	महिला सदस्यता	महिला सदस्यता का %
१९२७–२८	१,००,९१९	१,१६८	१ २
१९२८–२९	१,८१,०७७	३,८४२	२ १
१९२९–३०	२,४२,३५०	३,२९९	१ ५
१९३०–३१	२,१९,११५	३,१५१	१ ४
१९३१–३२	२,३५,९६३	३,४५४	२ ४
१९३२–३३	२,३७,३६९	५,०९०	२ १
१९३३–३४	२,०८,०७१	२,९९९	१ ४
१९३४–३५	१,८४,९१८	५,८३७	१ ७
१९३५–३६	२,६८,२२६	७,३०९	२ ७

१	२	३	४
१९३६–३७	२ ६१ ०४७	९,०२४	३ ५
१९३७–३८	३ ९० ११२	१४,७०२	२ ८
१९३८–३९	२,९९ १५९	१० ९४५	२ ७
१९३९–४०	५ ११ १३८	१८ ६१२	३ ६
१९४०–४१	५,१३,८२२	१९ ४०७	३ ८
१९४१–४२	५ ७३ ५२०	१७ ०९४	२ ०
१९४२–४३	६ ८५ २९९	२५ ९७२	३ ८
१९४३–४४	७,८०,९६३	२० ८६६	२ ७
१९४४–४५	८ ८९ ३८८	३६ .१५	४ ५
१९४६–४७	१२ ३१ ९६२	६४ ७९८	४ ९
१९४७–४८	१६,६२ ९२९	१ ०२ २९९	६ २
१९४८–४९	१९ ६० १०७	१ १९ ३५५	६ १
१९४९–५०	१८,२१ १३२	१ १९ ५६५	६ ६
१९५०–५१	१७ ५६ ९७१	१ ०६ ४२४	६ १
१९५१–५२	१९ ९६ ३११	१ ३६ २५७	६ ८
१९५२–५३	२०,९९,००३	१ ५६ ५६७	७ ५
१९५३–५४	२१,१२ ९६५	१,७६ ४७६	१० ६
१९५५–५६	२२ ७४,७३२	२,४०,०४५	१० ६
१९५६–५७	२३ ७६ ७६२	२ ८० १०५	११ ८
१९५७–५८	३०,१५ ०५२	३ ३१ ८८२	११ ०
१९५८–५९	३६ ४७ १४८	३ ९२ ३५४	१० ८
१९५९–६०	३९ २१ ०००	३ ९२ ०००	१० ०

विवरण भेजने वाले पजीकृत श्रमिक सघो की महिला सदस्य सख्या जो १९२७–२८ म १,१६८ थी १९५१–५२ मे बढकर १ २६ २५७ हो गई। इस काल म पजीकृत श्रमिक सघो की सदस्यता १०० ६१९ से १८ ५३ २१६ अर्थात् १ ८४२ प्रतिशत से बढ गइ। किन्तु महिला सदस्यता म वृद्धि इस अवधि मे १० ६६६ प्रतिशत स हुई। महिला सदस्या की सख्या मे वृद्धि के परिणामस्वरूप उनकी सापेक्षिक स्थिति जो १९२७–२८ मे १ २ प्रतिशत थी बढकर १९४९–५० म ६ ६ प्रतिशत हो गई। उसके बाद थोडा-सा ह्रास हुआ अर्थात् १९५०–५१ म प्रतिशत ६ १ तथा १९५१–५२ म ६ ३ रह गया। परन्तु श्रमिक सघा म महिला सदस्या

महिला श्रमिक संघों का औद्योगिक वर्गीकरण सारणी ४९ में किया गया है। इस सारणी के अध्ययन से विभिन्न उद्योगों में इनकी स्थिति का पता चलेगा। कुल श्रमिक संघ सदस्यता में महिलाओं का उचित अनुपात कृषि तथा सम्बद्ध वर्ग में था जहाँ इनकी संख्या का प्रतिशत में अधिक प्रतिशत १९५१-५२ में कुल सदस्यता का ५१.४ तथा १९५८-५९ में ३६.० था। खनन क्षेत्र में उनका प्रतिशत १९५१-५२ में ११.६ और १९५८-५९ में ३६.२ था। इन वर्गों में अधिकांश इस में महिलाएँ काम करती हैं। अन्य उद्योगों की अपेक्षा इनमें उनकी संख्या अधिक है। बागान उद्योग में महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। १९५१-५२ में कुल श्रमिक संघ सदस्यता में इनका प्रतिशत ५७ तथा १९५८-५९ में ६२.२ था। इस सम्बन्ध में अन्य महत्वपूर्ण वर्ग खनन तथा खदान है जहाँ कुल श्रमिक संघ सदस्यता में महिलाएँ २०.१ प्रतिशत थीं। किन्तु १९५८-५९ में यह प्रतिशत घटकर १४ ही रह गया। उत्पादन वर्ग के श्रमिक संघों में महिलाएँ केवल ७ प्रतिशत थीं। विभिन्न उद्योगों में यह प्रतिशत अलग-अलग है। वस्त्र उद्योग में १९५१-५२ में ८.९ तथा १९५८-५९ में ७.० प्रतिशत था जबकि सूती वस्त्र उद्योग में क्रमशः ६.७ तथा ८.२ प्रतिशत रहा। अन्य महत्वपूर्ण उद्योग धातुरहित खनिज वस्तुओं की जहाँ कुल सदस्यता में से १९५१-५२ और १९५८-५९ में महिलाओं का प्रतिशत क्रमशः १२.२ तथा ६.० था। विद्युत, जल, सफाई सेवाओं के वर्ग को छोड़कर अन्य वर्गों में महिलाओं की संख्या नहीं के बराबर थी। इनमें महिला सदस्यता का प्रतिशत १० और ११ के बीच विचरण करता रहा।

यदि हम विभिन्न उद्योगों के सभी संघों की कुल महिला सदस्यता और उनके प्रतिशत को देखें, सापेक्षिक महत्व का अध्ययन करें तो उत्पादन वर्ग का हम अत्यन्त महत्वपूर्ण पाते हैं। इसमें १९५१-५२ में कुल महिला सदस्यता का ४४ प्रतिशत था तथा संख्या ११६,०५२ से ५१,५९६ थी। इस वर्ग के अन्तर्गत सूती वस्त्र उद्योग में सबसे अधिक ६० प्रतिशत सदस्यता थी। कुल सदस्यता में उनका अनुपात १९५१-५२ में ६० प्रतिशत था। सूती वस्त्र की परिधि में, इस वर्ग के अन्तर्गत महिलाओं की ओर वस्त्र उद्योग वर्ग के सभी श्रमिक संघों की १०० महिला सदस्या में से ८० महिलाएँ सूती वस्त्र उद्योग के श्रमिक संघों से सम्बद्ध थीं। इस वर्ग की कुल महिला सदस्यता का प्रतिशत १९५८-५९ में घटकर २८.७ रह गया। फिर भी, वस्त्र उद्योग वर्ग तथा सूती वस्त्र उद्योग का सापेक्षिक महत्व बना ही रहा।

कृषि तथा सम्बद्ध वर्ग अन्य महत्वपूर्ण उद्योग थे जहाँ १९५१-५२ में कुल सदस्यता का ३१.८% और १९५८-५९ में ४२.१% महिलाएँ थीं। इस वर्ग में बागान का उल्लेखनीय स्थान है। इस वर्ग में उनका भाग ६० प्रतिशत से अधिक तथा कुल का ३१.४ १९५१-५२ में था। १९५८-५९ यह प्रतिशत घटकर ४१.३०

रह गया। खनन तथा खदान वग की सापेक्षिक स्थिति म काफी प्रगति हुई १६५०–५१ मे कुल सदस्यता का प्रतिशत १४ से बढकर १६५१–५२ मे २३ हो गया। इस वग म अकेले कोयले की खाना ने ही ७० प्रतिशत से अधिक महिला श्रमिक सघिको का अशदान किया। १६५८–५६ म फिर महिला सदस्यता इस वग में घटकर १३ ६ प्रतिशत रह गई।

सारणी ४६

१९५१-५२ और १९५८-५९ में महिला श्रमिक सघिको का औद्योगिक वर्गीकरण

उद्योग	१९५१-५२				
	विवरण भेजने वाले सघो की सख्या	कुल सदस्यता	महिला सदस्यता	कुल सदस्यता म महिलाश्रा का प्रतिशत	महिला सदस्यता का प्रतिशत
१-कृषि तथा तत्सम्बधी काय	६०	१,१८,५०४	२५,४१२	२१ ४	२१ ८
(१) रोपण	३४	१,१३,२३४	२४,४१८	२१ ६	२१ ०
(२) कपास	३	१,३३९	७६३	५७ ०	०० ७
(३) अन्य	२३	३ ९३१	२३१	५ ९	० २
२-खनन तथा खदान	८१	१ ३२,६६१	२६,६५४	२० १	२३ ०
(१) कोयला	५७	९०,०४६	१९ ५७६	२१ ७	१६ ९
(२) अन्य	२४	४२,६४५	७,०७८	१६ ६	६ १
३-उत्पादन	९२४	७,१२,६४३	४१,५९६	७ २	४४ ५
(१) खाद्य, पेय तथा तम्बाकू	२५१ -	१ २२,६७९	८,६२५	७ ०	७ ४

१	२	३	४	५	६
(२) वस्त्र उद्योग	२१८	३,४८,५३२	३० ६०१	८ ६	२६ ६
(अ) सूती	१३६	२,५७,८५१	२५,०२३	६ ७	२१ ६
(ब) जूट	४५	५६,६११	४,६५३	८ २	४ ०
(स) अन्य	३७	३४ ०७०	१,२२५	३ ६	१ १
(३) वस्त्र, जूते तथा वस्त्रों से बना सामान	१७	१५,७७५	२४३	१ ५	० २
(अ) कपड़े	२	४२३	—	—	—
(ब) जूते	४	११,२०२	४	० ०	० ०
(स) अन्य पहनने के कपड़े तथा वस्त्रों से बना सामान	११	४ १५०	२३९	५ ८	० २
(४) लकड़ी तथा काक	१२	३,२५५	२३६	७ ३	० २
(५) कागज तथा कागज की वस्तुये	१३	७,१४४	३१६	४ ४	० ३
(६) मुद्रण, प्रकाशन तथा तत्सम्बंधी व्यवसाय	७५	२६,७६२	४०	• २	० ०
(७) चमड़ा तथा चमड़े की वस्तुये	१३	४,४००	१५३	३ ५	० १

१	२	३	४	५	६
(८) रबर की वस्तुये	८	४७७६	—	—	—
(९) रसायन तथा रसायन की वस्तुये	७२	३०५३५	१,५९०	१३ ३	२ ७
(१०) धातुरहित खनिज वस्तुये	४७	२३,४६४	३,१२७	१३ ३	२ ७
(अ) सीमेंट	१९	१३ ९२५	१ ५१६	१० ९	१ ३
(ब) अन्य	२८	९,५३९	१ ६११	१६ ९	१ ४
(११) मूल धातु उद्योग	४२	७६,१७१	२,५९७	३ ४	२ २
(अ) लोहा और इस्पात	३८	७१,६९१	२ ५८१	३ ६	२ २
(ब) अन्य	४	४८०	१६	३ ३	० ०
(१२) धातु की वस्तुये	३४	१०,२२४	१५५	१ ५	० १
(१३) मशीनरी	५०	१४,०३०	८३३	५ ९	० ७
(अ) सामान्य	३८	१०,८६०	७११	६ ५	० ६
(ब) विद्युतीय	१२	३ १७०	१२२	३ ८	० १
(१४) यातायात उपकरण	५	१ ३३४	—	—	—
(१५) अन्य	६७	३०,२३२	२,७७८	९ २	२ ४
४–निर्माण	३८	१४,४५१	४७	० ३	० ०
५–विद्युत, गस जल तथा सफाई सेवायें	१६१	३१,१२४	३,४३४	११ ०	३ ०

१	२	३	४	५	६
६–वाणिज्य	३९९	९१,६५१	२६४	० ३	० ३
(अ) थोक और फुटकर व्यापार	१३१	३३,३३४	१६६	० ६	० २
(ब) अधिकोषण तथा बीमा	१५६	३९,५०३	६६	० २	० १
(स) अन्य	८२	१८,८१४	२९	० २	० ०
७–यातायात सग्रह तथा सचार	२७१	८,९२,४२१	२,४५०	० ३	२ १
(अ) रेलवे	७०	४०६,९४६	१,२३८	० ३	११
(ब) ट्रामवे	६	८,५७७	३	० ०	० ०
(स) मोटर यातायात	९६	२९ ५६०	७०	० २	० १
(द) सामुद्रिक	२२	२८,०६३	२	० ०	० ०
(य) गोदी तथा बन्दरगाह	२९	६८ ९०३	४७३	० ७	० ४
(र) डाक तथा तार	९	६४ २४४	२२०	० ३	० २
(ल) अन्य	३९	३८,३५४	४६४	१ २	० ४
८–सेवाय	१९६	४७,५७४	२,७३६	५ ८	२ ४
९–विविध	१५३	४७,८०७	३ ४२९	७ २	२ ९
योग	२,२५२	१८,४७,२९१	१,१६ ०५२	६ ३	१०० ०

सारणी ४६ क्रमश

१९५८-५९ में महिला व्यवसाय संघियों का औद्योगिक वर्गीकरण

उद्योग	विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	कुल सदस्यता	महिला सदस्यता	कुल सदस्यता में महिलाओं का प्रतिशत	महिला सदस्यता का प्रतिशत
१–कृषि तथा तत्सम्बन्धी काम	१२१	४,४७,४४०	१,१६,२२६	२६ ०	४२ १
(१) रोपण	५९	३,९१,१६६	१ १४,०७८	२९ २	४१ ३
(२) कपास	६	१,०१०	६३८	६३ २	० २
(३) अन्य	५६	५५,२६४	१,५१०	७ ३	० ५
२–खनन तथा खदान	१२३	२,६९ ८७५	३७,७५३	१४ ०	१३ ६
(१) कोयला	६२	१,९३,९२५	१८,६१९	९ ६	६ ७
(२) अन्य	६१	७५,९५०	१९,१३४	२५ २	६ ९
३–निर्माण	२,१०१	१२,०२,८३७	७९ १११	६ ६	२८ ७

१	२	३	४	५	६
(१) खाद्य पेय तथा तम्बाकू	५४२	२,३५,५१७	२६,२५७	१११	६५
(२) वस्त्र उद्योग	३६६	५,२०,३३३	३६,३१७	—	१३२
(अ) सूती	१९०	२,३४,६५६	१६,३०८	—	७०
(ब) जूट	—	—	—	—	—
(स) अन्य	२०६	२८५,६७८	१७,००६	५६	६२
(३) वस्त्र जूते तथा वस्त्रो से बना सामान	८०	१५,३७०	२२	०१	००
(अ) वस्त्र	—	—	—	—	—
(ब) जूते	—	—	—	—	—
(स) अन्य पहनने के कपडे तथा वस्त्रो से बना सामान	—	—	—	—	—
(४) लकडी तथा काक	४१	७९९७	१०३	१३	००
(५) कागज तथा कागज की वस्तुये	१७८	४२१३७	१९६	०४	०१
(६) मुद्रण, प्रकाशन तथा तत्सम्बन्धी व्यवसाय	७५	२६,७६२	४७	०२	००

१	२	३	४	५	६
(७) चमड़ा तथा चमड़े की वस्तुयें	३१	१५ ०४८	१८३	१ २	० १
(८) रबर की वस्तुये	२२	४,१४६	९७	२ ३	० ०
(९) रसायन और रसायन की दवाएं	१५९	४१,९५५	१,८३०	४ ४	० ७
(१०) धातुरहित खनिज वस्तुये	१३०	४६ ४५७	४,१८७	९ ०	१ ५
(अ) सीमेंट	३८	१८,०८९	२ १६०	११ ९	० ८
(ब) अन्य	९२	२८,३६८	२ ०२७	७ १	० ७
(११) मूल धातु उद्योग	१२४	९५,९९४	२,८४९	३ ०	१ ०
(अ) लोहा और स्पात	—	—	—	—	—
(ब) अन्य	—	—	—	—	—
(१२) धातु की वस्तुये	९२	२३,२८६	५३२	२ ३	० ७
(१३) मशीनरी					
(अ) सामान्य	११५	५९,९२०	१ ७९४	२ ०	० ६
(ब) विद्युतीय	८०	४,८७७	२१६	४ ४	० १

१	२	३	४	५	६
(१४) यातायात उपकरण	१९	१६,४०१	१६	० १	० ०
(१५) अन्य	१६१	५८,०८०	३ ६८६	६ ३	१ ३
४–निर्माण	६६	५०,०४६	१ १४२	२ ३	० ४
५–विद्युतीय, गैस तथा सफाई सेवाएं	३२३	१,०६,२२१	११,३०१	१० ६	४ १
६–वाणिज्य	६०२	१,४१,११४	१,४९९	१ १	० ६
(अ) थोक तथा फुटकर व्यापार	२६२	४५,९९४	३०१	० ६	० १
(ब) अधिकोषण तथा बीमा	२४३	७४ ६८०	१ १६४	१ ६	० ४
(स) अन्य	९७	२०,४४०	१३४	० ७	० ०
७–यातायात संग्रह तथा संचार	४५४	५ ८३ २५२	५ ७६०	१ ०	२ १
(अ) रेलवे	५६	३ २३ १७१	१ ०७६	० ३	० ४
(ब) ट्रामवे	५	९,६०४	—	—	—
(स) मोटर यातायात	२१५	६६ ९१३	२१४	० ३	० १
(द) सामुद्रिक	२४	१६,७५९	१६	१ ०	० ०
(य) गोदी तथा बन्दरगाह	४२	५५,५३८	६०३	१ ६	० ३

१	२	३	४	५	६
(ट) डाक तथा तार	७	३४,२३३	२८३४	८३	१०
(ल) अन्य	१०५	६३७३४	७१७	११	०३
८–सेवायें	३८७	१,०६,१४७	९३९४	८८	३४
९–विविध	४४२	१४०९१२	१३७४२	९८	५०
योग	४,६१९	३०,४७८४४	३,७६,०२८	९१	१०००

कुल मिलाकर महिलाओं में श्रमिक संघता नहीं के बराबर है। १९५१ की जनगणना के अनुसार ४१६ लाख महिलायें आत्मनिर्भर और अर्जन आश्रित थीं। १९५०-५१ में महिला श्रमिक संघियों की संख्या १०६४२५ थी अर्थात् इस संख्या का मुश्किल से ०.२५ प्रतिशत। यदि हम संघता का अनुमान केवल १७२ लाख स्वनिर्भर महिलाओं के आधार पर करें तो प्रतिशत बढ़कर ०.६ हो जाता है। खनन तथा खदान जैसे संगठित उद्योगों में श्रमिक संघों के प्रत्येक १०० सदस्यों में से १९५१ में १४ महिलायें थीं। फैक्टरी उद्योग वर्ग के आंकड़े केवल कुछ ही अच्छे थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में संगठित उद्योगों में भी महिलाओं में श्रमिक संघता का प्रमाण बहुत कम है।

महिला श्रमिकों को संगठित करने की आवश्यकता पर निश्चय ही अधिक बल दिया जाना चाहिए। जैसे-जैसे महिलाओं के लिये रोजगार की सुविधायें बढ़ेंगी सामाजिक मूल्य बदलेंगे महिलायें मजदूरी के लिये काम खोजेंगी ही। इसलिए यह आवश्यक है कि विभिन्न श्रमिक संघों में महिलाओं का पूर्ण और शक्तिशाली प्रतिनिधित्व हो। श्रमशक्ति में जैसे महिलाओं की संख्या बढ़ती है नियोजकों और समाज के दायित्व भी बढ़ जाते हैं। श्रमिक संघ नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे परिवर्तन को समझें और महिला श्रमिकों को अधिक संख्या में संघों में लाने के लिये संगठित प्रयत्न करें। निस्सन्देह महिलाओं में नई जागृति हुई है और बहुत से अवसरों पर उन्होंने पुरुषों के साथ श्रमिक समस्याओं के लिये संघर्ष किया है। सामाजिक कार्यों में रुचि रखने वाली शिक्षित महिलाओं के लिये समय आ गया है कि वे श्रमिक महिलाओं को अपने अधिकारों की रक्षा के लिये संगठित करें।

६

संघता में बाधाएँ

प्रारम्भिक अध्यायों में श्रमिक संघ आन्दोलन की उत्पत्ति और विकास से सम्बन्धित हमारे विश्लेषण से स्पष्ट है कि हाल ही के वर्षों में श्रमिक संघना की उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद एक बड़ी संख्या में श्रमिक इससे बाहर हैं। प्रारम्भ में विकास में कुछ परिस्थितियों ने बाधाएँ उपस्थित की थी जिनमें से कुछ आज भी श्रमिक संघता के स्वस्थ विकास में बाधक हैं। अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश में श्रमिक आन्दोलन को प्रारम्भिक अवस्था में कुछ सुविधाएँ मिली किन्तु फिर भी इसकी गति तीव्र नहीं हुई और यह शिथिल रही।

भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन को इंगलैण्ड की भाँति कानूनी लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी। ग्रेट ब्रिटेन में श्रमिक संघों को कामन ला के विरुद्ध समझा गया। उन पर आपराधिक षडयन्त्रों के लिए मुकद्दमे किया गया। १७९९–१८०० के काम्बीनेशन एक्टस १८२४–२५ में विखण्डित कर दिये गये किन्तु इससे श्रमिक संघों को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिली। १८७५ में प्रथम श्रमिक संघ अधिनियम पारित किया गया तब भी श्रमिक संघ अधिकारों का संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। इसलिए श्रमिक संघ अधिनियम को १९१३ में संशोधित करना पड़ा। सौ वर्षों में अधिक के संघर्ष के बाद श्रमिक संघों ने अधिकार प्राप्त किये। १९२६ की आम हड़ताल के बाद श्रमिक संघों के अधिकार विशेषकर जो राजनैतिक कोष और आम तथा सहानुभूतिक हड़तालों से सम्बन्धित थे १९२७ में सीमित कर दिये गये और उनका पुनरुद्धार १९४६ में श्रमिक सरकार द्वारा किया गया। भारत में श्रमिक संघों इन अग्नि परीक्षाओं से बच रहे। मद्रास श्रमिक संघ के अध्यक्ष श्री बी० पी० वाडिया पर जो अभियोग लगाया गया और संघ के विरुद्ध जो निषेधाज्ञा जारी की गई उसने भारत के लोगों को ही नहीं बल्कि ग्रेट ब्रिटेन के लोगों को भी स्तब्ध कर दिया। फलस्वरूप मुकुलित होने वाले श्रमिक संघ आन्दोलन के हितों की सुरक्षा के लिये जल्दी ही श्रमिक संघ कानून के अधिनियम की माँग पर जोर दिया जाने लगा। इस देश में प्रथम श्रमिक संघ संगठन के ठीक ८ वर्ष बाद १९२६ में श्रमिक संघ अधिनियम पारित किया गया।

सीमित वैधिक संरक्षण मिलने के अतिरिक्त भारत में बढ़ती हुई राजनैतिक

चेतना और विकास का भी श्रमिक सघ आन्दोलन पर अनुकूल प्रभाव पडा। श्रमिक सघ आदोलन के लिये राजनतिक आदोलन के फलस्वरूप योग्य और समथ नेतृत्व की व्यवस्था हो गई। गाधी जी के निर्देशन म बहुत से लोग जो सामाजिक कार्यों म रुचि रखते थे, श्रमिको के बीच और उनके लिये काय करन हतु आग आय। राजनतिक नेता भलीभाति जानत भी थे कि सगठित श्रम उनके सघष म महत्त्वपूण और शक्तिशाली सहयोग पहुँचा सकत हैं। दश म राजनतिक आदोलन द्वारा श्रमिक आन्दोलन को निश्चित रूप से सहायता प्रदान की गई। विश्वसनीय तथा योग्य नता प्रदान करन के अलावा, जिहोन निष्ठा और आत्मत्याग से उनके हितो के लिये काय किये इसने एक ऐसे मच की सरचना की जहाँ शोषितो और दलितो तथा उनकी समस्याओ के बार म स्वतत्र रूप से विचार किया जा सकता था। इसने लोगो के हृदयो म नई आशाओ और आकाक्षाओ को स्फुरित किया। नताओ के सम्पक से श्रमिक सघो को सम्मान तथा प्रतिष्ठा मिली और श्रमिको मे नये विश्वास और शक्ति के प्रति चेतना जाग्रित हुई।

राजनतिक नताओ का सम्पक उनके लिये केवल वरदान ही नही रहा। राजनतिक नेताओ और श्रम सगठनो के बीच सम्बधो के कारण सरकार ने प्राय श्रमिक सघो को सन्देह की दृष्टि से देखा। बढते हुए श्रमिक आदोलन को अवरुद्ध करन के लिए नियोजको का सरकार का सहयोग आसानी से प्राप्त हो जाता था। राजनतिक आन्दोलन की प्रधानता से प्राय श्रमिक समस्याएँ उपेक्षित रह गइ। श्रमिक सघ आदोलन को एक प्रकार से गौण आदोलन समझा गया। किन्तु स्वतत्रता प्राप्ति के बाद स्थिति बदल गई है और राजनीति या राजनतिक दलो तथा श्रमिक आदोलन के बीच सम्बधो के प्रश्न पर भिन्न दृष्टिकोण से पुनवलोकन करना चाहिये। स्वतत्रता से पूव लोगो द्वारा जो अच्छा और वाछनीय समझा जाता था वह स्वतत्रता प्राप्ति के बाद आवश्यक रूप से वसा नही है।

इन अनुकूल कारणो के बावजूद आन्दोलन की धीमी प्रगति समान रूप से महत्त्वपूण प्रतिगामी शक्तियो के कारण रही। पिछडी और अध विकसित भारतीय अथव्यवस्था श्रमिक सघता के माग म सबसे बडी बाधा है। स्थानीय बृहद् उत्पादन उद्योग केवल थोडी ही सख्या मे श्रमिको को काम देते हैं। कृषि प्रमुख उद्योग है। रोपण खाने और छोटे पमाने की फक्ट्रिया अन्य महत्त्वपूण उद्योग हैं। इन वर्गों म रोजगार का स्वभाव श्रमिको के सगठन को कठिन बनाता है। छोटी छोटी इकाइयो मे श्रमिक इधर उधर बिखरे रहते है। उनके सगठन के लिये आवश्यक जन और धन के साधनो का अभाव है। इसीलिए इन क्षेत्रो म श्रमिक सघता बहुत कम है। भारत म श्रमिक सघ आदोलन की धीमी प्रगति और देर से विकास होने का यह एक प्रमुख कारण है।

श्रमिक सघो की अस्थिरता और अशक्तता के लिय गाँवो के बधन और

श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति भी उत्तरदायी रही है। औद्योगीकरण की प्रारम्भिक अवस्थाओं में श्रमिक प्रायः गाँवों से ही आये। आज भी बहुत से उद्योगों में काफी संख्या में श्रमिक गाँवों से ही आते हैं। नगरों में औद्योगिक व्यवसाय स्वीकार कर लेने पर भी उनका सम्बन्ध गाँवों से नहीं टूटता। उनमें ग्रामीण जीवन की उत्कंठा बनी रहती है। औद्योगिक रोजगार और नगरीय जीवन उनके लिये स्थायी जीवन के अनुरूप नहीं है। इसी कारण पश्चिमी देशों की तरह हमारे यहाँ स्थायी औद्योगिक श्रमिक वर्ग नहीं है। इन प्रवासी ग्रामीण श्रमिकों की श्रमिक संघों के प्रति अभिरुचि भी क्षणिक और अस्थायी होती है। असंतोष की स्थिति में वे अपने गाँवों को लौट जाते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण श्रमिक संघों को वह सम्मान नहीं मिला जो औद्योगिक प्रगतिशील राष्ट्रों में है। जबतक श्रमिकों का एक ऐसा वर्ग जिसके लिये फैक्ट्री में व्यवसाय जीविकोपार्जन का स्थायी साधन हो और जो काम और नौकरी की अवस्थाओं में सुधार के लिये रुचि ले सके, जन्म नहीं लेता श्रमिक संघों में शक्ति नहीं आ सकती। निःसंदेह एक औद्योगिक श्रमजीवी वर्ग का विकास हुआ है। जैसे जैसे लोग अधिकाधिक संख्या में श्रेयस्कर मजदूरी, उचित अवकाश की सुविधाओं अन्य सुविधाओं, काम के घंटे घटने, काम और नौकरी की अच्छी अवस्थाओं तथा सामाजिक सुरक्षा लाभों के विस्तार के कारण नगरों की ओर भागते जायेंगे, इसमें सतत् विकास होता जायगा। उद्योगों में उनका वास्तविक हित होगा और इस प्रकार वे अपनी स्थितियों में सुधार के लिये वे कष्ट सहन और उद्यम करने के लिये इच्छुक और तत्पर रहेंगे। वे अनुभव करेंगे कि श्रमिकों की शक्ति संघों में निहित है और नियोक्ता के साथ सम्व्यवहार में औद्योगिक श्रमिकों के पास केवल सामूहिक सौदाकारी ही प्रभावकारी अस्त्र है।

श्रमिक संघों के मार्ग में एक अन्य बाधा है—शिक्षा का अभाव और अज्ञानता। औद्योगिकवाद की जटिलताओं और बुराइयों को श्रमिक पूर्णरूप से नहीं समझते। वे सामूहिक कार्य के महत्व का मूल्यांकन नहीं कर पाते। वे अपने सीमित दृष्टिकोण के कारण श्रमिक संघवाद के वास्तविक आशय को भी नहीं समझ पाते हैं। यह अज्ञानता विभिन्न रूपों से श्रमिक संघों के उचित विकास में बाधा पहुँचाती है। एक बड़ी संख्या में व्यक्तिगत तुच्छ और अप्रगत माँगें श्रमिक संघों के नेता के सम्मुख रखी जाती हैं। वह उनकी अवहेलना अपनी लोकप्रियता को खतरे में डालकर और श्रमिक संघ के प्रति श्रमिकों के लगाव को समाप्त करने के मूल्य पर ही कर सकता है। इसके अलावा श्रमिक यदि श्रमिक संघ-कोष में योग्य चंदा देते हैं तो वे शीघ्र ही उसका लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। एक श्रमिक का सहयोग उस श्रमिक संघ को जो ऊँची मजदूरी, काम के कम घंटे और अच्छी सुविधाओं के रूप में शीघ्र लाभ दिलाने में असफल रहता है नहीं मिल पाता। इससे स्पष्ट है कि शिक्षित श्रमिकों के संघ क्यों अधिक शक्तिशाली होते हैं। एक सामान्य श्रमिक संघ और उसके कार्यों के प्रति

उदासीन रहता है। जब उसमे कहा जाता है वह अपना चदा देता है। यह निष्क्रिय तथा भाग्यवादी होने के कारण स्थिति को उसी रूप म स्वीकार कर लेने का आदी होता है।

श्रमिको की निरक्षरता के कारण श्रमिक आदोलन श्रमिको के बीच से पैदा होने वाले नेताओ की अपेक्षा बाहरी नेताओ से अधिक रहा है। ये बाहरी नेता बहुधा अनुत्तरदायी ढग से काय करते है। वे श्रमिको के कल्याण की अपेक्षा अपने वयक्तिक हितो की अधिक परवाह करते है। उनके प्रयत्न अपनी स्थिति सुदृढ बनाने और अपने लिये मच तयार करने की ओर रहे हैं। औद्योगिक अवस्थाओ का ज्ञान या तो नाम ही नही होता और यदि होता है तो दोषपूर्ण, और इसी कारण यह आश्चय की बात नही है कि जो हडतालें ये कराते है वे प्राय असफल रहती है। नियोजको के सम्मुख अतिशयोक्तिपूर्ण मागें रखी जाती है और सौदाकारी की विधि या तो होती ही नही और यदि होती है तो दोषपूर्ण श्रमिक सघो के नेता हमेशा ईमानदार नही होते और उनके विरुद्ध श्रमिक सघ कोष के अपहरण के अभियोग भी लगाये गये हैं। इन बातो से श्रमिको मे अनुदारवाद को बढावा मिलता है नवीनता के प्रति उनमे अविश्वास और आशका पैदा होती है तथा वे श्रमिक सघता को स्वीकार करने म हिचकते है। नियोजक श्रमिको को श्रमिक सघो के प्रतिकूल करने के लिये ऐसे मामलो का प्रचार करते हैं।

निधनता और श्रमिको के कर्जों के कारण श्रमिक नेताओं को प्रारम्भ मे भयकर कठिनाइयो का सामना करना पडा। अत्यल्प मजदूरी के कारण श्रमिको के लिये खच पूरा करना भी कठिन था। जो भी थोडा बहुत वे बचाते थे समय ये वह कभी न समाप्त होने वाले कर्ज के भुगतान मे चला जाता था। ऐसी स्थिति म श्रमिक सघो का बहुत कम चन्दा भी दे पाने म वे अपने को असमथ पाते थे। यदि पर्याप्त धन न हो तो श्रमिक सघ अपने कत्तव्यो का भलीभांति पालन नही कर सकते। भारतीय श्रमिक सघ न तो वतनिक कमचारी रखने अथवा न कोई लाभकारी योजना चलाने मे समथ है। किसी श्रमिक सघ मे सदस्य न होने पर सदस्यता समाप्त हो जाने मे कोई हानि नही पहुँचती। यदि कोई सुविधा नही है तो श्रमिको की रुचि और भी मद पड जाती है। अवस्थाये अब बदल गई है। शक्तिशाली आदोलन का सूत्रपात करके श्रमिक सघ धन एकत्र कर सकते है, अपनी स्थिति को मजबूत बना सकते है तथा नये सदस्यो को आकर्षित कर सकते है।

श्रमिको के जीवन म अवकाश बहुत कम होते है। अवकाश की कमी से श्रमिक सघो के कार्यों मे बाधा पडती है। काम के घटे अधिक हैं। थका हुआ श्रमिक जब घर लौटता है तो न तो उसके पास समय होता है और न ही श्रमिक सघो के कार्यो म भाग लेने की उसकी रुचि होती है। वह बचे हुए घटे अपनी कम आय को बढाने म खच करता है। श्रमिक प्राय काम करने के स्थान से काफी दूर रहते है

पर सारे जाने से मिलता समय और शक्ति नष्ट होती है, उनकी स्थिति और बुरी हो जाती है। यातायात की सुविधायें अपर्याप्त हो रही हैं और हमारे श्रमिक इतने निर्धन हैं कि वे उनका उपयोग नहीं कर सकते।

देश के विभिन्न भागों में मध्यस्थों द्वारा भर्ती की प्रथा दोषपूर्ण है और यह श्रमिकों के प्रभावशाली संगठन में बाधक है। यदि श्रमिक संघ शक्तिशाली हो जायें तो मध्यस्थों की शक्ति छिन्न भिन्न हो जायगी। उनकी मनमानी विफल हो जायगी और वे प्रत्यक्ष रूप में उनका प्रतिकार न कर पायेंगे और न ही एक श्रमिक को दूसरे के विरुद्ध कर सकेंगे। इसी कारण श्रमिक संघों के विरोधी हैं तथा उनके विकास में रोड़े अटकाते हैं। इस मध्यस्थता का विकास अभी बनी हुई है क्योंकि मालिक स्वयं भी उन श्रमिकों से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य समझते हैं और उनसे दूर रहना चाहते हैं। कुछ लोग (Jobbers) की सहायता के अलावा भर्ती की यह प्रथा श्रमिक संघों के विकास में प्रतिकूल है क्योंकि इससे स्थायी श्रमिक वर्ग का विकास नहीं हो पाता। साथ ही इससे अत्यधिक श्रम प्रतिस्थापन (Labour turn over) के लिए भी उत्तरदायी है जिससे भारी संख्या में श्रमिकों की शक्ति तथा संगठन का दुरुपयोग होता है।

अशिक्षा और संघ भावना की कमी भी श्रम संगठन में बाधक है। हमारे विस्तृत देश के विभिन्न भागों में रूढ़ि और परम्पराओं की विभिन्नता है। जाति, सम्प्रदाय, धर्म के भेद हैं और प्रान्तीयतावाद के कारण एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त के निवासियों को हेय दृष्टि से देखते हैं। सवाजिक व्यवस्थाओं और सुविधाओं के बावजूद हम इनका राष्ट्रीय भावनाओं की व्यापकता को इन्कार नहीं कर सकते। विभिन्नताओं और श्रमिकों में सामंजस्य के अभाव के कारण नियोजक उसका लाभ उठाकर श्रम संगठनों को दबाते रहते हैं।

नियोजकों द्वारा श्रमिक संघों की स्थिति को अभी भी पूरी तरह से नहीं माना है। वे श्रमिकों और उनके संगठनों को हेय दृष्टि से देखते हैं। कोई ऐसा विरला ही नियोजक होगा जो श्रमिक संघों का आदर करता हो अथवा उन्हें प्रोत्साहित करता हो। साधारणतया श्रमिक संघों के प्रति नियोजकों का दृष्टिकोण विरोधी होता है। उनमें से कुछ लोगों ने श्रमिक संघों का बहिष्कार कर देते हैं। नियोजक श्रमिक संघों को अधिकारों की समझते हैं जो अनुशासनहीनता पैदा करते हैं और व्यवस्था करने में उनके अन्तर्निहित अधिकारों को ठेस लगाते हैं। उन्होंने जाति, सम्प्रदाय, धर्म और अन्य विभेदों का अनुचित लाभ उठाकर श्रमिकों की अज्ञानता और निरक्षरता का लाभ उठाया है।

राष्ट्रीय श्रमिक आयोग ने भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास की बाधाओं के विषय में यह ठीक कहा है कि सामान्य श्रमिक के लिए एक अन्य भाषा नियोजकों निम्न वर्ग के भी सब भारी भार हो सकता है

विशेषकर जब वह पहले से ही कर्ज से लदा है एक अतिरिक्त बाधा विभाजन के कारण है जो चारों ओर व्याप्त है और जिसमें होकर श्रमिक संघता को विकास करना है। भाषा और जाति की भिन्नतायें अलग करने वाले तत्व हैं और उनमें मध्यस्थों का सक्रिय सहयोग प्रायः जुड़ जाता है जो उनके समान ही एक क्षणिक संगठन के अनुरूप होता है। किन्तु इसमें भी अधिक मूलभूत कठिनाइयां हैं। भारतीय श्रमिक में प्रजातान्त्रिक आदर्श का अभी विकास होना है और शिक्षा की कमी सबसे गम्भीर बाधा है।[1] श्रमिक संघता बहुत सी कठिनाइयों में आज भी नहीं उभर पाई।

बाधाओं अथवा कमियों को दूर करने के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। राज्य श्रमिक संघों को सहायता और प्रोत्साहन दे रहा है। श्रमिकों में शिक्षा का प्रसार भी हो रहा है। सेवायोजन कार्यालयों और श्रम अधिकारियों द्वारा भर्ती की उन्नत प्रथा से मध्यस्थों को घातक आघात मिला है। जाति और सम्प्रदायों पर आधारित विभेदों को प्रोत्साहन नहीं मिलता और श्रमिकों में वर्ग भावना तेजी से विकसित हो रही है। इन वास्तविकताओं के अनुरूप नियोजक भी अपने दृष्टिकोण को बदल रहे हैं। जनमत अधिक जागरूक और सतर्क हो गया है। संक्षेप में एक स्थायी आन्दोलन की स्थापना हो गई है। वर्तमान प्रवृत्तियां शुभसूचक हैं।

---

१ रायल श्रमिक आयोग की रिपोर्ट, १९ १ पृ० ३२१

७

नियोजकों की अभिवृत्ति तथा प्रतिरोध

श्रमिकों की अपेक्षा नियोजक अधिक आसानी से संगठन बना सकते हैं। वे गिने चुने होते हैं तथा सामूहिक और सम्मिलित रूप से किये जाने वाले कार्य की क्षमता स्वाभाविक रूप से रखते हैं। चूँकि उनकी संख्या कम होती है अतः नियोजकों को प्रत्येक देश में संघों की स्थापना करने में बहुत सुविधायें रहती हैं। हमारे देश में भी नियोजकों के संगठन बहुत पहले स्थापित हो गये थे। इसी प्रकार १८७५ में ही बम्बई मिल मालिक संघ की निम्नलिखित उद्देश्यों से स्थापना की गई थी

(१) मिल मालिकों तथा भाप, जल और/अथवा विद्युत शक्ति का उपयोग करने वालों के बीच सामान्य रुचि से सम्बन्धित विषयों में मैत्री भावनाओं और एकता की वृद्धि करना

(२) संघ के सदस्यों के बीच द्वन्द्व समझौता का प्रबन्ध करना,

(३) भारत के व्यापार, वाणिज्य तथा उत्पादन की सामान्य रूप से तथा सूती वस्त्र व्यापार की विशेष रूप से सुरक्षा तथा उन्नति करना,

(४) व्यापार, वाणिज्य तथा उत्पादन से सम्बन्धित अन्य समस्याओं के प्रश्नों पर विचार करना

(५) आंकड़े एकत्र करना तथा उन्हें प्रकाशित करना, व्यापार, वाणिज्य तथा उत्पादन से सम्बन्धित अन्य तथ्यों या सूचनाओं को एकत्र करना, और प्रकाशित करना।

आरम्भ से सभी मिल मालिक इसके सदस्य हो सकते थे। शीघ्र ही यह संघ बहुत शक्तिशाली हो गया और बम्बई के मिल मालिकों का प्रतिनिधित्व करने लगा।

बहुत सी सभाओं और समितियों में इसने उनका प्रतिनिधित्व किया। सरकार भी इसके प्रतिनिधियों को विचार विमर्श और सलाह के लिए आमंत्रित करती थी।

इसी प्रकार का एक दूसरा पुराना संगठन भारतीय जूट मिल संघ है जिसकी स्थापना १८८४ में हुई थी। भारत में नियोजकों का यह भी एक शक्तिशाली संघ है। बाद में अन्य महत्वपूर्ण उद्योगों में भी नियोजकों के संगठन स्थापित हुए।

वर्तमान नियोजक संगठनों का निर्माण औद्योगिक अथवा प्रादेशिक आधार पर किया गया है। इस प्रकार भारतीय जूट मिल संघ, भारतीय चीनी मिल मालिक संघ, भारतीय चाय संघ, भारतीय खनन संघ भारतीय इंजीनियरिंग संघ वनस्पति उत्पादक संघ, भारतीय कागज मिल संघ औद्योगिक आधार पर नियोजक संगठनों के उदाहरण हैं। इस आधार पर प्राय सभी महत्त्वपूर्ण उद्योगों में नियोजकों के संगठन हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों में क्षेत्रीय नियोजक संघ भी विद्यमान हैं। बम्बई मिल मालिक संघ, अहमदाबाद मिल मालिक संघ, बंगाल मिल मालिक संघ तथा उत्तरी भारत नियोजक संघ इसके उदाहरण हैं।

इन संघों का उद्देश्य अपने सदस्यों के हितों की विशेष रूप से तथा उद्योगपतियों और व्यापारियों की सामान्य रूप से रक्षा तथा प्रवर्तन करना है। इन संगठनों को पर्याप्त सफलता मिली है। औद्योगिक व्यापारिक तथा आर्थिक नीति के सम्बन्ध में नियोजक अपना एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं। उनके शक्तिशाली संगठन, वृहत् आर्थिक स्रोत तथा निजी समाचार पत्र हैं। श्रमिक संगठनों की अपेक्षा नियोजकों के संगठन भलीभाँति संगठित तथा अधिक शक्तिशाली हैं।

सरकार ने इन संघों को न केवल सहानुभूति दी वरन् इन्हें मान्यता भी प्रदान की। ब्रिटिश सरकार ने तो विशेषकर प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राजनतिक आन्दोलन के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिये इन संघों का उपयोग एक प्राचीर की तरह करना चाहा था। युद्धकाल में भारतीय पूँजीपतियों ने बहुत लाभ अर्जित किया था। औद्योगिक आयोग का यह सुझाव था कि सरकार को भविष्य में देश के औद्योगिक विकास में अधिक सक्रिय सहयोग देना चाहिये। औद्योगिक आयोग के सुझावों का क्षेत्र भी बहुत व्यापक था। राजकोषीय स्वायत्तता प्रदान की गई थी। इस स्थिति में राजनतिक उद्देश्य आर्थिक लक्ष्यों से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये तथा पूँजीपतियों को सम्मत करने के लिये प्रयत्न किये गये। 'युद्धोपरान्त काल के इतिहास पर यदि निष्पक्ष रूप से दृष्टि डालें तो यह निष्कर्ष अवश्यम्भावी प्रतीत होता है कि भारत में राजनतिक आन्दोलन की शक्ति बढ़ने के साथ जिसके द्वारा ब्रिटिश राज्य के आधार को ही चुनौती दी जा रही थी सरकार ने इस आवश्यकता को स्वीकार किया कि ब्रिटिश उद्योगों के हितों की रक्षा के लिये पूँजीपति वर्ग को सन्तुष्ट रखा जाय' (शिवाराव)। पूँजीपतियों और भूमिपतियों को सभी विधान सभाओं में विशेष रूप से प्रतिनिधित्व प्रदान करने का यह एक कारण था। श्रमिक प्रतिनिधियों के निर्वाचन में सम्पत्तिधारी वर्गों का मताधिकार निर्वाचन-क्षेत्रों का विस्तार तथा अधिक व्यय की सम्भावना बाधक थे। युद्धोत्तर काल के प्रारम्भ में भारतीय पूँजीपति निश्चिन्त थे क्योंकि युद्ध ने उन्हें अपूर्व समृद्धि प्रदान की थी तथा सरकार भी नहीं चाहती थी कि वे राष्ट्रवादी शक्तियों के साथ सम्मिलित हों। फलत पूँजीपतियों की पाँचों अँगुलियाँ घी में थीं। उन्होंने सरकार से सुविधाएँ

प्राप्त की तथा राष्ट्रीय भावनाओं को भी सरगी बजायी।

सरकार द्वारा श्रमिक संगठनों का स्वागत करना तो दूर रहा वरन् उन्हें निश्चित रूप से हतोत्साहित किया गया। सरकार का अनुमान था कि श्रमिक संघों का संगठन मुख्यतया श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिये नहीं किया गया था बल्कि इसके पीछे राजनैतिक उद्देश्य भी निहित थे। इसी कारण जब भी श्रम और पूंजी में विवाद हुआ सरकार ने सदैव नियोजकों का ही पक्ष लिया। ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने अपने जनवरी १९२९ के अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया —

"लगभग सभी मुख्य हड़तालों अथवा तालाबंदी के अवसरों पर हड़तालियों के अभित्रासन के लिये पुलिस अथवा सेना के प्रयोग का सभा प्रबल विरोध करती है इसके परिणामस्वरूप कई व्यक्तियों में निहत्थे श्रमिकों की मृत्यु हो जाती है या वे घायल हो जाते हैं। इस सभा का विचार यह है कि नियोजकों के पक्ष में सरकार जो पुलिस शक्ति का प्रयोग करती है उससे श्रमिकों को वह सुरक्षा नहीं प्राप्त हो पाती जो नियोजकों के विरोध में उन्हें प्राप्त होनी चाहिये और यह बात औद्योगिक विवादों के सम्बन्ध में सरकार की तटस्थता और निष्पक्षता की घोषित नीति के विरुद्ध है। यह सभा सरकार को गहरे असंतोष, जो शक्ति के अनावश्यक प्रयोग से श्रमिकों में बढ़ता जा रहा है, के विरुद्ध चेतावनी देती है।" भारतीय श्रमिक संघ संघान ने भी अपने १९३२ में आयोजित प्रथम अधिवेशन में सरकार द्वारा भारतीय दंड संहिता तथा दंड प्रक्रिया संहिता और अन्य दमनकारी उपायों द्वारा अंधाधुंध श्रमिकों की उचित मांगों का विरोध और नियोजकों की सहायता करने की नीति की निन्दा करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। अब श्रमिक संघों के विरुद्ध सरकार विभेद नहीं करती। नियोजक और श्रमिकों के संगठनों को सामान्यतया एक ही स्तर पर माना जाता है। केन्द्र तथा राज्य द्वारा स्थापित विभिन्न वैधानिक तथा अन्य संस्थाओं में उन्हें समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। दोनों के प्रतिनिधियों से सरकार औद्योगिक तथा श्रमिक मामलों में सलाह लेती है।

भारत में विभिन्न नियोजक संगठनों ने दो राष्ट्रीय संघान स्थापित किये हैं यथा—भारतीय नियोजक संघान और अखिल भारतीय औद्योगिक नियोजक संगठन। संगठित उद्योगों की लगभग सम्पूर्ण श्रमशक्ति इन दोनों संघानों के अन्तर्गत आ जाती है। भारतीय नियोजकों के प्रतिनिधि रूप में सरकार ने इन दोनों संघानों को मान्यता प्रदान की है। भारतीय संघानों द्वारा अनुसारित परम्परा यह रही है कि वे संयुक्त रूप से भारत में नियोजकों का प्रतिनिधित्व करने के लिये व्यक्तियों और प्रतिनिधियों के नाम अनुमोदित करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे—अन्तर्राष्ट्रीय

श्रम सम्मेलन, अन्तराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन की औद्योगिक समितियों तथा एशिया और सुदूर पूर्व के आर्थिक आयोग में नियोजकों के प्रतिनिधियों ने सक्रिय भाग लिया है। अपने देश में विभिन्न द्विदलीय तथा त्रिदलीय समितियों जैसे—भारतीय श्रम सम्मेलन स्थायी श्रम समिति, केन्द्रीय न्यूनतम मजदूरी सलाहकार मंडल उद्योग तथा श्रमिक संयुक्त सलाहकार मंडल, कर्मचारी राज्य बीमा निगम तथा स्वास्थ्य हित परिषद् में भी उन्होंने पूर्णतया प्रतिनिधित्व किया है। दोनों ही संघ अन्तराष्ट्रीय नियोजक संगठन, ब्रसेल्स से सम्बद्ध हैं तथा उनके कार्यों और कार्यवाहियों में सक्रिय रुचि रखते हैं।

अखिल भारतीय औद्योगिक नियोजक संगठन

१६३३ में निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संगठन की स्थापना की गई थी —

(१) भारत में औद्योगिक विकास की सुरक्षा और प्रवर्तन के लिये सभी आवश्यक उपायों का प्रयोग।

(२) संगठन के सम्बन्ध में प्रान्तीय केन्द्रीय तथा संघीय अधिकारियों को प्रतिरूपण प्रस्तुत करना।

(३) विधानों या अन्य साधनों जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सामान्य अथवा विशेष उद्योगों पर प्रभाव पड़ता है के प्रवर्तन सहयोग अथवा विरोध के लिये सभी आवश्यक कार्यवाही करना।

(४) व्यापार वाणिज्य तथा उद्योगों के हितों को प्रभावित करने वाली समितियों, सम्मेलनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भारतीय नियोजकों के प्रतिनिधित्व के लिये प्रतिनिधियों और सलाहकारों के नाम निर्देशित करना तथा ऐसे सम्मेलनों और समितियों में आने वाले विषयों पर विवाद करना निश्चित करना तथा उन्हें कार्यान्वित करना।

(५) अन्तराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन और अन्य सम्मेलनों तथा समितियों के सुझावों या मान्यताओं के प्रवर्तन सहयोग या विरोध के लिये आवश्यक कार्यवाही करना।

(६) सदस्यों के हितों को प्रभावित करने वाले सभी विषयों पर जिसमें संगठन के सदस्यों द्वारा आयोजित विभिन्न उद्योगों में औद्योगिक श्रमिकों की सेवा योजन की शर्तें भी सम्मिलित हैं यथासम्भव सामूहिक तथा समन्वित कार्यों के लिये प्रयत्न करना।

(७) सभी श्रमिक विवादों निगम सदस्यों द्वारा संचालित उद्योग हों में क्रियात्मक अथवा सभी आवश्यक कार्य करना।

(८) देश के व्यापार और उद्योग को अहितकारी कार्यवाहियों के विरोध में प्रयत्न करना।

(६) श्रम के सामान्य उत्पादन के लिये सभी सुविचारित योजनाओं तथा श्रम और पूंजी के बीच अच्छे सम्बन्धों की स्थापना के लिये उपायों का प्रवर्तित करना और सहयोग देना।

उद्योगों के संघ और किसी भी उद्योग में सम्बन्धित कोई भी फर्म या संयुक्त-स्कन्ध कम्पनी इस संगठन के सदस्य हो सकते हैं। एक संघ को सदस्यता के लिये प्रार्थनापत्र देना पड़ता है जबकि व्यक्तियों, फर्मों और संयुक्त-स्कन्ध कम्पनियों का निर्वाचन किया जाता है। सदस्यों के लिये ८०० रुपये तथा व्यक्तियों, फर्मों और संयुक्त-स्कन्ध कम्पनियों के लिये १०० रुपया वार्षिक सदस्यता शुल्क है। सदस्य, जिनका चन्दा तीन महीने से बकाया है और जो लिखित सूचना के दो महीने के भीतर भुगतान नहीं करते संगठन सदस्य नहीं रह जाते। एक संघ सदस्य को पाँच वोट तथा व्यक्तिक सदस्य को केवल एक वोट देने का अधिकार है। इस प्रकार साधारण सभा में भाग लेने के लिये प्रत्येक संघ सदस्य को पाँच प्रतिनिधियों और व्यक्तिगत सदस्य को एक प्रतिनिधि नामजद करने का अधिकार है। प्रत्येक प्रतिनिधि का एक वोट होता है।

एक समिति संगठन के प्रशासन की देखभाल एक समिति करती है जिसमें निम्नलिखित सदस्य होते हैं

(१) एक अध्यक्ष, (२) एक उपाध्यक्ष (३) एक अवैतनिक कोषाध्यक्ष, (४) संगठन के प्रत्येक संघ सदस्य का एक नामजद प्रतिनिधि, (५) व्यक्ति सदस्यों में से उनका प्रतिनिधित्व करने के लिये चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित चार प्रतिनिधि और (६) समिति के सदस्यों द्वारा अधिक से अधिक चार सहवृत सदस्य। अध्यक्ष उपाध्यक्ष तथा अवैतनिक कोषाध्यक्ष का कार्य काल दो वर्ष है। समिति के सदस्य प्रतिवर्ष निवृत्त हो जाते हैं। उपाध्यक्ष और अवैतनिक कोषाध्यक्ष का चुनाव समिति द्वारा अपने सदस्यों में से किया जाता है। अध्यक्ष का चुनाव वार्षिक साधारण सभा में होता है। वार्षिक साधारण सभा प्रतिवर्ष एक बार आयोजित, ३० दिन की सूचना के बाद की जाती है। कुल सदस्यों में से यदि एक तिहाई सदस्य चाहें तो विशेष सभा बुलाई जा सकती है। बहुमत द्वारा सभा अपना का निर्णय किया जाता है।

इस संगठन में १९५३ में २८ संघ सदस्य तथा १४५ व्यक्तिगत सदस्य थे। १९५४ के आँकड़े क्रमशः २७ और १५२ हैं।

भारतीय नियोजक संघान

संघान एक लाभरहित संघ है जिसकी निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ १९३१ में स्थापना की गई थी

(१) नियोजक सभाओं की स्थापना को प्रोत्साहित करना तथा उनके बीच

सहयोग म वृद्धि करना।

(२) भारत मे व्यापार वाणिज्य उद्योग और उत्पादन म लगे नियोजको के हितो की सुरक्षा तथा प्रवनन करना।

(३) एसे नियोजको के हितो को प्रभावित करने वाले या सम्बद्ध सभी प्रश्नो पर विचार करना।

(४) एसे नियोजको के हितो को प्रभावित करने वाले वैधानिक या अन्य प्रभावो का प्रवतन या विरोध करना तथा इन हितो से सम्बन्धित मामलो पर विभिन्न अधिकारीय स्तरो पर प्रतिनिधित्व करना।

(५) वार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनो म भारतीय नियोजको का प्रतिनिधित्व करने के लिये प्रतिनिधियो और सलाहकारो के नाम निर्देशित करना ऐसे सम्मेलनो की काय सूची म दिय गय विषयो पर विचार विमश करना तथा विचारो को सरचित करना, और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों की कार्यावली के प्रवनन सहयोग या विरोध के लिये समुचित कायवाही करना।

(६) सदस्यो के हितो को प्रभावित करने वाले सभी विषयो पर सामूहिक और सम्मिलित कायवाही के लिये, जहा भी सभव हो प्रयत्न करना।

(७) श्रमिको के उत्थान के लिय सभी सुविचारित योजनाओ म सहयोग देना और प्रवनन करना तथा श्रम और पूजी क बीच अच्छे सबधो की स्थापना के लिय सभी सभव प्रयत्न करना।

(८) सघान द्वारा प्रतिनिधित्व औद्योगिक उद्यमो के स्वरूप क्षेत्र महत्व और आवश्यकता के विषय म जनसाधारण को सूचित रखन के ध्येय स प्रचार करना।

नियोजको, व्यक्तियो फर्मों या कम्पनियो के सभी सघ जिनम एक हजार स कम श्रमिक काय नही करते तथा व्यक्ति फम अथवा कम्पनियो जो प्रबन्धाभिकर्ता, सचिव अथवा कोषाध्यक्ष सस्थाओ के रूप म काय करती हैं और जिनके अन्तगत एक हजार से कम श्रमिक काय नही करत, इस सघान क सदस्य हो सकत ह। सदस्य का नाम प्रस्तावित और अनुमोदित हो जाने के बाद सदस्यता के लिय निर्वाचन होता है। न्यूनतम वार्षिक सदस्यता शुल्क जो किसी वार्षिक-सभा म बदला जा सकता ह, सौ रुपया ह। जिन सदस्यो का शुल्क तीन महीने स बकाया ह और जो सूचना प्राप्त होने के एक महीने के भीतर चदा जमा नही करात सदस्यता स वचित कर दिए जाते हैं। साधारण अथवा विशेष सभा म उपस्थित सदस्यो तथा जिन्ह मत देने का अधिकार है के तीन चौथाई बहुमत स सदस्यो को निष्कासित भी किया जा सकता है।

स्मृति पत्र म व्यवस्था है कि सघ के विघटन के समय प्रत्येक सदस्य को ५० रुपये तक की धनराशि देने की जिम्मेदारी लेनी पडेगी और विघटन के समय वे

जो सदस्य हैं या जिनकी सदस्यता एक वर्ष के भीतर ही समाप्त हुई है सदस्य मान जायेंगे। इसके अलावा संघ के समापन पर सम्पत्ति सदस्यों में वितरित नहीं की जायगी अपितु उसी प्रकार के उद्देश्य रखने वाली किसी संस्था या संस्थाओं को सौंप दी जायगी।

कार्यकारिणी में एक अध्यक्ष तीन उपाध्यक्ष एक लेखापरीक्षक तथा एक सचिव होता है। अधिकारियों का चुनाव प्रतिवर्ष होता है। एक बार निर्वाचित व्यक्ति पुनः चुने जा सकते हैं। लेखानिरीक्षक तथा सचिव को छोड़कर अन्य पदाधिकारी अवैतनिक होते हैं। संघान की सामान्य साधारण सभा एक महीने की सूचना पर प्रति वर्ष कम से कम एक बार आयोजित की जाती है। जब भी अध्यक्ष आवश्यक समझे विशेष सभा बुला सकता है। कम से कम चार सदस्यों जो कुल मतों के एक चौथाई का प्रतिनिधित्व करते हों की मांग पर, सूचना प्राप्त होने की तिथि से २८ दिन के भीतर अतिरिक्त सामान्य बैठक बुलाई जा सकती है। दो महीने की सूचना के बाद नियमों पर पुनः विचार करने बदलने अथवा संशोधित करने के लिये अतिरिक्त सामान्य साधारण सभा बुलाई जा सकती है।

सदस्य स्वयं उपस्थित होकर अथवा दूसरों के द्वारा मत दे सकते हैं लेकिन ऐसा तभी संभव है जब सारा चंदा दे दिया गया हो। हाथ उठाने पर प्रत्येक सदस्य का एक ही वोट होता है किन्तु जब मतदान होता है तो प्रत्येक सदस्य श्रमिकों की संख्या के आधार पर निम्नलिखित योजनानुसार मतों का अधिकारी होता है —

१००० से लेकर २००० श्रमिकों पर एक मत।
२००० से १०००० तक प्रत्येक २००० श्रमिकों पर एक मत।
१०००० से २००००० तक प्रत्येक ५००० श्रमिकों पर एक मत।
२०००००० से ३०००००० तक प्रत्येक १०००० श्रमिकों पर एक मत।
३०००००० से अधिक प्रत्येक २०००० श्रमिकों पर एक मत।

स्थापना के बाद से संघान ने स्थिर प्रगति की है। १९५३-५४ को समाप्त होने वाले वर्ष में सदस्यता संघों और व्यक्तियों को मिलाकर ३५ थी। १९५४-५५ में सदस्य संख्या बढ़कर ३७ हो गई।

श्रमिक संघता के प्रति नियोजकों की अभिवृत्ति

श्रमिक संघता के प्रति व्यक्तिगत नियोजकों की भिन्न भिन्न अभिवृत्ति है कुछ नियोजकों की प्रवृत्ति उदासीनता से प्रतिरोध तक की है और कुछ तो अपने कर्मचारियों के प्रत्येक संगठन का दमन कर देना चाहते हैं। साधारणतया नियोजक केवल विवशता में अपने कर्मचारियों के संघों को मान्यता देते हैं। वे श्रमिक संघ आन्दोलन को दबाने का भी प्रयत्न करते हैं। श्रमिक संघों के अनुलम्बन पर ही उन्हें स्वीकार किया जाता है। नियोजकों के अनुसार श्रमिक संघ अवांछनीय हैं जो उनके

स्वतंत्र व्यापार करने के अधिकार में हस्तक्षेप करते हैं। फलस्वरूप नियोजकों ने प्राय इस देश में श्रमिक संघों के विकास में बाधा पहुँचाने के प्रयत्न किये हैं।

राज्य की प्रगतिशील श्रमनीति पर भी नियोजक संदेह करते हैं। इस प्रकार ब्रिटिश शासनकाल में स्त्रियों और बच्चों की सुरक्षा के लिये आरम्भ के श्रम अधिनियम उनकी दृष्टि में सरकार द्वारा भारत में उद्योगों के विकास को रोकने का प्रयत्न था। इस काल में ऐसा विचार था कि लंकाशायर के हितों की रक्षा के लिये ही विधानों का अधिनियम किया गया है। इस देश के राष्ट्रवादियों ने भी ऐसी ही आशंका व्यक्त की। लेकिन इन विधानों के प्रति अरुचि प्रकट करते हुए भी नियोजकों ने अपने कर्मचारियों के हितों की तनिक भी चिंता नहीं की और न उनके कार्य तथा सेवा की अवस्थाओं में सुधार के प्रयत्न किये।

प्रथम विश्वयुद्ध काल में तथा मुख्यकर उसके बाद राज्य की श्रमनीति के प्रति नियोजकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। सरकार भी पूँजीपतियों का सहयोग प्राप्त करना चाहती थी अतः वह ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहती थी जिसमें नियोजकों की सद्भावना तथा सहायता प्राप्त करने में कोई बाधा पड़े। सत्य तो यह है कि सरकार ने नियोजकों का पक्षपात किया। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहाँ लोगों को श्रमिक संघ कार्यों में भाग लेने के लिये पुलिस द्वारा परेशान किया गया।

श्रमिक संघ कार्यों में रुचि रखने वाले श्रमिकों पर अत्याचार द्वारा श्रमिक संघों के संगठन को आसानी से रोका जा सकता है। नियोजक श्रमिक संघ सदस्यों के प्रति विभेद करते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ श्रमिकों को श्रमिक संघ के कार्यों में भाग लेने के कारण, निलम्बित, स्थानान्तरित और सेवा से निकाला गया। उन्हें उनके विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया गया। श्रमिक नेतृत्व संभालने से घबड़ाते हैं। बलीकरण का भय बहुत से श्रमिक संघों के विघटन के लिये उत्तरदायी रहा है। श्रमिक संघों या सभाओं में सम्मिलित होने के इच्छुक नहीं थे। बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम १९३८ द्वारा श्रमिकों के बलीकरण को उनके द्वारा श्रमिक संघों के सदस्य होने या उनके कार्यों में भाग लेने पर अपराध घोषित कर दिया गया जो एक हजार रुपये तक के जुर्माने से दण्डनीय था। न्यायालयों को अधिकार दिया गया कि वे दण्ड द्वारा प्राप्त धनराशि में से क्षतिपूर्ति कर दें। किन्तु श्रमिकों के लिये यह प्रमाणित करना कि उनका बलीकरण किया जा रहा है बहुत ही कठिन था। केन्द्रीय और कुछ राज्य सरकारों द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत कुछ सुरक्षा प्रदान की गई है। लेकिन यह अपर्याप्त है और बलीकरण का भय समाप्त नहीं हुआ है।

बलीकरण की मात्रा का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ जैसे शक्तिशाली संगठन को १९३६–३७ के समाप्त होने वाले वर्ष में ४५,००० रुपया बलीकरण लाभ के रूप में देना पड़ा।

१९३६–३७ के अपने वार्षिक प्रतिवेदन में संघ को उल्लेख करना पड़ा कि "श्रम संगठनों के विस्तार को हतोत्साहित करने वाला सबसे अधिक शक्तिशाली तथ्य बलीकरण का भय है।" उपर्युक्त विधानों के अधिनियमन से ऐसा प्रतीत होता है कि स्थिति में पर्याप्त सुधार नहीं हुआ है। हमारे देश में न्यायाधिकरणों और न्यायालयों को अनुशासनिक कार्यवाहियों के नाम पर बहुत से गलत सेवानिवृत्ति, निलम्बन और दण्डों के मामले निपटाने पड़े हैं और बहुतों में उन्होंने नियोजकों के विरुद्ध निर्णय दिया है तथा सेवानिवृत्त कर्मचारियों की पुनर्नियुक्ति के आदेश दिये हैं।

नियोजकों के दृष्टिकोण में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ ने १९५१–५२ में श्रमिक संघ कार्यों के कारण बाधा डालने, परेशान करने तथा बलीकरण करने की १०३ शिकायतें की। अन्यायपूर्ण दण्डों की संख्या उसी वर्ष २१७० थी। १९५३–५४ में स्थिति वही रही। श्रमिक संघ कार्यों के सम्बन्ध में १०३ शिकायतें तथा अन्यायपूर्ण दण्डों के २८१३ मामले हुए। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ, देश के सुसंगठित और अत्यधिक स्थायी श्रमिक संघों में से एक है। विभिन्न समस्याओं के प्रति संघ की पहुँच उत्तरदायी और रचनात्मक रही है। यदि अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ जैसे संघ ने ऐसे मामले प्रतिवेदित किये हैं तो औरों के बारे में जो तुलनात्मक रूप से कमजोर संगठन हैं कल्पना की जा सकती है।

श्रमिक संघों को कमजोर करने तथा श्रमिकों को संगठित होने से रोकने के लिए नियोजकों द्वारा सामान्य रूप से अपनायी गई एक अन्य विधि श्रमिकों के बीच फूट डालने की थी। जाति सम्प्रदाय, समुदाय के विभेद तथा प्रान्तीयता की भावनायें अब भी बहुत बलवती हैं। श्रमिक संघ आंदोलन को कमजोर करने के लिए नियोजक उनका शोषण करना नहीं भूले। कुछ श्रमिकों की पदोन्नति करके तथा अन्यों को निलम्बित करके भी फूट डालने के प्रयत्न किये गये हैं। श्रमिक नेताओं के अनुभव इस बात का प्रमाण हैं कि श्रमिकों को विभाजित करके स्थायी और शक्तिशाली श्रमिक संघ बनाने के प्रयत्नों को छिन्न भिन्न करने में नियोजकों को सफलता मिली है।

इस उद्देश्य के लिए नियोजकों द्वारा अपनायी गई एक अन्य विधि है कम्पनी संघों की संरचना या ऐसे संघों की स्थापना जिन पर नियोजकों का प्रभुत्व हो। कम्पनी संघों को प्रबंध द्वारा सभी प्रकार की सुविधायें दी जाती हैं तथा उन्हें मान्यता और संरक्षण भी मिलता है। इन संघों के संगठन और प्रशासन में नियोजक प्रायः सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहते हैं। संघों की नीतियाँ उनके द्वारा निर्धारित और नियन्त्रित होती है। निश्चय ही इन संघों में श्रमिकों के हितों की रक्षा नहीं हो सकती है। उदाहरण

काल में कम्पनी सघो की पर्याप्त सख्या में स्थापना की गई।[1] नियोजकों की नीति के कारण जो कठपुतली श्रमिक सघो का निर्माण चाहते थे ऐसा सम्भव हुआ। न्यायालयो के समक्ष ऐसे कई मामले आये हैं जहा नियोजको द्वारा सचालित श्रमिक सघो ने वास्तविक श्रमिक सघो को दबाने के प्रयत्न किये हैं।

श्रमिक नेताओं के एक वर्ग को फुसलाकर भी नियोजकों ने श्रमिक सघ आन्दोलन को नीचा दिखाने की कोशिश की है। प्राय ही नेताओं को घूस दिया जाता है अच्छे पदो का प्रलोभन दिया जाता है या कुछ अन्य लाभ पहुँचाये जाते हैं। यह मान्य तथ्य है कि कुछ श्रमिक नेताओ को घूस दिया जा सकता है हमारे देश में जहा गरीबी का राज्य है ये प्रलोभन बहुत शक्तिशाली होते हैं और कुछ लोगो के लिए इनसे बच पाना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी श्रमिक नेता होते हैं जो केवल अपने वयक्तिक हितो की पूर्ति में ही रुचि रखते हैं। फिर भी नियोजकों द्वारा अपनाये जाने वाले ऐसे तुच्छ साधन और प्रलोभन बहुत ही अवाछनीय हैं। नियोजको की इस प्रवृत्ति की निन्दा की जानी चाहिये तथा नियोजक सगठनो को इस सम्बन्ध मे एक निश्चित नीति निर्धारित करनी चाहिये।

श्रमिक सघो को अपने कर्मचारियो के प्रतिनिधि रूप मे मान्यता देने से इन्कार करना भी, श्रमिक सघो को क्षीण करने के लिये नियोजको द्वारा सामान्यतया अपनायी जाने वाली एक अन्य विधि है। वे श्रमिक सघो से विचार विमर्श करने की अपेक्षा कर्मचारियो से व्यक्तिगत रूप में बात करते हैं। मान्यता दे देने से श्रमिक सघो को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और नियोजको के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे कर्मचारियो के कार्य अथवा सेवा सम्बन्धी अवस्थाओ के बारे मे श्रमिक सघ या उसके प्रतिनिधियो से विचार विमर्श करें। इसका अर्थ श्रमिक सघो का समान प्रतिष्ठा और सयुक्त सलाह की स्वीकृति है। रायल कमीशन का यह मत था कि मान्यता का अर्थ होना चाहिये कि नियोजक सघ के इस अधिकार को मान्यता दे कि वह उनसे अपने सदस्यो के सामान्य या विशेष हितो को प्रभावित करने वाले मामलो पर विचार विमर्श कर सकें। बिहार श्रम जाच समिति ने भी यह मत व्यक्त किया कि मान्यता देने का अर्थ है कि नियोजक अपने सस्थान में श्रमिकों को प्रभावित करने वाली स्थितियो के बारे मे श्रमिक सघ से विचार विमर्श करने के लिये इच्छुक हैं। सक्षेप मे मान्यता का अर्थ है नियोजको द्वारा श्रमिक सघो को स्वीकार करना जिसमे यह भी निहित है कि वे उनसे बातचीत करने के लिये प्रस्तुत हैं।

श्रमिक सघो को मान्यता देने के प्रश्न पर एक नियोजक से दूसरे नियोजक के दृष्टिकोण में पर्याप्त भिन्नता है। अधिक प्रगतिशील नियोजकों ने वर्तमान ढाँचे मे श्रमिक सघो की महत्ता को समझा है। और वास्तविक श्रमिक सघो को उन्होने

१ इण्डियन लेबर गजट अगस्त १९४९

सफलता से मान्यता प्रदान की है। फिर भी साधारणतया नियोजक श्रमिक संगठनों के पक्ष में नहीं हैं और जबतक विवश न हो जायँ वे मान्यता देने के प्रति उदासीन रहते हैं। श्रमिक संघों को मान्यता न देने के सम्बन्ध में नियोजकों द्वारा दिये गये मुख्य तर्क निम्नलिखित हैं :—

(१) संघों में अनुशासन नहीं है (२) अन्य श्रमिक संघ पहले से ही विद्यमान हैं (३) श्रमिक संघ की कार्यकारिणी में कुछ बाहरी लोग, जिनमें कुछ नियोजक द्वारा निकाले गये कुंठित कर्मचारी भी हो सकते हैं, सम्मिलित हैं (४) श्रमिक संघ की कार्यकारिणी में एक ऐसा व्यक्ति है जो नियोजक के लिए अमान्य है (५) श्रमिक संघ का विधान नियोजक द्वारा अनुमोदित नहीं है, (६) श्रमिक संघ की सदस्यता केवल नियोजक के कर्मचारियों तक ही सीमित नहीं है, और (७) श्रमिक संघ अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक संघ पंजीकृत नहीं है।

इनमें से अधिकांश आपत्तियाँ अनावश्यक और निराधार हैं। इन आधारों पर मान्यता देने से इन्कार नहीं करना चाहिये। प्रथम दो आपत्तियाँ, यथा—श्रमिक संघ केवल अल्पसंख्यक श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता है तथा अन्य श्रमिक संघ पहले ही से विद्यमान है, से कुछ जटिलता पैदा होती है। नियोजक ऐसे श्रमिक संघ को, जिसकी सदस्यता अल्प हो, मान्यता देने में हिचकिचाहट करता है। फिर भी यह ध्यान रखने की बात है कि कुछ समय बीत जाने पर ही श्रमिक संघ प्रतिनिधि संगठन बन पायगा। नियोजकों का सहयोगी दृष्टिकोण इस प्रगति को तेज कर सकता है। उसके अलावा एक श्रमिक संघों को सभी कर्मचारियों की ओर से बोलने का अधिकार नहीं देना चाहिये यदि उन्हें अपने सदस्यों के प्रवक्ता के रूप में मान्यता दी जा सकती है। किन्तु एक श्रमिक संघ के होते हुए दूसरे को मान्यता दे देना सरल नहीं है। इससे संघर्ष पैदा हो सकता है। अतः किसी भी पक्ष को लेकर नियोजकों को तटस्थ दृष्टिकोण अपनाना चाहिये। कुछ नियम निर्धारित कर लेने चाहिये और जो श्रमिक संघ उन नियमों के अन्तर्गत आते हों उन्हें मान्यता दी जा सकती है।

तीसरे, चौथे और पाँचवें आधार पर मान्यता न देना अविवेक है। श्रमिक संघों की स्वायत्तता पर यह एक प्रतिबन्ध होगा। जहाँ तक प्रशासन और संविधान का सम्बन्ध है प्रत्येक संघ को स्वायत्त होना चाहिए। बाहरी लोगों की उपस्थिति प्राय नियोजकों के लिये हानिकर होती है लेकिन श्रमिक संघ कार्यकारिणी के कौन से सदस्य हैं इससे नियोजकों को कोई मतलब नहीं रखना चाहिये। यह श्रमिकों के निर्णय की बात है। यह असम्बद्ध तर्क है कि बाहरी लोग राजनीति में भाग लेते हैं वे अपने व्यक्तिगत हितों और लाभों का ध्यान रखते हैं तथा उद्योग को प्रभावित करने वाली आर्थिक या अन्य समस्याओं का ज्ञान नहीं होता। श्रमिकों को अपने संघों का संविधान और नेतृत्व चुनने का अधिकार है और किसी को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। जो श्रमिक संघ अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत नहीं है

उन्हें नियोजकों द्वारा मान्यता न देना न्यायसंगत हो सकता है। श्रमिक संघों को पंजीकरण से अधिक प्रतिष्ठा मिलती है जो उनकी प्रमाणिकता का सबूत है। इसलिए नियोजक उचित रूप से मान्यता प्राप्त करने के लिए श्रमिक संघ के पंजीकरण पर बल दे सकते हैं। वास्तविक श्रमिक संघों का नियोजकों को इस माँग पर कोई आपत्ति भी नहीं करनी चाहिये।

श्रमिक संघों को मान्यता देने का प्रश्न स्वस्थ औद्योगिक सम्बन्धों की उत्पत्ति से सम्बद्ध है। बहुत से औद्योगिक विवाद मूलतः नियोजकों द्वारा श्रमिक संघ को मान्यता न देने पर उठ खड़े होते हैं। सामान्यतया प्रत्येक प्रमाणिक श्रमिक संघ को मान्यता देनी चाहिये। बम्बई औद्योगिक विवाद समिति (१६२१) ने यह मत प्रकट किया कि प्रत्येक प्रमाणिक श्रमिक संघ को मान्यता दी जानी चाहिए। रायल कमीशन का यह मत था कि "इस तथ्य पर श्रमिक संघों की मान्यता को रोकना कि उनमें अल्पसंख्यक कर्मचारी हैं उचित नहीं है। इसी प्रकार एक से अधिक विरोधी संघों की अवस्थिति उनमें से किसी को या सभी को मान्यता न देने का पर्याप्त आधार नहीं है। समान हित वाले सभी कर्मचारियों का एक संघ में सम्मिलित होना उन्हीं के हित में वांछनीय है लेकिन यह बात कर्मचारियों के लिये है नियोक्ता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।" इसी प्रकार कुछ बाहरी लोगों के होने पर मान्यता न देना अन्यायपूर्ण है। प्रत्येक देश में ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है जो जीवन निर्वाह के लिये नियोजकों पर निर्भर न रहकर भी श्रमिक संघों से सक्रिय रूप में सम्बद्ध रहते हैं। हमारे देश में बाहरी लोगों को अलग कर देने का यह अर्थ होगा कि श्रमिकों के मामलों का प्रतिनिधित्व ठीक प्रकार से न हो और वे नियोजकों के सम्मुख समर्पण कर दें। बिहार श्रमिक जाँच समिति ने कहा कि सभी संघों को जो पंजीकृत हैं और जिन्हें स्थापित हुए कम से कम ६ माह हो गये हैं तथा जिनकी सदस्यता ५ प्रतिशत भी है मान्यता दी जानी चाहिए। भारतीय संघ अधिनियम १६२६ में केवल संघों के पंजीकरण की व्यवस्था है। इसमें पंजीकृत श्रमिक संघों का नियोक्ता द्वारा मान्यता देने की कोई व्यवस्था नहीं है। बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम १६३८ के अन्तर्गत व्यवस्था है कि किसी उद्योग के अपने संस्थान में काम करने वाले कुल कर्मचारियों का यदि २५ प्रतिशत संघ में सम्मिलित है तो उस संघ को नियोजकों द्वारा मान्यता दी जानी चाहिये। बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम १६४६ के अन्तर्गत श्रमिक संघों को तीन वर्गों में बाँटा गया है यथा—प्रतिनिधि संघ योग्य संघ तथा प्राथमिक संघ और अधिनियम में दी गई शर्तों को पूरा करने वाले श्रमिक संघों को श्रमिकों के प्रतिनिधि रूप में मान्यता देनी पड़ेगी। मान्यता प्राप्त करने के लिये किये गये ये प्रयत्न औद्योगिक सम्बन्ध विधान के उपोत्पाद थे। एक महत्त्वपूर्ण कदम तब उठाया गया जब भारत सरकार ने प्रतिनिधि संघों की यदि वे निर्धारित शर्तों को पूरा करते हैं अनिवार्य मान्यता के लिये श्रमिक संघ अधिनियम

में १९४७ में संशोधन किया, किन्तु सरकार ने संशोधन को लागू न करने का निश्चय किया है।

अनिवार्य मान्यता का प्रश्न विवादास्पद है। रायल आयोग ने विधान द्वारा अनिवार्य मान्यता को स्वीकार नहीं किया। आयोग ने विचार प्रकट किया कि "इन विचारों से श्रमिकों से सहानुभूति रखने वाले बहुत से लोगों का यह प्रस्ताव, कि किन्हीं मामलों में अनिवार्य मान्यता होनी चाहिये, अनुमोदित करना हमारे लिये असम्भव है। उदाहरण के लिये यह सुझाव दिया गया था कि नियोजक को अपने कर्मचारियों के पंजीकृत संघ को अनिवार्य मान्यता देनी चाहिये। मान्यता का व्यापक अर्थ भी हो सकता है [illegible] नहीं। जैसा हम चाहते हैं वैसा कोई भी विधान वास्तविक और पूर्ण मान्यता नहीं दिला सकता, और बाध्य मान्यता भावनात्मक मान्यता से अनुसरित होनी चाहिये जिसमें संघ द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक प्रश्न पर तत्परता और सहानुभूति से विचार किया जाय उन्हें अधिकारियों तक पहुँचाने की सुविधा हो तथा जहाँ उन्हें श्रेय मिलना चाहिये वहाँ उन्हें इच्छापूर्वक श्रेय दिया जाय। सामान्य परिस्थितियों में भारत सरकार भी ऐच्छिक मान्यता के पक्ष में है।

ऐच्छिक मान्यता नियोजकों और नियोजकों के संगठनों की अभिवृत्ति पर आधारित है। नियोजकों को यह स्वीकार करना चाहिये कि आधुनिक औद्योगिक ढाँचे में श्रमिक संघ आवश्यक हैं तथा वे औद्योगिक जीवन में रचनात्मक भूमिका अदा कर सकते हैं। यदि हम देश की आर्थिक व्यवस्था में उनका प्रभावकारी योगदान चाहते हैं तो प्रमाणित श्रमिक संघों की मान्यता प्रथम आवश्यकता है। श्रमिक संघों को केवल बर्दाश्त करना ही नहीं बल्कि उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में नियोजकों के दृष्टिकोण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। उनमें से काफी संख्या में अब भी इन संगठनों को अनुग्रह के रूप में मानते हैं जिनको बर्दाश्त करना आवश्यक है। उनका दृष्टिकोण विरोधी है। इस दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन होना चाहिये। आधुनिक औद्योगिक संगठन संतोषजनक औद्योगिक संबंधों पर आधारित हैं, और अन्ततोगत्वा, बिना श्रमिकों और नियोजकों के बीच मानवीय सम्बन्धों के तीव्र समायोजन और कुशल संगठन के उनका सुगम कार्य संचालन सम्भव नहीं है। हमारे जैसे देश में, जहाँ श्रम-शक्ति मुख्यतया ग्रामीण क्षेत्रों से प्राप्त होता है और श्रमिक नीरस तथा कठोर फैक्ट्री के कार्य तथा नगरीय जीवन को आसानी से अपना नहीं पाते, यह व्यवहारिक रूप से सही है। उनकी समस्याओं को सभी संतोषपूर्ण ढंग से हल किया जा सकता है जब उनके द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों से परामर्श किया जाय। इसलिए श्रमिक संघ महत्वपूर्ण हैं तथा भारत में नियोजकों को यह अनुभव करना चाहिये।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में जो विकास हुए हैं उनसे यह आशा

नहीं होती कि नियोजकों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। इस संदर्भ में श्रमिक संघों की वैधिक मान्यता के प्रश्न पर विचार करना चाहिये। उन नियोजकों के सम्बन्ध में जो प्रमाणित श्रमिक संघों को मान्यता देने में अनिच्छुक हैं वैधिक बाध्यता का सहारा लिया जा सकता है। औद्योगिक विवादों को सुलझाने में सरकार को अनिवार्यता पर बल देना ही पड़ा। किन्तु संघों की मान्यता के संदर्भ में भी अनिवार्यता का सहारा लिया जाय इसके लिये गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। वर्तमान समय में संगठनकर्त्ताओं की अधिकांश शक्ति मान्यता प्राप्त करने में ही केन्द्रित रहती है और जो उन्हें कटु और सुरक्षात्मक संघर्ष के बाद ही मिल पाती है। शक्ति का इस प्रकार क्षय होने के बजाय उसका उपयोग अधिक रचनात्मक और लाभकारी उद्देश्यों के लिये होना चाहिये। इस संघर्ष में नियोजकों और कर्मचारियों के बीच की जो सद्भावना नष्ट होती है उसे दोनों पक्षों के भौतिक लाभों के लिये सुरक्षित किया जा सकता है। इसलिए यह आवश्यक और वाञ्छनीय प्रतीत होता है कि श्रमिक संघों को मान्यता प्राप्त करने में कुछ वैधिक सहायता मिलनी चाहिये। ऐच्छिक मान्यता अधिक उपयुक्त है। इसकी अनुपस्थिति में अनिवार्य मान्यता की व्यवस्था होनी चाहिये।

अनुशासन संहिता के अन्तर्गत जिसे नियोजकों और केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठनों ने स्वीकार किया संघों की मान्यता की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया गया। यह व्यवस्था की गई है कि नियोजकों का अत्यधिक प्रतिनिधि श्रमिक संघ को मान्यता देनी चाहिये और उसके साथ सद्व्यवहार करना चाहिये। यह भी स्वीकार किया गया है कि मान्यता प्राप्त संघ के प्रतिनिधि स्वरूप को दो वर्ष तक नहीं बदलना चाहिये। इससे श्रमिक संघ को कुछ स्थिरता मिलेगी और वह वास्तविक रचनात्मक कार्यों में शक्ति लगा पायेगा। मान्यता के लिये इच्छुक श्रमिक संघ को मान्यता के लिये प्रार्थना करने से पूर्व पंजीकृत कराये कम से कम एक वर्ष हो जाना चाहिये और उसके सदस्यता रजिस्टर में एवं संस्थान के १५ प्रतिशत श्रमिक होने चाहिये जिन्होंने अपना चंदा जमा करा दिया हो। स्थानीय क्षेत्र में एक उद्योग के प्रतिनिधित्व का दावा करने के लिये उस क्षेत्र के उद्योग विशेष में २५ प्रतिशत श्रमिक संघ के सदस्य होने चाहिये। सुरक्षात्मक दृष्टि से यह व्यवस्था की गई है कि जब सम्पूर्ण उद्योग के लिये एक प्रतिनिधि श्रमिक संघ है और यदि उद्योग विशेष की एक इकाई में ५० प्रतिशत या उससे अधिक श्रमिकों की सदस्यता का कोई श्रमिक संघ दावा करता है तो उसे अपने सदस्यों की वैयक्तिक कठिनाइयों की देख भाल करने की मान्यता होगी। यह भी कहा गया कि केवल वही संघ जो अनुशासन संहिता का पालन करें मान्यता के अधिकारी होंगे।

यह प्रक्रिया दोषपूर्ण है क्योंकि इसमें अत्यधिक प्रतिनिधि संघ के निर्धारण के लिये गोपनीय मतदान की व्यवस्था नहीं है। इसके लिये यह तर्क प्रस्तुत किया

जा सकता है कि हमारे देश में श्रमिक संघवाद अभी पिछड़ी हुई दशा में है और यह भय है कि अनुत्तरदायी तत्व संघ पर अधिकार न कर लें। यह तर्क इतने शक्तिशाली नहीं कि मान्यता की विधि को अहितकर या अव्यावहारिक ठहराया जा सके।

इसी प्रकार यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिये था कि नियोजक तथा प्रतिनिधि संघ के बीच हुए समझौते की क्या मान्यता होगी? क्या समझौता सभी श्रमिकों पर या केवल संघ सदस्यों पर लागू होगा?

फिर यह बहुत कुछ नियोजकों के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह आशा की जाती थी कि नियोजकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा और वे श्रमिक संघों और श्रमिक संगठनों के प्रति अधिक उदार नीति अपनायेंगे किन्तु अनुभव अप्रभावप्रद रहा। भारत में द्वितीय विश्वयुद्ध तथा युद्धोत्तरकाल में यह पाया गया कि श्रमिक तब भी अपनी संगठनात्मक शक्ति बढ़ाने और कुछ प्रारम्भिक अधिकारों, विशेषाधिकारों तथा सुविधाओं को प्राप्त करने में व्यस्त थे जिन्हें औद्योगिक प्रगतिशील राष्ट्रों ने बहुत पहले स्वीकार कर लिया था और जो औद्योगिक जीवन के अंग बन गये थे। यद्यपि औद्योगिक नियोजकों ने अधिक प्रगतिशील वर्ग ने शीघ्र ही श्रमिकों को वेतनों तथा सुविधाओं में सुधार करने तथा उनके साथ मानवीय व्यवहार करने की आवश्यकता का अनुभव कर लिया था परन्तु अधिकांश में अब भी यह अनुभूति नहीं रही और उनमें उचित और मानवीय मापदण्डों को कार्यान्वित करने की उतनी क्षमता भी नहीं थी।[1]

यह अनुभव किया जा रहा है कि काफी संख्या में भारतीय शिखर प्रबन्धकों के निम्न प्रबन्धकों और श्रमिकों के साथ सम्बन्ध सत्तावादी संरचना में हैं।[2] भारत में हमारी प्रबन्ध का आधारभूत ढाँचा ही बहुत ही पितृक और सर्वसत्तावादी है।[3] ऐसी बहुत सी शिकायतें हैं कि प्रबन्धक विरोधी संघों को प्रोत्साहित करके तथा अत्यधिक प्रतिनिधि संघ को मान्यता न देकर और न उनके साथ विचार विमर्श करके श्रमिक संघों को विघटन करने के लिये प्रयत्नशील हैं।[4] ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जहाँ नियोजकों ने सम्पूर्ण रूप में श्रमिकों के साथ उनके सामान्य श्रमिक संघीय कार्यों को करने के लिए सहयोग नहीं किया। बहुत से मामलों में

---

१ कामर्स अगस्त ८, १९५६ पृ० २२।

२ चार्ल्स मॉयर्स इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० १६६

३ चार्ल्स मॉयर्स इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० १७६

४ हिन्द मजदूर सभा ८ वाँ अधिवेशन पृ० ६० "यह आमुख प्रबन्ध ने हिन्द मजदूर सभा से सम्बन्धित इंजीनियरिंग मजदूर सभा को विघटित करने के लिए एक अन्य विरोधी व कम सदस्यता वाले संघ को मान्यता प्रदान की।"

स्वीकार किये गये सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन न करके नियोजकों ने सुखद औद्योगिक संबंधों के महत्त्व और आवश्यकता को भी नहीं समझा।'[1]

यह भी देखा जा रहा है कि कुछ नियोजक विशेषकर खनन क्षेत्रों में अस्थायी श्रमशक्ति को प्रोत्साहन देने के लिये दोषपूर्ण भर्ती प्रणाली को प्राथमिकता देते हैं। इससे उन्हें श्रमिकों और उनके जीवन पर कठोर नियन्त्रण मिल जाता है। 'इस प्रकार नियोजक ऐसी श्रमशक्ति को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि श्रमिक संघीय अधिकारियों को उत्पीडित करके घातक प्रहारों से उनके अबाध गमनागमन पर अड़चन डालकर तथा स्वतन्त्रतापूर्वक संघीय कार्यालयों को बन्द करके या उन पर जबरदस्ती अधिकार करके श्रमिक संघों की प्रगति को अवरुद्ध करना और उन्हें छिन्न भिन्न करना आसान हो जाता।'[2]

इन परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि प्रबन्धकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन और अभिनवीकरण हो। उन्हें श्रमिक संघों और श्रमिक संगठनों को औद्योगिक उत्पत्ति और विकास के आवश्यक और अनिवार्य परिणाम के रूप में समाधान स्थापित करना चाहिये। उन्हें चाहिये कि वे श्रमिक संघों के स्वस्थ विकास के लिये प्रयत्न करें। विशेषकर भारत में नियोजकों की स्थिति अधिक सुविधापूर्ण है। 'यदि औद्योगिक संबंधों को स्वस्थ और स्थायी आधार प्रदान करने की पवित्र आशायें पूरी करनी हैं तो श्रमिक समस्याओं के प्रति नियोजकों के दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन बहुत आवश्यक है।[3]

अतः यथोचित प्रबन्ध प्रशिक्षण की आवश्यकता अत्यावश्यक है। 'कुछ भी हो, समस्या यह है कि विशिष्ट संस्थानों के स्तर पर स्वस्थ प्रबंध नीतियों के प्रचलन के लिये समन्वित प्रयत्न किये जाय श्रमिक संघों और श्रमिकों के साथ सद्व्यवहार के लिये स्वस्थ प्रक्रियाओं और सिद्धान्तों की स्थापना का ही प्रश्न नहीं है बल्कि प्रबन्धकीय प्रशिक्षण और शिक्षा का भी आवश्यकता है क्योंकि उचित प्रशिक्षित प्रबन्ध से ही उचित कार्यवाही की आशा की जा सकती है।[4] श्रम समस्याओं को सुलझाने में प्रबंध के निम्न स्तर को अधिक प्रेरणा देना तथा विभिन्न अधिकारीय स्तरों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का स्पष्ट सीमांकन करना भी इसमें निहित है।

१ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ११वें सत्र की रिपोर्ट, पृ० १८

२ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ११वें सत्र की रिपोर्ट, पृ० २३
'मेहरा प्रिंटस बम्बई के मामले में—प्रबन्धकों के लिये सबलीकरण सावधान वचन थे और ऐसा प्रतीत होता था जैसे उन्होंने अनुचित साधनों द्वारा संघ को समाप्त करने की सौगंध खा ली थी'— इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, १२वें सत्र की रिपोर्ट पृ० ८२

३ इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, ११वें सत्र की रिपोर्ट पृ० १७

४ सी० बी० कुमार डेवलपमेंट आफ इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० ६४

८

भारतीय श्रमिक संघों की संरचना

सम्बद्ध श्रमिकों और उनके हितों की देखभाल करने के आधार पर श्रमिक संघों का वर्गीकरण किया जा सकता है। साधारणतया श्रमिक संघों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं यथा—शिल्प संघ, सामान्य संघ, औद्योगिक संघ तथा सेवायोजन संघ।

एक शिल्प का करने वाले श्रमिक चाहे वे किसी भी उद्योग में नियुक्त हों, शिल्प संघों के सदस्य होते हैं। ये श्रमिक प्रायः एक ही शिल्प में प्रशिक्षित और विशेषज्ञता रखते हैं। उनमें से अधिकांश कुछ समय तक प्रशिक्षण या शिशिक्षा (Appentiwship) प्राप्त करते हैं। इन संघों का उद्देश्य एक शिल्प के सदस्यों के हितों की नियोजकों के आक्रमणों से रक्षा करना जिनका उद्देश्य कार्य तथा सेवा की अवस्थाओं के स्तर को गिराना होता है तथा तदनुरूप श्रमशक्ति के अन्तःसरण को रोकना है अर्थात् उन श्रमिकों को जिन्होंने मान्यता प्राप्त संस्थाओं में आवश्यक प्रशिक्षण नहीं लिया है। शिल्पसंघ कुशल श्रमिकों के वर्ग की विद्यमानता पर मुख्यतया आधारित होते हैं जो अपनी कुशलता मूल्य तथा सीमित संख्या के कारण प्रायः अनुकूल स्थिति में होते हैं। उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन के कारण इन संघों का महत्त्व घट गया है। वृहत् पैमाने पर स्वचालित यन्त्रों के प्रयोग के परिणाम स्वरूप अर्द्ध-कुशल और अकुशल श्रमिकों को उन कार्यों में भी, जहाँ अधिक सूक्ष्म कुशलता की आवश्यकता होती है काफी संख्या में रोजगार दिया गया। इसलिए कुशल श्रमिकों के वर्ग की प्रतिष्ठा का धीरे धीरे ह्रास हो गया। नियोजक संगठनों के तीव्र विरोध से इन संघों में और भी क्षीणता आ गई। शिल्प अब श्रमिक संगठनों के लिये उतना महत्त्वपूर्ण आधार नहीं रहा।

इसके विपरीत सामान्य संघ में प्रत्येक श्रमिक चाहे वह किसी शिल्प या उद्योग में काम करता हो सदस्य हो सकता है। सदस्यता के लिए पूर्व शर्त केवल यह है कि इच्छुक सदस्य श्रमिक हो तथा संघ के आदेशों और नियमों को मानने के लिये तैयार हो। अकुशल और अर्द्ध कुशल श्रमिकों को संगठित करने के उद्देश्य से सामान्य संघों की स्थापना हुई। धीरे धीरे निम्नलिखित श्रमिकों को अन्तर्गत करने के लिये इन संघों के क्षेत्र में विस्तार हुआ (अ) उन व्यवसायों के श्रमिक जिन्हें कुशलता

और शिल्पकारी की आवश्यकता होती है लेकिन जिनके पास प्राय नियमित शिक्षा पद्धति का अभाव होता है (ब) उन उद्योगो के श्रमिक जहाँ श्रमिक सघता अप्रभावकारी है अथवा अपर्याप्त विकसित है तथा (स) उन उद्योगो के अकुशल श्रमिक जिनके स्वय प्रभावकारी सगठन थे।

इसी अन्तर्निहित स्वरूपता के कारण सामान्य सघ शिल्पसघो से भिन्न है। किसी भी व्यवसाय अथवा योग्यता का कोई भी श्रमिक इसका सदस्य हो सकता है। श्रमिको के छोटे छोटे वर्गों को यदि पृथक सघो मे सगठित किया जाय तो वे उन सुविधाओ को प्राप्त नही कर सकते जो सामान्य सघ दिलाने मे समर्थ है। यह कहा जा सकता है कि सामान्य सघो की विजातीयता उनकी नीतियो को राष्ट्रीय विचार कोण प्रदान करती है। इसके विपरीत शिल्पसघो का कार्यक्षेत्र सीमित और सकुचित होता है।

अन्तर्देशीय स्वरूप के कारण सामान्य सघो का सगठन बहुत बडा हो जाता है। ग्रेट ब्रिटेन मे स्थानीय निकायो तथा सामान्य कर्मचारियो का राष्ट्रीय सघ और यातायात तथा सामान्य श्रमिक सघ वृहद् सगठन है जिनकी सदस्य सख्या क्रमश ८०८,००० तथा १,२८५,००० है। साधारणतया सामान्य सघो का इतना आकार बढ जाता है कि वे वर्गीय हितो का प्रवन्तन या उनको व्यक्त नही कर पाते तथा आदोलन को प्रभावित रूप से सचालित भी नही कर सकते। वृहद् आकार वाले सघो मे अति केन्द्रीयकरण हो जाता है तथा सगठन नेताओ और श्रमिको के बीच घनिष्ठ वयत्तिक सबधो के बहुत कम अवसर मिलते है। विभिन्न वर्गों के श्रमिको के बीच भी सबध बहुत सीमित होता है। ये सघ अव्यवस्थित तथा अकुण्य होते हैं और उनमे स्थायित्व तथा एकता का अभाव होता है। इसी कारण सामान्य सघो मे विघटन की प्रवृत्ति पाई जाती है।

उद्योगो के एक वर्ग या एक उद्योग मे काम करने वाले सभी श्रमिको के सगठन औद्योगिक सघ कहलाते है। औद्योगिक सघो की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार है—(अ) एक उद्योग या तत्सम्बन्धित उद्योगो के एक वर्ग मे नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति जो मजदूरी या वेतन अर्जित करते है, सघ की सदस्यता के लिये योग्य हैं (ब) सघ का सगठन सदस्यो के निवास स्थान की अपेक्षा उनके काम के स्थान पर आधारित होता है।

शिल्पसघ और सामान्य सघो के बीच औद्योगिक सघो का क्षेत्र है। जहाँ एक ओर शिल्पसघो की तुलना मे इनका क्षेत्र काफी विस्तृत है तो दूसरी ओर सामान्य सघो की तुलना मे काफी सकीर्ण। जबकि शिल्पसघो मे निर्धारित शिल्प के श्रमिक और सामान्य सघो मे प्रत्येक प्रकार के श्रमिक होते है, औद्योगिक सघो की सदस्यता एक निश्चित उद्योग अथवा तत्सम्बन्धित उद्योगो के एक वर्ग के श्रमिको यथा कुशल अकुशल शारीरिक श्रम करने वाले लिपिक प्रबधकीय प्राविधिक तथा

निरीक्षकों तक सीमित रहती है।

वर्तमान समय में औद्योगिक संघ अधिक प्रभावकारी ढंग से सौदाकारी करने में समर्थ है। जैसे जैसे नगरों की सीमायें बढ़ती जायेंगी, श्रमिकों को फैक्ट्री या कार्य के स्थान से अधिकाधिक दूर रहना पड़ेगा। विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए ऐसे श्रमिकों का शिल्प या निवास-स्थान के आधार पर संगठित करना यदि असंभव नहीं तो, कठिन अवश्य है। श्रमिक संघ कार्यों में उनकी रुचि बनाये रखना भी मुश्किल है। जहाँ तक श्रमिक संघों के विकास का प्रश्न है नगरीकरण श्रमिकों को घर की अपेक्षा कार्य के स्थान की ओर आकर्षित करता है। और यदि श्रमिक संगठनों का केन्द्रबिन्दु कार्य का स्थान है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि संगठनों का आधार शिल्प के स्थान पर उद्योग हो।

नियोजकों के संगठन शक्तिशाली और अधिक केन्द्रित हो गये हैं। यदि संघों का संगठन शिल्प स्थान या क्षेत्र के आधार पर किया जाता है तो श्रमिकों की अवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण सुधार नहीं किया जा सकता। प्रभावकारी सौदाकारी का आधार उद्योग होना चाहिये। इसीलिए औद्योगिक संघवाद शक्तिशाली होता जा रहा है।

श्रम प्रबंध संबंधों के नियमन के लिये राज्य का हस्तक्षेप बढ़ गया है। अब सरकार देश में आर्थिक जीवन में अधिक और प्रत्यक्ष रुचि लेती है। राज्य पूँजीवाद का एक युग सा प्रारम्भ हो गया है। राज्य के बदलते हुए दृष्टिकोण से समस्यायें पैदा होने की संभावना हो गई है जिन्हें शिल्पसंघों या सामान्य श्रमिक संघों द्वारा नहीं सुलझाया जा सकता।

औद्योगिक संघ राज्य के नियमन और औद्योगिक संबंधों की समस्याओं को सुलझाने में पर्याप्त साधन सम्पन्न हैं। इन संघों की विशेषता यह है कि इनमें प्राविधिक और प्रबंधकीय कर्मचारी सदस्य होते हैं। इसीलिए ये शक्ति की स्थिति से सौदाकारी कर सकते हैं। सामूहिक कार्यों के लिये उन्हें अधिक सुविधा रहती है। अन्य उद्योगों में श्रमिकों को मिल रहे वेतन तथा उपलब्धियों की अपेक्षा किसी उद्योग में श्रमिकों का वेतन तथा उपलब्धियां इस उद्योग की आर्थिक सम्पन्नता तथा देने की क्षमता पर आधारित होती हैं। श्रमिक अब संयुक्त परामर्श और उद्योगों के प्रबंध में अधिक स्थान की माँग करते हैं। उद्योगों के प्रबंध में केवल औद्योगिक संघ ही श्रमिकों के भाग लेने को प्रभावकारी बना सकते हैं। औद्योगिक प्रजातंत्र की सुचारु कार्यविधि के लिये औद्योगिक आधार पर श्रमिकों का संगठन आवश्यक है।

एक उद्योग तथा दूसरे उद्योग के बीच वाद क्षेत्रगत सीमा का अभाव औद्योगिक संघों की प्रमुख कठिनाई है। कुछ उद्योगों के संबंध में जैसे—कोयला खनन परिसीमन बिल्कुल स्पष्ट हो सकता है किन्तु अन्य उद्योगों के संबंध में ऐसा नहीं है।

क्षेत्र भी निरंतर बदलते रहते हैं। क्या मिल्क उद्योग और कृत्रिम सिल्क के श्रमिकों का एक औद्योगिक संघ होना चाहिये या पृथक ? अन्तर्निहित सेवा के ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। वृहत् संयुक्तों (Combine) और न्यासियों (Trusts) की विद्यमानता से जो विभिन्न उद्योगों के एक समूह को नियंत्रित करते हैं स्थिति और जटिल हो जाती है।

एक ही नियोजक या नियोजकों के एक समूह द्वारा नियुक्त सभी श्रमिकों को संगठना का सेवायोजन संघ (Employment unions) कहते हैं। इस योजना के अन्तर्गत टाटा के कर्मचारी एक ही संघ के अन्तर्गत संगठित होंगे चाहे वे बीमा संस्थानों लोहा तथा इस्पात कम्पनियों या साबुन की फैक्ट्रियों में काम करते हों। ऐसे संघों के पीछे विचार यह होता है कि नियोजकों की नीति सभी श्रमिकों के लिये एक सी होती है तथा वह नीति कार्य के परिणामों या व्यक्तिक उद्योगों, जिनमें वे नियुक्त हैं की दशा की क्षमता से प्रभावित नहीं होती।

भारत में संरचना

हमारे देश में श्रमिक संघों का आधार उद्योग है। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ को छोड़कर भारत में सभी संघ औद्योगिक संघ हैं। इस देश के श्रमिक संघ आन्दोलन की संरचना पर अन्य देशों के विकासों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। अन्य देशों में साधारणतया औद्योगिक संघों को प्राथमिकता दी गई इन विकासों का भारतीय श्रमिक नेताओं ने अनुसरण किया है।

भारतीय श्रमिक वर्गों की रचना और विशेषताओं के कारण नेताओं के लिये श्रमिकों को औद्योगिक संघों में संगठित करना सरल था। भारत में अधिकांश श्रमिक अकुशल अथवा अर्द्धकुशल हैं। कुशल श्रमिकों की संख्या श्रमिकों की कुल जनसंख्या में बहुत कम है। प्रवासी श्रमिकों की भी समस्या है जो एक ही उद्योग में एक काय (job) से दूसरे काय तथा एक उद्योग से दूसरे उद्योग में चल जाते हैं। बहुत से ऐसे औद्योगिक काय हैं जिनके लिये उच्च विशेष कुशलता की आवश्यकता नहीं होती और उन्हें ये श्रमिक सरलता और निपुणता से सम्भाल सकते हैं। उनमें उच्च योग्यता अथवा वह विशेषता नहीं होती जो शिल्प संगठनों तथा उनकी सुरक्षात्मक विधियों के लिये आवश्यक है।

बाहरी नेतृत्व का प्रभुत्व भी औद्योगिक संघों के विकास में सहायक रहा। विशिष्ट वर्ग अथवा श्रमिकों के अनुभागों की अपेक्षा बाहरी नेताओं की रुचि सम्पूर्ण श्रमिकों में होती है। अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्तता के कारण श्रमिकों के विशेष अनुभाग की कठिनाइयों को दूर करने के लिये न तो उनके पास समय होता है और न ऊर्जा। इसीलिए वे चाहते थे कि औद्योगिक आधार पर संघों का निर्माण किया जाय।

अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ भारत में अकेला शिल्पसंघ है। यह

एक सघात्मक सगठन है जिसमे ग्यारह शिल्पसघ हैं और जिनके अन्तर्गत अहमदाबाद सूती मिलो के श्रमिको ने अपने को सगठित किया है। वस्त्र उद्योग श्रमिक सघ की सफलता के कारण बहुत से श्रमिक सघियो ने शिल्प के आधार पर श्रमिको को सगठित करने को महत्त्वपूर्ण माना है। वस्त्र उद्योग श्रमिक सघ की सफलता का श्रेय मुख्य रूप से गाधी जी को है जिनका श्रमिको और नियोजको पर समान प्रभाव था। सघ को नियोजको द्वारा तुरन्त मान्यता मिली थी जिससे यह उनका सहयोग प्राप्त कर सकता था। इसके अलावा सघ का मार्ग निर्देशन सुयोग्य और विश्वस्त नेतृत्व के हाथ मे था। इसलिए भारतीय श्रमिको के सगठन के आधार की उपयुक्तता जाचने के लिये वस्त्र उद्योग श्रमिक सघ की कार्यविधि को आदर्श मानना उचित नही होगा। इसकी सफलता मे जो तत्त्व सहायक हुए व अन्यत्र दुर्लभ हैं। योग्य नेताओ का अभाव है और नियोक्ताओ का दृष्टिकोण प्रतिरोधी है। यहाँ तक कि वस्त्र उद्योग श्रमिक सघ के पास नियोजको के प्रतिरोधी दृष्टिकोण अन्यायपूर्ण व्यवहार तथा श्रमिक सघ कार्यों के सबन्ध मे दण्ड जुमाना, पक्षपात तथा अत्याचार की बहुत सी शिकायतें आती है।

शिल्प के आधार पर सगठित सघो की कार्य प्रणाली बहुत सकुचित होती है क्योकि श्रमिक वर्गीय हितो के लिये प्रयत्न करते है तथा अन्य क्षेत्रो मे उनके भाइयो की क्या स्थिति है इससे उन्हे मतलब नही रहता। श्रमिको की बहुत सी समस्यायें किसी वर्ग विशेष के श्रमिको के लिये विशिष्ट नही होती। एक उद्योग मे मजदूरी अर्जित करने वाले सभी श्रमिको के लिये वे समान होती है। बहुत सी श्रमिक समस्यायें व्यक्तिगत उद्योगो की सीमाओ के परे सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग को प्रभावित करती है। बेकारी आवास की निम्न सुविधायें कार्य और सेवा की निम्न अवस्थाये सामाजिक सुरक्षा लाभो की असुरक्षा या अपर्याप्तता, निर्धनता, भोजन का निम्न स्तर और नियोजको का प्रतिरोधी दृष्टिकोण जैसी समस्यायें प्रत्येक श्रमिक को प्रभावित करती हैं चाहे उसका व्यवसाय उद्योग शिक्षा अथवा प्रशिक्षण कुछ भी हो। जाति सम्प्रदाय भाषा रीति रिवाज और धर्म के कारण श्रमिक पहले से ही विभाजित है। शिल्पसघो के फलस्वरूप यह विभाजन और भी बढ जायगा। समय की आवश्यकता है कि एकता की भावना बढे और श्रमिक एक साथ मिलकर कार्य करें। इसलिए सघो का आधार उद्योग जहाँ श्रमिक कार्य करते हो होना चाहिये जिसमे न कि शिल्प जिसमे व सम्बन्धित हैं।

इसका अर्थ यह नही है कि शिल्पसघो का कोई उपयोग नही है अथवा उनसे श्रमिको को कोई सहायता नही मिल सकती। वे औद्योगिक सघो के आधीन अथवा गौण सगठनो के रूप मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। एक उद्योग मे कुछ समस्यायें श्रमिको के एक अनुभाग तक ही सीमित हो सकती हैं। इन विशिष्ट समस्याओ को सुलझाने के लिये सगठनो की आवश्यकता होती है। इसके लिये मुख्य सघ

उप समितियां का निर्माण कर सकता है किन्तु ये उपसमितियाँ और प्रनुभाग मुख्य संघ के अतिरिक्त स्वतंत्र संस्थायें नहीं हो सकती। उनकी भावनाओं और कठिनाइयों की अभिव्यक्ति मुख्य संगठन के माध्यम से होनी चाहिये। उनकी मांग किसी विशेष वर्ग अथवा प्रनुभाग की नहीं होनी चाहिये बल्कि उनका स्वरूप संपूर्ण उद्योग की सामूहिक मांगों का होना चाहिये। इस परिप्रेक्ष्य में अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ को भी एक औद्योगिक संघ के रूप में आंका जा सकता है।

वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ ने भी श्रम संगठन का उचित आधार औद्योगिक ही माना है। १६३१ में संघ द्वारा आयोजित विभिन्न संघों के अहमदाबाद सम्मेलन में भारतीय वस्त्र उद्योग श्रमिकों के राष्ट्रीय संघान की स्थापना का निश्चय किया गया। संघ स्वयं इस संघान का सदस्य होने वाला था। **इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस** ने भी औद्योगिक संघवाद के इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है और औद्योगिक संघों के निर्माण में प्रबल सहयोग दिया है। सामान्यतया शिल्पसंघों के निर्माण को इस संगठन ने हतोत्साहित किया है। केन्द्रीय कार्यालय ने अपने संगठनात्मक कार्यों में औद्योगिक संघों को प्रत्येक स्थान पर प्रोत्साहित किया है तथा विभिन्न स्थानों में इनके संगठन के लिये प्रत्यक्ष सहायता प्रदान की है। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि **इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस** एक ओर उसी उद्योग के विभिन्न शिल्प के श्रमिकों के बीच किसी प्रकार के विभेद को मान्यता देने के लिये नहीं है। यह श्रमिकों और लिपिकों के सदंभ में भी समान रूप से सही था। एक उद्योग में काम करने वाले श्रमिक चाहे वे किसी भी शिल्प के हों स्थानीय केन्द्रीय औद्योगिक संघ से सम्बद्ध होने चाहिये। **इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस** की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव भी पारित किया जिसमें कहा गया कि औद्योगिक आधार के अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर संघों का संगठन श्रमिक वर्ग के हित में नहीं है। इसलिए यह सुझाव दिया गया कि शीघ्रातिशीघ्र सभी शिल्पसंघ विद्यमान स्थानीय औद्योगिक संघों में सम्विलीन हो जायं। यह भी सलाह दी गई कि किसी भी क्षेत्र के संस्थानगत संघ मिलकर शीघ्र से शीघ्र औद्योगिक संघों का निर्माण करें।"[1] हिन्द मजदूर सभा **आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस** तथा **यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस** भी औद्योगिक आधार पर श्रमिकों के संगठन के पक्ष में हैं।

श्रमिकों को निवास स्थान की अपेक्षा कार्य के स्थान के आधार पर संगठित किया गया है। फैक्ट्री स्तर पर संगठन निश्चित रूप से अधिक सुविधाजनक है क्योंकि इससे श्रमिक आपस में मिलकर अपनी सामान्य समस्याओं और कठिनाइयों पर विचार विमर्श कर सकते हैं। इससे संगठन-कर्त्ताओं को भी सुविधा रहती है क्योंकि वे प्रत्येक श्रमिक के साथ सरलता से संबंध स्थापित कर सकते हैं और श्रमिक

---

१ १६५३-५४ का वार्षिक प्रतिवेदन

संघ में सम्मिलित होने के लिए उन्हें प्रेरित कर सकते हैं। यदि श्रमिकों को निवास स्थान के आधार पर संगठित किया जाय तो संगठन-कर्त्ताओं और श्रमिकों के बीच संबंध शिथिल होंगे। किन्तु यदि किसी स्थान विशेष पर श्रमिकों की प्रधानता है तो उनकी देखभाल के लिए उपसमितियां बनायी जा सकती हैं।

भारतीय श्रमिक आन्दोलन का एक विशेष लक्षण श्रमिक संघों की बहुलता है। एक ही वर्ग के श्रमिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत से संघ हैं। प्राय प्रत्येक स्थान और फैक्टरी में एक से अधिक संगठन हैं। यहां छः राष्ट्रीय संघान हैं आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, हिन्द मजदूर सभा, यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस, हिन्द मजदूर पंचायत तथा भारतीय मजदूर संघ। प्रत्येक फैक्टरी में अपना प्रभुत्व रखने के लिए वे आपस में संघर्षरत रहते हैं। स्वभावतः इसके फलस्वरूप एक फैक्टरी में एक से अधिक संघों का निर्माण हो जाता है।

श्रमिक संघों की यह बहुलता उनकी क्षीणता का ही स्रोत नहीं बल्कि हमारे श्रमिक आन्दोलन की बहुत-सी बुराइयों के लिए उत्तरदायी भी है। इससे श्रमिक संघों का उत्साह भंग होता है। एक ही फैक्टरी या उद्योग में प्रतिरोधी श्रमिक संघ छोटे और कमजोर ही होंगे क्योंकि उनमें से प्रत्येक केवल कुछ ही श्रमिकों की सदस्यता का दावा कर सकता है। सीमित सदस्यता और कोष के अभाव में वे वैतनिक कर्मचारी रखने और लाभकारी योजनायें चलाने में असमर्थ होते हैं। प्रतिरोधी संगठनों के परिप्रेक्ष्य में नेता अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के फेर में रहते हैं। श्रमिकों के बीच ख्याति प्राप्त करने के लिए वे तुच्छ और हास्यास्पद मांग रखते हैं। अड़चनों और कठिनाइयों को उकसाने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। समय और शक्ति को रचनात्मक कार्यों में लगाने के स्थान पर उनको नष्ट किया जाता है। इन संघों की सदस्यता अस्थायी होती है और सदस्य प्राय अपने संघ बदलते रहते हैं। कभी-कभी एक ही व्यक्ति का नाम एक से अधिक श्रमिक संघों के सदस्यता रजिस्टर में पाया जाता है। *प्रतिरोधी दल वाक्-उछालन और बदनाम करने में* लगे रहते हैं। नेता एक दूसरे की कमियां खोजने में व्यस्त रहते हैं और व्यक्तिगत स्पर्धा का बढ़ावा दिया जाता है। नियोजक एक वर्ग को दूसरे के विरोध में करके अपना मतलब साधा करते हैं। इससे शक्तिशाली और स्थायी श्रमिक संघों के निर्माण में बाधा पड़ती है।

१९४७ में औद्योगिक विवाद अधिनियम के पारित होने के बाद श्रमिक संघों की बहुलता के दोष और भी अधिक स्पष्ट हो उठे। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक संस्थान में जहां सौ या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हों, समान संख्या में श्रमिक और प्रबंध के प्रतिनिधियों के साथ कार्य समितियों का निर्माण किया जाना था। किन्तु श्रमिकों के प्रतिनिधियों के चुनाव में कठिनाई का अनुभव किया गया।

उदाहरण के लिये १६५० म उत्तरप्रदेश के चीनी उद्योग म अन्तर्सघीय विवाद थे। इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस स सम्बद्ध भारतीय राष्ट्रीय चीनी मिल श्रमिक सघान ने प्रतिनिधि स्वरूप को उत्तरप्रदेश और बिहार चीनी मिल मजदूर सघान द्वारा चुनौती दी गइ। दोनो म स चीनी मिल मजदूर सघान का अधिक प्रतिनिधि पाया गया तथा इसीलिए सरकार न इनस राय समिति म सदस्यो क नामाकन के लिय कहा। सघान के दो महासचिवो न भिन्न सूची प्रस्तुत की और व आपस म किसी प्रकार का समझौता करन के लिये तयार नहा थ। इसस कायसमिति म सघान क प्रतिनिधियो का नामाकन असम्भव हो गया। इस अवरोध क कारण उनकी काय व्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पडा तथा उन्ह कुछ समय के लिय बन्द कर देना पडा। ऐसा प्राय होना ह कि एक से अधिक सघ प्रतिनिधित्व का दावा करते रहे हैं। श्रमिको के बीच विभाजन और स्पर्धा से सरकार और नियोजको को श्रमिक प्रतिनिधियो क नामाकन के लिए जो वस्तुत श्रमिको म लोकप्रिय नही होते थ हस्तक्षेप करना पडा। इस विभाजन स काय समितियो की उपयोगिता कम हो गइ और व श्रमिको व विभिन्न वर्गो और अनुभागो का सहयोग पान म असफल रही।

यह आवश्यक ह कि श्रमिको क बीच एकता स्थापित की जाय तथा श्रमिक सघो की बहुलता समाप्त की जाय। एक उद्योग एक सघ का आदश प्राप्त करने के लिय कोई प्रयत्न उठा नही रखना चाहिय। इससे नेताओ के हाथ मजबूत होगे, सघो की आर्थिक स्थिति दृढ होगी और वे नइ व्यवस्था म सौपी गई भूमिका का निर्वाह निपुणता और सफलता के साथ कर सकेंगे।

एक उद्योग एक सघ के आदश की प्राप्ति के लिय एच्छिक प्रयत्न किये जाने चाहिये। किसी बाहरी सस्था अथवा विधान द्वारा एकता लादी नहीं जानी चहिय। बम्बई राज्य के औद्योगिक विवाद अधिनियम और श्रमिक सघ (सशोधित) अधिनियम १६४७ जस साधनो के माध्यम से प्रतिनिधि सघो को मान्यता देन के प्रयत्न किय गय है। १६५० म औद्योगिक सबध बिल के द्वारा इसी प्रकार की व्यवस्था लागू करन के प्रयत्न किये गये थे। श्रमिक सघ (सशोधित) अधिनियम १६४७ अब तक कार्यान्वित नही किया गया है। मान्यता और प्रतिनिधि सघो के विषय मे इन वधानिक व्यवस्थाओ के द्वारा यह आशा की जाती थी कि सघो की बहुलता म कमी होगी। हमारे देश म श्रमिक सघो की बहुलता को नष्ट करने के लिये अब तक वधिक व्यवस्था को कार्यान्वित नही किया गया है। इस बात पर अवश्य बल देना चाहिय कि शक्ति द्वारा एकता प्राप्त करने के सभी प्रयत्न समाप्त किये जाय। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिय कि इन सगठनो के पीछे आवश्यक प्रजातन्त्रीय भावना बने। सगठन की स्वतन्त्रता का अथ है कि व्यक्तियो को सघ बनाने और उनम सम्मिलित होने का अधिकार ह। इसका यह भी अथ है कि व्यक्तियो को सघ म सम्मिलित न होने की

स्थापना है और यहाँ तक कि वे विरोधी संगठन बना सकते हैं यदि उन्हें किसी संगठन विशेष से पहले सम्बद्ध थे की नीतियों से असन्तोष है। ऐसा भी विचार, जो व्यक्तियों को संगठन की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। परन्तु, वस्तुतः अव्यावहारिक है। श्रमिक संघों का एकीकृत संगठन रखना चाहिये। श्रमिक संघों में प्रबन्ध तन्त्र का अधिकार ऐसा अध्यक्ष हो जिसके द्वारा श्रमिक संघों की विरुद्ध प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाया जा सकता है। यदि श्रमिक संघों के एकीकृत स्वरूप को बनाये रखा जाय तो इससे क्षमता बढ़ेगी तथा अधिकारों के अनुचित उपयोग को रोका जा सकता। संयुक्त विचार विमर्श बोर्ड और औद्योगिक विवादों के सुलझाने के बोर्ड की स्थापना अथवा सामूहिक समझौता के क्रियान्वयन के लिये एक उद्योग में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने के लिये पूर्ण अधिकार प्राप्त एक संघ अधिक सुविधाजनक हो सकता है। किन्तु यदि एक संघ का निर्माण सरकारी आदेश पर हुआ तो इसका अर्थ होगा कि श्रमिकों को एक ही रूप के संगठन बनाने के लिये पराभिभूत करना। ऐसा विचार जो प्रतिनिधित्व का अधिकार उनसे, जो श्रमिक संघ में सम्मिलित नहीं हुए अथवा जिन्होंने एक अलग संघ बनाया है, छीन लेता है, अवांछनीय है।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि एक उद्योग का एक संघ के आदर्श की प्राप्ति के लिये कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिये। सुझाव यह है कि बजाय राज्य द्वारा आरोपित होने के एक संघ बनाने का प्रयत्न श्रमिकों और श्रमिक संघों द्वारा एकीकृत रूप से किये जाने चाहिये। एक संघ की इस प्रकार विकसित करना चाहिये जो एक उद्योग में सभी श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करे। यदि वास्तविक प्रजातन्त्रीय भावनाओं को जागृत किया जाता है तो पूर्ण विचार विमर्श के बाद बहुसंख्यकों द्वारा लिये गये निर्णयों को मानना और उनका आदर करना अल्पसंख्यक सीखेंगे। ग्रेट ब्रिटेन में यह प्रजातन्त्रीय भावना इतनी तीव्र और विकसित है कि पृथक संघ बनाने का कोई भी प्रयास विश्वासघात समझा जाता है। हमें भी ऐसी ही भावना के विकास का प्रयत्न करना चाहिये। एक उद्योग के विभिन्न संघों को मिलकर एक संघ बनाना चाहिये। यदि नेता उदारवादी तथा दूरदर्शी है तो श्रमिकों के विभिन्न वर्गों और अनुभागों द्वारा उनकी याचनायें स्वीकार की जायेंगी। इन कार्यों में सफलता तभी प्राप्त की जा सकती है जब पारस्परिक सम्बन्धों की भावना को उचित प्रोत्साहन दिया जाय। कुछ एक सम्मिलित संघ हाल ही में हुए हैं। इनके केन्द्र श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने के लिये अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघ तथा भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी संघ ने आपस में मिलकर राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी संघ की स्थापना की। श्रमिकों के बीच एकता का एक दूसरा महत्व प्रयत्न तब किया गया जब सामुद्रिकों के दो विरोधी संगठनों ने मिलकर भारतीय सामुद्रिक संघ का संगठन किया। इसी प्रकार प्रतिरक्षा श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने के लिये अब केवल एक संघ है यथा अखिल भारतीय प्रतिरक्षा कर्मचारी संघ। डाकतारों में

चीनी श्रमिकों के दो विभिन्न व्यवसाय संघ संगठनों हिन्द चीनी मजदूर संघान और संयुक्त उत्तरप्रदेश तथा बिहार चीनी मिल मजदूर संघान के सम्मिलन का परिणाम संयुक्त चीनी मिल मजदूर संघान की स्थापना हुआ। तब से पट्टन बंदरगाह तथा बीमा श्रमिकों के उद्योग में जो संयुक्त राष्ट्रीय संघानों का संगठन किया गया है।

श्रमिक संघ एकता के मार्ग में सबसे बड़ा बाधा श्रमिक नेताओं के राजनैतिक संबंध हैं। प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनैतिक दल का एक अखिल भारतीय श्रमिक संघ संघ है और जिसका नीतियों पर आधारित है। श्रमिक संघ आन्दोलन के नेता राजनैतिक दलों के हैं जो श्रमिक संघ नेता कम तथा राजनैतिक दल के प्रवक्ता अधिक होते हैं। वे श्रमिक संघ नेता के कार्यों और श्रम दल के नेता के कार्यों का मिलाकर संभ्रम की स्थिति पैदा करते हैं। श्रमिक संघ नेता का यह कर्तव्य है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिकों के लिए अधिक से अधिक सुविधायें प्राप्त करें। यह उसका धंधा नहीं है कि वह पूंजीवाद से छुटकारा पाने अथवा समाज की व्यवस्था का दमन के लिए प्रयत्न करें। ये राजनैतिक उद्देश्य हैं और जिनकी प्राप्ति के लिए राजनैतिक दल का सामथ्य ही उद्योग में आना चाहिए।

पूर्ण श्रमिक संघ एकता प्राप्त होने तक विभिन्न वर्गों के श्रमिक नेताओं को एक सामान्य कार्यक्रम अपनाना चाहिए। जहाँ तक महत्वपूर्ण आर्थिक समस्याओं मजदूरी में वृद्धि मँहगाई भत्ते का दुगनापन आवास और काम के घंटों का प्रश्न है बिना अधिक कठिनाई के एक स्वीकृत कार्यक्रम बनाया जा सकता है। यदि नेताओं में समझौता न हो पाये तो एक न्यूनतम कार्यक्रम जो सभी को मान्य हो बना लेना चाहिए। सभी द्वारा मान्य कार्यक्रम तभी बनाये जा सकते हैं जब ऐसा करने की इच्छा हो। नेताओं के लिए यह परीक्षा का समय है और उन्हें श्रमिकों के हितों की रक्षा अपने वयक्तिक वर्गीय अथवा राजनैतिक हितों को छोड़कर करनी चाहिये। यदि वे ऐसा करने के अयोग्य अथवा अनिच्छुक हैं तो निश्चित ही एक समय आयेगा जब श्रमिक समुदाय उन्हें अस्वीकार कर देगा। जैसे जैसे श्रमिकों में शिक्षा का प्रसार होगा वैसे-वैसे उनके बीच में से अधिक से अधिक नेता पैदा होंगे। श्रमिकों की आशायें इन्हीं नये नेताओं की बुद्धिमत्ता और समझदारी पर निर्भर हैं जिन्हें इतना सशक्त होना चाहिये कि यदि वर्तमान नेतृत्व उनके हितों की रक्षा नहीं कर पाता तो उसे खदेड़ सकें। हाल के वर्षों में कुछ महत्त्वपूर्ण संघर्षों के लिये श्रमिकों द्वारा अधिक संख्या में संयुक्त संघर्ष समिति की स्थापना जिसमें विभिन्न वर्गों और अनुभागों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे इस दिशा में हुई कुछ प्रगति के प्रतीक हैं।

एक श्रमिक संघ के संगठन के पूर्व साधारणतया तदर्थ संघ की स्थापना की जाती है। यदि श्रमिकों की कुछ शिकायतें या कठिनाइयां हैं तो सभा बुलाई जाती है पदाधिकारियों का चुनाव किया जाता है और मांगें सूचित की जाती हैं। यह स्थिति केवल अस्थायी होती है क्योंकि इस प्रकार संगठित संघ का तात्कालिक

उद्देश्य संघर्ष को गति प्रदान करना होता है। जब संघर्ष समाप्त हो जाता है तो तदर्थ संघ या तो भंग कर दिया जाता है या फिर एक स्थायी श्रमिक संघ के रूप में स्थापना की जा सकती है। स्थायी संघ का निर्णय कर उन पर भी तदर्थ संगठनों को नियामक नहीं माना जाता। इस देश में काफी श्रमिक संघों की विद्यमानता केवल कागज में ही है। राजकीय श्रमिक आयोग ने काफी संख्या में ऐसे कागजी संघों की अवस्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया था जिनके कोई अनुगामी नहीं थे। ऐसे संघों के नेता अपने लिए कार्यालय स्थापित करते हैं और इसके लिए श्रमिक संघ के रंगमंच का दुरुपयोग करते हैं।

साधारणतया इन संघों का प्रबंध एक निर्वाचित समिति द्वारा किया जाता है जिसे कार्यकारिणी समिति अथवा परिषद् कहा जाता है। प्रायः इन संस्थाओं में एक अध्यक्ष, दो या अधिक उपाध्यक्ष एक महासचिव, एक या अधिक सहायक सचिव और एक कोषाध्यक्ष होते हैं। अध्यक्ष और महासचिव के महत्त्वपूर्ण पदों में चुने जाने के लिये बाहरी लोग किसी न किसी प्रकार सफल हो जाते हैं। कोषाध्यक्ष भी बाहरी व्यक्ति ही रहता है। बहुधा उनका चुनाव सर्वसम्मति से हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रायः संघ पर बाहरी लोगों का जो मुख्य पदों पर आसीन होते हैं नियन्त्रण होता है।

फैक्ट्री स्तर पर संगठित अलग अलग संघ संरचनात्मक व्यवस्था का आधार है जिस पर भारत में श्रमिक संघों की संरचना खड़ी है। ये संघ या तो किसी संघान में समायोजित हो सकते हैं या स्वतन्त्र रह सकते हैं। कुछ संघों के अपने राष्ट्रीय संघान हैं। फिर भी उनमें से अधिकांश स्वतन्त्र रहने के पक्ष में होते हैं। १ अप्रैल, १९५१ को बम्बई राज्य में कुल १८१ संघों में से जिनके बारे में सूचना उपलब्ध है ८८ संघ ऐसे थे जो किसी संघ या संघान से सम्मेलित नहीं थे। १९५१–६१ के बीच कुल ८०३ संघों में से जिन्होंने सूचना प्रस्तुत की ऐसे असम्मेलित श्रमिक संघों की संख्या २९६ थी। इसी बात में अन्य २०३ संघों के सम्मेलन के बारे में कोई सूचना प्राप्त नहीं हो सकी। हमारे देश में बहुत कम श्रमिक संघ हैं जिनकी शाखाएं हों।

संघान स्थानीय-श्रमिक संघ संरचना में अगली सीढ़ी स्थानीय श्रमिक संघ संघान की होनी चाहिए जो विभिन्न संघों को एक संगठन के अन्तर्गत लायें और उनके कार्यों में सामंजस्य स्थापित करें। सामंजस्य के क्षेत्र तक ही इन संघानों का कार्य सीमित होना चाहिए। हमारे देश में इस प्रकार के स्थानीय संघानों की स्थापना काफी पहले की गई थी जबकि १९२० में मद्रास और बम्बई में केन्द्रीय श्रम मंडल, १९३२ में बंगाल श्रमिक संघ संघान और १९३६ में पंजाब श्रम मंडल की स्थापना की गई।

बम्बई श्रम-मंडल के उद्देश्य जो अन्य संघानों के भी थे—(१) श्रमिकों के

हिता के लिये प्रचार कार्य करना (२) श्रमिकों के कल्याण के लिए स्कूल पुस्तकालय तथा अन्य ऐसी नागरिक संस्थाएं खोलना (३) श्रमिकों की स्थिति के बारे में सही अनुमान लगाने के लिये आँकड़े एकत्र करना (४) उनके नागरिकता के अधिकारों की रक्षा करना (५) विभिन्न उद्योगों में नये संघों की स्थापना करना तथा विद्यमान संघों को दृढ़ बनाना (६) शान्तमय तथा अन्य इसी प्रकार के साधनों द्वारा श्रमिक वर्गों की नैतिकता का उत्थान करना। संक्षेप में इन संघों के उद्देश्य नये संघों की स्थापना करना, विद्यमान संघों में एकता स्थापित कर उन्हें मजबूत बनाना, श्रम और पूंजी के बीच प्रच्छन्न मतैक्य का निर्माण करना तथा श्रमिकों और श्रमिक संघों के स्तर में सुधार करना थे (पुनरुक्त)।

आन्तरिक मतभेदों के कारण यह संधान अशक्त रहे और शीघ्र ही विघटित हो गये। बिना दृढ़ और स्थायी संगठनों के आधार के उनकी सफलता का प्रश्न ही नहीं उठता। तीसवीं दशाब्दि में भारत में कोई दृढ़ और स्थायी श्रमिक संघ ही नहीं थे।

श्रमिक परिषदें एक स्थान के सभी श्रमिक संघों का संगठन होता है। उन्हें एक विशेष नगर अथवा महत्त्वपूर्ण औद्योगिक स्थान के सभी श्रमिक संघों के मिश्रित संघानों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। भारत में श्रमिक परिषद् जैसे संघान नहीं हैं। केवल १९२८ में एक श्रमिक परिषद् बम्बई श्रमिक परिषद् की विद्यमानता की सूचना मिली थी जिसमें ८१ संघ सम्मिलित थे।

परिवर्तित व्यवस्था में स्थानीय संघानों को महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी। इन स्थानीय संघानों के कार्यों में श्रम कल्याण प्रचार, सभाओं का आयोजन तथा निर्वाचनों में अभ्यर्थियों का खड़ा करना तथा उनकी सहायता करना सम्मिलित हैं। जबतक १९४७ में श्रमिकों को मत देने का अधिकार स्वतन्त्रता के साथ नहीं मिला तबतक निर्वाचनों में ये संस्थाएं महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकी। अब यह स्वीकार किया जाता है कि स्थानीय निकायों के चुनाव में श्रमिक वर्ग के मत का अपना महत्त्व है। यद्यपि कुल में से इनका अनुपात कम है किन्तु इनके प्रभाव को कम नहीं आंका जा सकता। स्थानीय श्रम बाजार को नियन्त्रित करने का काम भी ये संघान कर सकते हैं।

राज्य तथा प्रान्तीय संघान—ये एक विशेष राज्य अथवा प्रदेश के सभी संघटक संघों के संगठन होते हैं। इन संघानों के महत्त्व का अतिरंजन नहीं किया जा सकता। भारत जैसे विस्तृत देश में एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में परिस्थितियां भिन्न होती हैं। उड़ीसा और आसाम जैसे कुछ राज्य बम्बई और पश्चिमी बंगाल की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से कम विकसित हैं। पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल के राज्य अब भी विभाजन के प्रभावों से आक्रान्त हैं। जीवन निर्वाह मूल्य वेतन का स्तर, जीवन स्तर और वे स्थितियां जिनके अन्तर्गत उद्योग कार्य करते हैं विभिन्न राज्यों

म भिन्न हैं। इन प्रादेशिक भिन्नताओं के कारण भारत में प्रान्तीय अथवा प्रादेशिक सघान आवश्यक हैं। एक प्रजातन्त्रीय देश में निर्वाचन के माध्यम से राज्य तथा केन्द्रीय विधानमडलो पर से श्रमिकों के प्रभाव को इन्कार नही किया जा सकता। स्वभावत श्रमिक अपने ही प्रतिनिधियों को विधानसभा मे भेजना चाहेंगे और वे उन्ही अभ्यर्थियो की सहायता करेंगे जो उनके हितो की रक्षा का वायदा करें।

हमारे सविधान म श्रम को समवर्ती सूची म रखा गया है। केन्द्रीय और राज्य दोनों ही सरकारों को श्रम से सबधित अधिनियम बनाने का अधिकार है। वस्तुत बम्बई तथा उत्तरप्रदेश जैसे कुछ राज्यो ने काफी सख्या म श्रम अधिनियम और योजनायें बनाई गई हैं। वे त्रिदलीय सम्मेलनो को आयोजित करने म भी, जिनमे श्रमिक प्रतिनिधि आमन्त्रित किये गये, वे प्रथम थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के काल म सयुक्त विचार विमर्श के लिये काफी सख्या म द्विदलीय तथा त्रिदलीय सस्थाओं की स्थापना से अब राज्य सघानो की आवश्यकता अधिक हो गई है। प्रत्येक राज्य मे अब अधिकाधिक रूप से यह अनुभव किया जा रहा है कि श्रमिक प्रतिनिधियो के साथ सयुक्त विमर्श अत्यन्त आवश्यक है तथा सरकार की नीति विभिन्न समितियों और सम्मेलनों म अधिकाधिक श्रमिकों को सम्मिलित करने के पक्ष मे रही है। ये सघान जीवन निर्वाह मूल्य अर्जन सेवायोजन तथा अन्य कई औद्योगिक विषयो के बारे म आकडे एकत्र कर सकते है। न्यायालयों मडलों और न्यायाधिकरणों के समक्ष उनके द्वारा प्रस्तुत की गई सूचना श्रमिकों के पक्ष को दृढता प्रदान करेगी। इन सघानों की बढती हुई आवश्यकता सदिग्ध है। राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी सघान, भारतीय पत्रकार सघान डाक तथा रेलवे डाक सेवा सघ तथा अन्य औद्योगिक सघानों के अपने प्रान्तीय और प्रादेशिक सघान है। आल इण्डिया ट्रेड यूनियन काग्रेस, इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस हिन्द मजदूर सभा तथा यूनाइटेड ट्रेड यूनियन काग्रेस ने सविधानों म इन सघानो की स्थापना की व्यवस्था है। १६२५ म सबसे पहले बम्बई श्रमिक सघ सभा के सगठन से इनकी स्थापना का प्रारम्भ हुआ। इसके बाद १६२६ म पजाब श्रमिक सघ सभा, १६२७ म बगाल और मद्रास श्रमिक सघ सभा तथा १६२८ म उत्तरप्रदेश तथा केन्द्रीय प्रान्त श्रमिक सघ सभा की स्थापना हुई। उपर्युक्त सभी राष्ट्रीय सघानो के अपने राज्य और प्रादेशिक सघान हैं।

किन्तु इन सघानो को अधिक सफलता नही मिली। सगठनात्मक रूप से उनम बहुत-सी कमियाँ हैं। हमारे श्रमिक कमजोर, अस्थायी और आर्थिक दृष्टि से कगाल रहे हैं और उनके आधार पर जो सरचना की गई वह कमजोर के अलावा और कुछ हो ही नही सकती। सघानों की एक दूसरी कमी यह है कि उन्हे ऊपर से लादा गया है। इनकी उत्पत्ति का आन्दोलन श्रमिकों के समूह में से उद्भूत नहीं हुआ। क्योंकि १६२५ और १६२८ के बीच हमारे यहाँ शक्तिशाली और स्थायी

श्रमिक संघ नहीं थे। इसलिए ये संघान समयपूर्व भी थे। लेकिन इन संघानों के महत्त्व पर अत्यधिक बल नहीं दिया जा सकता। नियोजित आर्थिक व्यवस्था और राज्य नियमित औद्योगिक संबंधो तथा विकास की योजनाओं के युग मे श्रमिको के संगठन पर्याप्त शक्तिशाली होने चाहिये ताकि वे राज्य की नीतियों को प्रभावित कर सकें और देश की आर्थिक व्यवस्था के विकास मे समुचित सहयोग दे सकें।

केन्द्रीय संघ—केन्द्रीय संघ श्रमिको के वे संगठन हैं जिनकी गतिविधियाँ एक राज्य तक सीमित नहीं होतीं। उनके क्रिया कलाप दो या अधिक राज्यों में फैले होते हैं। श्रमिक संघ, जिनके क्रिया-कलाप और उद्देश्य एक से अधिक प्रान्त में विस्तृत होते थे, के लिये १६३८ में केन्द्रीय श्रमिक संघ नियमों की रचना की गई। १६५१–५२ में केन्द्रीय संघों की संख्या १३० थी। इनमें से केवल ८८ ने विवरण पत्र भेजे। ८८ में से जिन्होंने विवरण पत्र भेजे ४ नियोजकों के संगठन थे। पश्चिमी बंगाल में २७ बम्बई में २६, उत्तरप्रदेश में १३ मद्रास में ११, दिल्ली मे ८ तथा बिहार मध्यप्रदेश और पंजाब मे एक एक संघ थे। १६५१–५२ मे इन संघों की औसत सदस्यता १६१६ थी। केन्द्रीय संघो की संख्या में वृद्धि होती रही है। १६५८–५६ मे व्यवसाय संघ पंजिका पर नियोजकों के तीन केन्द्रीय संघ थे। एक मद्रास मे तथा दो बंगाल मे पंजीकृत थे। इस वर्ष श्रमिकों के केन्द्रीय संघ २१३ थे। उनमे से १२२ ने सदस्यता के विवरण पत्र भेजे थे। उनकी कुल सदस्यता, ३८६१ महिलाओं को मिलाकर २६८ ६६६ थी। औसत सदस्यता २ २०५ आती है। २१३ पंजीकृत संघो में से ५१ बम्बई मे ३६ पंजाब में २५ उत्तरप्रदेश मे १६ पश्चिमी बंगाल मे तथा ३२ दिल्ली में थे।

राष्ट्रीय संघान—वे या तो औद्योगिक संघान या सामान्य संघान हो सकते हैं। एक विशेष उद्योग के सभी श्रमिक संघ राष्ट्रीय औद्योगिक संघान के समामेलित सदस्य होने चाहिये। प्रत्येक श्रमिक संघ चाहे वह किसी उद्योग का हो, सामान्य राष्ट्रीय संघान से अपने को समामेलित कर सकता है। श्रमिक संघ संरचना में इन संघानों का स्थान शीर्षस्थ है। श्रमिक संघो के क्रिया कलापों मे सामंजस्य स्थापित करने तथा श्रमिक संघ नीतियों को राष्ट्रीय आधार देने के लिये ये संघान आवश्यक हैं।

सभी केन्द्रीय श्रमिक संघ संघानो ने राष्ट्रीय संघानो की आवश्यकता को स्वीकार किया है। आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने कई ऐसे औद्योगिक संघानो की स्थापना की है। इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस मे सम्मिलित होने वाले औद्योगिक संघानो की संख्या बढ़कर १४ हो गई है। हिन्द मजदूर सभा के संविधान मे भी औद्योगिक संघानों के निर्माण की व्यवस्था है जिनमें विभिन्न औद्योगिक व्यवसाय वर्गों से सम्बद्ध श्रमिक संघ समामेलित किये जायगे। विभिन्न उद्योगों के लिये वेतन मंडलों की स्थापना से ऐसे संघानों की आवश्यकता और महत्त्व काफी बढ़ गया है।

६

केन्द्रीय संगठन

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस

श्रमिक संघ आन्दोलन में सामंजस्य स्थापित करने तथा श्रमिक संघों को प्रोत्साहित करने के लिए एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता बहुत पहले १९२० में ही अनुभव की गई थी उसी वर्ष ३१ अक्तूबर को अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की स्थापना हुई। सरकार द्वारा किसी श्रमिक संघ की सलाह के बिना श्री एन० एम० जोशी को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के लिए प्रतिनिधि नामांकन करना इस संगठन के जन्म का कारण था। यद्यपि उस समय कोई भी अखिल भारतीय संस्था परामर्श के लिए नहीं थी किन्तु नेताओं ने इसे अपने प्रतिनिधि चुनने के अधिकार का अतिक्रमण माना। ३१ अक्तूबर, १९२० को भारत के विभिन्न भागों से लगभग ८०० प्रतिनिधि एम्पायर थियेटर बम्बई में एकत्र हुए। सभा के प्रथम अधिवेशन में ६४ संघ १४०८५४ सदस्यों के साथ सम्बद्ध किए गए और ४३ अन्य संघों ने सभा के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की।[1]

श्रमिक संघ आन्दोलन की इस प्रारम्भिक अवस्था में स्थायी तथा दृढ़ संघों की संख्या बहुत कम थी। कुछ लोगों का भय भी था कि अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की स्थापना समय से पूर्व हुई है क्योंकि इसका आधार शक्तिशाली संघ नहीं थे। इस विचार से कि अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की समय से पूर्व स्थापना सम्पूर्ण आन्दोलन को क्षति पहुँचायेगी और स्वयं इसकी स्थिति भी खतरे में पड़ जायेगी, श्री सी० एफ० एण्ड्रूज ने सभा की प्रारम्भिक कार्यवाहियों में भाग भी नहीं लिया। फिर भी दीवान चमनलाल, लाला लाजपतराय और जोसफ बैप्टिस्टा जैसे नेता श्री सी० एफ० एण्ड्रूज से सहमत नहीं हुए और उनका विचार था कि अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की स्थापना समयानुकूल ही थी। राजकीय श्रमिक आयोग ने भी कहा कि इसने श्रमिक संघों में अधिक सक्रिय भाग लेने वालों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम नीतियों के प्रतिपादन के लिए रंगमंच और भारत तथा योरप की श्रमिक संघों के बीच सम्पर्क के रूप में कार्य किया।

---

१ पुनेकर : ट्रेड यूनियनिज्म इन इण्डिया।

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के संविधान में सभा के कार्य-संचालन के लिये एक कार्यकारिणी परिषद् की व्यवस्था की गई। परिषद् में एक अध्यक्ष, एक या अधिक उपाध्यक्ष, एक कोषाध्यक्ष, एक या अधिक महासचिव, सहायक सचिव या सचिव तथा सभा के वार्षिक अधिवेशन में विभिन्न संघों के प्रतिनिधियों द्वारा चुने गये अन्य १० सदस्यों की व्यवस्था थी। आवश्यक सामंजस्य करने के लिये प्रान्तीय परिषदों की स्थापना की भी संविधान में व्यवस्था की गई। सभा से सम्बद्ध अलग अलग संघों को स्वतन्त्रता थी कि वे अपने उप नियमों के अनुसार अपना प्रबंध करें। किन्तु यदि कोई संघ सभा से आर्थिक सहायता चाहता था तो उसे अपने हड़ताल के निर्णय का सभा से पूर्व अनुमोदन लेना पड़ता था। सम्मिलित संघों को अपने आकार के अनुसार सभा के कोष में १० रुपये से ५० रुपये के बीच चन्दा देना होता था।

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के उद्देश्यों में एक उद्देश्य नये संघों की स्थापना करना भी था। इसका मुख्य लक्ष्य सभी श्रम संघों की कार्यवाहियों में सामंजस्य स्थापित करना तथा श्रमिकों के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हितों का प्रवर्तन करना था। सभा संसार के अन्य भागों के श्रमिक संघों, जिनके समान उद्देश्य थे, के साथ सहयोग और संबंध स्थापित कर सकती थी।

उसके पदाधिकारियों में मुख्यतः राजनीतिज्ञों की बहुलता के कारण प्रारंभ से ही अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस पर राजनीति का गहरा प्रभाव था। क्योंकि सभा के पदों पर अधिकांश सक्रिय राजनीतिज्ञ आसीन थे इसलिए बर्नेट हर्स्ट जैसे व्यक्तियों ने अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ही एक शाखा माना। राजनीतिज्ञों के प्रभुत्व से कलकत्ता में १९२४ में एकता खतरे में पड़ी और फूट अवश्यम्भावी लगने लगी। लेकिन फूट १९२९ में नागपुर में पड़ी। १९२४ और १९२८ के बीच वाममार्गी राजनीतिज्ञों का प्रभाव निरन्तर बढ़ता रहा। और १९२९ में फूट वस्तुतः राजकीय श्रमिक आयोग के बहिष्कार, नेहरू रिपोर्ट और अन्तर्राष्ट्रीय-श्रम संगठन की अस्वीकृति, साम्राज्यवाद विरोधी संघ तथा पान पैसिफिक व्यवसाय संघ सचिवालय के साथ सभा का सम्बंधन, एशियाई श्रम सभा का आयोजन और ग्रेट ब्रिटेन में सभा के मान्य प्रतिनिधि के रूप में श्रमिक कल्याण संघ की अस्वीकृति के कारण अवश्यंभावी हुई। तीस संघों ने जो अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस से अलग हुए अपना एक केन्द्रीय संगठन भारतीय श्रमिक संघ संघान के नाम से स्थापित किया। भारतीय श्रमिक संघ संघान के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता दीवान चमनलाल ने की। राजकीय श्रमिक आयोग तथा गोलमेज-सम्मेलन को सहयोग देने के विषय में प्रस्ताव पारित किये गये।

एक अन्य फूट १९३१ में पड़ी जब श्रमिक संघियों के वर्ग ने मुख्य संगठन से अलग होकर वाममार्गी व्यवसाय संघ सभा (Red Trade Union Congress)

की स्थापना की। अलग होने वाले सदियों ने सभा द्वारा उन्हें गिरनी कामगार संघ का वास्तविक प्रतिनिधि मानने से इंकार करने पर विरोध किया। क्षेत्र में दो विरोधी वर्ग थे—एक का संचालन एस० वी० देशपाण्डे के हाथ में था तथा दूसरे का जी० एल० कांडेलकर के। अधिकार समिति ने श्री देशपाण्डे के विरुद्ध निर्णय किया और वाममार्गी व्यवसाय संघ सभा की स्थापना की गई।

१९३१ में एक साथ तीन अखिल भारतीय श्रमिक संघ संगठन—भारतीय श्रमिक संघ संघान अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस तथा वाममार्गी श्रमिक संघ सभा—तथा कई असम्बद्ध संघ जैसे अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघान और अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ विद्यमान थे। जो दरारें परिलक्षित हो उठी थी उनका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ रहा था। बहुत से श्रमिक संघों ने सम्बद्ध होने से संकोच किया तथा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रक्खा। श्रमिक संघ आन्दोलन को इसका दुष्परिणाम भोगना पड़ा। भिन्नताओं तथा आपसी विरोधों ने नियोजकों को श्रमिक संघ श्रमिकों के बलीकरण और श्रमिक संघ आन्दोलन को उपेक्षित करने का अवसर प्रदान किया। इन मतभेदों का कारण विभिन्न नेताओं के राजनैतिक आदर्श थे। कुछ लोगों का विचार था कि श्रमिक संघता को मार्क्सिक होना चाहिये, जब कि दूसरे जो इतने उन्मूलनवादी नहीं थे सोचते थे कि भारतीय श्रमिक संघों को अभी कुछ समय तक सुधारवादी ही रहना चाहिये। प्रथम फूट के बाद ही तुरन्त श्रमिक संघ आन्दोलन के शुभेच्छुओं ने अनुभव किया कि आपसी मतभेदों से श्रमिक संघता की हानि ही पहुँचेगी इसलिए विभिन्न वर्गों के बीच एकता स्थापित करने के प्रयत्न आरम्भ में ही किये गये।

रेलवे कर्मचारी संघान द्वारा १९३० में कुछ औपचारिक प्रयत्न किये गये जब श्री आर० आर० बाखले ने यह प्रस्ताव रखा कि दोनों पक्ष अपनी कार्य प्रणाली में पूर्ण स्वतन्त्र रहें किन्तु उन्हें उच्च शिखर पर अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस जैसी केन्द्रीय संस्था में समन्वित होना चाहिये। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस स्वयं किसी विदेशी श्रमिक संघ संगठन से सम्बद्ध नहीं हो सकती थी लेकिन विभिन्न पक्ष यदि चाहें तो ऐसा कर सकते थे। १९३१ में श्री एन० एम० जोशी ने भी प्रस्ताव रखा कि एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन करना चाहिये। श्री चमनलाल चाहते थे कि एक निश्चित समय के लिये सबकी सहमति से एक कार्य क्रम बनाया जाय और इस अवधि में केन्द्रीय संगठन श्रमिक संघता के सिद्धान्तों विधियों अथवा नीतियों पर किसी भी प्रकार के विचार विमर्श से दूर रहे।

१९३१ में रेलवे कर्मचारी संघान द्वारा फिर प्रयत्न किये गये जबकि इसने बम्बई में एकता सम्मेलन बुलाया तथा १९३२ में एकता समिति की स्थापना की। इसी बीच श्री सुभाषचन्द्र बोस और रुइकर ने भी एकता स्थापित करने के लिये भारतीय श्रमिक संघ संघान के सचिव से बातचीत की। वाम और दक्षिण पक्षी

श्रमिक सघो के बीच एकता स्थापित करने के लिये एकता समिति १६३२ म किन्ही स्थूल निष्कर्षों पर पहुँची। एकता समिति के द्वितीय अधिवेशन म लगभग ११० सघो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया और निम्नलिखित निणय लिये गये

(१) क्योकि श्रमिक सघ वग सघष का माध्यम है अत इसका मुख्य काय श्रमिको के हितो और अधिकारो की रक्षा करने तथा विस्तार देने के लिये उन्हे सगठित करना है। श्रमिक सघना म सामूहिक सौदाकारी एक आवश्यक स्थिति है और ऐसे समय म जब हम समाजवाद की ओर बढ रहे है विचार विमश, प्रतिनिधित्व तथा सामूहिक सौदाकारी की अन्य विधिया सघो के क्रिया-कलापो का एक अटूट अग होना चाहिये क्योकि पूजीवादी सामाजिक व्यवस्था म श्रम और पूजी के बीच सामजस्य स्थापित होना असभव है।

(२) नियोजको के साथ सहयोग की सभावना को यदि यह श्रमिको के हित के लिये आवश्यक हो उपेक्षित नही किया जा सकता।

(३) श्रमिक वर्गों के दृष्टिकोण से भारतीय श्रमिक सघ आन्दोलन भारत की राजनतिक स्वतन्त्रता के सघष म सक्रिय भाग लेगा और सहयोग देगा। इसका अथ उत्पादन और वितरण के सभी साधनो का सामाजीकरण तथा राष्ट्रीयकरण तथा अन्तत समाजवादी राज्य की स्थापना होगा।

(४) भारतीय श्रमिक सघ सभा (अ) प्रस की स्वतन्त्रता (ब) भाषण की स्वतन्त्रता (स) समवाय की स्वतन्त्रता और (द) सगठन की स्वतन्त्रता के लिये है।

(५) राष्ट्रसघ (League of Nations) के तत्वावधान म आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनो मे श्रमिक सघ सभा अपने प्रतिनिधि भेजेगी।

(६) श्रमिक सघ आन्दोलन के उद्देश्यो को प्राप्त करने की विधिया शाति पूर्ण वध और प्रजातान्त्रिक होगी।

एकता समिति द्वारा रचित सविधान इन्ही निणयो पर आधारित था। एकता सम्मेलन के विशेष अधिवेशन मे भाग लेने के लिये १६३३ म अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस और भारतीय श्रमिक सघ सधान दोनो को आमन्त्रित किया गया। किन्तु व प्रयत्न असफल रहे। एक अन्य सगठन राष्ट्रीय श्रम सधान की स्थापना और हो गई। अप्रल १६३३ मे कलकत्ता के एक विशेष अधिवेशन म भारतीय श्रमिक सघ सधान ने इस नये स्थापित सगठन मे मिल जाने का निश्चय किया। और राष्ट्रीय श्रम सधान का नाम बदलकर राष्ट्रीय श्रम सघ सधान कर दिया गया।

श्रमिक सघ अभिलख जोकि भारतीय श्रमिक सघ सधान की अधिकारिक पत्रिका थी राष्ट्रीय श्रमिक सघ सधान की हो गई। भारत म समाजवादी राज्य की स्थापना श्रमिक वर्गो की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को सुधारना सेवा योजन से सम्बद्ध श्रमिको के सभी मामलो म उनके हितो अधिकारो तथा विशेषा

धिकारों का प्रवतन और उनकी रक्षा करना, श्रमिकों के लिये भाषण, प्रेस संगठन और समवाय की स्वतन्त्रता, हड़ताल और काम करने के अधिकार को प्राप्त करना तथा उसकी रक्षा करना, भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता की लड़ाई में सक्रिय भाग लेना सम्बद्ध श्रमिक संघों की कार्यवाहियों में सामंजस्य स्थापित करना, तथा जाति सम्प्रदाय समूह या धर्म पर आधारित राजनैतिक और आर्थिक सुविधाओं को समाप्त करना, राष्ट्रीय श्रमिक संघ संधान के उद्देश्य थे। राष्ट्रीय श्रमिक संघ संधान अधिक प्रतिनिधि संघ हो गया जिसमें ४७ संघ सम्बद्ध थे और जिनकी कुल सदस्यता १ ३५,००० थी। श्री जमनादास मेहता के अनुसार इसके विरोधी संगठन, अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की सदस्यता मुश्किल से १ ५०० थी। राष्ट्रीय श्रमिक संघ संधान ने अपने प्रथम अधिवेशन में अनेक प्रस्ताव पारित किये और यह माँग की कि मेरठ षड्यन्त्र मामले के कैदियों को छोड़ दिया जाय उनके आश्रितों को क्षतिपूर्ति दी जाय और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा एशियाई श्रमिक सम्मेलन का आयोजन किया जाय।

श्रम प्रतिनिधियों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भाग लेना तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ संधान में सम्बद्धन—ये दो मुख्य कारण थे जिससे श्रमिक एकता स्थापित नहीं हो सकी। राष्ट्रीय श्रमिक संघ संधान प्रथम को छोड़ने के लिये तयार नहीं था और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से अपने संबंध बनाये रखना चाहता था। किन्तु दूसरे मामले में *अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ संधान से सम्बद्धन*, झुकने के लिये तयार था।

श्रमिक संघ एकता के प्रति १९३५ में कुछ और प्रगति हुई जब वाममार्गी श्रमिक संघ सभा अपनी मुख्य संस्था, अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस में विलीन हो गई। वाममार्गी श्रमिक संघ सभा और अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के बीच हुए समझौते की मुख्य शर्तें निम्नलिखित थी (१) भारतीय श्रमिक वर्ग के केन्द्रीय संगठन के रूप में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की मान्यता (२) वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त की स्वीकृति (३) प्रत्येक उद्योग के लिये एक संघ के सिद्धान्त की स्वीकृति (४) किसी विदेशी संगठन के साथ सम्बद्ध नहीं होना चाहिये। और (५) अनुशासन को ध्यान में रखते हुए सभा के प्रत्येक वर्ग या दल को प्रचार और आलोचना का अधिकार होना चाहिये।

१९३५ में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस ने एक उपसमिति की भी स्थापना की ताकि वह श्रमिकों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने के संबंध में विभिन्न श्रम संगठनों से विचार विमर्श कर सके। उसी वर्ष राष्ट्रीय श्रमिक संघ संधान और अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के प्रतिनिधियों के साथ एक संयुक्त समिति की स्थापना की गई। इस संयुक्त समिति ने [illegible] किया।
अन्तत १९३८ में श्रमिक संघ [illegible]

अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के बीच एकता की दी हुई शर्तें इस प्रकार थी—(१) राष्ट्रीय श्रमिक सघ सधान एक इकाई के रूप मे अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस से सम्बद्ध हो जाय, (२) अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस राष्ट्रीय श्रमिक सघ सधान के सविधान को सम्पूर्ण रूप से मान ले, (३) उपयुक्त सविधान के अनुसार अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस की कायकारिणी समिति का गठन किया जाय (४) राष्ट्रीय श्रमिक सघ सधान का सम्बन्ध स्वत एक वष बाद यदि नवीकरण न किया गया समाप्त हो जायेगा। (५) अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के नये सविधान की धारा २६ की व्यवस्था के बावजूद सभा राष्ट्रीय श्रमिक सघ सधान के सम्बन्धन के दौरान किसी भी विदेशी सगठन से सम्बद्ध नही होगी। किन्तु सम्बद्ध सघ ऐसा करने के लिये स्वतन्त्र होंगे बशर्ते कि उस विदेशी सस्था के जिससे वे सम्बन्धन चाहते है उद्देश्य वही अथवा उसी प्रकार के हो, (६) अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के नये सविधान मे कोई व्यवस्था होने पर भी सभी राजनतिक और हडतालो के प्रश्न सामान्य समिति के तीन चौथाई बहुमत द्वारा तय होंगे। यदि सामान्य समिति के तीन चौथाई बहुमत ने कोई अधिदेश नही दिया तो वयक्तिक सघ अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्यवाही करने के लिये स्वतन्त्र होंगे (७) अन्य सभी औद्योगिक प्रश्नो पर बहुमत द्वारा निर्णय लिया जायगा, (८) मजदूर काग्रेस का झण्डा साधारण लाल झडा होगा जिस पर मजदूर काग्रेस लिखा होना चाहिये (९) मजदूर काग्रेस केवल उन्ही प्रस्तावो और निर्णयो को मानने के लिये बाध्य होगी जो इसके अधिवेशन मे या इसकी सामान्य समिति अथवा कायकारिणी समिति द्वारा पारित किये गये हो और यही निर्णय तथा प्रस्ताव मजदूर काग्रेस की नीति निर्धारित करेंगे। सार्वजनिक प्रश्नो पर, बिना सामान्य समिति या कायकारिणी समिति से अनुमोदित कराये कोई भी विवरण किसी भी पदाधिकारी द्वारा प्रेस मे नही दिया जायगा। आवश्यकता पडने पर अध्यक्ष और महासचिव सयुक्त रूप से विवरण भेज सकते है किन्तु उन विवरणो पर सामान्य समिति अथवा कायकारिणी समिति द्वारा विचार किया जायेगा और पुष्टि की जावेगी। तथा (१०) सामान्य समिति मे ८८ सदस्य—प्रत्येक वग के ४४ होंगे।

फूट पडने के ६ वष बाद १९३८ मे श्रमिक सघ एकता स्थापित हुई। श्रमिक नेताओ ने अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया था कि आन्तरिक फूट और कलह का बहुत बुरा प्रभाव पड रहा है। नियोक्ता विशेषकर मदी के काल मे इन विभेदो के कारण अपने लाभ के लिये श्रमिको का शोषण कर रहे थे। श्रमिक सघो की सदस्यता घट गई थी और श्रमिक सघ आन्दोलन पूर्णतया निष्क्रिय हो उठा था। विभिन्न प्रान्तो मे काग्रेस मत्रालयो की स्थापना से भी विमत वर्गो मे एकता लाने मे सहायता मिली। १९४७ मे जब राष्ट्रीय श्रमिक सघ सधान जो अभी तक मजदूर काग्रेस की एक सम्बद्ध इकाई था विखडित होकर अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस

मे मिल गया तो श्रमिक सघो मे पूर्ण एकता स्थापित हो गई। अखिल भारतीय मज़्दूर काग्रेस के साथ राष्ट्रीय श्रमिक सघ सधान का समामेलन इस देश के श्रमिक सघ आन्दोलन के इतिहास म एक युगप्रवर्तक घटना मानी गई थी।

किन्तु श्रमिक सघियो मे एकता बहुत दिनो तक न रह सकी। द्वितीय विश्वयुद्ध ने जो १९३९ म प्रारम्भ हुआ, कई समस्याये पैदा कर दी। विभिन्न राजनैतिक विचार वाले नेताओ के लिये यह मुश्किल हो गया कि वे आपस म मिल कर चलें और एक होकर काम करें। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस युद्ध के प्रति बिल्कुल उदासीन थी। जबकि काफी सख्या मे श्रमिक नेता सरकार के युद्ध प्रयत्नो म सक्रिय सहयोग देने और एक सकारात्मक नीति अपनाने के पक्ष मे थे। जो लोग अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस की नीति के विरोधी थे उन्होने नवम्बर १९४१ मे अखिल भारतीय उग्रराष्ट्र विरोधी श्रमिक सघ सम्मेलन का सगठन किया। उन्होने अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस सघ की नीति का विरोध किया और भारतीय श्रम सधान के नाम से अपनी एक केन्द्रीय श्रमिक सघ सस्था की स्थापना की। सधान का प्रारम्भ २८८,६७६ सदस्या तथा १८२ सम्बद्ध सघो से हुआ तथा बाद के वर्षों म इसने तीव्र प्रगति की। १९४२ म सरकार द्वारा सधान को मान्यता प्रदान की गई और भारत के अत्यधिक प्रतिनिधि केन्द्रीय श्रमिक सघ के रूप में इसको स्वीकार किया। भारत सरकार ने १३००० रुपये प्रतिमास की सधान को वार्षिक सहायता भी दी।[1]

किन्तु सधान का जीवन क्षणिक ही रहा। सरकार की युद्ध नीति मे सहायता देने के निश्चित उद्देश्य म उसकी स्थापना की गई थी। भारत सरकार ने श्री एस० सी० जोशी, मुख्य श्रम आयुक्त द्वारा अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस और भारतीय श्रम सधान के प्रतिनिधि स्वरूप की निश्चित करने के लिये जाच करवायी। विस्तृत जाँच के बाद श्री जोशी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस ही अधिक प्रतिनिधि है। इसम ३२६ श्रमिक सघ सम्बद्ध थे जिसकी सदस्य सख्या ६,६६ ३८५ थी जबकि भारतीय श्रम सधान म सम्बद्ध सघो की सख्या १९३ और सदस्यता ३ १२ ८०७ थी। सधान का धीरे धीरे सहयोग मिलना बद हो गया और १९४८ म नय स्थापित सघ हिन्द मजदूर सभा म इसका विलय हो गया।

१९४७ म मज्दूर काग्रेस अत्यधिक प्रतिनिधि सगठन घोषित किया गया। लेकिन इसकी ख्याति को धक्का पहुँचा जब उसी वर्ष काग्रेसी नेताओ के सहयोग और महात्मा गांधी के आशीर्वाद से भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस का सगठन किया गया। समाजवादियो द्वारा नियन्त्रित सगठन हिन्द मजदूर सभा की स्थापना से सभा की शक्ति और क्षीण हो गई। १९४९ म सयुक्त श्रमिक सघ सभा

---

१ इण्टर नेशनल लेबर रिव्यू खण्ड ५७।

की स्थापना अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस पर एक और आघात था। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की स्थापना के बाद अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस की ख्याति और सदस्यता दोनो म ह्रास हुआ। साम्यवादियो द्वारा नियत्रित नीतियो का सरकार ने दृढता के साथ विरोध किया। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस ने आरोप लगाया कि सरकार सभा के साथ अपने व्यवहारो म सपीडन और प्रवचनो का सहारा लेती है। सभाओ पर रोक लगायी जाती है सघ के कार्यालय जबरदस्ती बद कर दिये जाते है बिना मुकदमा चलाये श्रमिको को कद कर दिया जाता है और उन पर अत्याचार होता है सघ के नेताओ का वलीकरण किया जाता है सकडो पर झूठे अभियोग लगाये जाते हैं और पूरे सघो को नष्ट कर दिया जाता है। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के सघो का पजीकरण मना कर दिया जाता है, यहा तक कि हमारे द्वारा विवाचन की माग का कानून के अतगत इन्कार कर दिया जाता है। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के श्रमिकों पर अतर्राष्ट्रीय भाइयो के साथ एकता स्थापित करने पर रोक लगायी जाती है। भ्रातृ भाव से भारत आने के इच्छुक विदेशी प्रतिनिधियो को प्रवेश की आज्ञा नही दी जाती। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के इच्छुक प्रतिनिधियो का विदेश जाने के लिय पासपोर्ट नही दिये जाते' (डाग द्वारा २४ वें अधिवेशन पर समालोचना)। श्री चेतर न अपने अध्यक्षीय भाषण मे कहा "केवल १६५६ के प्रारम्भ मे ही हमारे सघ काफी समय के दमन के बाद, जिसम पूर्ण निषेध भी सम्मिलित हैं, पुनर्जीवित होने म समर्थ हो सके और तुरन्त ही वे सक्रिय हो गये। मुझे अपने सघो की प्रशसा म यह अवश्य ही कहना है कि प्रबल दमन और इस काल मे विस्तृत वलीकरण, जो विशेषकर श्रमिक सघ वाद के कारण हुआ, के सदभ म हमने बहुत जल्दी अपनी शक्ति प्राप्त करली। भारतीय मजदूर काग्रेस का २४वा अधिवेशन पाच वष के बाद आयोजित किया गया था।

सरकार के विरुद्ध आरोपो की पुष्टि कर पाना बहुत कठिन है। किन्तु भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार का आरोप अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस द्वारा ही नही बल्कि हिन्द मजदूर सभा द्वारा भी लगाया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के साथ भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के नेताओ का सक्रिय सबध भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के नेताओ को छोडकर अन्य नेताओ की काफी सख्या और कभी कभी सामूहिक रूप से गिरफ्तारी अखिल भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की सभाओ जलूसो और प्रदर्शनो पर लाठी प्रहार अश्रुगस छोडना और गोली चलाना तथा निवारक निरोध अधिनियम को परिनियम पुस्तिका मे बनाये रखना जिसके अन्तगत किसी भी व्यक्ति को बन्दी बनाया जा सकता और बिना मुकदमा चलाये जेल भेजा जा सकता है आदि मे भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के साथ सरकार के पक्षपात पूर्ण रवये और विरोधी सगठनो के साथ

सौतेला व्यवहार करने के अभियोग को बल मिलता है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि सरकार का दृष्टिकोण सदैव विचारशील नहीं रहा और उसकी नीतियों तथा कार्यों से प्राय सन्देह और शकाएँ पैदा हुई है।

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के उद्देश्य अब इस प्रकार हैं (१) भारत में *समाजवादी राज्य की स्थापना करना,* (२) जहाँ तक सभव हो उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों का समाजीकरण और राष्ट्रीयकरण करना, (३) श्रमिक वर्गों की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों में सुधार करना, (४) श्रमिकों के सेवायोजन के सम्बद्ध सभी मामलों में उनके हितों, अधिकारों और विशेषाधिकारों की देखभाल करना, उनका प्रवर्तन करना और उनकी रक्षा करना (५) श्रमिकों के लिये (अ) भाषण की स्वतन्त्रता (ब) प्रेस की स्वतन्त्रता, (स) सगठन की स्वतन्त्रता (द) जमाव की स्वतन्त्रता, (य) हड़ताल का अधिकार, (र) काम करने का भरण पोषण के अधिकार को प्राप्त करना और उन्हें बनाये रखना, (६) श्रमिक वर्ग के दृष्टिकोण से भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता के सघर्ष में सहयोग देना और सक्रिय रूप में भाग लेना, (७) अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस से सम्बद्ध श्रमिक सघों की कार्यवाहियों में सामजस्य स्थापित करना तथा (८) जाति, समुदाय, समूह वश या धर्म पर आधारित राजनैतिक या आर्थिक सुविधाओं को समाप्त करना। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस द्वारा *अपनाये गये साधन कम शांतिपूर्ण और प्रजातान्त्रिक होंगे, यथा—विधि निर्माण,* शिक्षा प्रचार, सामूहिक सभायें, विचार विमर्श प्रदर्शन और सबसे अन्त में हड़ताल।

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के सभी प्रामाणिक श्रमिक सघ, जो अपने को वर्ग सघर्ष का एक अग मानते हैं सदस्य हो सकते हैं। सबधन चाहने वाले सघ को प्रान्तीय समिति के द्वारा प्रार्थनापत्र देना पड़ता है जिसके साथ नियमों की एक प्रति, पदाधिकारियों की सूची तथा औसत चन्दा देने वाली सदस्यता के साथ लेखा परीक्षित विवरण की एक प्रति सलग्न करनी होती है। प्रान्तीय समिति को अपनी टिप्पणी के साथ दो मास के अन्दर प्रार्थनापत्र को आगे भेजना चाहिये। जहाँ प्रान्तीय समिति नहीं है वहाँ प्रार्थनापत्र सीधे महासचिव को भेजा जा सकता है। सम्बधन के लिये इच्छुक किसी भी सघ के लिये *न्यूनतम सदस्यता शुल्क* एक रुपया प्रति वर्ष है। फिर भी विशेष परिस्थिति में सामान्य समिति कम शुल्क की आज्ञा दे सकती है। कार्यकारिणी समिति को किसी भी प्रार्थनापत्र के स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार है लेकिन उसके लिये सामान्य समिति या अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की सामान्य निकाय का अनुमोदन आवश्यक है।

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के कोष के स्रोत हैं (१) ५०० और उससे कम सदस्यों से १५ रुपया वार्षिक चन्दा (२) तीन पाई प्रति सदस्य की दर से न्यूनतम २० रुपया सबधन शुल्क उन सघों से जिनकी सदस्यता ५०० से अधिक है,

(३) प्रतिनिधि शुल्क २ रुपय प्रतिनिधि तथा (४) अन्य कोई शुल्क जो सामान्य समिति के दो तिहाई बहुमत द्वारा निश्चित किया जाय। वार्षिक चन्दे का प्रतिवर्ष ३० जून तक भुगतान करना होता है। विशेष शुल्क या चन्दा जब भी लगाया जाय देय हो जाता है। यदि कोई सघ अपना वार्षिक चन्दा या कोई विशेष शुल्क का भुगतान नही करता तो जबतक वह बकाया राशि दे नही देगा वह सभा की सभाओ या उसका सघटन सस्थाओ म मतदान देने और भाग लेने के अयोग्य होगा। किन्तु कार्यकारिणी समिति को अधिकार ह कि वह इस अयोग्यता को मार्जित कर दे। यदि कोइ सघ १२ महिने तक देय राशि का भुगतान नही करता तो उसका सम्बधन तीन महीने की सूचना के बाद समाप्त किया जा सकता है। एस सघो को केवल बकाया रकम के भुगतान पर पुन सम्बद्ध किया जा सकता है।

सामान्य समिति म एक अध्यक्ष पाच उपाध्यक्ष एक महासचिव एक कोषाध्यक्ष चार या उससे कम सहायक सचिव तथा विभिन्न व्यवसाय वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य होते है। सामान्य समिति म निर्वाचित व्यवसाय वर्गों के प्रतिनिधियो द्वारा सम्बद्ध सगठनो के कुल प्रतिनिधियो के छठव भाग को ही सहयोजित किया जा सकता है। सहयोजित सदस्यो को किसी श्रमिक सघ सगठन से सम्बद्ध होना चाहिय तथा समिति म उनकी उपस्थिति श्रमिक सघ आन्दोलन के लिये आवश्यक समझी जानी चाहिये।

सारणी ४१

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की सामान्य समिति के प्रतिनिधि

प्रतिनिधियो की सख्या		सदस्यता
दो	तक	३ ०००
तीन	के बीच	३ ०००–६,०००
चार	,	६,०००–९ ०००
पाँच		९,०००–१२ ०००
छ	,	१२ ०००–१६ ०००
सात	,,	१६ ०००–२० ०००
आठ	,	२० ०००–२४ ०००
नौ		२४ ०००–३० ०००
दस		३० ०००–३६,०००
ग्यारह	,	३६ ०००–४२ ०००
बारह		४२ ०००–५०,०००

१	२	३
तरह	के बीच	५०,०००–६०,०००

६०००० के ऊपर प्रत्येक १०००० सदस्यता पर एक प्रतिनिधि बढ़ जायगा।

१ से १५ वर्ग हैं (१) रेलवे (२) जहाजरानी, (३) रेलवे और जहाजरानी के अलावा यातायात, (४) सूती वस्त्र उद्योग, (५) जूट वस्त्र उद्योग, (६) खनन और खदान (७) इन्जीनियरिंग तथा तत्सम्बंधित व्यवसाय और उद्योग (८) छपाई और कागज (९) अगारोरिस (१०) कृषि, (११) स्थानीय निकाय, (१२) वितरण (१३) तम्बाकू तथा (१४) संचार।

वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधियों में से संचित मतपद्धति द्वारा पदाधिकारियों का चुनाव होता है। विभिन्न व्यवसाय वर्ग पृथक्-पृथक् मिलकर अपने प्रतिनिधि स्वयं चुनते हैं। सामान्य समिति में विभिन्न व्यवसाय वर्गों का प्रतिनिधित्व उनकी सदस्यता पर निर्भर करता है। सारणी ४७ की योजनानुसार विभिन्न व्यवसाय वर्गों के प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित होती है।

आकस्मिक रिक्त-स्थानों की पूर्ति सामान्य समिति द्वारा उस व्यवसाय वर्ग में की जाती है जिसमें स्थान रिक्त हुआ है। सामान्य समिति का एक सदस्य यदि उस व्यवसाय वर्ग का सदस्य नहीं रह जाता जिसके द्वारा सामान्य समिति के लिये उसका चुनाव हुआ था तो सामान्य समिति से भी उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है।

व्यवसाय वर्गों के लिये यह एक प्रोत्साहन कि वे नये संघ स्थापित करें और असंगठित श्रमिकों को अपने नियन्त्रण में लायें। किन्तु इसमें श्रमिक संघों को सामान्य समिति में अपेक्षित प्रतिनिधित्व पाने के लिये यह प्रलोभन मिल सकता है कि वे अपने रजिस्टरों में सदस्यों के झूठे नाम बनाये रहें। विभिन्न व्यवसाय वर्गों के बीच पूर्ण समानता स्थापित कर पाना संभव नहीं हो सकता। फिर भी सर्वसम्मत से निर्णय करने के प्रयत्न करने चाहिए जो बहुमत से लिये गये निर्णयों से अधिमान्य हैं। विभिन्न वर्गों को एक साथ रख पाने में असफलता तथा सर्वसम्मत से निर्णय ले पाने के अभाव से बहुधा श्रमिक एकता विघटित हो जाती है।

सामान्य समिति के कार्य हैं—(१) कार्यकारिणी समिति के २० सदस्यों का चुनना (२) संविधान के अनुसार अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के कार्यों का संचालन करने के लिए सभी उचित कदम उठाना (३) अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के संविधान से संगत उपनियम बनाकर प्रतिनिधियों के निर्वाचन विवरण भेजने तथा संघटन शुल्क से सम्बद्ध बनाना (४) किसी भी पदाधिकारी या सामान्य

समिति के सदस्य के विरुद्ध जो अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के हितो के विरुद्ध कार्य करता है, अनुशासनिक कार्यवाही करना (५) सामान्य निकाय की अनुमति से किसी सघ को असम्बद्ध करना, जिसने अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस सविधान का उल्लघन किया हो तथा (६) समय समय पर विभिन्न व्यवसाय वर्गों की सूची निश्चित करना तथा कार्यकारिणी समिति द्वारा विभिन्न व्यवसाय वर्गों म सघो के विभाजन पर अपील सुनना। सामान्य समिति के निर्णय अतिम होते हैं। वर्ष म एक बार सामान्य समिति की बैठक आवश्यक है। सामान्य समिति की बैठक के लिए महासचिव द्वारा १५ दिन की सूचना देनी होती है। सामान्य समिति की बैठक के लिए कोरम सदस्यो की एक तिहाई सख्या है।

मजदूर काग्रेस का दिन प्रतिदिन का प्रशासन एक छोटी कार्यकारिणी समिति द्वारा चलाया जाता है जिसमे अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के सभी पदाधिकारी तथा सामान्य समिति द्वारा सचय मत पद्धति से निर्वाचित २० अन्य सदस्य होते है। कार्यकारिणी समिति की बैठक वर्ष म कम से कम दो बार होनी चाहिए। कार्यकारिणी समिति की बैठको की कोरम सख्या सदस्यो की एक तिहाई है। कार्यकारिणी समिति की बैठक के लिए महासचिव द्वारा १५ दिन की सूचना देनी होती है किन्तु कार्यकारिणी समिति की आपात बैठक ७ दिन की सूचना पर ही बुलाई जा सकती है।

कार्यकारिणी समिति किसी श्रमिक सघ को उपयुक्त व्यवसाय वर्ग म बाट सकती है परन्तु इसके विरुद्ध सामान्य समिति मे अपील की जा सकती है। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के पिछले अधिवेशनो में पारित किए प्रस्तावो के कार्यान्वन के लिए सभी उचित कदम उठाना वर्ष के दौरान किसी भी आपात स्थिति मे निबटना और सामान्यतया अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के आदर्शों का प्रवर्तित तथा आगे बढाना कार्यकारिणी समिति के अधिकार क्षेत्र म है।

अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस का सामान्य अधिवेशन सामान्यतया दिसम्बर म आयोजित किया जाता है। २०० या उससे कम सदस्यता वाले सघ एक प्रतिनिधि भेजने के अधिकारी हैं। वे इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि प्रत्येक २०० सदस्यो पर तथा एक अतिम अपूर्णांक पर यदि वह १०० या अधिक सदस्यो का हो भेज सकते हैं। श्रमिक सघ द्वारा अतिम स्थिति विवरण म दी गई चदा देने वाले सदस्यो की सख्या के आधार पर प्रतिनिधियो की सख्या निश्चित की जाती है। प्रत्येक प्रतिनिधि को सम्बद्ध सघ के सचिव द्वारा दिये गए निर्वाचन प्रमाण-पत्र के प्रस्तुत करने पर प्रतिनिधि पत्र दिया जाता है। सामान्य अधिवेशन के लिए श्रमिक सघो के केवल पदाधिकारी या सदस्य ही निर्वाचित किये जा सकते हैं। कोरम सामान्य निकाय के सदस्यो की एक तिहाई सख्या होनी है। वार्षिक सामान्य अधिवेशन म पदाधिकारियो का चुनाव होता है और जिसकी अध्यक्षता जाने वाले अध्यक्ष द्वारा की जाती है। एक श्रमिक

सघ विचार विमर्श के लिए अधिक से अधिक पाच प्रस्ताव वार्षिक सामान्य अधिवेशन म भेज सकता है। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस की बैठक के कम से कम दो सप्ताह पूर्व भेजने वाले सघ के अध्यक्ष और सचिव के हस्ताक्षर सहित उन्हें महासचिव के पास पहुँच जाना चाहिए फिर भी श्रमिको से सम्बद्ध सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर चर्चा की जा सके इसके लिए सामान्य समिति को अधिकार दिया गया है कि वह कार्यावली म महत्त्वपूर्ण विषय सम्मिलित कर ले। सामान्य अधिवेशन में हाथ उठाकर निर्णय लिए जाते हैं। अध्यक्ष मतदान का परिणाम घोषित करता है। यदि कोई प्रतिनिधि विभाजन की माग करता है तो मतदान पत्र के द्वारा किया जाता है और प्रत्येक सघ उतने मत दे सकता है जितने उसके प्रतिनिधि होते हैं। सामान्यतया प्रश्नो का निर्णय बहुमत द्वारा किया जाता है। राजनैतिक मामले, अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस द्वारा घोषित हड़तालों से सम्बद्ध समस्याएँ, अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस का किसी विदेशी सगठन से सबन्ध तथा सविधान म किसी प्रकार का परिवर्तन पर तीन चौथाई बहुमत द्वारा निर्णय होता है। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस की कुल सदस्य सख्या म से यदि एक चौथाई सदस्यता का प्रतिनिधित्व करने वाले सघ सभा के विशेष अधिवेशन की माग करें तो माँग प्रस्तुत करने के ६ सप्ताह के अन्दर विशेष अधिवेशन का आयोजन करना पड़ता है।

प्रत्येक प्रान्त के सम्बद्ध सघ प्रान्तीय मजदूर काग्रेस की रचना करते हैं और कोई भी सघ इसमे सम्मिलित नही हो सकता जबतक वह अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस से सम्बद्ध न हो। किन्तु प्रान्तीय मजदूर काग्रेस को अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस से असम्बद्ध सघो को सम्बद्ध सदस्य के रूप म सम्मिलित करने का अधिकार है बशर्ते कि वे सघ अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के सविधान का पालन करते हो। अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के सविधान के अधीन रहते हुए प्रान्तीय मजदूर काग्रेस अपनी कार्यवाहियो के सचालन म पूर्ण स्वतन्त्र है। प्रान्त म पृथक मत इकाइयो के लिए पृथक मजदूर काग्रेस सगठित की जा सकती हैं। यदि श्रमिको के हितो के प्रवर्तन के लिए आवश्यक हो तो प्रान्तीय मजदूर काग्रेस द्वारा प्रादेशिक परिषदो की स्थापना की जा सकती है। प्रादेशिक मजदूर परिषदो का अपना सविधान होना चाहिए जो अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के सविधान के समरूप हो।

राजनैतिक समिति—कार्यकारिणी समिति अपने कुछ सदस्यो की निम्नलिखित उद्देश्यो के लिए राजनैतिक समिति की स्थापना कर सकती है (१) सम्बद्ध सघो को अपने राजनैतिक कोषो के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करना (२) सामान्य समिति की सलाह से स्थानीय निकायो और विधान सभाओ के चुनावो की व्यवस्था करना (३) केन्द्रीय और स्थानीय सरकारो के कर प्रस्तावो का अध्ययन करना तथा श्रमिक वर्ग के दृष्टिकोण से भारत म श्रमिक अधिनियमो का विकास करना, (४) श्रमिक वर्ग के हित म विधान का उपक्रमण करना, तथा (५) कार्यकारिणी

समिति की सलाह पर ऐसा राजनैतिक प्रचार करना जो संविधान के अनुकूल हो।

सारणी ४८

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की प्रगति (१९४७–१९५९)

वर्ष	सम्बद्ध व्यवसाय संघों की संख्या	सदस्यता
१९४७	६०१	७९६ १७४
१९४८	अ	अ
१९४९	७५४	७४१,०३५
१९५०	७२२	७२० ६३६
१९५१	७२६	८५७ ८१४
१९५२	अ	अ
१९५३[1]	३३४	२१० ९१४
१९५४	९२७	६५५ ९४०
१९५५–५६[1]	५५२	४२२ ८५१
१९५६–५७	अ	अ
१९५७–५८[1]	८०७	५३७ ५६७
१९५८–५९[1]	८१४	५०७ ६५४
१९५९–६०[1]	८८६	७०८ ९६२

जैसा कि उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की सदस्यता बहुत परिवर्तनशील रही है। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के नेताओं की शिकायत है कि संघों के उचित कार्य-संचालन में अड़चनें डाली जाती हैं और सरकार उनके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण व्यवहार करती है। २७–२९ मई १९५४ को कलकत्ता में आयोजित अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के २४वें अधिवेशन में सभा ने यह दावा किया कि ९३७ संघ अपने ६२५ ९४० सदस्यों के साथ उससे सम्बद्ध हैं। २९५ संघों जिनकी कुल सदस्यता २२१ ९२२ थी का प्रतिनिधित्व करने वाले ८२५ प्रतिनिधियों ने अधिवेशन में भाग लिया। २५वें अधिवेशन के लिए अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस ने १० लाख सदस्यता का लक्ष्य रखा और अपने सम्बद्ध संघों को उत्साहित किया कि वे असंगठित श्रमिकों को अपने संघों में शामिल करें। किन्तु यह लक्ष्य अभी तक पूरा नहीं हुआ है।

१—भारत सरकार द्वारा सत्यापित आंकड़े

अ—अनुपलब्ध

अखिल भारतीय मजदूर संघ अब भारतीय श्रमिकों की सर्वाधिक प्रतिनिधि संस्था नहीं रही। इसकी सदस्यता कम हो गई है, यद्यपि सभा पिछले कुछ वर्षों के दौरान स्थिर प्रगति का दावा करती है। इसके नेताओं ने इस ह्रास का कारण राज्य और नियोजकों के विरोध को बताया है। उनका कहना है कि अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के संघों को उचित रूप से काम नहीं करने दिया जाता। "हमारे बहुत से संघों को मान्यता न मिलने तथा नियोजकों और सरकार के विरोध के कारण हम अपनी शक्ति और प्रभाव का प्रतिबिम्बन सदस्यता और संगठनात्मक व्यवस्था में नहीं कर पाते।"[1] नेतृत्व यह अनुभव करता है कि प्रशिक्षित संवर्ग के अभाव में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस अवरुद्ध है। इस कमी को दूर करने के लिए १९५३ में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस ने दो सप्ताह का नागपुर में केन्द्रीय श्रमिक संघ स्कूल का संगठन किया। किन्तु अधिकांश राज्य मजदूर कांग्रेस राज्य स्कूलों का संगठन करने में असफल रहीं। कुल मिलाकर न तो केन्द्रीय और न राज्य कार्यालय इस कार्य को उचित और सन्तोषपूर्ण ढंग से करने में समर्थ रहे। नेतृत्व ने यह स्वीकार किया कि अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस का संगठन वैसा नहीं है जैसा होना चाहिए। किसी सीमा तक हम यह स्वीकार करना चाहिये, कि हमारे कुछ नेताओं की उदासीनता और संगठनात्मक कर्त्तव्यों के प्रति लापरवाही से इसे सहायता मिलती है। हम सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं, हम संघर्ष करते हैं, हम कष्ट उठाते हैं, बहुत से मामलों में हम जीतते हैं, हमारे झण्डे के नीचे हमारे आह्वान पर लाखों व्यक्ति एकत्र होते हैं और वहीं हम पूर्ण विराम लगा देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस संघर्ष और विजय में श्रमिक वर्ग अपना कवच खो बैठते हैं जबकि उन्हें इसकी अत्यधिक आवश्यकता होती है—संगठन, धन, सदस्यता, संवर्ग कार्यालय, वकील, प्राविधिक कर्मचारी, समितियों में प्रतिनिधित्व, राज्य श्रमिक संघ सभाओं तथा केन्द्रीय कार्यालयों के क्रिया-कलाप।[2]

नेतृत्व का अनुभव है कि संगठन को मजबूत बनाने के लिये सेवा तथा सतत् और सम्मिलित कार्यवाही की आवश्यकता है। संगठन की यह समस्या संयोगिक ढंग से नहीं सुलझाई जा सकती। (समस्याएँ) अधिक ठोस हैं और केवल सिद्धान्त की सामान्य बातों के द्वारा उनसे नहीं निबटा जा सकता है। कारावास और गालियों का सामना करना आवश्यक है और इसके लिये हिम्मत चाहिये। किन्तु केवल उसी से समस्या नहीं सुलझती है। वस्तुतः गलत समय में ऐसा करने से, जब समझौता होने ही वाला हो, वर्ग के लाभों में बाधा पड़ेगी। यद्यपि इससे हममें से कुछ लोगों को अपनी असमानता छिपाने या सममौते की कुछ असुविधाओं को दूर करने में

१ पूर्नाकुलम में सामान्य प्रतिवेदन, पृ० ८७।

२ पूर्नाकुलम में सामान्य प्रतिवेदन, पृ० ८७।

सहायता मिल सकती है। जैसे हम जानते हैं कि कैसे संघर्ष किया जाय उसी तरह हमें यह अवश्य सीखना चाहिये कि कैसे समझौता किया जाय।'[1] राज्य मजदूर कांग्रेस संगठनों की भी स्थापना की गई है। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस का कहना है कि राज्य स्तर पर इसके संगठन आंध्र, आसाम, बंगाल, दिल्ली, बिहार, बम्बई, हैदराबाद, मध्यभारत, मालाबार, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, ट्रावनकोर, कोचीन, तामिलनाडु और उत्तरप्रदेश में हैं। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के संघों का नेतृत्व पश्चिमी बंगाल, बम्बई, तामिलनाद, आंध्र, हैदराबाद, पंजाब, ट्रावनकोर-कोचीन और मालाबार में विस्तृत तथा गहन है। बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, आसाम, उड़ीसा, राजस्थान और गुजरात के राज्यों में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस का संगठन कमजोर है।

अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के नेताओं का दावा है कि उन्होंने भारतीय मजदूर कांग्रेस, हिन्द मजदूर सभा और संयुक्त श्रमिक संघ सभा के साथ एकता के लिये गम्भीर प्रयत्न किये हैं। 'हम विरोधी संघों की स्थापना से बचने के लिये चाहे वे भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस या हिन्द मजदूर सभा या संयुक्त श्रमिक संघ सभा के विरुद्ध ही हों। अत्यधिक प्रयत्न करना चाहिये।'[2] किन्तु ये प्रयत्न असफल रहे हैं।

केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त अनेक आयोगों और समितियों में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस को प्रतिनिधित्व मिला है। विभिन्न त्रिदलीय बैठकों में भी सभा के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस विश्व श्रमिक संघ से सम्बद्ध है जिसने सभा की बहुत तरह से सहायता की है। सभा अपनी कोई केन्द्रीय विवरण पत्रिका प्रकाशित नहीं करती। विश्व श्रमिक संघ सभा ने अपने केन्द्रीय संगठन के हिन्दी संस्करण 'विश्व मजदूर' को प्रकाशित करने में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की मदद की है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस का संगठन १९४७ में किया गया था। महात्मा गांधी ने इसे आशीर्वाद दी और कांग्रेसी नेताओं ने इसे सक्रिय सहयोग और प्रोत्साहन दिया। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस में साम्यवादियों की प्रधानता श्रम पूंजी के बीच बिगड़ते हुये सम्बन्ध अत्यधिक संख्या में हड़तालें सन्निहित श्रमिक कार्य-कर दिनों की हानि तथा परिणामस्वरूप वस्तुओं की कमी ने नेताओं को सोचने के लिये विवश किया। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस का संगठन श्रमिक

१ वही वही पृ० ८७-८८

१ एर्नाकुलम में सामान्य प्रतिवेदन पृ० ७६

वर्ग का रचनात्मक निर्देशन देने के लिये और उनके दल गत के हितों के लिये शोषण रोकने के लिये किया गया। यह औद्योगिक विवादों को शांतिपूर्ण और अहिंसावादी तरीकों से सुलझाना चाहती थी।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के निम्नलिखित उद्देश्य हैं —

अ—(१) एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना जिसमें व्यक्तित्व सम्पत्ति की चतुर्मुखी प्रगति के मार्ग में कोई बाधा न हो। जीवन की ऐसी व्यवस्था में मानवीय व्यक्तित्व अपने सभी पक्षों में पुष्पित होगा और सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक असमानताओं, लाभ प्रवृत्ति और शक्ति के किसी भी रूप में असामाजिक केन्द्रीयकरण के उत्तरोत्तर निरसन के लिये सर्वाधिक प्रयत्न किये जायेंगे, (२) उद्देश्यों की शीघ्रातिशीघ्र प्राप्ति के लिये उद्योगों के सम्यक रूप में राष्ट्रीय स्वामित्व और नियंत्रण के गजा की प्रस्तावना की गई, (३) समाज का इस प्रकार से संगठित करना कि पूर्ण सेवायोजन सुनिश्चित हो और मानव शक्ति तथा अन्य साधनों का सर्वोत्तम उपयोग हो सके (४) औद्योगिक प्रशासन में श्रमिकों के अधिकाधिक संयोजन और नियंत्रण में उनके पूर्ण अंश के लिये प्रयत्न करना, तथा (५) श्रमिक वर्ग के सामान्यतया सामाजिक, नागरिक और राजनीतिक हितों को आगे बढ़ाना।

ब—(१) सभी वर्गों के श्रमिकों, कृषीय श्रमिकों को लेकर, में पूर्ण और प्रभावकारी संघना की स्थापना करना (२) सम्बद्ध संगठनों की कार्यवाहियों में सामंजस्य स्थापित करना और निर्देश देना, (३) श्रमिक संघों के संगठन में सहायता देना (४) राष्ट्रीय आधार पर प्रत्येक उद्योग के श्रमिकों के संगठन का प्रवर्तन करना तथा (५) प्रान्तिक या प्रान्तीय शाखाओं या संघों की स्थापना में सहयोग देना।

स—(१) उद्योग और समाज में श्रमिकों के लिये जीवन और कार्य की अच्छी अवस्थाएं और उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त करना (२) श्रमिकों के लिये विभिन्न सामाजिक सुरक्षा साधनों जैसे—दुर्घटना के लिये पर्याप्त व्यवस्था बीमारी, वृद्धावस्था, बेरोजगारी की उपलब्धि करना, (३) सामान्य सेवायोजन में प्रत्येक श्रमिक के लिये निर्वाह मजदूरी और निरन्तर उन्नत जीवन-स्तर सुनिश्चित करना (४) स्वास्थ्य, मनोरंजन और सांस्कृतिक विकास से सम्बन्धित श्रमिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य के घंटे तथा अन्य स्थितियों का नियमन करना, तथा (५) श्रमिकों की अवस्था में सुधार के लिये उपयुक्त विधिक उपायों का अधिनियम करना और श्रमिकों के उत्थान और सुधार के लिये उपायों के उचित निष्पादन की देखभाल करना है।

द—(१) उचित औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करना (२) बिना काम बन्द किये निरन्तर मिलाप और मध्यस्थता द्वारा और इनमें सफलता न मिलने पर विवाचन

या अधिनिर्णय द्वारा श्रमिको की शिकायतो को दूर करना, (३) उन मामलो म जिसमे अधिनिर्णय का सहारा नही लिया गया और विवाचन द्वारा उचित समय मे विवाद के सुलझने की सभावना नही है, शिकायतो को दूर करने के लिये अन्य यथोचित विधियो को अपनाना जसे—हडताल या सत्याग्रह का कोई सम्यक रूप तथा (४) अधिकृत हडताल या सत्याग्रह को निपुणता से सचालित करने के लिये आवश्यक व्यवस्था करना और उन्हे शीघ्र और सतोषपूर्ण निष्कर्ष म पहुँचाने के लिये यत्न करना।

घ—(१) श्रमिको म एकता, सेवा भाईचारे सहयोग तथा एक दूसरे की सहायता करने की भावनायें जागृत करना, (२) श्रमिको को उद्योग और समुदाय के प्रति अपने दायित्वो का अनुभव कराना तथा (३) श्रमिको की कुशलता और अनुशासन के स्तर को ऊँचा उठाना।

उपयु क्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये सत्य और शातिपूर्ण साधन अपनाए जाने चाहिये।

सदस्यता भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की सदस्यता प्रत्येक श्रमिक सगठन के लिये जो उपयु क्त उद्देश्यो और विधियो का स्वीकार करता हो खुली है। सम्बद्ध होने वाले सघो के सदस्यो के लिये पहले न्यूनतम शुल्क दो आने प्रति मास था। सविधान अब सशोधित कर दिया गया है और अब न्यूनतम सदस्यता शुल्क चार आने प्रतिमास है। यदि श्रमिक कृषि या तत्सबन्धित व्यवसायो म सेवायुक्त हैं तो न्यूनतम शुल्क दर की स्थितियो म कायकारिणी समिति द्वारा सशोधन किया जा सकता है।

एक ही उद्योग या व्यापार व्यवसाय या कायकारिणी समिति द्वारा परिभाषित एक 'स्थानीय क्षेत्र' से केवल एक ही सगठन भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस म सम्बद्ध हो सकता है। निर्धारित प्रपत्र पर दी गई विधि के अनुसार सबधन के लिये प्राथना-पत्र देना चाहिये। प्राथना पत्र के साथ पाच रुपये का शुल्क भेजना चाहिये। प्राथना पत्र स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार कायकारिणी का है किन्तु इसकी पुष्टि सामान्य परिषद् द्वारा की जानी चाहिये। सबधन के लिये आवश्यक है कि जो सघ सबधन के लिये प्राथना पत्र देना चाहते है उन्हे स्थापित हुये कम से कम तीन महीने हो गये हो और वे श्रमिक सघ अधिनियम के अन्तगत पजीकृत हो। किन्तु विशेष परिस्थितियो म कायकारिणी समिति पजीकरण के पूर्व भी सबधन की अनुमति दे सकती है। शिल्प या सस्थानगत सघो की अपेक्षा औद्योगिक सघो को प्राथमिकता दी जाती है।

कोई सघ, जो निर्धारित शर्तों को पूरा करता है उस प्रान्तीय शाखा को प्राथना पत्र देना होता है इसके साथ अन्य आवश्यक वस्तुओ के अतिरिक्त सामान्य निकाय या निष्पादक समिति द्वारा सबधन के निश्चय के प्रस्ताव, जिस पर अध्यक्ष

या महासचिव के हस्ताक्षर हो की एक प्रति संघ के संविधान की एक प्रति और श्रमिक संघ रजिस्ट्रार को प्रस्तुत अन्तिम वार्षिक विवरण की एक प्रति संलग्न करनी पड़ती है। प्रार्थना पत्र प्राप्त होने की तिथि से दो मास के भीतर प्रान्तीय शाखा परिनिरीक्षण के बाद उसे केन्द्रीय कार्यालय को अग्रसित कर देती है। यदि प्रान्तीय शाखा द्वारा प्रार्थना पत्र की सिफारिश की गई है तो केन्द्रीय कार्यालय अस्थायी प्रमाण पत्र निर्गमित कर देगा। कार्यकारिणी समिति की पुष्टि के बाद ही स्थायी सबंधन प्रमाण पत्र दिया जाता है। उन मामलों में जहाँ प्रान्तीय शाखा ने प्रार्थना पत्र की सिफारिश नहीं की है कार्यकारिणी समिति और जाँच करने के बाद अन्तिम निर्णय लेती है।

सम्बद्ध संघों को नियमानुरूप अपने उद्योगों के राष्ट्रीय संघों, यदि कोई हों, और जिन्हें भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस से मान्यता मिली हो, से सम्बद्ध हो जाना चाहिये।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के धन के स्रोत निम्नलिखित हैं —(१) सभी सम्बद्ध संगठनों से उनकी रजिस्टर में दर्ज प्रति सदस्य एक आना की दर से किन्तु १० रुपये से कम नहीं वार्षिक सबंधन शुल्क। अब दर एक आना से डेढ़ आना कर दी गई है (२) समय समय पर कोई विशेष शुल्क जिसे उगाहने का अधिकार दिया जाये। सुनिर्वाचित कोषाध्यक्ष द्वारा सभा का हिसाब किताब रखा जाता है और सामान्य परिषद् द्वारा नियुक्त लेखापरीक्षक द्वारा उनकी जाँच होती है। वार्षिक सबंधन शुल्क का भुगतान प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होने के तीन मास के भीतर करना पड़ता है तथा विशेष शुल्क का निर्धारित समय के भीतर कोई भी संघ जो निर्धारित समय के भीतर सबंधन शुल्क और विशेष शुल्क का भुगतान नहीं करता उसे सूचना देने के बाद असम्बद्ध कर दिया जाता है। जब तक बकाया राशि का भुगतान नहीं हो जाता दोषी श्रमिक संघ को मत देने का अधिकार नहीं रहता। किन्तु परिस्थितियों में सामान्य परिषद् फिर भी, इस अयोग्यता को दूर कर सकती है। यदि किसी संगठन का भुगतान न करने के कारण असम्बद्ध कर दिया गया है तो देय राशि के चुकता कर देने पर उसे पुनः सम्बद्ध किया जा सकता है। सामान्य परिषद् को यह अधिकार है कि वह दोषी संघ का सबंधन शुल्क या विशेष शुल्क की पूर्ण या आंशिक राशि का भुगतान की छूट दे दे।

प्रत्येक सम्बद्ध संगठन के निम्नलिखित दायित्व हैं —(१) इस बात का हिसाब सावधानी रखना कि उसके सदस्यता के विवरण और अभिलेख सदस्यता शुल्क के वास्तविक भुगतान के अनुरूप हैं (२) प्रत्येक वेतन काल के लिए सदस्यता शुल्क एकत्र करना जब तक कि कार्यकारिणी समिति द्वारा छूट न दी गई हो, (३) हिसाब किताब रजिस्टरों और अन्य अभिलेखों की कार्यकारिणी समिति द्वारा अधिकृत व्यक्तियों द्वारा परिनिरीक्षण और निरीक्षण की व्यवस्था करना। संघ ऐसी

सारी सूचना, जो कार्यकारिणी समिति या किसी अन्य अधिकृत व्यक्ति द्वारा मांगी जाय देना (४) निर्धारित प्रपत्रों पर नियमकालिक विवरण भेजना (५) तीन महीने में एक बार अपनी कार्यकारिणी समिति की बैठक बुलाना (६) सामान्य निकाय या कार्यकारिणी समिति द्वारा पारित सभी प्रस्तावों को कार्यवाही पुस्तिका में अभिलिखित करना (७) उन विवादों को जिनमें विचार विमर्श द्वारा समझौता नहीं हुआ विवाचन के लिये प्रस्तुत करने को तैयार रहना तथा (८) किसी भी हड़ताल या सत्याग्रह को सहयोग देने की स्वीकृति न देना जबतक कि समझौते की सभी विधियां अपनाकर प्रयत्न न कर लिया गया हो और सामान्य बैठक में हड़ताल या सत्याग्रह के लिये अधिकांश सदस्यों ने मत न दिया हो। मतदान पत्र पत्रों या हाथ उठाकर लिया जा सकता है।

एक सम्बद्ध संघ ६ महीने की निश्चित सूचना देने के बाद भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस से अलग हो सकता है। जो संगठन एक वर्ष से अधिक समय तक संबंधन शुल्क तथा अन्य देय राशियों का भुगतान नहीं करता उसका संबंधन समाप्त हो जायगा। यदि कोई संगठन अपने दायित्वों को पूरा नहीं करता तो आरोपों की सूचना देने तथा संबंधित संगठन को अपना सद्व्यवहार स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करने के बाद सामान्य परिषद् कोई भी उचित कदम उठा सकती है। ऐसी कार्यवाहियों में सदस्यता से निलम्बन विशेषाधिकारों का हरण और सभा से निष्कासन भी सम्मिलित है। कोई संगठन जिसका संबंधन समाप्त हो जाता है वह सम्बद्ध संगठन के रूप में अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता और न ही सभा की सम्पत्ति और कोष पर उनका कोई दावा रह जाता है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस का प्रशासन तीन संस्थाओं द्वारा होता है (१) वार्षिक प्रतिनिधि अधिवेशन (२) सामान्य परिषद् और (३) कार्यकारिणी समिति।

वार्षिक प्रतिनिधि अधिवेशन—यह भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की संसद है और साधारणतया वर्ष में एक बार इसकी बैठक होती है। सभी सम्बद्ध संघों को प्रत्येक ४०० सदस्यों या उसके भाग के लिए एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होता है। चुनाव की सुविधा के लिए महासचिव के पास संघों की एक सूची होती है और वह उन्हें सूचित करता है कि चुनाव किस तिथि को होंगे। साथ ही एक निश्चित तिथि तक प्रान्तीय शाखाओं को अनुमोदित प्रतिनिधियों की सूची भेज देता है। सामान्य परिषद् के लिए चुनाव निर्धारित प्रान्तीय शाखा द्वारा किये जाते हैं। ये प्रतिनिधि प्रत्येक ५००० सदस्यों या उसके भाग के लिए एक सदस्य के आधार पर किन्तु सम्बद्ध प्रान्त में न्यूनतम १००० सदस्य होने चाहिए सामान्य परिषद् के सदस्यों का चुनाव करते हैं। सामान्य परिषद् निर्वाचित प्रतिनिधियों का वार्षिक अधिवेशन बुलाती है। समय समय पर उद्योगों का वर्गीकरण कार्यकारिणी समिति

द्वारा किया जाता है।

सामान्य परिषद्—सामान्य परिषद् में (१) सभी भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस भूतपूर्व अध्यक्ष जबतक कि वे किसी सम्बद्ध संगठन के सदस्य हों, (२) विभिन्न प्रान्तीय शाखाओं द्वारा निर्वाचित सदस्य, (३) सहयोजित सदस्य, जिन्हें किसी संगठन का प्राथमिक सदस्य होना आवश्यक नहीं है, होते हैं। सहयोजित सदस्यों की संख्या १० से अधिक या कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या के तीस प्रतिशत के बराबर, जो कम हो, होती है। केवल सम्बद्ध संगठन के सदस्य या पदाधिकारी ही सामान्य परिषद् के लिए चुने जा सकते हैं। किसी भी संघ का सदस्य नहीं रहता, उसकी सामान्य परिषद् में भी सदस्यता समाप्त हो जाती है। सामान्य परिषद् के काम हैं (१) कार्यकारिणी समिति के लिए सदस्यों का चुनाव करना (२) सभा के पदाधिकारियों का चुनाव करना (३) भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के लिए लेखानिरीक्षक की नियुक्ति करना, (४) सहयोजित सदस्यों का चुनाव करना, (५) सभा के वार्षिक अधिवेशन के समय विषय समिति के रूप में कार्य करना तथा सभा के वार्षिक अधिवेशन में प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तावों का प्रारूप तैयार करना और (६) कार्यकारिणी समिति के निश्चयों के विरुद्ध प्रार्थनापत्र सुनना और निर्णय देना।

सामान्य परिषद् की बैठक छः महीने में कम से कम एक बार होती है। सामान्य परिषद् का कोरम कुल सदस्यों का दसवाँ भाग या २० सदस्य, जो भी कम हो, होता है। सामान्य परिषद् के कम से कम १/३ सदस्यों की माँग पर महामन्त्री को परिषद् की बैठक बुलानी पड़ती है।

कार्यकारिणी समिति—भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति में एक अध्यक्ष, पाँच उपाध्यक्ष, एक महामन्त्री, एक कोषाध्यक्ष तथा २७ सदस्य होते हैं। कार्यकारिणी के सभी पदाधिकारी और १८ सदस्यों का चुनाव सामान्य परिषद् द्वारा किया जाता है। सामान्य परिषद् के सदस्यों में से इन १८ सदस्यों का चुनाव किया जाता है जो विभिन्न व्यावसायिक वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कार्यकारिणी समिति द्वारा अपनी अन्तिम बैठक में इन व्यवसाय वर्गों की संख्या तथा उनके समिति में प्रतिनिधित्व का निश्चय किया जाता है। कार्यकारिणी समिति के शेष ९ सदस्यों का नामांकन महामन्त्री की सलाह से सभा के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। सभा के अध्यक्ष को यह भी अधिकार है कि वह कार्यकारिणी समिति के सदस्यों में से एक मन्त्री सचिव और दो संगठन सचिवों, जिन्हें सामान्य परिषद् का सदस्य होना चाहिए यद्यपि कार्यकारिणी समिति की सदस्यता आवश्यक नहीं है, का नामांकन करे।

कार्यकारिणी समिति के काम और अधिकार निम्नलिखित हैं —

(१) चुनाव की तिथि निश्चित करना तथा व्यवस्था करना

(२) सामान्य परिषद् द्वारा स्वीकृति (अ) संघों के संबंधन (ब) संविधान के अन्तर्गत निर्वाचन, (स) मतदान की विधि तथा प्रतिनिधियों की सभा के कार्यों में सम्बद्ध अन्य मामले, (द) प्रान्तीय शाखाओं और विभागों की स्थापना और उनके उचित कार्य संचालन (य) स्वागत समिति की रचना अधिकार और कार्य, (र) रिक्त स्थानों की पूर्ति तथा (ल) हड़ताल या सत्याग्रह के उपाश्रम के सम्बन्ध में नियम और विधि बनाना तथा निर्धारित करना

(३) (अ) वार्षिक अधिवेशन और सामान्य परिषद् के प्रस्तावों के अनुसार सभा का सामान्य प्रशासन चलाना (ब) सभी आवश्यक तथा कालोचित निर्णय लेना और कार्यवाही करना, (स) संघटक संगठनों (सम्बद्ध संघ औद्योगिक संधान और प्रान्तीय शाखायें) के बीच सभी विवादों और विभेदों पर विचार करना तथा हल करना, (द) औद्योगिक संधानों और प्रान्तीय शाखाओं की कार्यवाहियों का निरीक्षण और नियमन करना, तथा (य) प्रतिनिधि अधिवेशन, और सामान्य परिषद् की बैठकों का समय, स्थान और कार्य सूची निश्चित करना

(४) सामान्य परिषद् का कार्यकारिणी समिति की सदस्यता से उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत द्वारा किसी व्यक्ति को निलम्बित या निष्कासित करना। ऐसे किसी निर्णय के खिलाफ सामान्य परिषद् में अपील दी जा सकती है। इस प्रकार निलम्बित या निष्कासित व्यक्ति भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की अन्य सभी संस्थाओं और समितियों से भी निलम्बित या निष्कासित समझे जाते हैं तथा

(५) किसी सम्बद्ध संघ के विरुद्ध कार्यवाही करना जो संविधान की किसी व्यवस्था का उल्लंघन कर रहा हो या संगठन के हित के विरुद्ध कार्य कर रहा हो ऐसी कार्यवाही का कार्यकारिणी समिति में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत द्वारा, अनुमोदन होना चाहिए। ऐसी कार्यवाही में विशेषाधिकारों का हरण संबंधन से निलम्बन और असंबंधन सम्मिलित हैं। जिस संघ के विरुद्ध कार्यवाही करनी होती है उसे आरोपों की पूर्व सूचना दी जाती है और उसे अपना व्यवहार स्पष्ट करने का अवसर प्रदान किया जाता है। यदि कोई दल कार्यकारिणी समिति के निर्णय से असंतुष्ट है तो सामान्य परिषद् में अपील करने का अधिकार है जिसका निर्णय अंतिम होगा।

सभा के खुले अधिवेशन में एकत्रित प्रतिनिधियों द्वारा भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के संविधान में संशोधन किया जा सकता है। ऐसी किसी वस्तु की कम से कम १४ दिन पूर्व विशेष सूचना देना पड़ती है। संशोधन के लिए उपस्थित प्रतिनिधियों के दो-तिहाई बहुमत और मतदान होने पर पूर्ण बहुमत की आवश्यकता होती है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की अभी तक प्रगति प्रशंसनीय रही है।

मई १६४७ में इसकी प्रारम्भिक सदस्यता ३५ संघ और १,५७००० सदस्य थी। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ अपनी ६०,००० सदस्यता के साथ उन संघों में से एक था जो इस नई स्थापित अखिल भारतीय संस्था में सम्बद्ध हुए। १६४७ के बाद से भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने निम्नलिखित सदस्यता और सम्बद्ध श्रमिक संघों का दावा किया है।

सारणी ४६

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की प्रगति १६४७–६३

वर्ष	सम्बद्ध व्यवसाय संघों की संख्या	सदस्यता
१६४७	२२७	४१२,१८२
१६४८	४६८	१,०३३,६१४
१६४६	८४७	१,०२८,११३
१६५०	१०४३	१,४३१,८७८
१६५१	१,२३२	१५४८,५८८
१६५२	६१३	१,२६८,६०५
१६५३*	५६७	६१६,२४३
१६५४	१०६७	१,३५३,३३१
१६५५–५६	६१७	६७१,७४०
१६५६–५७	६७२	६३४,३८५
१६५७–५८	७२७	६१०,२२१
१६५८–५६	८८६	१०२०,६५३
१६५६–६०	८६०	१,०५३,३८६
१६६०–६१	११२०	१,६६३ ८६३
१६६१–६२	१४०३	१,६३६,४५८
१६६२–६३	१५८६	१,७२२,६२१

पिछले कुछ वर्षों से सम्बद्ध संगठनों की संख्या और सदस्यता में ह्रास हो रहा था। यद्यपि १६५८–५६ के बाद कुछ वृद्धि हुई है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस अपनी स्थिति को स्थिर बनाने के लिए प्रयत्नशील रही है। केवल जीवित संघों को सम्मिलित करना और निश्चेष्ट संघों को या उन संघों को जिन्होंने अपना सवधन शुल्क तथा अन्य देय केन्द्रीय संगठन को नहीं दिया हटा देना सभा का उद्देश्य

*भारत सरकार द्वारा सत्यापित।

रहा है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के नेताओं का लक्ष्य मात्रा की अपेक्षा श्रेष्ठता का रहा है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस को भारतीय श्रमिकों की सर्वाधिक प्रतिनिधि संस्था के रूप में मान्यता दी गई है। यह तर्क दिया जाता है कि सभा की वर्तमान प्रतिष्ठा और शक्ति कांग्रेसी सरकार और कांग्रेसी नेताओं के सक्रिय सहयोग के कारण है। अन्य श्रमिक संघों की शिकायत है कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस का के श्रमिक संघों को राज्य का संरक्षण प्राप्त है। दो निश्चित लक्ष्यों के साथ नये संगठन ने कार्य प्रारम्भ किया। प्रथम था कि हर संभव उपायों द्वारा श्रमिकों के काम और जीवन की अवस्थाओं में सुधार करना तथा दूसरा यह कि संतुष्ट श्रम की सहायता से स्वतंत्र भारत की सरकार के हाथ मजबूत करना।[1] वे भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के संघों के पक्ष में राज्य यंत्र के पक्षपातपूर्ण व्यवहार को दोषारोपण करते हैं। कांग्रेसी नेताओं के निकट और सक्रिय सम्बन्ध इस विश्वास को पुष्टि प्रदान करते हैं।

डा० जकरिया ने भी अपने शोध प्रबन्ध 'औद्योगिक सम्बन्ध और संधि वार्ता समझौते' में सिल्क उद्योग के लिये वेतन मंडल का उदाहरण दिया है। वेतन मंडल ने अधिक सफलता प्राप्त नहीं की। वे लिखते हैं 'मंडल में श्रम का प्रतिनिधित्व भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस द्वारा किया जाता है जबकि उद्योग के सर्वाधिक शक्तिशाली श्रमिक संघों का नियंत्रण हिन्द मजदूर सभा द्वारा किया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस को यह अनावश्यक अधिकारीय संरक्षण नहीं दिया जाना चाहिये था।'

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस फिर भी निस्संदेह भारतीय श्रमिकों का सर्वाधिक प्रतिनिधि संगठन है। इसका विकास केवल राज्य के सहयोग या संरक्षण के कारण ही नहीं बल्कि इसमें अन्तर्निहित शक्ति के कारण भी हुआ। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस जो भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस का विरोधी संगठन है ने सभा के संगठन से सम्बद्ध अपने प्रतिवेदन में कहा है कि 'कुछ लोग अब भी सोचते हैं कि इसने (भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस) केवल सरकारी सहायता नियोजकों द्वारा मान्यता और वित्त के कारण ही ऐसा किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस को इनसे पर्याप्त सहायता मिली है। क्योंकि इसके शीर्ष नेता मुख्यतः उन्हीं नीतियों का अनुसरण करते हैं जिससे सरकार को और नियोजकों को सहायता मिले। किन्तु यह बिलकुल गलत धारणा होगी कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस का अनुसरण करने वाला उसका अपना कोई जन समूह नहीं है या यह कि इस पर जन समूह के दबाव का कोई प्रभाव नहीं है यह

[1] आर० सी० सोमन पीसफुल इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स, पृ० ३१३

सोचने की प्रवृत्ति सी बन गई है कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के नेतृत्व में सभी कार्य करने वाले हैं जिन्हें श्रमिकों का शोषण करने के लिये या लोकप्रिय आधार प्राप्त करने के लिये नियोजकों और राज्य के साथ दुरभि संधि करके किया जाता है। ऐसा निष्कर्ष तथ्यों पर आधारित नहीं है किन्तु समकाल में, अब भी, इससे संगठन को हानियों की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस अपने संगठन के उचित विकास के लिये विशेष रूप से जागरूक है। सम्पूर्ण देश पाँच क्षेत्रों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र के लिये एक संगठन कर्ता की नियुक्ति की गई है जो सभा के कार्यों का प्रवर्तन करने के लिये दौरा करेगा। इसी प्रकार यह भी अनुभव किया जा रहा है कि विभिन्न कार्यों को समुचित रूप से करने के लिये सभा के सचिवों की संख्या बढ़ानी चाहिये।

नेताओं के प्रशिक्षण और इनके संवर्ग के निर्माण के लिये विभिन्न स्थानों पर संगठन ने प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की है। इनके द्वारा प्रमाणित व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक संघ परिसंघ द्वारा संचालित एशियन श्रमिक संघ कॉलेज कलकत्ता में भी प्रशिक्षण पा रहे हैं। काफी संख्या में श्रमिक प्रशिक्षण हेतु दूसरे देशों में भी गये हैं।

हाल ही में भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने अपने सम्बद्ध संघों की सहायता के लिये एक विधि के अनुभाग की भी स्थापना की है। इसी प्रकार युवक श्रमिकों की समस्याओं को सुलझाने के लिये एक 'युवक श्रमिक विभाग' का संगठन किया गया है।

अपनी विभिन्न कार्यवाहियों के लिये अधिक धन एकत्र करने के ध्येय से भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने 'विशेष कोष' आन्दोलन चलाया है। विशेष आन्दोलन द्वारा इस प्रकार एकत्रित धन का ७५% भाग राज्य शाखायें अपने पास रखती हैं और केवल २५% केन्द्रीय कार्यालय को भेजा जाता है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस अपने सम्बद्ध संगठनों द्वारा कल्याणकारी कार्यों के ऊपर भी बल दे रही है। कार्यकारिणी समिति ने सम्बन्धित संघों को सलाह दी है कि वे स्वयं सेवक संगठन का निर्माण करें। इस संगठन युवक श्रमिकों को सामूहिक कार्यों और सामाजिक कार्यवाहियों के सम्पादन में प्रशिक्षित कर सकते हैं। सभा के संघों ने और भी बहुत से कल्याणकारी काम किये—सहकारी समितियों की स्थापना, रात्रि स्कूलों, सिनेमाओं और कल्याणकारी केन्द्रों, अस्पतालों आदि का संचालन करने का अधिकार उठाया है। यह सूचना मिली है कि केवल अहमदाबाद में ही लगभग १०० सहकारी आवास समितियों का पंजीकरण कराया गया। कानपुर के श्रमिकों ने सहकारी आधार पर बड़े पैमाने पर सस्ते नाजों का कार्य शुरू किया

है।[1] इन सघो ने गदी बस्तियो को हटाने का काय भी हाथ म लिया है और इस सबध मे इन्दौर के मिल मजदूर सघ न उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। आसाम चाय सघ भारत म श्रमिक सघो के प्रयत्नो से निर्मित प्रथम चलचित्र 'केमा मोन' जो पूरी लम्बाई की फिल्म है और जिसम श्रमिको क जीवन को दिखाया गया है, से सम्बद्ध रहे है। बहुत से सघ अपने भवन निमाण करने के लिये गभीरता से प्रयत्न कर रहे हैं। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की कुछ प्रगतिशील इकाइयो ने श्रमिक समस्याग्रो पर सामूहिक विचार विमश के लिय विचार-गोष्ठियो का आयोजन किया है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस ने अपने सिद्धान्तो क श्रमिको पर पडने वाले मनोवैज्ञानिक और स्थूल प्रभावो की जाच के लिय तथा श्रमिक अवस्थाओ के हल के लिये एक सर्वेक्षण का भी प्रस्ताव रखा है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस न राष्ट्रीय औद्योगिक सधानो के सगठनो का समथन किया है। इस समय तक विभिन्न श्रमिक अनुवर्गो के बीच १४[2] ऐसे सधान काग्रेस द्वारा स्थापित किये जा चुके है। इन सधानो को सभा बहुत महत्त्वपूर्ण समझती है। "भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की यह नीति है कि वह औद्योगिक सधानो की वृद्धि म प्रवतन सहायता और प्रोत्साहन दे।[3] वयक्तिक सघो को इन सधानो से सम्बद्ध होना पडता है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस इन राष्ट्रीय औद्योगिक सधानो की काय प्रणाली को अधिक प्रभावकारी तथा आन्दोलन का एक पूर्णांग भाग बनाना चाहती थी और इसीलिये इसकी कायकारिणी समिति न निश्चय किया कि सघ और प्रदेश शाखायें सभी मामलो म इन सधानो स जहा य विद्यमान है, सहायता और सहयोग प्राप्त करें।

श्रमिको के सगठन के लिय भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस न सदव उद्योग को सर्वविदित का आधार स्वीकार किया है। प्रत्येक स्थान पर इसने शिल्पसघो के निर्माण को हतोत्साहित और औद्योगिक सघो का प्रोत्साहित किया है। कई स्थानो पर नये सघो की स्थापना मे केन्द्रीय कार्यालय न सहायता दी है। इसकी नीति रही है कि शिल्पसघो को जहा इन्हे सगठित किया गया है और मान्यता प्रदान की गई है औद्योगिक सघो म जितनी जल्दी हो सके स्थानान्तरित कर दिया जाय। इस विषय

---

१ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस ११वा प्रतिवेदन, पृ० ८७

२ (१) सीमेंट (२) रसायन (३) प्रतिरक्षा (४) गोदी कमचारी (५) विद्युत कमचारी (६) लोहा और इस्पात (७) खान कमचारी (८) कागज मिल कमचारी (९) पेट्रोल कमचारी (१०) रोपण कमचारी (११) प्रेस कमचारी (१२) चीनी मिल कमचारी (१३) वस्त्र उद्योग कम चारी (१४) यातायात कम चारी।

३ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस ११वाँ प्रतिवेदन पृ० ४

पर कार्यकारिणी समिति ने अपनी एक बैठक में प्रस्ताव पारित किया और यह घोषणा की कि औद्योगिक आधार पर संगठित संघों द्वारा श्रमिक वर्ग के हितों की रक्षा सर्वोत्तम तरीके से हो जायगी। इसलिये सभी शिल्पसंघों को शीघ्रातिशीघ्र स्थानीय औद्योगिक संघों में विलय हो जाने का सुझाव दिया। प्रत्येक क्षेत्र के संस्थानगत संघों को भी यह सलाह दी गई कि वे मिलकर शीघ्र ही औद्योगिक संघों का निर्माण करें।

अच्छे संगठनात्मक कार्यकलापों के लिये संगठित और सामूहिक प्रयत्नों की दृष्टि से भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने प्रशासनिक व संगठनात्मक संघटकों, जो प्रदेश शाखाओं के नाम से विदित है की स्थापना की है। प्रदेश शाखाओं के स्वमेव कोई स्वतन्त्र कार्य नहीं है बल्कि उन्हें केन्द्रीय संगठन के प्रतिनिधि रूप में सुविधा और कार्य साधनता की दृष्टि से राष्ट्रीय आन्दोलन के व्यापक हित में तथा समय समय पर संगठन द्वारा निर्धारित नीतियों और कार्यक्रमों के सम्पादन का काम करना पड़ता है।'[1] प्रदेश शाखाओं का यह कार्य है कि केन्द्रीय संगठन को संघों के संबंधन और असंबंधन से संबंधित सभी मामलों से पूर्ण भिज्ञ रखना, संबंधन शुल्क की देय राशि को वसूल करने में सहायता करना, अपने क्षेत्रों के सम्बद्ध संघों पर दृष्टि रखना, संघों को मान्यता प्राप्त करने के लिये विधिक तथा अन्य आवश्यक सहायता देना, सदस्यता रजिस्टर, लेखा पुस्तिकायें तथा सत्यापित विधि के बारे में निर्देश देना, संगठन के महत्वपूर्ण नेताओं तथा विदेशी भ्रातीय अतिथियों के निरीक्षण और दौरों के लिये कार्यक्रमों की व्यवस्था करना। संक्षेप में, शाखाओं को संगठन और सिद्धान्तों के सभी पक्षों पर संघों की सहायता करनी पड़ती है और निर्देशन देना पड़ता है।"[2]

इन संधानों—प्रादेशिक और औद्योगिक—ने अपने क्षेत्रों में बड़ी लगन से काम किया है। अपने संधानों के कार्यकलापों को अधिक प्रभावशाली ढंग से निर्देशित करने के लिये भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने प्रदेश शाखाओं और औद्योगिक संधानों के अध्यक्षों और महासचिवों की सामयिक बैठकें आयोजित करने की कार्यप्रणाली अपनायी है। इन संधानों की कार्यप्रणाली साधारणतया संतोषजनक रही है।

---

१ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस १२वां प्रतिवेदन पृ० ७४
२ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस १२वां प्रतिवेदन पृ० ७४

सभा ने उद्योगों को २६ समूहों[1] में विभाजित किया है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्रता श्रमिक संघ प्रसंघ तथा अन्य श्रमिक संघ संगठनों को विवरण भेजने में सुविधा की दृष्टि से यह वर्गीकरण किया गया है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस सभा अपना अधिकारिक पत्र 'भारतीय श्रमिक' का प्रकाशन करती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक संघ प्रसंघ १०० पौंड की अर्थ सहायता देता है। कुछ इससे सम्बद्ध संघ भी अपने पृथक पत्र पत्रिकायें और विवरणिकायें प्रकाशित करते हैं। श्रमिकों के लिए उपयोगी साहित्य और भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए भारतीय श्रमिक प्रकाशन की स्थापना का निश्चय किया गया था। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने अपना इतिहास तैयार करने और प्रकाशित करने के लिए एक संपादकीय मंडल की भी स्थापना की। न्यास के मार्ग में साहित्य और अन्य उपयोगी सामग्री के प्रकाशन में धनाभाव के कारण कठिनाई है।

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने सभा और प्रदेश शाखाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के संपादकों का सम्मेलन आयोजित करके एक समन्वित नीति प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। यह भी निश्चय किया गया कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की अपनी सूचना सेवा होनी चाहिए जो सभी पत्रिकाओं के प्रचार कार्य को समन्वित करें।[2]

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने एक शोध और सूचना अनुभाग की भी स्थापना की है। एक शोध सहायक इस अनुभाग में १९५१ से काम कर रहा है। बढ़ते हुए काम को संभालने के लिए इस अनुभाग का विस्तार भी किया गया। शोध और सूचना अनुभाग का कार्य मुख्यतया सरकार को प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न श्रम समस्याओं पर तथा सम्मेलनों में भाग लेने वाले विभिन्न प्रतिनिधियों के लिए स्मृति पत्र तैयार करना है। सम्बद्ध संघ भी इस अनुभाग के कार्यों से लाभ उठा सकें इसके लिए सभा साइक्लोस्टाइल त्रैमासिक विवरणिकायें प्रकाशित करती हैं। बाद में यह सूचना परिशिष्ट रूप में भारतीय श्रमिक के साथ प्रकाशित की गई।

---

१ कृषि, रोपण, चीनी, खाद्य पेय, खान और खदानें (धातु), खान और खदानें (धातुरहित) वस्त्र तथा तैयार वस्त्र, जूट वस्त्र, इंजीनियरिंग, रसायन, कागज की वस्तुयें, मुद्रण तथा प्रकाशन, सीमेंट शीशा और मिट्टी के बर्तन लकड़ी चमड़े की वस्तुयें, रबर की वस्तुयें कपड़े, यातायात बन्दरगाह तथा गोदी डाक तथा तार वाणिज्य सेवायें सरकार स्थानीय निकाय निजी, निर्माण विद्युत और शक्ति तथा विविध

२ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ११वाँ प्रतिवेदन पृ० ११८

राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस जनता के साथ सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के लिए भी उत्सुक है। विशेषकर सभा का यह उद्देश्य है कि जनता को श्रम क्षेत्र में विभिन्न विकासों से भलीभांति परिचित रखा जाय जिससे नियोजकों द्वारा श्रमिक विधानों के विरुद्ध किये जा रहे प्रचार को निष्फल किया जा सके। इसके लिए सभा ने एक प्रेस और जन सम्पर्क विभाग की स्थापना की है। प्रान्तीय शाखाओं और औद्योगिक संस्थाओं से कहा गया है कि वे इस विभाग को सारी सूचनायें दें।

नन्दूरकर का अनुभव है कि "इस देश में पिछले कुछ समय से साम्यवादी श्रमिक संघ आन्दोलन और गांधीवादी श्रमिक संघ आन्दोलन के बीच सैद्धान्तिक संघर्ष रहा है।[1] भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस श्रमिक समस्याओं को गांधीवादी सिद्धान्तों द्वारा सुलझाना चाहती है। इसके संविधान में सम्बद्ध संघों के दायित्वों की व्यवस्था है। इसके उद्देश्यों में से शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक साधनों द्वारा उचित औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना, उद्योग और वाणिज्य के प्रति श्रमिकों में उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करना और श्रमिकों की निपुणता और अनुशासन के स्तर में वृद्धि करना है। अन्य श्रमिक संघों ने इन उद्देश्यों को इतने स्पष्ट रूप से न तो स्वीकार किया है और न ही इतना महत्त्व दिया है।

कांग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के बीच बहुत ही निकट सहयोग रहा है। कार्यकारिणी समिति ने अपने ४६ वें अधिवेशन में कांग्रेस और सभा के बीच सम्बन्धों पर विचार किया। 'इस बात की सराहना की गई कि दोनों संगठनों के सिद्धान्त, साधन और विधियाँ एक समान हैं। यह स्पष्ट था कि जहाँ कांग्रेस जनता के सभी वर्गों को समाविष्ट करते हुए एक राजनीतिक दल था, भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस विशेषतौर से श्रमिक वर्ग की सेवा के लिए एक आन्दोलन था। स्पष्टतया, कार्यों का स्पष्ट रूप में विभाजन था और एक के द्वारा दूसरे के कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप का कोई प्रश्न नहीं उठ सकता। समिति ने धारणा व्यक्त की कि दोनों संगठनों के कार्य पारस्परिक तथा पूरक होने चाहिएँ तथा इनकी कार्य प्रणाली में समरूपता होनी चाहिए।'[2] कांग्रेस दल ने अपने कर्मचारियों को भी यह आदेश दिए हैं कि वे श्रमिक क्षेत्र में केवल भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के माध्यम से काम करें और स्वतन्त्र विरोधी संस्थाओं की स्थापना न करें। कभी कभी सभा को अपने श्रमिकों में फूट की कठिनाई का सामना करना पड़ता है। हाल ही में कांग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के बीच मध्यप्रदेश में काफी प्रखर मतभेद हो गये थे। इसी प्रकार बंगाल शाखा में भी फूट पड़ गई थी जिसे १९५५ में ठीक किया गया।

---

१ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस १०वां प्रतिवेदन, पृ० २८

२ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ११वां प्रतिवेदन, पृ० १३–१४

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस सर्वाधिक प्रतिनिधि श्रमिक संघ संगठन बनी हुई है। सभा ने कुछ ऐसे क्षेत्रों जैसे—कृषीय श्रमिक रोपण श्रमिक तथा अन्य में भी संगठन कार्य प्रारम्भ किये जहाँ पहले कार्य नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त इसने वास्तविक अर्थों में राष्ट्रीय स्तर पर कार्य किया क्योंकि राष्ट्रीय कांग्रेस से सम्बन्ध होने के कारण देश के प्रत्येक भाग में सक्रिय कार्यकर्ता उपलब्ध हो गये।[1]

भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने भारत में और बाहर दोनों जगह श्रमिकों का प्रतिनिधित्व किया है। यह कई बहुत सी अधिनियमित और गैर सरकारी द्विदलीय और त्रिदलीय संस्थाओं जैसे—भारतीय श्रमिक सम्मेलन स्थायी श्रम समिति संयुक्त सलाहकार उद्योग और श्रम मंडल केन्द्रीय उद्योग परामर्श परिषद् न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८ के अन्तर्गत सामान्य परामर्श मंडल और भारत सरकार द्वारा संगठित औद्योगिक समितियों में प्रतिनिधित्व करती रही है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सभा का अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के साथ निकट का सम्बन्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा स्थापित विभिन्न संस्थाओं की बैठकों में इसके प्रतिनिधियों ने भाग लिया है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक संघ प्रसंघान का संस्थापक सदस्य है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक संघ प्रसंघान दोनों ने कई तरह से इसकी सहायता की है।

हिन्द मजदूर सभा

समाजवादी वर्ग द्वारा नियंत्रित और निर्देशित हिन्द मजदूर सभा एक केन्द्रीय श्रम संगठन है। इसके नेता नये स्थापित भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की कांग्रेसी सरकार पक्षीय नीतियों तथा अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के साम्यवादियों द्वारा अभिभावन के विरोधी थे। इसलिए १९४८ में हिन्द मजदूर सभा की स्थापना की गई और तुरंत उसके बाद भारतीय श्रम संघान का नये स्थापित श्रम संगठन में विलय हो गया।

हिन्द मजदूर सभा के लक्ष्य और उद्देश्य निम्नलिखित हैं (१) भारतीय श्रमिक वर्ग के आर्थिक राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक हितों का प्रवर्तन करना (२) सम्बद्ध संगठनों को निर्देशित तथा उनके कार्यकलापों में सामंजस्य स्थापित करना और उनके कार्यों में सहायता करना (३) श्रमिकों के सेवायोजन से सम्बन्धित सभी मामलों, हितों अधिकारों और विशेषाधिकारों की रक्षा करना और प्रवर्तन करना (४) एक ही उद्योग या व्यवसाय के संघों के संघों तथा एक ही उद्योग या व्यवसाय में नियुक्त श्रमिकों के राष्ट्रीय संघों की स्थापना को प्रोत्साहित करना (५) श्रमिकों के लिए संगठन की स्वतन्त्रता भाषण की स्वतन्त्रता समवाय

---

१ वी० बी० कार्निक इंडियन ट्रेड यूनियन्स, पृ० १५७

की स्वतन्त्रता प्रेस की स्वतन्त्रता प्राप्त करने या भरण पोषण का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार तथा हड़ताल का अधिकार प्राप्त करना और उनकी रक्षा करना (६) भारत मे प्रजातांत्रिक समाजवादी समाज की स्थापना के लिए प्रयत्न करना, (७) सहकारी समितियो के निर्माण को प्रोत्साहित करना तथा श्रमिक शिक्षा को बढावा देना तथा (८) समान लक्ष्य और उद्देश्य रखने वाले भारतीय तथा विदेशी सगठनो के साथ सहयोग करना। यह नियत किया गया है कि इन उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हिन्द मजदूर सभा द्वारा अपनाये गये साधन यथार्थ, शातिपूर्ण और प्रजातांत्रिक होंगे।

सभी प्रामाणिक श्रमिक सघ जिनमे श्रमिक सघो के सघान भी सम्मिलित हैं हिन्द मजदूर सभा के सदस्य हो सकते है। सबधन के लिए प्रार्थना पत्र, जिसके साथ अपने सघ का सघान के नियम और सविधान तथा हिन्द मजदूर सभा द्वारा मॉगी गई कोई अन्य सूचना को सलग्न करके, देने के बाद इन्हे सम्बद्ध किया जा सकता है। सभा की सामान्य परिषद् को ऐसे किसी प्रार्थना पत्र को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार है। अन्तिम अधिकार वार्षिक सम्मेलन को होता है जो सामान्य परिषद् के निर्णय के विरुद्ध निर्णय दे सकता है।

हिन्द मजदूर सभा के कोष के स्रोत हैं (१) सबधन शुल्क दो पैसा प्रति सदस्य प्रतिवर्ष की दर से जिसकी न्यूनतम राशि २० रुपये होगी। इसका भुगतान अधिकारीय वर्ष प्रारम्भ होने के बाद तीन मास के भीतर एक किश्त मे करना पड़ता है (२) प्रतिनिधित्व शुल्क ३ रुपये प्रति प्रतिनिधि, तथा (३) अन्य कोई शुल्क जो सामान्य परिषद् द्वारा लगाया जाय। ऐसे शुल्क सामान्य परिषद् के दो तिहाई बहुमत द्वारा ही निर्णय लेने पर लगाये जा सकते हैं। सभा की कार्यकारिणी समिति के आदेशानुसार अनुमोदित बैंक मे सभा का धन जमा किया जाता है। कार्यकारिणी समिति द्वारा नियुक्त पजीकृत लेखा निरीक्षक द्वारा हिसाब किताब की परीक्षा की जाती है। उचित रूप से हिसाब किताब रखने और उसके परीक्षण का उत्तरदायित्व कोषाध्यक्ष पर होता है। वार्षिक सम्मेलन मे प्रस्तुत करने के लिये परीक्षित लेखा विवरण सामान्य परिषद् मे रखना भी उसी का काम है।

सभा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रशासनिक सस्था सामान्य परिषद् है। नीति तथा कार्यवाहियो से सबधित सभी मामलो मे इसका निर्णय अन्तिम होता है। सामान्य परिषद् मे एक अध्यक्ष पॉच या पॉच से कम उपाध्यक्ष महासचिव, दो या दो से कम अन्य सचिव एक कोषाध्यक्ष तथा विभिन्न औद्योगिक वर्गों का प्रतिनिधित्व भिन्न करने वाले अन्य सदस्य होते हैं। इन वर्गों का प्रत्येक ५००० सदस्यो का उसके एक बड़े प्रभाग पर एक प्रतिनिधि होता है किन्तु प्रत्येक वर्ग का कम से कम एक प्रतिनिधि सदस्य होना चाहिये। सभा के सविधान के अन्तर्गत १७ औद्योगिक

वग हैं।[1]

वार्षिक सम्मेलन म प्रतिनिधिया द्वारा अपने म से ही पदाधिकारिया, यथा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष महासचिव, सचिव और कोषाध्यक्ष, का चुनाव बहुमत से किया जाता है। वार्षिक सम्मेलन मे एकत्र प्रतिनिधिया द्वारा, अपने औद्योगिक वर्गो की पृथक बठका म विभिन्न औद्योगिक वर्गों के प्रतिनिधिया का चुनाव किया जाता है। पदाधिकारिया या सामान्य परिषद् के अन्य सदस्यो के आकस्मिक रिक्त स्थानो की पूर्ति सामान्य परिषद् द्वारा उचित औद्योगिक वग स की जाती है। कोई प्रतिनिधि तभी सामान्य परिषद् के लिये चुना जा सकता है यदि उसके द्वारा प्रतिनिधित्व सगठन की आवश्यक देय राशि का भुगतान कर दिया हो। जो सदस्य सबद्ध सगठन का सदस्य नही रह जाता वह सामान्य परिषद् की सदस्यता भी त्याग देता है। पत्र मतदान पद्धति के अन्तगत निर्वाचन सचय मतदान द्वारा होता है।

साधारणतया सामान्य परिषद् की बठक प्रत्यक छ मास म एक बार अवश्य होती है। इसके काय है (१) सभा की कायकारिणी समिति का चुनाव करना (२) समय समय पर औद्योगिक वर्गों की सूची का निश्चित करना। सामान्य परिषद् नये वर्गों को सम्मिलित कर सकती है विद्यमान वर्गों का समामेलित या समाप्त, जसा वह उचित समझे कर सकती है (३) कायकारिणी समिति के निणयो के विरुद्ध अपील सुनना (४) सविधान म दी हुई योजनानुसार वग समितिया नियुक्त करना (५) वार्षिक सम्मेलन के आयोजन क लिये व्यवस्था करना (६) आवश्यकतानुसार एसे स्थायी नियम विशेषकर सम्बद्ध सगठन के प्रामाणिक स्वरूप और सदस्यता के निश्चयन या सवधन के लिये इच्छुक एव सगठन के लिये पदाधिकारिया के कत्तव्य और काय वार्षिक या विशेष सम्मेलन की व्यवस्था वार्षिक या विशेष सम्मेलन के लिय उपसन राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय प्रतिनिधिया का निर्वाचन सभा के कोष का वितरण क सबध म बनाना (७) किसी सगठन जिसने चन्दा न दिया हो को सभा की किसी बठक म भाग लेने और मत देने से तब तक वचित कर देना जबतक की पूरी देय राशि भुगतान न करदी जाय, (८) किसी भी पिछले ६ मास से चन्दा न देने वाले सगठन को तीन महीने की सूचना देने के बाद असम्बद्ध कर देना। ऐसे सगठन को जिसे शुल्क न जमा करने पर असम्बद्ध

[1] रेलवे, जल यातायात यातायात (रेलवे तथा जल यातायात के अतिरिक्त), वस्त्र उद्योग जूट के अतिरिक्त बदरगाह तथा गोदी, खनन तथा खदान इजीनियरिंग तथा तत्सबधित व्यवसाय, लोहा तथा इस्पात तथा अन्य धातु के व्यवसाय रसायन तथा तेल चमडा तथा चमडा पकाना चीनी खाद्य, तथा तम्बाकू, मुद्रण तथा कागज, कृषि रोपण तथा वन सहित सावजनिक कमचारी, वाणिज्य सस्थान तथा सामान्य श्रमिक।

लिया गया हो, पुन तभी सम्बद्ध किया जा सकता है। जब वह चालू वर्ष में सारी बकाया राशि जमा कर दे (९) विभिन्न श्रमिक संघों या सयानों, जो सभा के साथ सबद्ध चाहते है के प्रार्थना-पत्रो पर विचार करना, तथा (१०) प्रादेशिक समितियों की स्थापना में सहायता देना।

दिन प्रति दिन के कार्यों के लिये १७ व्यक्तियो की कार्यकारिणी समिति उत्तरदायी है। वार्षिक सम्मेलन के बाद कार्यकारिणी समिति के लिये सदस्य सामान्य परिषद् द्वारा सचय मतदान पद्धति से चुन जाते हैं। साधारणतया कार्यकारिणी समिति की बैठक तीन मास में एक बार होती है।

सभा का वार्षिक सम्मेलन मुख्यतया दिसम्बर मास में आयोजित किया जाता है। निश्चित तिथियाँ कार्यकारिणी समिति द्वारा निर्धारित की जाती हैं। वार्षिक सम्मेलन के लिए प्रत्येक श्रमिक संघ या सयान प्रत्येक ५०० सदस्यों या उसमें बडे भाग पर एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकारी है। जब संगठन, जिन्होंने अपना चन्दा सभा को और राज्यपरिषद् या प्रादेशिक समिति को दे दिया है, प्रतिनिधि भेज सकते हैं। केवल सम्बद्ध संघ के सदस्य या पदाधिकारी ही प्रतिनिधि नियुक्त किये जा सकते है। इन सम्मेलनो की अध्यक्षता जाने वाले अध्यक्ष द्वारा की जाती है। सामान्य परिषद् या कार्यकारिणी समिति द्वारा एक विशेष सम्मेलन भी बुलाया जा सकता है। इसका आयोजन सभा की कुल सदस्यता के एक तिहाई सदस्य वाले संगठन या सगठनो की मांग पर भी हो सकता है। विशेष सम्मेलनो की अध्यक्षता अध्यक्ष द्वारा की जाती है तथा उन्ही विषयों पर विचार किया जाता है जिनके लिए उसका आयोजन किया गया है।

सगठन का आधार सभा से सम्बद्ध वर्गीकृत श्रमिक संघ या श्रमिक सयान होते है। प्रत्येक राज्य की प्रशासकीय इकाई में सम्बद्ध संगठन राज्य श्रमिक परिषद् की स्थापना करते हैं। सम्बद्ध संगठनों द्वारा किसी क्षेत्र में प्रादेशिक श्रमिक समिति की भी स्थापना की जा सकती है यदि सामान्य परिषद् ऐसा सोचती है कि इससे श्रमिक संघ आन्दोलन का हित या प्रवर्तन होगा। राज्य श्रमिक परिषदों और प्रादेशिक श्रमिक समितियों के अपने संविधान होते हैं। किन्तु ये सभा के संविधान से अननुरूप नहीं होने चाहिये।

प्रत्येक सम्मेलन के बाद सामान्य परिषद् को निम्नलिखित योजनानुसार वर्ग समितियाँ नियुक्त करने का भी अधिकार है

वर्ग अ—रेलवे, खनन यातायात	८ सदस्य
ब—जहाज निर्माण इंजीनियरिंग लोहा और इस्पात धातु व्यवसाय तथा खनन	६ सदस्य
स—सूत, जूट, सिल्क ऊनी वस्त्र	६ सदस्य
द—रसायन तथा अन्न खाद्य पेय चीनी,	

तम्बाकू और तयार कपड़े ६ सदस्य
य—सार्वजनिक कर्मचारी, सरकारी कर्मचारी
तथा शारीरिक श्रम न करने वाले कर्मचारी ६ सदस्य

प्रत्येक वर्ग समिति अपना अध्यक्ष स्वयं चुनती है। ये वर्ग समितियां सामान्य परिषद् द्वारा सन्दर्भित मामलों पर छानबीन करके अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं। सामान्य परिषद् द्वारा वर्ग समितियों का निरीक्षण किया जाता है। उनसे यह आशा की जाती है कि वे समान हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले संघों या अन्य संगठनों के साथ निकटतम संभव संबंधों का विकास करेंगी। समय समय पर उठ खड़े होने वाले प्रश्नों को हल करने के लिये परिषद् द्वारा विशेष समिति की स्थापना की जा सकती है।

निम्नलिखित सारणी द्वारा हिन्द मजदूर सभा की प्रगति इसके प्रादुर्भाव से स्पष्ट की गई है

सारणी ५०

हिन्द मजदूर सभा की प्रगति १९४९–१९५९

वर्ष	सम्बद्ध श्रमिकों के संघों की संख्या	सदस्यता
१९४९	४१६	६ ७६ ३८७
१९५०	४६०	६ ९८ ७२०
१९५१	५७०	८ ०४ ३३७
१९५२	२६७	३ ९८ ४९९
१९५३	२२०	३ ७३ ४५९
१९५४	२७०	४ ८४ ६४४
१९५५	११६	२ ०३ ७६८
१९५६	११६	२ ३१ ९९०
१९५७	१५१	१ ९२ ९४८
१९५८	१८५	२ ४१ ६३६
१९५९	१९०	२ ८६ २०२

सम्बद्ध श्रमिक संघों की संख्या तथा सदस्यता दोनों में ही तेजी से कमी हुई है। नेताओं की इस इच्छा के कारण कि सूची में केवल जीवित श्रमिक संघ जिन्होंने निर्धारित देय राशि नियमित रूप से दी हो, रखे जायं ऐसा हुआ है। जो संघ कभी सम्बद्ध थे किन्तु अब विभिन्न कारणों से क्रियाशील नहीं हैं, सूची से हटा दिये गये।

अक्रियाशील संघों को सूची से हटा देने की नीति हिन्द मजदूर सभा ने अपनाई है। एक संघ के लिये शक्ति का वास्तविक स्रोत उसकी सदस्यता नहीं है बल्कि उसके सदस्यों और नेताओं के गुण है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि श्रमिक नेता सूची में सदस्यों के झूठे नाम रखकर अधिक सदस्यता दिखाने के प्रलोभन में आ जाते हैं। यह अवांछनीय आचरण है। अप्रभावकारी श्रमिक संघों की अपेक्षा कम सदस्यता वाले प्रभावकारी संघ अधिक वांछनीय हैं। एक केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठन जिसमें कम किन्तु सुसंगठित संघ हों, श्रमिकों के लिये अधिक मूल्यवान है अपेक्षाकृत उस केन्द्रीय संगठन के जिसमें कम जोर और अक्रियाशील संघ हों। अक्रियाशील संघों को अपनी सूची से हटा देने की यह प्रथा केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठनों को अपनानी चाहिये। ऐसी नीति श्रमिक संघ आन्दोलन को प्रामाणिक और शक्तिशाली बनायगी। १९५८ के बाद संवर्धन और सदस्यता में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

राज्य और प्रादेशिक श्रम निकायों को भी संगठित किया गया है। बम्बई, उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल तथा हैदराबाद के राज्यों में हिन्द मजदूर सभा के राज्य स्तरीय संगठन हैं। महाराष्ट्र में एक प्रादेशिक निकाय है। ये निकाय भी अपने वार्षिक सम्मेलन आयोजित करते हैं। सभा के प्रतिनिधि सरकार द्वारा नियुक्त बहुत से आयोग और समितियों में सक्रिय रहे हैं। भारत सरकार तथा अन्य राज्य सरकारों द्वारा आयोजित विभिन्न त्रिदलीय सम्मेलनों में सभा के प्रतिनिधि भाग लेते हैं।

यद्यपि हिन्द मजदूर सभा ने ऐसे प्रादेशिक निकायों की स्थापना करदी थी, किन्तु न तो वे प्रभावशाली ढंग से कार्य कर रहे हैं और न इनकी नियमित रूप से बैठक होती है। कुछ ही राज्यों जैसे—बम्बई, पश्चिमी बंगाल, को छोड़कर राज्य परिषदों की स्थिति कम या अधिक अक्रियाशील रही है।"[1] इस स्थिति के लिये सम्बद्ध संघों द्वारा राज्य परिषद् को चन्दा न देने की इच्छा और अनुभवी नेताओं का अभाव उत्तरदायी है।

इसी प्रकार हिन्द मजदूर सभा वृहत्त औद्योगिक संघानों की स्थापना के लिए प्रयत्न करती रही है। कुछ ऐसे संघानों का श्रेय इसको है। किन्तु अपने राज्य संगठनों की भांति यह संघान भी कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाते। 'हिन्द मजदूर सभा के सम्बद्ध संघों के बहुत से औद्योगिक संघानों जो पिछले वर्षों में स्थापित हुए हैं ने भी सन्तोषजनक प्रगति नहीं की है।[2] इसका कारण पदाधिकारियों के अपर्याप्त प्रयत्न या सम्बद्ध संघों द्वारा ऐसे संघानों की निरुपयोगिता की

१ आठवीं हिन्द मजदूर सभा प्रतिवेदन, पृ० ४८।

२ आठवीं हिन्द मजदूर सभा प्रतिवेदन पृ० ४९।

भावना है।

इन निकायों की असंतोषजनक कार्य विधि ने महासचिव को हिन्द मजदूर सभा के आठवें सम्मेलन में निम्नलिखित शब्दों द्वारा प्रश्न उठाने को बाध्य कर दिया।

'यदि सम्बद्ध सघ, जिनका इस सम्मेलन में प्रतिनिधित्व है की यह सुविचारित राय है कि राज्य परिषदें या विभिन्न औद्योगिक सधान व्यर्थ हैं और यदि इन निकायों के निर्माण के बोझ के हिस्से को वे उठाने के लिए अनिच्छुक है तब हम उन्हें समाप्त कर देने का निश्चय करना चाहिए। फलस्वरूप हम मुख्य कार्यालय तथा विभिन्न राज्यों में कुछ व्यक्तियों का समय और शक्ति भी बचा सकते हैं जो इन निकायों के निर्माण के प्रयत्नों में खर्च हो जाता है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हम इन निरंतर प्रयत्नों की निस्सारता से उत्पन्न असंतोष और निराशा को दूर कर पायेंगे।'[1]

यह बताना अनावश्यक है कि उपरोक्त सलाह निराशावादी है। राज्य और औद्योगिक सधानों की आवश्यकता अनिवार्य है। इन निकायों की कार्य विधि को प्रभावशाली बनाने के लिए गंभीर प्रयत्न करने चाहिए ताकि वे विभिन्न अवसरों पर अपने सघटकों के लिए पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सकें और बदले में सघटकों को यह अनुभव करना चाहिए कि इन सधानों की अनुपस्थिति में सामंजस्यपूर्ण कार्यवाही बहुत कठिन हो जायगी। सामंजस्यपूर्ण प्रयत्नों के अभाव में पर्याप्त श्रम और समय की क्षति होगी। हिन्द मजदूर सभा के ९ वे सम्मेलन ने इन निकायों को अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता का अनुभव किया। इस समस्या पर गम्भीरता से विचार करने के बाद कार्यकारिणी समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि राज्य परिषदों के लिए धन तभी उपलब्ध किया जा सकता है जबकि केन्द्र उनकी ओर से धन एकत्र करे। हम राज्य परिषदों को अक्रियाशील नहीं रहने दे सकते क्योंकि सम्बद्ध सघों की बहुत सी आवश्यकताओं, अनुशासन सहित शिकायतें आदि के संबंध में की पूर्ति केवल राज्य परिषदों द्वारा ही की जा सकती है।[2]

सम्बद्ध सघों की कुछ सहायता करने के विचार से हिन्द मजदूर सभा ने मुख्यालय में शोध अनुभाग स्थापित करने का निश्चय किया। किन्तु सभा को यह स्वीकार करना पड़ा कि शोध अनुभाग कुछ अधिक या कोई अविदर्शनीय कार्य करने में असमर्थ रहा।

हिन्द मजदूर सभा होन सेविवर्ग सगठन कर्त्ताओं की अपर्याप्त संख्या तथा धन की कमी से असमर्थ है। श्री एस० सी० सी० अन्योनी पिल्लई ने इसके ७ वे

1 हिन्द मजदूर सभा आठवां प्रतिवेदन पृ० ४९।

2 हिन्द मजदूर सभा ९वा प्रतिवेदन, पृ० ३७।

वार्षिक सम्मेलन में निम्नलिखित विचार प्रगट किये —

'हिन्द मजदूर सभा, श्रमिकों के एक केन्द्रीय संगठन के रूप में, अपने सम्बद्ध सदस्यों पर शुल्क की बहुत कम दर लगाती है जिसका वास्तविक परिणाम यह होता है कि इसकी वार्षिक आमदनी देश के किसी भी मध्यम आकार वाले संघ की तुलना में काफी कम है। धन के स्रोतों की ऐसी अल्पता के कारण हिन्द मजदूर सभा सरकारी नीतियों और केन्द्रीय सरकार के स्तर पर श्रम प्रशासन को प्रभावित करने का एक माध्यम होने के अलावा अपने सम्बद्ध सदस्यों की कोई विशेष सेवा नहीं कर पाती। हम केवल दो संगठन कर्त्ताओं के द्वारा कार्य करते हैं जो कार्य के बोझ से दबे रहते हैं। गम्भीर प्रकृतिवाले केसे मामलों में अपने सम्बद्ध सदस्यों को नैतिक सहयोग देने के अलावा उन्हें किसी औद्योगिक विवाद में शोध कार्य सहायतार्थ करने के लिए हमारे पास कार्यकर्त्ताओं का अभाव है। इस तथ्य के अतिरिक्त कि हमारे देश में श्रमिक संघता का क्षेत्र विस्तृत हो रहा है तथा श्रमिक वर्ग के नीचे के लोग इसके नियन्त्रण में आ रहे हैं, न तो यही सम्भव हुआ है कि संगठन की प्रक्रिया में प्रमाण ठोस की सहायता की जाय और न संगठनात्मक आन्दोलनों के लिए हम कुछ मुख्य उद्योगों का चुनने की स्थिति में हैं। श्रमिक संघ आन्दोलनों में प्रशिक्षित सदस्य की कमी कमजोरी का एक प्रमुख स्रोत है। किन्तु इस सम्बन्ध में भी हिन्द मजदूर सभा, अपने सम्बद्ध सदस्यों के श्रमिक संघ संगठनकर्त्ताओं या श्रमालय प्रतिनिधियों के लिए कोई प्रशिक्षण योजना की व्यवस्था करने या अपने सदस्यों को शिक्षित करने में सहायता देने में समर्थ नहीं हो पाया है। विधिक मामलों, बोनस विवादों अथवा अभिनवीकरण या आधुनिकीकरण से उठने वाली समस्याओं पर सलाह या निर्देशन देने के लिए सभा के पास कोई साधन नहीं है। हिन्द मजदूर सभा और इससे सम्बद्ध सदस्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान और सेवाओं से साधारण सदस्यों को परिचित कराने में भी बहुत कम कार्य किया गया है।'[1]

हिन्द मजदूर सभा के नेताओं द्वारा संगठन की कमजोरी और कमियों का यह बहुत ही स्पष्ट मूल्यांकन है। यह आशा की जा सकती है कि इन दोषों को दूर करने के लिए नेतृत्व गम्भीरता से विचार तथा सारे प्रयत्न करेगा और हिन्द मजदूर सभा को एक श्रेय और प्रभावशाली संस्थान बनायेगा।

हिन्द मजदूर सभा ने अपने प्रादुर्भाव के समय ही जो सिद्धान्त सम्मुख रखे थे, वे थे— किसी सरकार, नियोजक या राजनैतिक दल के अधिरोहण से श्रमिक संघों की परम आवश्यक स्वतन्त्रता बनाये रखना। हिन्द मजदूर सभा यह अनुभव करती है कि हम हमेशा एक प्रभाव से अधिक स्वतन्त्र रहे। और अप्रभावित हुए हैं और हम आज देश में एक मात्र केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठन होने का यथार्थ दावा कर

---

1 सातवीं हिन्द मजदूर सभा प्रतिवेदन, पृ० १६–१७।

सकते है जिसे कोई राजनीतिज्ञ यह आदेश नहा दे सकता या दे सकेगा कि वह अपने कार्यों और नातियो का कस प्रबधित करेगी।'[१]

हिन्द मजदूर सभा ने अपने ही परो पर स्वमेव खडे होने के प्रयत्न तथा आदोलन और अपने सगठन को शक्तिशाली बनाने का आदश अपने सम्मुख रखा है। जबकि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस अतराष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक सघ प्रसधान से सहायता प्राप्त करती रही है। हिन्द मजदूर सभा न अपने सगठनात्मक उद्देश्यो के लिए काफी समय से बाहरी देशो से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता मागने या स्वीकार करने को निरनुमोदित किया है।"[२]

हिन्द मजदूर सभा के नेतृत्व न भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के सघो के प्रति सरकार के पक्षपात की शिकायत की है। श्री राजाराम शास्त्री सदस्य विधान परिषद् न १९५३ मे कानपुर म आयोजित सभा के चौथे वार्षिक सम्मेलन के सम्मुख स्वागत समिति के अध्यक्ष के रूप म अपने भाषण म कहा कि सम्मेलन को छिन्न भिन्न करने के लिए पुलिस और जिला अधिकारियो द्वारा हिन्द मजदूर सभा के नताओ को बदी बना लिया गया था। इसी प्रकार अक्तूबर १९५२ म नैनीताल म आयोजित १२वें भारतीय श्रमिक सम्मेलन के सम्मुख सभा न औद्योगिक सम्बन्धो पर अपने स्मृति पत्र म यह स्पष्ट किया कि विवादो को निर्वाचन और अधिनिर्णय के लिए सदर्भित करने का सरकार को दिये गये अधिकारो का अ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के सघो के विरुद्ध भेदभाव बरतने के लिए मत्रियो द्वारा प्राय दुरुपयोग किया जाता है। यह कहा गया कि अ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस सघो के लिए जब कि कभी-कभी अधिनिर्णय मना कर दिया जाता था भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के सघो को यह सुविधा दी जाती थी विशेषकर तब तक ही उद्योग या व्यवसाय म भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस तथा अ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस सघ विरोधी रूप मे विद्यमान होते थे।

सभा का नतृत्व श्रमिक सघ एकता का समर्थन करता है। उनका कहना है कि उन्होंने इस दिशा म गम्भीर प्रयत्न किये किन्तु भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की सरकार और काग्रेस समर्थक नीतियो तथा साम्यवादियो द्वारा अभिभावी अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस की अतिमार्गी नीतियो के कारण एकता स्थापित होने म बाधा पहुँची है।

जनवरी १९४३ म सभा हिन्द मजदूर नामक पत्रिका प्रकाशित कर रही है। यह एक मासिक पत्रिका है तथा समय समय पर सम्बद्ध सघो को मुख्यालय की मुख्य कार्यवाहियो से सूचित करने के लिए प्रकाशित की जा रही है। सभा द्वारा

---

१ हिन्द मजदूर सभा प्रतिवेदन पृ० ४६।

२ आठवाँ हिन्द मजदूर सभा प्रतिवेदन, पृ० ५३।

अपनाये गये प्रस्तावों के मूल तथा समय समय पर विभिन्न सरकारों को प्रस्तुत किये गये महत्त्वपूर्ण ज्ञापन तथा प्रतिवेदन पत्रिका में प्रकाशित होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक संघ प्रसंघ से सभा सम्बद्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास की दृष्टि से सभा बाहरी देशों से नेताओं को आमन्त्रित करती रही है तथा अपने प्रतिनिधि विदेशों को भेजती रही है।

संयुक्त श्रमिक संघ सभा

संयुक्त श्रमिक कांग्रेस का संगठन १९४९ में किया गया जब श्रमिक नेताओं का एक वर्ग हिन्द मजदूर पंचायत जो बाद में हिन्द मजदूर सभा हो गई, की नीतियों से असन्तुष्ट हो गया। संयुक्त श्रमिक कांग्रेस के उद्देश्य हैं: (१) भारत में समाजवादी समाज की स्थापना (२) भारत में श्रमिकों और कृषकों के राज्य की स्थापना, (३) उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों का राष्ट्रीयकरण और समाजीकरण (४) श्रमिकों के सभी क्षेत्रों सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक हितों, अधिकारों और विशेषाधिकारों का प्रवर्तन करना और उनकी रक्षा करना, (५) श्रमिकों के लिए संगठन की स्वतन्त्रता, समवाय की स्वतन्त्रता, कार्य करने की, भरण-पोषण का अधिकार और सामाजिक सुरक्षा का अधिकार प्राप्त करना और बनाये रखना तथा (६) श्रमिक संघ आन्दोलन में एकता स्थापित करना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये केवल शान्तिपूर्ण तथा प्रजातान्त्रिक तरीके प्रयोग में लाये जायेंगे तथा अन्तिम अस्त्र के रूप में हड़ताल घोषित की जायगी।

सभी असली श्रमिक संघ संयुक्त श्रमिक कांग्रेस के साथ सम्बद्ध हो सकते हैं यदि वे सभा के उद्देश्य तथा संविधान को स्वीकार करें तथा श्रमिक संघों को वर्ग संघर्ष का अंग मानें। सम्बन्धन के लिये इच्छुक संघों को स्थापित हुये कम से कम एक वर्ष हो जाना चाहिये। श्रमिक संघ को सम्बन्धन के लिये प्रार्थना पत्र देते हुए अपने नियम और उपनियमों, पदाधिकारियों के नामों, और लेखापरीक्षित विवरण की एक प्रति भी संलग्न करना चाहिये। सम्बन्धन प्रार्थना-पत्र प्रान्तीय समिति, जहाँ ऐसी समिति हो, द्वारा सम्मति के साथ एक मास के अन्दर भेज दिया जाना चाहिये। प्रार्थना-पत्र पर अन्तिम निर्णय का अधिकार सामान्य परिषद् को होता है किन्तु प्रार्थना-पत्र अस्वीकार कर दिये जाने पर सामान्य निकाय के सम्मुख अपील की जा सकती है। सम्बन्धन के लिये इच्छुक संघ को अपने सदस्यों पर न्यूनतम एक रुपया वार्षिक शुल्क लगाना चाहिये। इस विषय में सामयिक उद्योगों या रोजगार में संलग्न संघों को सामान्य परिषद् मुक्त कर सकती है। संविधान का उल्लंघन करने पर एक श्रमिक संघ को सामान्य परिषद् द्वारा असम्बद्ध किया जा सकता है। ऐसे संघों को सामान्य निकाय में अपील करने का अधिकार है जिसका निर्णय अन्तिम होता है।

संयुक्त श्रमिक कांग्रेस के आय के स्रोत हैं: (१) सम्बन्धन शुल्क एक पैसा प्रति

सदस्य प्रतिवष किन्तु कम स कम पाच रुपया (२) प्रतिनिधि शुल्क दो रुपया प्रति प्रतिनिधि, तथा (३) अन्य कोई शुल्क जो सामान्य परिषद् द्वारा लगाया जाय। यदि कोई सघ निश्चित समय के अन्दर अपने शुल्क की अदायगी नहीं करता तो उस उस समय तक के लिये सभा की बठकों म भाग लेने और मत देने से वंचित कर दिया जाता ह जबतक कि देय राशि का भुगतान नहीं किया जाता। यदि दस महीने स अधिक समय तक शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता तो महीने की सूचना के बाद सघ को असम्बद्ध किया जा सकता है। शुल्क का भुगतान न करने के कारण असम्बद्ध किये गये सघा का बकाया राशि की अदायगी पर पुन सम्बद्ध किया जा सकता है।

सयुक्त श्रमिक काग्रेस का प्रशासन निम्नलिखित सस्थाओ द्वारा किया जाता है (१) सामान्य निकाय अर्थात् प्रतिनिधि सभा (२) सामान्य परिषद् तथा (३) सामान्य परिषद् की कायकारिणी समिति।

सामान्य निकाय अर्थात् प्रतिनिधि सभा की सामान्यतया वर्ष म एक बार बठक होती ह तथा इसम सम्बद्ध सघा द्वारा नामांकित प्रतिनिधि होते हैं। निम्न लिखित आधार पर सघा को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार ह —

१—प्रत्येक सघ के लिये एक प्रतिनिधि जिसकी सदस्यता २०० हो तथा प्रत्यक अतिरिक्त ५०० सदस्यो या उसके बडे भाग पर ५००० तक एक अतिरिक्त प्रतिनिधि।

२—५००० सदस्यो से अधिक पर उसके अतिरिक्त १००० सदस्यो या उसके बडे भाग पर १५००० तक एक अतिरिक्त प्रतिनिधि।

३—१५००० से अधिक सदस्यो पर प्रत्येक २००० सदस्यो या उसके बडे भाग के लिये एक अतिरिक्त प्रतिनिधि।

वार्षिक प्रतिनिधि अधिवेशन सयुक्त श्रमिक काग्रेस की वार्षिक सभा तथा काय प्रणाली के सबन्ध मे अन्तिम प्राधिकारी ह। सामान्य परिषद् के निर्णयों के विरुद्ध सामान्य निकाय तथा अपील सुनी जाती ह। पदाधिकारियों के चुनाव किये जाते हैं तथा तीन चौथाई बहुमत द्वारा सविधान म परिवद्धन या परिवतन किये जाते हैं। सामान्य निकाय की बठक म हाथ उठाकर निर्णय लिये जाते है तथा अध्यक्ष द्वारा परिणाम घोषित किये जाते हैं। यदि किसी प्रतिनिधि द्वारा विभाजन की माग की जाती ह तो समूह मतदान पद्धति के अनुसार सघो द्वारा मतदान किया जाता ह। प्रत्यक सघ को उतने मत देने का अधिकार ह जितने वह प्रतिनिधि भेजने का अधिकारी ह। सामान्य परिषद् या कायकारिणी समिति द्वारा सामान्य निकाय का विशेष अधिवशन बुलाया जा सकता ह किन्तु कुल सदस्यता के एक चौथाई का प्रतिनिधित्व करने वाले सघो की माग पर भी विशेष अधिवशन, माग की तिथि स ६ सप्ताह के भीतर बुलाना पडता ह। सभा का सामान्य अधिवशन कम से कम एक मास की

सूचना के बाद आयोजित किया जाता है। वार्षिक अधिवेशन का कोरम प्रतिनिधियों की संख्या का पाँचवा भाग है।

सामान्य परिषद् में अध्यक्ष, एक महासचिव, चार या चार से कम सचिव एक कोषाध्यक्ष तथा विभिन्न व्यवसाय वर्गों[1] द्वारा निर्वाचित अन्य प्रतिनिधि होते हैं। समय समय पर व्यवसाय वर्ग की सूची सामान्य परिषद् द्वारा निर्धारित की जाती है। एक व्यवसाय वर्ग की न्यूनतम सदस्यता २००० है। यदि एक वर्ग की सदस्यता २००० से कम है तो सब सामान्य वर्ग में सम्मिलित कर लिये जायेंगे।

वार्षिक अधिवेशन में विभिन्न व्यवसाय वर्गों से सामान्य परिषद् के लिये, व्यवसाय वर्गों के प्रतिनिधियों में से ही, सामूहिक मत प्रणाली द्वारा निर्वाचन किया जाता है। विभिन्न व्यवसाय वर्गों का प्रतिनिधित्व व्यवसाय वर्गों की शक्ति के अनुसार होता है। ३००० तक की सदस्यता रखने वाले वर्ग को न्यूनतम प्रतिनिधित्व दिया है। अधिकतम प्रतिनिधित्व उन वर्गों का होता है जिनकी सदस्यता ६०००० है और एक व्यवसाय वर्ग १३ प्रतिनिधि तथा ६०,००० से ऊपर प्रत्येक १०००० सदस्यता पर एक प्रतिनिधि भेजने के अधिकारी हैं। सामान्य परिषद् में चुने जाने के लिये केवल ५७ प्रतिनिधि अधिकारी होते हैं। एक सदस्य जो व्यवसाय वर्ग का सदस्य नहीं रहता, सामान्य परिषद् का भी सदस्य नहीं रह जाता। श्रमिक आन्दोलन के हित में एकल संक्राम्य मत प्रणाली द्वारा सामान्य परिषद् को पाँच या पाँच से कम सदस्यों, जो सम्बद्ध श्रमिक संघों से सम्बन्धित न हों, को सहयोजित करने का अधिकार है। सामान्य परिषद् की बैठक के लिये १५ दिन की सूचना आवश्यक है। सामान्य परिषद् के अधिकार हैं (१) विभिन्न श्रमिक संघों के सम्बन्धन के लिये प्रार्थना-पत्रों पर विचार करना, (२) संघों और सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की सिफारिश करना, (३) संविधान से संगत विशेषकर प्रतिनिधियों के निर्वाचन विवरणों के प्रस्तुति और सम्बन्धन शुल्क के सम्बन्ध में, उप नियम बनाना (४) कार्यकारिणी समिति के लिये सदस्यों का निर्वाचन करना (५) अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के प्रतिनिधियों और सलाह

---

१ विभिन्न व्यवसाय वर्ग हैं (१) रेलवे (२) जल यातायात, (३) यातायात रेलवे तथा जल यातायात के अतिरिक्त (४) जूट वस्त्र, (५) सूती वस्त्र, (६) वस्त्र जूट और सूती के अलावा, (७) बंदरगाह तथा गोदी, (८) खनन तथा खदान, (९) लोहा और इस्पात इन्जीनियरिंग और व्यवसाय, (१०) रसायन तथा तेल (११) चमड़ा तथा चमड़ा पकाना (१२) चीनी और खाद्य (१३) मुद्रण तथा कागज (१४) कृषि रोपण तथा वन को लेकर, (१५) नगरपालिका, गैस तथा विद्युत, (१६) वाणिज्यीय संस्थान, (१७) सामान्य श्रमिक।

कारो का निर्वाचन करना, तथा (६) संविधान के अनुसार सयुक्त श्रमिक काग्रेस के कार्यों के समन्वयन के लिये सभी उचित और आवश्यक कदम उठाना। सामान्य परिषद् की बठक के लिये कोरम सदस्या का एक तिहाई है।

सयुक्त श्रमिक काग्रेस की कायकारिणी समिति म सभा के सभी पदाधिकारी तथा एकल सक्रमणीय मत प्रणाली स सामान्य परिषद् द्वारा निर्वाचित २० सदस्य होते है। कायकारिणी समिति की बठक जिसके लिये कोरम कुल का तिहाई ह १५ दिन की सूचना पर तथा आवश्यक बठक ७ दिन की ही सूचना पर बुलायी जा सकती है। कायकारिणी समिति को सयुक्त श्रमिक काग्रेस क पिछन अधिवेशन म पारित प्रस्तावा के क्रियान्वयन के लिये सभी आवश्यक कदम उठाने वष के दौरान श्रमिक वग के हितो को प्रभावित करने वाली किसी आपात स्थिति के उठ खडे होने पर उसस निबटने तथा सामान्यतया सभा क उद्देश्य और लक्ष्यो की प्राप्ति क लिये प्रयास करने का अधिकार है।

सयुक्त श्रमिक काग्रेस सभा के सविधान म यह व्यवस्था है कि किसी भी सस्था यथा सामान्य निकाय सामान्य परिषद् कायकारिणी समिति क सम्मुख आने वाले प्रश्नो का निणय सामूहिक सहमति स और यदि एसा न हो तो कम से कम तीन चौथाई बहुमत द्वारा किया जायगा। यह बहुत ही स्वस्थ व्यवस्था है। श्रमिक सघ फूट के कारणो म स एक कारण अल्पसख्यको पर यहा तक कि यदि उनकी सख्या पर्याप्त होने पर भी एक वग द्वारा अपने विचार और निणय थोपना रहा है। जहाँ तक सभव हो सभी वर्गो और अनुभागो को एक साथ रखने का ही प्रयत्न करना चाहिये। यह आशा करना कि सभी अवसरो पर पूण सहमति रहेगी बहुत कठिन है। लेकिन अनिवायता की कोई आवश्यकता नही है वल्कि अधिकतम सम्भव बहुमत की सहमति स ही निणय लिये जाने चाहिये। साधारण बहुमत निणयो का अल्पसख्यको पर जबरदस्ती लादने स श्रमिक सघ आन्दोलन म दरारें पड जायेंगी और श्रमिको क हितो को असाध्य क्षति पहुँचेगी। सयुक्त श्रमिक काग्रेस सभा की विधि एक स्वस्थ विधि है और अन्य श्रमिक सघो क लिये अनुकरणीय ह।

सयुक्त श्रमिक काग्रेस के सविधान के अन्तगत कायकारिणी समिति द्वारा सात सदस्यो की राजनतिक समिति नियुक्त करने की व्यवस्था है जिसके उद्देश्य है ( ) सम्बद्ध सघो को राजनतिक कोष जमा करने के लिये प्रोत्साहित करना (२) सामान्य परिषद् की सलाह स स्थानीय निकायो और विधानसभाओ के निर्वाचनो को सगठित करना, (३) श्रमिक वग के दृष्टिकोण स केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारो के कर प्रस्तावो और भारत म श्रम विधान क विकास पर दृष्टि रखना तथा (४) कायकारिणी समिति की सलाह से तथा सयुक्त श्रमिक काग्रेस के सविधान को ध्यान मे रखते हुए राजनतिक प्रचार करना।

सयुक्त श्रमिक काग्रेस श्रमिको मे लोकप्रिय नही रही है तथा इसकी प्रगति

असंतोषजनक है। निम्नलिखित सारणी द्वारा १९४९ से सभा की प्रगति के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। १९५८–५९ में इसकी स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ है।

सारणी ५१

१९४९ तथा १९५९ के बीच संयुक्त श्रमिक कांग्रेस की प्रगति

वर्ष	सम्बद्ध संघों की संख्या	सदस्यता
१९४९	२५४	३,३१,९९१
१९५०	३०६	३,६६,४०१
१९५१	३३२	३,८४,९६२
१९५२	३०१	२,२३,२९२
१९५३	१५४	१,२६,२४२
१९५४	अ	अ
१९५५	२३७	१५६,१०९
१९५६	अ	अ
१९५७	१८२	८२,००१
१९५८	१७२	९०,६२९
१९५९	२२९	१ १०,०३४

अ—अनुपलब्ध

भारतीय मजदूर संघ[1]

भारतीय मजदूर संघ का संगठन जनसंघ द्वारा २३ जुलाई १९५५ को भोपाल में किया गया था। इसका कथन है कि महाराष्ट्र, मद्रास, उत्तरप्रदेश तथा बम्बई राज्यों ने उसे मान्यता प्रदान की है।

इस पाँचवें राष्ट्रीय संधान की स्थापना इसलिए की गई क्योंकि संगठनकर्त्ताओं का यह विचार था कि दूसरे संधान वास्तविक रूप में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इसने राष्ट्रीय स्वरूप और भिन्न अस्तित्व बनाये रखने का प्रयत्न किया है। इसका झंडा भगवे रंग का है। इसका प्रतीक अंगूठा है तथा यह संघ राष्ट्रीय दिवस के रूप में विश्वकर्मा दिवस मनाता है।

भारतीय ढंग के वर्गहीन समाज की स्थापना संघ का मुख्य लक्ष्य है।

१ उत्तरप्रदेश शाखा द्वारा निर्मित पुस्तिकाओं पर अधिकांशतः आधारित।

इसकी प्राप्ति निम्नलिखित माध्यमो से होगी —

(१) मानवशक्ति और साधनो का पूर्ण उपयोग जिससे पूर्ण सयोजन और अधिकतम उत्पादन सभव हो सके ।

(२) लाभ भावना को सेवा भावना द्वारा पुनःस्थापित करना तथा आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना करना जिसमे सभी वयस्क नागरिको तथा सम्पूर्ण देश को धन के समान वितरण मे अधिकतम लाभ हो ।

(३) स्वायत्त औद्योगिक समुदायो का विकास करना जो राष्ट्र का पूर्णांग होगे और जिनमे उद्योग मे सम्बद्ध सभी व्यक्ति होगे ।

इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सघ श्रमिक सघो की कार्यवाहियो को सहायता निर्देशन निरीक्षण और उनमे सामजस्य स्थापित करना चाहता है । अन्य सघाने की तरह प्रादेशिक और औद्योगिक सघाने तथा श्रमिक सघ एकता मे इसका विश्वास है । सघ का उद्देश्य है सगठन और उपभोग के न्यूनतम स्तर, सुरक्षा काम की अवस्थाओ तथा अन्य सुविधाओ को प्राप्त करना है । यद्यपि सघ का वर्गो या वर्ग सघर्षो मे विश्वास नही है किन्तु इसके विचार से पूजीवाद और साम्यवाद दोनो ही अवाछनीय हैं । सघ का लक्ष्य है कि श्रमिको को प्रबन्ध और लाभो मे हिस्सा प्राप्त हो ।

राष्ट्रवाद और प्रजातन्त्र की भावनाओ के अनुकूल सघ सभी वध और शातिपूर्ण साधनो का प्रयोग करेगा । इसके विचारानुसार श्रमिक सघो के लिए हडताल अन्तिम अस्त्र है, प्रथम नही ।

सघ के सविधान मे कार्यकारिणी समिति और इसके सम्बद्ध सदस्यो की भी नियमित बठको की व्यवस्था है । इसी प्रकार सम्बद्ध सघो के लिए यह भी व्यवस्था है कि 'जबतक समझौते के सभी उपाय समाप्त न कर लिये गये हो और सामान्य बठक मे ऐसी हडताल या सत्याग्रह के पक्ष मे हाथ उठाकर या मतदान द्वारा सदस्यो का बहुमत न हो तबतक वे हडताल या सत्याग्रह का अनुमोदन न करें और न सहायता दें ।

ये उद्देश्य और विधिया दूसरे श्रमिक सघ सघाने की भी है । इसलिए यह आशका की जा सकती है कि भारतीय मजदूर सघ का सगठन राजनीतिक आधारो पर श्रमिक सघ आन्दोलन की फूट को और बढावा देगा ।

सघ की प्रगति के बारे मे सूचना उपलब्ध नही है । किन्तु सगठन कर्ताओ का दावा है कि सघ स्थिर प्रगति कर रहा है ।

हिन्द मजदूर पचायत

हाल ही मे समाजवादी दल ने हिन्द मजदूर पचायत का सगठन किया है । बढती हुई कीमतो के विरोध मे बम्बई बन्द हडताल का आयोजन हिन्द मजदूर

पंचायत द्वारा किया गया था।

हाल ही में भारत सरकार ने केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठनों की सदस्यता को सत्यापित करने की एक योजना लागू की है। कुछ वर्षों की सदस्यता का अनुमान निम्नलिखित सारणी से लगाया जा सकता है।

सारणी ५२

राष्ट्रीय संगठनों की सत्यापित सदस्यता

	घोषित सदस्यता	सत्यापित सदस्यता	घोषित सदस्यता	सत्यापित सदस्यता
भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस	१३,८०,२४०	९,१०,२२१	१५,०३,६०५	१०,२३,३७१
अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस	१४,००,१४१	४,३७,४६७	१०,८३,१८४	५,०७,६५४
हिन्द मजदूर सभा	७,४७,८४६	१,६२,६४८	६,८०,२६०	२,४१,६३६
संयुक्त श्रमिक कांग्रेस	१,६६,६७८	८२,००१	१,६७,१८७	६०,६२६

घोषित सदस्यता और सत्यापित सदस्यता के बीच पर्याप्त अन्तर है। सभी संगठन इस अन्तर के लिए सम्बद्ध संगठनों को दोषी ठहराते हैं कि उन्होंने इस मामले की गम्भीरता को नहीं समझा और न ही आवश्यक सूचना भेजने में सावधानी बरती। अन्य कारण हैं—संघों द्वारा वार्षिक विवरण या अधिवक्तव्य भेज पाने में असमर्थता, संघ अक्रियाशील है, अपञ्जीकृत है या पञ्जीकरण रद्द कर दिया गया है, सम्भवतः किसी अन्य संगठन से है या अज्ञात है तथा उचित पते का अभाव जिससे सदस्यता का सत्यापन किया जा सके।

यद्यपि हमारे देश में चार केन्द्रीय श्रमिक संगठन हैं किन्तु फिर भी बहुत से श्रमिक संघों ने उनमें से किसी के साथ अपना कोई सम्बन्ध नहीं किया। श्रमिक संघ सदस्यता की विस्तृत सूचना बम्बई राज्य में चार में उपलब्ध है। इसे निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है। इस सारणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि लगभग दो तिहाई श्रमिक संघ सदस्य चार केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठनों में से किसी से भी सम्बद्ध नहीं थे। किन्तु असम्बद्ध संघों की सदस्यता बहुत कम थी। अप्रैल १९५१ में यह १२ प्रतिशत थी तथा अक्तूबर १९५१ में १६ प्रतिशत। भारत सरकार ने १९५३ में चारों केन्द्रीय श्रमिक संगठनों से सम्बद्ध पञ्जीकृत श्रमिक संघों की संख्या तथा उनकी सदस्यता को सत्यापित किया। तदनुसार यह गणना की गई

कि केवल १२६५ पजीकृत श्रमिक सघ जिनकी कुल सदस्य सख्या १६ ३२ ६७३ थी इन सगठनो मे सम्बद्ध थे। १९५३–५४ म पजीकृत श्रमिक सघो की सख्या ६०२६ तथा विवरण भेजने वाले ३२९५ सघो की सदस्यता २१,१२ ९६५ था। फिर भी जहा तक केन्द्रीय सगठना म सघो के सबधन का प्रश्न है स्थिति बिलकुल ही सतोषजनक नही है। एक बडी सख्या म सघ स्वतत्र रहना अधिक पसन्द करते है।

सारणी ५३

बम्बई राज्य के श्रमिक सघो का राष्ट्रीय सघानो मे सबधन

	१ अप्रैल १९५१ श्रमिक सघो की सदस्यता सख्या		१ अक्तूबर १९५१ श्रमिक सघो की सदस्यता सख्या	
चारा केन्द्रीय श्रमिक सघ				
सगठनो से सम्बद्ध	६९	१ ७८ ६३९	६५	२ ०० १८५
श्रमिक सघ	(३८%)	(८८%)	(३४%)	(८१%)
असम्बद्ध श्रमिक सघ	११२	३५ ५१४	१२८	४५ ६६१
	(६२%)	(१२%)	(६६%)	(१९%)
योग	१८१	२,१४,१३५	३६३	२ ४५ ८४६

बाद म हुए विकास से भी यही स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय सगठनो से सबधन की स्थिति मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। सरकार द्वारा किये गये सत्यापन स पता चलता है कि १९५९–६० म १०८१२ श्रमिक सघो म से केवल २ १६५ चारो सघानो स सम्बद्ध थे। १९६०–६१ मे महाराष्ट्र राज्य म लगभग ४८ प्रतिशत निजी क्षेत्र के राज्य सघ जिनकी सदस्यता १९ प्रतिशत थी ४९ प्रतिशत राज्य सघ सार्वजनिक क्षेत्र मे जिनकी सदस्यता ५५ प्रतिशत थी, तथा ६१ प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र के केन्द्रीय सघ जिनकी सदस्यता ४० प्रतिशत थी किसी भी केन्द्रीय सगठन स सम्बद्ध नही थे। इन क्षेत्रो मे उन सघो का प्रतिशत जिनका सबधन अज्ञात था क्रमश २४ प्रतिशत सदस्यता ११ प्रतिशत, २६ प्रतिशत सदस्यता ३० प्रतिशत तथा २६ प्रतिशत सदस्यता २४ प्रतिशत थी।

१०

श्रमिक संघ एकता

ब्रिटिश मजदूर कांग्रेस के समान श्रमिकों के प्रतिनिधित्व के लिए हमारे यहाँ एक राष्ट्रीय श्रमिक संघ संस्था होनी चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर एकता स्थापित करने के लिए नेतृत्व भी चाहता है। गत कई वर्षों में श्रमिक संघ एकता स्थापित करने के लिए कुछ प्रयत्न किए गए हैं। हमारी विभाजित स्थिति भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन के स्वस्थ उद्भव और विकास के लिए सहायक नहीं है और इस प्रकार प्रमुख श्रमिक संघ संस्थाओं के विलय की माँग का भारत में सभी श्रमिक संघ वर्गों द्वारा समर्थन किया गया है।

मई १९५४ में आमन्त्रित प्रतिनिधियों का अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के २४वें अधिवेशन में कार्यकारिणी तथा श्रमिक संघ एकता जैसे महत्त्वपूर्ण मामलों के विचार विमर्श में सम्मिलित होने तथा अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट करने की सुविधाएँ दी गई थीं, किन्तु विलय के लिए वार्ता सफल नहीं हो सकी। अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की सामान्य परिषद् ने अगस्त १९५६ में अपने समाप्त अधिवेशन में हिन्द मजदूर सभा, संयुक्त श्रमिक कांग्रेस, भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस तथा विभिन्न असम्बद्ध राष्ट्रीय संघों के नेताओं और श्रमिकों से अपील करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया कि प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के आधार पर वे एक साथ मिलकर संयुक्त केन्द्रीय संगठन की स्थापना करें ताकि श्रमिक वर्गों के हितों की रक्षा की जा सके। परिषद् ने कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए जिनके आधार पर उसके द्वारा नियुक्त एक समिति श्रमिक संघ संगठनों तथा व्यक्तियों से एकता के लिए बातें करेगी। सुझाए गए सिद्धान्तों में श्रमिक संघों की प्रजातान्त्रिक प्रणाली की निम्नस्तर स्वीकृति, पदाधिकारियों और कार्यकारिणी संस्थाओं के नियमित और प्रजातान्त्रिक निर्वाचन, श्रमिक संघों की अपनी शक्ति के राजनीतिक स्तरों में सम्मिलित होने के अधिकार, राजनीतिक प्रश्नों के पक्ष में संघों के निर्णयों पर ७५ प्रतिशत बहुमत का प्रतिबन्ध तथा एक ही फैक्ट्री, उद्योग तथा संस्थान के विरोधी संघों की समाप्ति, सम्मिलित थी।

१९५४ में हिन्द मजदूर सभा द्वारा चलाए गए श्रमिक संघ एकता के आन्दोलन का संयुक्त श्रमिक कांग्रेस द्वारा समर्थन किया। अखिल भारतीय हिन्द मजदूर

सभा के अध्यक्ष दिसम्बर १९४३ म सभा के चौथे वार्षिक सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुये देश के प्रमुख श्रमिक सघो के विलय की माग का जोरदार समथन किया। हिंद मजदूर सभा ने भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के साथ एक समझौता करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। इस उद्देश्य के लिये कुछ सम्मेलन भी आयोजित किये गये किन्तु अभी तक कोई परिणाम नही निकला। प्रारम्भ म हिंद मजदूर सभा तथा भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस दोनो ने अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के साथ एकता प्रस्ताव का विरोध किया। एक ओर भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस तथा हिंद मजदूर सभा और दूसरी ओर सयुक्त श्रमिक काग्रेस और अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस सयुक्त हो जाने के लिये उत्सुक थी। इन दो वर्गों के बीच की खाई विस्तृत थी और ऐसा प्रतीत होता था कि उसे आसानी से नही भरा जा सकता। एकता प्रस्ताव म सफलता अधिकाशत एक दूरारूढ कल्पना ही है। बहुत हद तक यह राजनतिक दलो के दृष्टिकोण पर निभर करगा जिनके हाथ म केन्द्रीय श्रमिक सघो की डोर है।

श्रमिक सघ एकता का प्रश्न अब एक स्पन्दन मे पडा हुआ है और वतमान समय मे सयुक्त श्रमिक सघ आदोलन की देश म बहुत कम सभावना प्रतीत होती है। भारतीय जनसघ द्वारा भारतीय मजदूर सघ और समाजवादी दल द्वारा हिन्द मजदूर पचायत की स्थापना से श्रमिक सघ एकता का प्रश्न और भी कठिन हो गया है। श्रमिक सघ सगठनो ने एकता के विचार का समथन किया है किन्तु इस दिशा म किये गये प्रयत्न निष्प्रभावी और असफल रहे है। 'हमने स्वय पूण श्रमिक सघ आदोलन के सयुक्तीकरण के पक्ष म घोषणा की है बशर्ते यह बाहरी प्रभावो से स्वतत्र पूण आतरिक प्रजातत्र तथा विद्यमान प्रतिद्वन्दिता के क्षेत्र मे श्रमिको के अधिमत के सिद्धान्तो पर आधारित हो।' [1] किन्तु महामत्रिव के प्रतिवेदन म यह भी स्वीकार किया कि दुभाग्यवश इन सिद्धान्तो और वस्तुत सयुक्तीकरण के लिये प्रयत्न के विचार का सावभिक समथन नही मिला है। अत स्थिति यह है कि आन्दोलन के खण्डित भाग बने हुये हैं और भविष्य मे भी कुछ समय तक ऐसे ही बने रहेंगे। [2]

एकता के अभाव का कारण प्रधानत राजनतिक है। भारतीय श्रमिक वग की विशेषताओ जसे जाति भाषा आदि के अलावा देश मे किन्ही एतिहासिक विकासो के कारण जिनके परिणामस्वरूप विभिन्न राजनतिक दलो ने स्वय अपने ही सघो का सगठन किया है श्रमिक सघ एकता की उपलब्धि और कठिन हो गई है। क्योकि विभिन्न राजनतिक दलो के बीच उग्र राजनतिक मतभेद है श्रमिक सघ

१ हिंद मजदूर सभा के सातवें वार्षिक सम्मेलन का प्रतिवेदन, पृ० ५८।

२ हिंद मजदूर सभा के सातवें वार्षिक सम्मेलन का प्रतिवेदन पृ० ५८।

एकता के प्रश्न को पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकने से पहले अब भी कई बाधाओं को पार करना है।"[1]

हिन्द मजदूर सभा तथा भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के साथ एकता स्थापित करने के लिये तयार नहीं है। ऐसा समझा जाता है कि अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस विदेशी प्रभावों से प्रेरित है तथा चीन के आक्रमण के प्रति इसके दृष्टिकोण ने सन्देह को और भी गहरा कर दिया है। केरल में थोड़े समय के लिये रहे साम्यवादी मंत्रालय की कार्यवाहियों ने हिन्द मजदूर सभा तथा भारतीय मजदूर कांग्रेस को भ्रान्ति मुक्त कर दी है। हिन्द मजदूर सभा ने यह आरोप भी लगाया है कि अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस तथा साम्यवादी दल संयुक्त महाराष्ट्र समिति को अपने लाभ के लिये प्रयोग में लाना चाहते थे। "अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस ने सुपरिचित साम्यवादी संयुक्त मोर्चों के व्यूह कौशल द्वारा स्वतंत्र श्रमिक संघ आन्दोलन को प्रलोभित करने, दुर्बल बनाने और अन्ततः आत्मसात या विघटन करने के अभियान में एक कदम के रूप में स्वीकार किया है।"[2]

दुर्भाग्यपूर्ण विवाद यह है कि हिन्द मजदूर सभा तथा भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के बीच एकता स्थापित नहीं हो सकी है। सैद्धान्तिक दृष्टि से ये दोनों संगठन बहुत निकट है। कम से कम एक सामान्य कार्यक्रम बनाने तथा संयुक्त रूप से उसे आगे बढ़ाने में उन्हें समर्थ होना चाहिये था। किन्तु हिन्द मजदूर सभा की शिकायत है कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस सहयोग नहीं देती। जब भी ऐसी संयुक्त कार्यवाही नियोजित की जाती है व्यवहार में यही देखा गया है कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस मुश्किल से ही कभी ऐसी संयुक्त कार्यवाहियों में भाग लेती है, परिणामस्वरूप हिन्द मजदूर सभा और भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस का मेल केवल दिखावटी होता है।" हिन्द मजदूर सभा और भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के बीच उद्योग तथा प्रदेश के अधिकार क्षेत्र वितरण के आधार पर किसी प्रकार के हस्तक्षेप न करने के समझौते का विचार भी अविश्वसनीय रहा। हिन्द मजदूर सभा के महासचिव ने सातवें वार्षिक सम्मेलन में टिप्पणी की— भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की नीतियों और कार्य प्रणालियों के पिछले दस वर्ष के अनुभव तथा कांग्रेस सरकार और कांग्रेस दल के साथ इसके सम्बन्धों ने यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया है कि यह स्वतंत्र नहीं है और वास्तविक रूप में यह स्वतंत्रता चाहती भी नहीं है। इसके अलावा इस बात के प्रमाण हैं कि इसने सरकार की सहायता से स्थापित संगठनों को विघटित तथा श्रमिकों के न्यायसंगत संघर्षों का विरोध किया है।"[3]

---

१ हिन्द मजदूर सभा ७ वाँ सम्मेलन पृ० ४८।

२ वही, पृ० ५६।

३ हिन्द मजदूर सभा ७ वाँ सम्मेलन पृ० ५६।

हिन्द मजदूर सभा के नेताओ के लिये भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की मूल नीति म किसी प्रकार के परिवतन की समावना नही दीखती अत सभा के महासचिव न हताश होकर कहा कि "जबकि सहभाक्रमण करन तथा साम्यवादियो और अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के प्रभुत्व से श्रमिक वग को बचान का उद्देश्य बहुत ही प्रशसनीय है किन्तु भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के साथ हिन्द मजदूर सभा द्वारा समझौता करा का कोई प्रस्ताव इसके लिये कोई साधन प्रस्तुत नही करता।"[1] हिन्द मजदूर सभा के महासचिव के अनुसार यह सहयोग भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की प्रभुता स्वीकार कर लेन की कीमत पर मिल सकता है जो अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस के प्रभाव का क्षीण बनान के मुख्य उद्देश्य को ही समाप्त नही कर देगा बल्कि इससे श्रमिक आन्दोलन का एक वग अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस म विवश होकर सम्मिलित हो सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक सघ प्रसघान का नेतृत्व भी हिन्द मजदूर सभा और भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस को निकट लान म सहायता करना चाहता था तथा प्रसघान के महासचिव के नेतृत्व मे एक प्रतिनिधि मडल १९५८ मे भारत आया था। किन्तु इन प्रयत्नो का कोई फल नही निकला। हिन्द मजदूर सभा ने 'साम्यवादी विरोधी को स्वतन्त्र श्रमिक सघवाद के साथ समीकरण की प्रवृत्ति'[2] को अनुमोदित नहीं किया। हिन्द मजदूर सभा न दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक सघ प्रसघान को बताया कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस उससे प्राप्त आर्थिक सहायता का हिन्द मजदूर सभा के प्रतिद्वन्द्वी श्रमिक सघो की स्थापना करके दुरुपयोग करती रही है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस एकता स्थापित करन के लिए बहुत उत्सुक नही है। वह अपनी शक्ति तथा सरकार काग्रेस दल और यहाँ तक कि नियोजको से प्राप्त सरक्षण से आश्वस्त है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की कायकारिणी समिति न साम्यवादियो के साथ सयुक्त मोर्चा बनाने के प्रश्न पर विचार किया। "समिति न अपनी पूव स्थिति को पुन दोहराया कि किसी भी परिस्थिति म भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के सघो को किसी भी साम्यवादी या अप्रजातान्त्रिक सगठनो, जिनके विभिन्न राजनीतिक सबधन या केन्द्रीय श्रमिक सघ सगठन से सम्बद्ध विभिन्न श्रमिक सघो की विरोधी सस्थाओ से अनुरक्ति हो के साथ किसी प्रकार का सम्मिलित या सयुक्त मोर्चा नही बनाना चाहिये।[3] यहाँ तक कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस की कायकारिणी समिति न केरल में अखिल भारतीय मजदूर काग्रेस तथा हिन्द मजदूर सभा के सघो के साथ सयुक्त मोर्चा बनाने के लिए

---

१ हिन्द मजदूर सभा ७वाँ सम्मेलन पृ० ६० ।

२ वही, पृ० ६८ ।

३ भारतीय राष्ट्रीय व्यवसाय सघ सभा, १९६१ अधिवेशन, पृ० ५४ ।

केरल कासू-अंदी थोझीलाल कांग्रेस (Kerala Kasee Andi Thozhilali Congress) के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के विषय में विचार किया। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की घोषित नीति के यह विरुद्ध है। १९५६ में श्री जी० डी० अम्बेकर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस के साथ किसी प्रकार के मेल की सम्भावना ही नहीं है। हिंद मजदूर सभा के सम्बन्ध में उनका विचार था कि हमारे बीच बहुत कुछ समानता है। तदनुसार श्री अम्बेकर ने सुझाव दिया कि हिंद मजदूर सभा और भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के बीच 'सहमानमरण न करने का' समझौता होना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि "प्रारम्भ में शीर्ष स्तर पर समान मामलों पर विचार-विमर्श होना चाहिए जहाँ किसी विशेष मामले में समझौता न हो सके प्रत्येक संगठन को अपने अनुसार कार्य करने की अनुमति दे देनी चाहिए और किसी को भी न तो दूसरे संगठन की आलोचना और न कौन सही है यह प्रमाणित करने के लिए आलोचना या स्पर्धा प्रारम्भ करनी चाहिए क्योंकि अंतिम परिणामों से स्वयं पता चल जायगा कि कौन सही था।"[1] किन्तु भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने किसी ऐसे सम्मेलन से अलग रहना ही उचित समझा है। जब हिंद मजदूर सभा ने सभी केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठनों तथा विभिन्न असम्बद्ध राष्ट्रीय संघों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन मांग-पत्र पर विचार करने के लिए आयोजित किया तो भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने इस विचार विमर्श में भाग न लेने की ही अविमान्यता दी। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के नेतृत्व की ओर से एकता स्थापित करने के किसी प्रयत्न के बारे में हमने नहीं सुना। आरोप यह है कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस जो देश में आज संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा संगठन है और जो सरकार के संरक्षण और सहयोग से इस स्थिति को पहुंचा है न कोई अधिकारिक प्रत्युत्तर इस मांग (एकता के लिए) पर नहीं दिया।[2]

किन्तु यह सही है कि ये सभी श्रमिक संघ संगठन कुछ मूल मांगों पर थोड़े या बहुत रूप में सहमत हैं। २५ प्रतिशत मजदूरी में वृद्धि भविष्य निधि योजना का विस्तार व्यापक सामाजिक सुरक्षा के लिए एकीकृत योजना, कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत चिकित्सा सुविधाओं के लाभ का श्रमिकों के परिवारों तक विस्तार वेतन के साथ मँहगाई भत्ते का विलय तथा इसी तरह श्रमिकों के लिए अन्य लाभ उनमें से सभी चाहते हैं। विभिन्न श्रमिक संघ संगठनों के उद्देश्यों में काफी हद तक समानता है। इसीलिए यह एक दुखद तथ्य है कि एकता दृष्टव्य नहीं है।

---

१ अखिल भारतीय व्यवसाय संघ सभा का एर्नाकुलम में सामान्य प्रतिवेदन पृ० ५३।

२ वही, पृ० ५१-५२।

यह भी सत्य है कि विभिन्न अवसरो पर किसी न किसी प्रकार की एकता रही है। १९५३ म कलकत्ता म कई मामलो मे ट्राम किराय का प्रतिरोध अध्यापको की हड़ताले, खाद्य तथा बोनस के लिय प्रदशन म संयुक्त मार्चे बनाय गये थे। १९५४ मे एक अभिनवीकरण विरोधी समिति कानपुर म स्थापित की गई थी जिसके फलस्वरूप ६ संघो का विलय हो गया। इसी प्रकार दिल्ली म भी संयुक्त कार्यवाही की गई। १९५४ म बैंक कर्मचारियो की मांगो के समर्थन मे संयुक्त रूप से सांकेतिक हड़ताल संगठित की गई थी। राजनीतिक मामलो म भी संयुक्त कार्यवाही की गई है उदाहरण के लिय गोवा स्वतन्त्रता संघर्ष राज्य पुनर्गठन केरल के साम्यवादी मन्त्रिमण्डल को हटाना आदि। किन्तु हम इन संयुक्त मोर्चों अथवा संयुक्त कार्यवाहियो से एकता के बारे म कोई अनुमान नही लगा सकते है। अधिकांश रूप म ऐसे संयुक्त मोर्चे अस्थायी समितियो के द्वारा स्थानीय आधार पर बनाय गये जिन्हे तुरन्त ही विखण्डित कर दिया गया। इसके अलावा राजनीतिक मामलो म संयुक्त मोर्चे हमे श्रमिक संघ एकता के लक्ष्य के निकटतर नही ले जाते। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ऐसी संयुक्त कार्यवाहियो स अलग रही है।

राष्ट्रीय औद्योगिक संघानो की स्थापना श्रमिक संघ एकता की दिशा म एक अन्य चरण था। कई ऐसे संघानो की स्थापना की गई। रेलवे श्रमिक सामुद्रिक प्रतिरक्षा श्रमिक, पट्रोलियम श्रमिक बैंक डाक तथा तार सरकारी कर्मचारी बीमा बन्दरगाह तथा गोदी और काम करने वाले पत्रकार आदि के इस संबंध म उदाहरण दिये जा सकते है। लेकिन जैसे ही इन संघानो की स्थापना की गई विभिन्न वर्गों न विभिन्न दिशाओ की ओर खींचा तानी प्रारम्भ कर दी। काफी संख्या म विरोधी संस्थाओ का निर्माण किया गया। रेलवे प्रतिरक्षा डाक तथा तार श्रमिको और बैंक कर्मचारियो के संघानो म फूट डाल दी गई तथा यह बिलकुल संभव है कि अन्य संघानो म भी जल्दी फूट पड जाय।

किन्तु यह ध्यान म अवश्य रखना चाहिये कि यद्यपि इन संघानो की आवश्यकता हो सकती है और वे सकारात्मक भूमिका का निर्वाह भी कर रहे हो किन्तु वे श्रमिक संघ एकता के लिए स्थानापन्न नही हो सकते। वस्तुत ये संघान शिल्प संघान हैं जो अपने संबंधित व्यवसायो की देखभाल करेंगे। वे सभी श्रमिक वर्गों का प्रतिनिधित्व नही कर सकते और न ही उनके स्थानापन्न हो सकते हैं। श्रमिक संघ आन्दोलन श्रमिको के वर्गीय हितो स कुछ अधिक और काफी ऊपर है। इसलिये समस्या है कि श्रमिक संघ एकता किस प्रकार स्थापित हो। यद्यपि किसी निश्चित मत का प्रतिपादन कठिन है किन्तु फिर भी निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है

विभिन्न श्रमिक संघ संगठनो के प्रति सरकार का दृष्टिकोण पूर्ण तटस्थता का होना चाहिये। सरकार का संरक्षण विघटन का स्रोत है। यह भावना कि सरकार का संरक्षण और सहयोग उपलब्ध किसी विशेष श्रमिक संघ संगठन म सम्मिलित होन

स उपलब्ध होगा। विरोधी सस्थाओ के निमाण तथा केन्द्रीय श्रमिक सघ सघानो के सबधन मे प्राय परिवतन को बढ़ावा देती है। श्रमिक सघियो म यह भावना है कि सरकार भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के सघो को प्रोत्साहन देती है। ऐसे कई उदाहरण सामने आये हैं जब गुप्त मतदान होने पर भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के सघ हिन्द मजदूर सभा के सघो से हार गये। ऐसी भावना है कि सशोधित अधिनियम, जिसम श्रमिक सघो की अनिवाय मान्यता की व्यवस्था है, का इस "भय के कारण कार्यान्वित नहीं किया गया। "विभिन्न सस्पर्धी सघो म से यह निश्चय करने के लिए कि कौन वास्तविक सामूहिक सौदाकारी का अधिकारी है, नियमो के पालन से, जिनके पीछे विधिक सम्मोदन है भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के बहुत से सघ निष्प्राण हो जायेंगे जिन्हे सरकार के प्रबोधन पर नियोजको द्वारा जारज रूप मे मान्यता दी गई थी।"[१]

इसी प्रकार के विचार हाल ही म प्रकाशित एक अध्ययन मे व्यक्त किये गये हैं जिसमे लेखक ने कहा है कि 'अधिकाश सरकारी अधिकारी, बहुत से नियोजक तथा निश्चित रूप से लगभग सभी भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के नेता (जो वतमान प्रणाली से लाभान्वित होते हैं) यदि किसी प्रणाली का समथन करते है तो गुप्त मतदान का विरोध तथा कम्पनी प्रणाली का समथन'[२] ऐसे कई उदाहरण हैं जब साधारण सुविधायें भी अ भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस के सघो को नहीं दी जाती हैं। हिन्द मजदूर सभा के नागपुर म आयोजित ७वें वार्षिक सम्मेलन के लिए स्वागत समिति के अध्यक्ष ने कहा कि "नागपुर नगर निगम के निगमाध्यक्ष तथा आयुक्त ने गांधीबाग के हाल को प्रयोग म लाने से मना करके हमारी कठिनाई को और बढ़ा दिया। आपको वतमान सरकार और उसके अधिकारियो के छोटे दृष्टिकोण का एक उदाहरण देने के लिए ही मैंने यह कहा है।'[३]

हड़तालो श्रमिको पर पुलिस द्वारा गोली चलाने की अनेक घटनायें हुई हैं। और ये घटनायें बढ़ रही हैं। नेताओ की अधाधुध गिरफ्तारी श्रमिक सघों तथा हड़ताल के वरिष्ठ सगठन कर्ताओ पर फौजदारी अभियोजन तथा सभाओ को भग करने के लिये धारा १४४ का उपयोग दुर्भाग्यपूण है। प्रजा समाजवादी दल की कायकारिणी समिति ने अपने एक प्रस्ताव म कहा, "यहाँ तक कि हड़ताल तोड़ने वालो या बाहर से बुलाये गये श्रमिको को काम न करने की प्राथना से रोकने के लिये सावजनिक रास्तो या व्यापारिक स्थानो के समीप इधर घूमना भी अपराधिक

---

१ एस० सी० सी० अ यानो पिल्लई अध्यक्षीय भाषण, ७ वाँ हिन्द मजदूर सभा सम्मेलन, पृ० १६।

२ चार्ल्स मायर्स इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इंडिया, पृ० २८७।

३ अध्यक्षीय भाषण, ७वाँ हिन्द मजदूर सभा सम्मेलन।

विधि संशोधित अधिनियम का शरारतपूर्ण पूर्व धारा ७ के अन्तर्गत आ जाता है जो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की उत्पत्ति थी और जिसका प्रयोग तीसवीं दशक के प्रारम्भ दशक में भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को कुचलने के लिये किया जाता था। सरकार इस अप्रजातानिक विधिविहीन कानून तथा दंड विधान-संहिता की धारा १५१ का भी हड़ताल के सभी चोटी के नेताओं को गिरफ्तार करने तथा उन्हें जेल में रखने के लिये सुलभ अस्त्र के रूप में प्रयोग करती है जबतक कि उचित नेतृत्व के अभाव में हड़ताल समाप्त न हो जाय या श्रमिक हताश न हो जायें। पुलिस प्रायः निष्ठावान् श्रमिकों को संरक्षण देने के नाम पर हड़ताल तोड़ने वाले श्रमिकों को लाने का कार्य करती है तथा पुलिस की गाड़ियाँ हड़ताल तोड़ने वालों तथा बाहर से श्रमिकों के यातायात के लिये खुले आम प्रयोग में लाई जाती हैं।[1]

यह कहा जा सकता है कि सरकार भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस को इसलिये प्राथमिकता देती है क्योंकि यह सरकार की नीतियों का समर्थन और अनुमोदन करती है। वस्तुतः इस प्रकार का तर्क स्वतन्त्र श्रमिक संघ आन्दोलन के लिये आत्मघातक होगा। सरकार एक वर्ग की सरकार न हो कर पूरे राष्ट्र की है। इसके अलावा, वह राष्ट्रीय नीति जो श्रमिक जनसंख्या के एक बड़े भाग द्वारा अनुमोदित नहीं है, राष्ट्रीय नीति नहीं कहला सकता। श्रमिकों के मामलों में बहुमत और अल्पमत के संबंध में आमूल परिवर्तन चाहिये।

दलीय दृष्टिकोण को छिपाने के लिये राष्ट्रीयता या देश भक्ति के अभाव का तर्क दिया जाता है। ये वे नारे हैं जिनका प्रयोग उस समय किया जाता है जब तर्क के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता और सरकार अपने पक्ष में कोई विश्वसनीय कारण नहीं प्रस्तुत कर पाती।

हम इस विवाद को उठाने में इच्छुक नहीं हैं कि सरकारी कार्य न्यायसंगत है अथवा नहीं। हम केवल इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि सरकार को पूर्ण रूप से तटस्थ रहना चाहिये और श्रमिक संघों के किसी एक वर्ग का पक्षपात नहीं करना चाहिये। केवल विशेष परिस्थितियों को छोड़कर हड़तालों में पुलिस के हस्तक्षेप की आज्ञा नहीं देनी चाहिये। सरकार को किसी भी स्थिति में हड़ताल तोड़ने वालों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं होना चाहिये। सरकार की नीतियों में विश्वास पैदा होना चाहिये। किन्तु सम्भवतः वस्तुस्थिति बिल्कुल विपरीत है। यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन या स्कैंडेनेविया की तरह एक सशक्त स्वतंत्र श्रमिक संघ आन्दोलन सरकार की वर्तमान श्रमिक नीति में शिविर प्राथमिकताओं में से है।[2]

---

१ ७वें सम्मेलन का प्रतिवेदन, पृ० ८७।

२ मॉयर्स।

नियोजकों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। वे एक रचनात्मक भूमिका का निर्वाह और श्रमिक संघों को सही दिशा में विकास करने में सहायता कर सकते हैं। उन्हें सर्वप्रथम वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था में श्रमिक संघों की उपयोगिता अनुभव करनी चाहिए और उन्हें केवल यही नहीं सोचना चाहिए कि श्रमिक संघ और नियोजक केवल संघर्षरत दल हैं। ऐसे अवसर आ सकते हैं जब संघ और नियोजकों में मतैक्य न हो सीधी कार्यवाही की तैयारी करें, और हड़ताल भी घोषित कर दें। नियोजकों को चाहिये ऐसे साधन और मार्ग खोज निकालें जिससे संघर्ष का क्षेत्र कम हो जाय। समान हितों का क्षेत्र काफी विस्तृत है और ऐसे अवसरों से लाभ उठाना चाहिए। इन सब के लिये दृष्टिकोण में परिवर्तन, श्रमिकों के हितों को जानने की इच्छा और अन्तर्निहित लाभ भावनाओं का शोधन तथा राष्ट्र और श्रमिक वर्गों के न्यासी हो जाने के लिए प्रयत्न पूर्व मान्यता है। उस समय तक जब तक यह संसिद्धि नहीं प्राप्त हो जाती संघर्ष की सम्भावना बनी रहेगी।

निकट भविष्य के लिये नियोजकों का सरकार के समरूप श्रमिक संघों के साथ सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करना चाहिए। और उनके बीच राजनीतिक या इसी प्रकार के किन्हीं अन्य विचारों के आधार पर भेदभाव नहीं बरतना चाहिये। उनके हित तो तुरन्त ही अन्तग्रस्त हो जाते हैं। किन्तु यह दुःखद पूर्ण है कि सामान्यतया नियोजकों के व्यवहार आलोचना के योग्य होते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जब नियोजकों ने विरोधी संघों की स्थापना को प्रोत्साहित किया और विद्यमान संघ जो सर्वाधिक प्रतिनिधि था, के साथ वार्ता नहीं की। 'बम्बई की एक कम्पनी ने साम्यवादी संघ को मान्यता देने से इन्कार कर दिया और एक कार्य-समिति के साथ वार्तालाप प्रारम्भ कर दिया।'[1] श्रम कार्य समिति के साथ वार्तालाप करने का एक दूसरा उदाहरण कलकत्ता की एक बड़ी फर्म का था, जिसने संघ के साथ जिसके अध्यक्ष ने भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस से अलग करके एक साम्यवादी संघ बना दिया था वार्षिक बोनस पर वार्तालाप करने के लिये मना कर दिया।[2] इस तरह के मामले कई गुना हो सकते हैं। यह एक गलत नीति है जो अन्ततः कार्य कुशलता और एकता को क्षीण बनाकर नियोजकों को धक्का पहुंचा सकती है।

विभिन्न श्रमिक संघ संगठनों का ही परम उत्तरदायित्व है। आने वाले पाँच दस वर्षों के लिये उन्हें न्यूनतम कार्यक्रम पर संयुक्त रूप से कार्यवाही करने का प्रयत्न करना चाहिए। मजदूरी वृद्धि मँहगाई भत्ता बोनस, सामाजिक सुरक्षा हित लाभ तथा श्रमिकों के स्तर को ऊँचा उठाने जैसे—मामलों में एक सम्मत सामान्य कार्यक्रम

---

1 मॉयर्स इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया, पृ० २२३।

2 वही पृ० २२३।

बनाने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिये । यह स्पष्ट है कि अभी तक इस सबध म न तो गभीरतापूवक सोचा गया है और न प्रयत्न किया गया है । इस दिशा म एक अच्छा प्रयत्न १९५८ म सम्मत व्यवहार सहिता रहा है । अन्तर सघीय स्पर्धा क विषय मे व्यवहार सहिता मे निम्नलिखित व्यवस्था है —

(१) सघो की दोहरी सदस्यता नही होगी (प्रतिनिधि सघो के विषय म इस सिद्धान्त को और जाचने की आवश्यकता है) ।

(२) एक उद्योग या इकाई के प्रत्येक कमचारी को अपनी रुचि से सघ म सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता और अधिकार होगा । इस सबध मे कोई दबाव नही डाला जायगा ।

(३) श्रमिक सघो की प्रजातान्त्रिक कायविधियो को नि सकोच स्वीकृत और सम्मान दिया जायगा ।

(४) श्रमिक सघो की कायकारिणी सस्थाओ और पदाधिकारियो का नियमित और प्रजातान्त्रिक निर्वाचन होगा ।

(५) किसी भी सगठन द्वारा श्रमिको की अज्ञानता और/या पिछडपन का शोषण नही किया जायगा । कोई भी सगठन अत्यधिक या अवास्तविक मागे प्रस्तुत नही करेगा ।

(६) जातिवाद, साम्प्रदायिकवाद तथा प्रातीयतावाद या सभी सघो द्वारा खण्डन किया जायगा ।

(७) अन्तर सघीय सव्यवहारो म हिंसा, दबाव अविश्वास या वयक्तिक भेद भाव का सहारा नही लिया जायेगा ।

(८) सभी केन्द्रीय श्रमिक सगठन नियोजको द्वारा प्रभावित सघो क निर्माण या उनके चलते रहने पर समाधान करेंगे ।

सभी केन्द्रीय सगठनो न सहिता का अनुमोदन किया है किन्तु उनके द्वारा विरोधी सघो की स्थापना के प्रयत्नो की शिकायतें मिलती हैं । वस्तुत विरोधी सघो की स्थापना को सहिता हतोत्साह नही करती । किन्तु यह सुझाव नही दिया जा रहा कि सहिता को अपनाने स स्थिति नही सुधरेगी । सघो की आन्तरिक कायविधि म इससे सुधार होन की सभावना है और उसके द्वारा औद्योगिक सम्बन्धो म भी सुधार हो सकता है । अच्छा होता यदि यह भी व्यवस्था की गई होती कि प्रशासन परिषद् की सामयिक बठकें होगी और कि सामान्य सभा की बठक निश्चित निर्धारित समय के भीतर अवश्य होनी चाहिये ।

निम्नलिखित घटनाओ से पुष्टि होती है कि सहिता ने विरोधी सघो के निर्माण को हतोत्साहित नही किया

(१) 'हिन्दुस्तान लीवस लिमिटेड' की फक्टरी में भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस सघ ने साम्यवादी सघ को जो अभी तक प्रबध द्वारा मान्यता प्राप्त सघ था

विस्थापित कर दिया।"[1]

(२) उस समय जब साम्यवादियों ने कोयले की खानों में लघु हड़ताल घोषित की, भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के संघ ने प्रबंधकों के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये और इस प्रकार हड़ताल असफल सिद्ध हुई।'[2]

(३) १९५९ में श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के बीच भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने विरोधी संस्थाओं का संगठन किया—"भारतीय राष्ट्रीय प्रतिरक्षा श्रमिक संघान, राष्ट्रीय पेट्रोलियम श्रमिक संघान तथा केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की १९६० में हड़ताल के बाद राष्ट्रीय डाक तार श्रमिक संघ की स्थापना की गई।'[3]

यह एक दुष्ट चक्र है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस का कहना है कि अ-भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस संगठनों की अ-देशभक्तिपूर्ण कार्यवाहियों के कारण जो अपने निहित स्वार्थों के लिये श्रमिकों का शोषण करने में नहीं हिचकिचाते, इसे विवश होकर विरोधी संस्थाओं की स्थापना करनी पड़ी। दूसरी ओर उनका (अ-भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस संघों) का मत है कि "भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के प्रति खेद प्रकट करते हुये उन्हें इस स्थिति (विरोधी संघों का निर्माण न करने की) को संशोधित करना पड़ा। जहाँ उनके संघ निष्क्रिय हो चुके हैं या नियोजकों द्वारा प्रभावित संघ बन गये हैं, हमें विवश होकर विरोधी संघों की स्थापना करनी पड़ती है।'[4]

इस तरह के उदाहरणों और तर्कों में काफी वृद्धि की जा सकती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि श्रमिक संघ एकता हमारे श्रमिक संघों और श्रमिक नेताओं के लिये एक आदर्श नहीं बन पाया है। केवल निम्नलिखित सिद्धान्तों की निःसंकोच स्वीकृति के द्वारा ही प्रभावशाली श्रमिक संघ एकता स्थापित की जा सकती है।

(१) सर्वाधिक प्रतिनिधि संघ के निश्चयन के लिये स्वतन्त्र लोगों के निरीक्षण में गुप्त मतदान।

(२) जबतक संघ प्रतिनिधि बना रहे एक महत्ताक्रमण न करने का कार्यक्रम।

(३) केवल आर्थिक कारणों के लिये ही हड़ताल की घोषणा। जो संघ, हड़ताल होने पर पराये अभिप्रायों का आरोप लगाते हैं उन्हें उसकी पुष्टि करनी चाहिये।

(४) केन्द्रीय श्रमिक संगठनों द्वारा एक सामान्य न्यूनतम माँग पत्र बनाना

१ भारतीय राष्ट्रीय व्यवसाय संघ सभा प्रतिवेदन १९५९-६० पृ० ६६।
२ वही, पृ० ८५।
३ वही, पृ० ८५।
४ अखिल भारतीय व्यवसाय संघ सभा प्रतिवेदन १९५७, पृ० ७६।

चाहिये ।

(५) विभिन्न सघो के प्रति सरकार और नियोजको की पूर्ण तटस्थता तथा बिना समय बरबाद किये या देर करने वाली विधियां को अपनाये प्रतिनिधि सघ के साथ वार्तालाप प्रारम्भ कर देने की सम्मति ।

(६) सामूहिक सौदाकारी तथा ऐच्छिक विवाचन द्वारा काय तथा सेवा की अवस्थाओ का निर्णय तथा उस सघ अथवा नियोजक के विरुद्ध सम्मिलित कार्यवाही जो इस समझौते का उल्लघन करे ।

(७) विभिन्न श्रमिक सघ सस्थाओ द्वारा नियोजको से सहायता की अस्वीकृति ।

निकट भविष्य उज्जवल नही प्रतीत होता । हम शनै-शनै श्रमिको के ज्ञान वृद्धि तथा नेतृत्व के दृष्टिकोण मे परिवर्तन पर अपना विश्वास रखना चाहिये ताकि एकता की इच्छा एक सयुक्त श्रमिक सघ आन्दोलन मे अभिव्यक्ति पा सके ।

११

कल्याण कार्य अथवा स्वायत्त विनियमन

श्रमिक सघो ने सर्वप्रथम श्रमिकों को सगठित करने के लिये इसी रीति का प्रयोग किया था। सघ के सदस्यों के चन्दे को एकत्र करके एक सामान्य कोष बनाया जाता है। हडताल, बीमारी, विकलांगता तथा बेरोजगारी की स्थिति में इस कोष के द्वारा विभिन्न लाभप्रद योजनाओं को कार्यान्वित किया जा सकता है। इन कोषों पर श्रमिक सघों का पूर्ण नियन्त्रण होता है और वे जिस तरह चाहे उनका प्रयोग कर सकते हैं। अपने सभी सदस्यों को ये हित लाभ प्रदान करने के लिये श्रमिक सघों पर विधिक उत्तरदायित्व नही है। कोई भी सदस्य वैधानिक रूप से इन हित लाभों को पाने का अधिकारी नही है क्योंकि श्रमिक सघ इन हित लाभों की व्यवस्था के लिये उनके साथ कोई समझौता नही करते। यदि उनके पास कोष उपलब्ध हो तो वे इन हित लाभों की व्यवस्था उनके लिये कर सकते हैं। हित लाभों के भुगतान के लिये वे अभिसंविदा भी कर सकते है। श्रमिक सघो को यह अधिकार है कि वे अपने कोषों का किसी भी प्रकार अपनी इच्छानुसार अपने सदस्यों के कल्याण के लिये प्रयोग करें।

जबतक श्रमिक सघो को वैधानिक मान्यता और अपने सदस्यों की ओर से सपणन का अधिकार नही दिया गया था और जबतक उन्हे सामान्य नियम के विरोधी सगठनों के रूप में समझा जाता था वे अपने सदस्यों की स्थिति मे सुधार केवल आपसी सहायता और सहयोग की योजनाओं द्वारा तथा अपने सदस्यों पर कडा अनुशासन लगाकर कर सकते थे। चूंकि श्रमिक सघो को सामूहिक सपणन का अधिकार नही था, इसलिये वे मान्य शर्तों को मानने के लिये नियोजकों को बाध्य नही कर सकते थे। इसलिये श्रमिक सघो के उद्देश्यों की प्राप्ति केवल एकपक्षीय कार्यवाही तथा सदस्यों पर कड़े अनुशासन, जिन्हे प्रत्येक स्थिति में सघ के नेतृत्व का अनुसरण करना था द्वारा की जा सकती थी।

श्रमिक सघो के लिए हित लाभो की व्यवस्था एक गुण के रूप में थी क्योंकि इसके द्वारा अनिच्छुक श्रमिकों को आकर्षित तथा उन्हे सघो के नियन्त्रण में किया जा सकता था। क्योंकि इस प्रकार की दूसरी योजनायें नही थी इसलिये विभिन्न जोखिमो

से सदस्यों की सुरक्षा का केवल उपाय आपसी सहायता और कार्यवाही थी। यद्यपि श्रमिक संघ वैधानिक रूप से इन हित लाभों की व्यवस्था के लिए बाध्य नहीं थे किन्तु सदस्यों ने इन योजनाओं में भाग लिया क्योंकि अन्य कोई उपलब्ध नहीं थी।

इन हित लाभों की व्यवस्था से अनुशासन बनाये रखने में भी सहायता मिली। कोई भी श्रमिक संघ सदस्य अपने अधिकार के प्रवर्तन के लिए न्यायालय में नहीं जा सकता था। और श्रमिक संघ इसी इन हित लाभों में उन सदस्यों को वंचित कर सकते थे जो श्रमिक संघों के स्तर और निर्देशन को मानने में इन्कार करते थे। निष्कासन के फलस्वरूप हित लाभों और संघ के पास संचित कोषों की हानि के भय ने उनके विरुद्ध, जो अनुशासन तोड़ना चाहते थे एक बड़े प्रतिरोधक के रूप में कार्य किया। इससे श्रमिक संघों की स्थिति दृढ़ हुई और उन्हें अनुशासन बनाये रखने में सहायता मिली। बाद में जब श्रमिक संघों को वैधानिक मान्यता और सामूहिक सपणन का अधिकार मिल गया, ये कोष सहायक बने रहे। इन्होंने उनकी सपणन शक्ति में वृद्धि की तथा स्थिर रहने की शक्ति को प्रबलता प्रदान की। हड़ताल के समय में श्रमिक संघ सामान्य कोष से श्रमिकों को समर्पण न करने तथा कार्य की अग्र सामान्य स्थितियों को अस्वीकार करने के लिये सहायता दे सकते थे।

श्रमिक संघों की हित लाभ व्यवस्था श्रमिकों को आकर्षित करने वाली अन्य तथा प्रतिस्पर्धात्मक योजना के अभाव में उपयोगी और प्रभावशाली हो सकती है। नियोजकों द्वारा किसी ऐसी योजना के लागू करने का श्रमिक संघ विरोध करते हैं क्योंकि उन्हें भय है कि इससे श्रमिकों को श्रमिक संघों से दूर रहने की प्रेरणा मिलेगी और इस प्रकार उनकी शक्ति और अनुशासन क्षीण होगा। नियोजकों द्वारा विरोधी संघों की स्थापना में भी उन्हें प्रयुक्त किया जा सकता है।

'पारस्परिक बीमा' शब्द का प्रयोग कभी कभी कुछ लोगों द्वारा विस्तृत अर्थ में उन सभी साधनों को व्यक्त करने के लिये जो श्रमिक संघ एकपक्षीय रूप में अपने सदस्यों पर अनुशासन बनाये रखने के लिये अपनाते हैं किया गया है। ये साधन केवल श्रमिक संघों द्वारा अपनाये जाते हैं और केवल उन्हीं के सदस्यों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार श्रमिक संघ अपने नियम और आन्तरिक प्रशासकीय व्यवस्थाओं के प्रवर्तन द्वारा कार्य और नौकरी की अवस्थाओं को विनियमित करने का प्रयत्न करते हैं। उत्पादन का आयतरण तथा शिशिक्षुओं का विनियमन जैसे उपाय इसी वर्ग से सम्बन्धित है। जे० डी० एम० बेल के अनुसार स्वायत्त विनियमन शब्द अधिक अभिव्यंजक है और इसमें श्रमिक संघों द्वारा अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त सभी एकपक्षीय उपाय निहित होंगे। किन्तु यह सत्य है कि श्रमिक संघों द्वारा एकपक्षीय कार्यों के सभी रूपों में हित लाभों का वितरण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

'पारस्परिक बीमा' की यह विधि या जिसे अब हम 'स्वायत्त विनियमन' की

सत्ता द सकते हैं श्रमिक सघा के, उद्देश्या का उपलब्धि के लिए उतनी महत्त्वपूर्ण नही ह । अन्य अधिक प्रभावशाली रीतियो का प्रयोग उस समय किया गया था जब श्रमिक सघा के वधानिक स्तर तथा उनके सगठन और सामूहिक रूप से सपराम करने के अधिकार को मान्यता दी गई थी । इस रीति के लिए पर्याप्त सगठनात्मक क्षमता और अनुशासनात्मक शक्ति की आवश्यकता थी जिनका नताओ म प्राय अभाव पाया गया । इसके अलावा य हित लाभ केवल श्रमिक सघा तक ही परिरक्षित न रह सके क्योकि राज्य न उनम अत्यधिक रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया । यह सही है कि राज्य न उन देशा मे जहाँ सामाजिक बीमा योजनाये बाद म लागू की गइ श्रमिक सघो के अनुभवा से लाभ उठाया । एक सामान्य श्रमिक के जीवन म औद्योगीकरण के विस्तार न अत्यधिक जटिलतायें पदा कर दी । उसे अनेक जोखिमो का सामना करना पडा और श्रमिको को विभिन्न जोखिमो के विरुद्ध सरक्षण प्रदान करने के लिये श्रमिक सघो के पास पर्याप्त ससाधन नही थे । राज्य की नीति भी बदल गई है । बहुत से देशो की सरकार ऐसी योजनाओं को वृहद और वज्ञानिक आधार पर चलाने की इच्छुक है । राज्य ने अब सामाजिक सुरक्षा की अपनी योजनायें प्रारम्भ की हैं । श्रमिको के सपूर्ण जीवन म आने वाले हर सभव जोखिम के विरुद्ध सुरक्षा की व्यवस्था की गई है । जसे जसे राज्य की रुचि बढती गई श्रमिक सघा की योजनाओ की अनन्यता समाप्त हो गइ, जो श्रमिक सघ आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षों म रही, तथा यह रीति शन शन अब अपना महत्त्व खो चुकी है । किन्तु इससे यह तात्पय नही है कि श्रमिक सघ इस प्रकार की सुविधाय अब प्रदान नही करते । बहुत से श्रमिक सघ आज भी अपने सदस्यो के लिये विस्तृत हित लाभा की व्यवस्था करते हैं । लेकिन इन योजनाओ पर अब जोर नही दिया जाता । यह केवल राज्य द्वारा प्रवर्तित, निर्देशित या नियन्त्रित सामाजिक बीमा योजनाओ जिनके अन्तगत श्रमिको के लिए विभिन्न हित लाभा की व्यवस्था की जाती है की पूरक मात्र रह गई है । जहा तक श्रमिक सघो के उद्देश्यो की प्राप्ति का प्रयास ह, इस रीति का महत्त्व काफी घट गया है ।

राज्य और जनता भी अब श्रमिक सघों की ओर से एक पक्षीय कायवाही का समथन नही करतीं । सभी यह चाहते हैं कि प्रत्येक सघ या सगठन के नियम और शर्तें सावजनिक हित के अनुरूप होनी चाहिये और उनके द्वारा किये गये सभी एक पक्षीय काय अवमूल्यित समझे जात ह । आर्थिक परिस्थितियो, सामाजिक व्यवस्थाओ तथा जनता के दृष्टिकोण म परिवतन हो जाने से श्रमिक सघ भी इस रीति को बहुत वाछनीय नही समझते । उत्पादन का आयत्रण, काय की गति म कमी, शिशिक्षुओ की सख्या मे आयत्रण तथा काम खोजने वाले व्यक्तियो की सख्या मे अवरोधन जसे—उपाय समाज विरोधी समझे जाते हैं । ये विधियाँ दीर्घावधि मे श्रमिको के लिये लाभकारी नहीं हो सकतीं और उनको उत्तरदायी श्रमिक सघ नताओ द्वारा

भी सशक्त अस्त्र ना का गा है।

इस रीति का प्रभाव निरन्तर प्रतिदिन कम होता जा रहा है। इस रीति के उचित उपयोग के लिये भारत श्रमिक के पास आवश्यक संगठन और समारना का अभाव है। श्रमिक संघ सदस्य विशेषकर मंदी के काल में नियमों की अवहेलना भी कर सकते हैं। यदि सदस्यों को निलम्बित किया गया या उनके विरुद्ध अन्य कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई तो इससे संगठन का विघटन हो सकता है। उपलब्धियों की प्राप्ति न होना की ही अधिक सम्भावना है। श्रमिक संघों को वैधानिक स्तर और सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार तथा वाद में अधिनियमन को प्रभावित करने का अधिकार प्रदान कर देने से इस रीति का अनुपयोग हो गया। इसके अलावा दूसरी रीतियाँ अधिक त्वरित और प्रभावशाली पाई गई। इस कारण अब यह रीति केवल गौण महत्व की रह गई। वस्तुतः यह रीति आर्थिक आवश्यकता के रूप में प्रयुक्त की गई थी और जब अन्य रीतियाँ उपलब्ध हो गई तो उसे गौण स्थान दे दिया गया। फिर भी श्रमिक संघों की इन हित लाभकारी योजनाओं ने सभी त्रुटियों के बावजूद, श्रमिक वर्ग को लाभ पहुँचाया है साथ ही व सरकारी योजनाओं की पूर्वगामी रही हैं और सरकार ने श्रमिक संघों द्वारा अर्जित अनुभव का लाभ उठाया है।

पारस्परिक बीमा की रीति तथा भारतीय श्रमिक संघ

भारत के श्रमिक संघों में यह रीति कभी लोकप्रिय नहीं थी। वास्तव में श्रमिक संघ नेताओं ने हित-लाभकारी योजनाओं तथा अन्य कल्याणकारी उपायों पर शायद ही कभी गम्भीरता से सोचा हो। श्रमिक संघता हमारे देश में काफी बाद में पनपी। इस देश में आधुनिक श्रमिक संघों का प्रारम्भ १९१८ में हुआ। इसलिये इस देश के श्रमिक संघों ने बहुत कुछ अन्य देशों के श्रमिक संघों के अनुभवों से सीखा। यह रीति दूसरे देशों में १९१८ तक अपना प्रभाव और लोकप्रियता खो चुकी थी। इसलिये भारतीय श्रमिक संघों ने जो बाद में स्थापित हुए अपने सदस्यों की आर्थिक स्थितियों में सुधार के लिये इस रीति की प्रभावशीलता में विश्वास नहीं किया।

इस देश में श्रमिक संघों को शीघ्र ही १९२६ में व्यवसाय संघ अधिनियम के अधिनियमन का लाभ मिला जिसने उन्हें वैधानिक स्तर प्रदान किया। श्रमिक संघों ने श्रमिकों को संगठन करने तथा नियोजकों से वार्तालाप करने का अधिकार मिला। उन्हें हित लाभकारी समितियों के अवगुण्ठन की आवश्यकता ही नहीं पड़ी जबकि ग्रेट ब्रिटेन के श्रमिक संघों को प्रारम्भ में अपने कार्यों और कार्यवाहियों के निष्पादन हेतु करना पड़ा। हमारे यहाँ संघ के लिये संयोजन अधिनियम (Combination Acts) ही नहीं थे। इस प्रकार भारतीय परिस्थितियों के

अन्तर्गत हित लाभ योजना के द्वारा श्रमिकों को संगठित करने और उन पर अनुशासन लादने का प्रश्न ही नहीं पैदा हुआ।

हमारे श्रमिक संघों के अधिकांश नेता बाहरी थे। वे साधारणतया शिक्षित, प्रबुद्ध और अच्छे वर्ग के थे। श्रमिक संघों की विकास की अवस्था का ध्यान में रखते हुये वे अपने समय से आगे थे। उनके आदर्श कल्याणकारी राज्य की धारणा से ढाले गए थे। वे राज्य की नीति का पुनर्विन्यास चाहते थे जिससे राज्य श्रमिकों की उचित देख-भाल कर सके। उनका विश्वास था कि वैयक्तिक संघों के स्थान पर बीमा लाभों की व्यवस्था के लिए राज्य को उत्तरदायी होना चाहिये। काफी संख्या में नेता समाजवाद और साम्यवाद के आदर्शों से प्रभावित हुये थे। इस वर्ग ने श्रमिक संघ संगठनों को वर्ग युद्ध चलाने, पूंजीवादी समाज को समाप्त करने तथा इसे वर्ग हीन समाज द्वारा पुनर्स्थापित करने का माध्यम समझा। पूंजीवाद को समाप्त करने के एक मात्र उद्देश्य से श्रमिकों का संगठन उनका एकमात्र लक्ष्य था। वे अनुभव करते थे कि श्रमिक संघों के पास काफी धन एकत्र हो जाने से वे वर्ग-संघर्ष चलाने के लिये अउत्सुक हो जायेंगे। इसलिये भारत में श्रमिक संघ नेताओं के इस वर्ग द्वारा पारस्परिक बीमा की रीति की संस्तुति नहीं की गई।

एक औसत भारतीय श्रमिक का भाग्यवादी दृष्टिकोण तथा नियोजक को माँ बाप समझने की उसकी प्रवृत्ति से भी श्रमिक संघ पारस्परिक सहायता और सहयोग की योजनाओं के प्रति निरपेक्ष रहे। श्रमिक संघों द्वारा कोई भी हित लाभ कारी योजना को प्रशासित करने की यह पूर्व मान्यता है कि व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा सामान्य कोष में सामान्य हित के लिए चन्दा दिया जाय। एक औसत श्रमिक यह सहज विश्वास नहीं कर सकता था कि वह अपनी तथा औरों की सहायता कर सकता और इसलिये वह आशा करता था कि हित लाभों और हित लाभकारी उपायों की व्यवस्था नियोजकों को करनी चाहिये। उसके लिये नियोजक उससे बड़े थे और जो अपने कर्मचारियों के कल्याण के लिये उत्तरदायी थे।

भारतीय श्रमिकों की निर्धनता तथा उनको दी जाने वाली मजदूरी निम्न स्तर के कारण श्रमिक संघ संगठनों द्वारा हित लाभकारी योजनाओं में बाधा पड़ी। भारतीय श्रमिक इतने निर्धन थे कि श्रमिक संघ सदस्यता का अपना न्यून चंदा भी नियमित रूप से नहीं दे सकते थे। अतः यह उनसे आशा नहीं की जा सकती थी कि वे अधिक चन्दा देकर हित लाभकारी योजनाओं के वित्त प्रबंधन में समर्थ होंगे। फिर भी यदि इन योजनाओं को संस्थापित किया जाता तो अधिकांश योजनायें बहुत पहले ही धुयें में मिल जातीं। सशक्त शिल्प संघों का अभाव भी इन हित लाभकारी योजनाओं की असफलता के लिये उत्तरदायी था। कुशल श्रमिक, जिन्हें अधिक मजदूरी मिलती है, आशीय लाभकारी योजनाओं में वित्त प्रबंधन के लिये अधिक अंशदान दे सकते हैं। उनमें एकता और सहयोग की अधिक अनुभूति होती है।

वस्तुत कुशल वर मुख्यतया विदेशी ... नियोजित ... औद्योगीकरण ... रूप भारत आये थे। चूंकि ... अधिक ... किया जाता था इसलिए उन्हें श्रमिक संघों की सहायता की आवश्यकता नहीं थी। ... भारत में श्रमिक संघों में सम्मिलित होने के प्रतिकूल ... थे। ग्रेट ब्रिटेन में ... सभा की व्यवस्था ... संघों की एक विशेषता थी जबकि भारत में ... सभा नहीं था।

श्रमिकों के प्रवासी स्वभाव तथा औद्योगिक ... की ... के अभाव ने इस रीति की बिल्कुल ... काट दी। भारतीय श्रमिकों ... ग्रामीण ... गांवों से आए हुए हैं। ... सहायता और सहयोग के लिए श्रमिक गांवों पर निर्भर रहते हैं। ... नगरों में विवश होकर आना पड़ता है ... उनके प्रति उनमें कोई आकर्षण नहीं होता। शहर में अपने ... गांव में ही स्थायी रूप से रहने की होती है। ... संयुक्त परिवार प्रथा जोखिमों के खिलाफ सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करती है। बीमारी या बेरोजगारी की स्थिति में श्रमिक अपने परिवार के सदस्यों से सहायता की आशा करता है। वस्तुतः बहुत से श्रमिक अपना परिवार गांवों में रखते हैं। यदि कोई लम्बी हड़ताल हो जाती है तो शहर में रहकर अंतिम परिणाम की प्रतीक्षा करने के ... वह गांव वापस चला जाना अधिक पसंद करता है। इसलिए श्रमिक ... भाग्रीय ... की व्यवस्था में कोई रुचि नहीं लेते। यह सही है कि औद्योगिक श्रमजीवी वर्ग में धीमी किन्तु स्थिर वृद्धि हो रही है। संयुक्त परिवार प्रथा ... गांवों में भी विघटित हो रही है। किन्तु ... अधिकांश में भारतीय श्रमिक प्रवासी बने रहते हैं और संयुक्त परिवार प्रथा विद्यमान रहती है तब तक इस रीति के लोकप्रिय होने की संभावना नहीं है। अब यह सुझाव देने का भी समय नहीं रहा कि भारतीय श्रमिक संघों को ... लाभों में रुचि लेनी चाहिये। श्रमिकों के कल्याण में राज्य की बढ़ती हुई रुचि ने श्रमिक संघ योजनाओं को निरर्थक बना दिया है। श्रमिक संघ उद्देश्यों की प्राप्ति के माध्यम के रूप में उन्होंने अपना मूल्य खो दिया है।

इन हित लाभकारी योजनाओं की व्यवस्था की अलोकप्रियता का एक दूसरा कारण हमारे श्रमिक संघों का अकुशल प्रबंध था। लाभों के वितरण के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि नियमित रूप से चंदा एकत्र किया जाय तथा उसका उचित लेखा रखा जाय। लेखाकारों और लेखापरीक्षकों के अभाव में इन बीमाकोषों का उचित रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता था। अब भी ऐसे बहुत से मामले होते हैं जहां अवांछित और हीन व्यक्तियों द्वारा संघ के कोषों का अपहरण किया जाता है। यह सभी मामले विस्तार के हैं और बाहरी नेतृत्व के पास उनकी देखभाल के लिए समय नहीं था। इस देश में श्रमिक अशिक्षित और अज्ञानी हैं इन योजनाओं के सफल क्रियान्वयन के लिये आवश्यक कर्मचारी रखने की उनकी सामर्थ्य नहीं थी। उनमें उस विस्तृत दृष्टि का भी अभाव था जिससे बीमा सिद्धांतों की सरलता में

समझा जा सकता है। जाति, पंथ, धर्म और क्षेत्र पर आधारित विभाजन और भेदभाव के द्वारा दूषित वातावरण में पारस्परिक सहायता और सहयोग के आदर्श दूरवर्ती रहे हैं। परिणामस्वरूप श्रमिक संघों की आन्तरिक हित-लाभकारी योजनाएँ केवल एक अप्राप्य आदर्श के रूप में रह गईं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रमिक संघों को आन्तरिक हित लाभों की व्यवस्था नहीं करनी चाहिए। वस्तुतः हमारे श्रमिक संघों को अपने सदस्यों के लिए उनकी निरक्षरता को दूर करने के अतिरिक्त कुछ और ठोस सामाजिक कार्य करने चाहिये। श्रमिक संघों को अधिक नागरिकता और सम्यक् शिक्षा सम्बन्धी आदि के इस रचनात्मक पक्ष को विकसित करें। किन्तु अपने उद्देश्य और लक्ष्य की प्राप्ति के लिये श्रमिक संघों को पूर्णरूपेण पारस्परिक सीमाओं की नीति पर ही निर्भर नहीं करना चाहिये। यह नीति केवल गौण महत्त्व की हो सकती है। स्वायत्त भिन्नता की कुछ नीतियाँ जो, धीरे-धीरे कार्य करने की प्रवृत्ति तथा उत्पादन पर आवरण अत्यधिक अवाञ्छनीय हैं और उन्हें तुरन्त बहिष्कृत कर देना चाहिये।

इस देश में श्रमिक संघों के पास हड़ताल कोष भी नहीं हैं जिससे वे समय के काल में अपने को स्थापित कर सकें। हड़तालियों की सहायता के लिये उनके पास धन नहीं रहता। सब नियोजकों से आशा करते हैं कि वे हड़ताल के समय की मजदूरी का भुगतान करें। वस्तुतः हड़ताल के समय की मजदूरी का भुगतान विवाद की परिस्थितियों तथा न्यायालयों के निर्णय और आज्ञाओं पर निर्भर करता है। इससे श्रमिकों को हड़ताल के समय जब उन्हें धन की आवश्यकता होती है, सहायता नहीं मिलती। साधारणतया यह पाया गया है कि जब हड़ताल घोषित की जाती है श्रमिक सब हड़ताल कोष उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं तथा जनता से अंशदान की प्रार्थना करते हैं। श्रमिक मंत्री यह मानते हैं कि उन्हें अपने निमित्त सहयोग के लिये जनता से दान लेने का अधिकार है। जनता के दान पर इतनी अधिक निर्भरता को समाप्त करना चाहिये क्योंकि इससे श्रमिकों का नैतिक पतन होता है और उनकी सहनशक्ति कम हो जाती है। इससे श्रमिक संघवाद में क्षीणता आती है। नियोजक अथवा अधिक समाजों में श्रमिक संघों को यदि वे जनता के सहयोग और धन पर अत्यधिक निर्भर रहें समाप्त कर सकते हैं।

यद्यपि श्रमिक संघों की यह सामान्य नीति नहीं है कि कोष का निर्माण करें और उससे आन्तरिक हित लाभों का वितरण करें किन्तु देश के कुछ संघों ने हित लाभकारी योजनाएँ लागू की हैं। भारत और बर्मा के रेलवे कर्मचारियों की सम्मिलित समिति ने चन्दा जमा करने और सदस्यों को लाभ वितरित करने के विस्तृत नियम बनाये थे। सदस्यता को छः वर्गों में विभाजित किया गया था और चन्दे की दरें तीन आने से लेकर एक रुपया आठ आने प्रति मास था। सम्भव दुर्घटना हित लाभ, वैधानिक सहायता, मृत्यु हित-लाभ, नौकरी छूट जाने या निलम्बन हित-लाभ, और सेवा-निवृत्ति हित-लाभ

के अधिकारी थे। ये हित नाम विसर्पी अनुमाप (Sliding Scale) के अनुसार दिये जाते थे। इसके अतिरिक्त जो सदस्य ऐच्छिक विधि प्रतिरक्षा सरक्षण कोष मे चन्दा देते थे वे सभी वास्तविक खर्चों को पाने का दावा कर सकते थे। उन्होंने परिवार हित लाभ कोष तथा ऐच्छिक रुग्ण लाभ समितियों को भी सघटित किया था जिनमे सदस्य सम्मिलित हो सकते थे।

इस देश मे अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक सगठन ही केवल 'ऐसा श्रमिक सघ है जिसने बहुत सी हित-लाभकारी योजनाएँ चला रखी हैं। सगठन अपने सदस्यो को बलीकरण हित लाभ तथा हडताल सहायता प्रदान करता है। १६३६ तक के दस वर्षों मे सगठन ने इस प्रकार ८५,००० रुपयो का वितरण किया। सगठन उस समय अधिक सहायता प्रदान करता है जब सदस्य सघ के कार्यों के लिये अधिक कार्यवाही मे सन्निहित हो जाते हैं। १६५२–५३ मे १,३३६ मामलो की सूचना मिली जिसमे से १,२२१ सघ के हस्तक्षेप से सुलझ गये और शेष ११५ न्यायालय को प्रेषित कर दिये गए। मिलो मे दुघटना के सभी मामले सगठन स्वय सुलझाता है। १६५२–५३ और १६५३–५४ मे क्रमश ४०८ और ५०० नये मामलो की सूचना दी गई। सघ ने उन्हे अपने हाथ मे लिया और लगभग ६८ प्रतिशत मामले इन दो वर्षों में सफल निष्कर्षों से निर्णीत हो गये। श्रमिको को नि शुल्क सहायता दी जाती है और इस उद्देश्य के लिये सगठन ने एक विशेष भाग खोल रखा है जो स्वास्थ्य परीक्षा स्वास्थ्य प्रमाणपत्र तथा कार्यवाहियो की सस्थापना की व्यवस्था करता है। नियम के अनुसार सम्बन्धित पक्षो से वार्ता द्वारा सीधे समझौते के लिये प्रयत्न किये जाते हैं और असफलता मिलने पर दावा को आयुक्त के पास प्रेषित कर दिया जाता है। १६५२–५३ और १६५३–५४ मे सघ द्वारा श्रमिको और या इनके आश्रितो को वितरित की गई कुल राशि क्रमश १८७ १८५७६ रुपये और १७०,५७८ १३० रुपये थी।

सगठन श्रमिको के स्तर को उन्नत तथा नागरिक कर्तव्यो के निर्वाह के लिये उन्हे तैयार करना चाहता है। इसलिए सगठन की रुचि इन कार्यों मे रहती है जिनसे श्रमिको के सामाजिक जीवन मे सुधार हो। श्रमिको की विभिन्न बस्तियो मे सांस्कृतिक और सामाजिक केन्द्रो की स्थापना की गई है। १६५३–५४ मे एसे २५ केन्द्र काय कर रहे थे जहा बस्ती के श्रमिको के लिये वाचनालय कक्ष पुस्तकालय सुविधाओ तथा बैठक के लिये स्थान की व्यवस्था की गई थी और समय समय पर वहाँ तद्विषयक विचार विमर्श भी आयोजित किये जाते थे। इन कार्यों को सगठित, निर्देशित और प्रोत्साहित करने के लिये १६५३–५४ मे सगठन ने ७ पूरे समय के लिये वैतनिक कर्मचारियो की नियुक्ति की थी। १६५२–५३ मे सगठन ने ६ शैक्षणिक सस्थाओ का सचालन किया। इनमे से ६ स्कूलो मे ८२६ विद्यार्थी थे। दो अध्ययन गृहो की उपस्थिति सख्या ७१ थी तथा कन्यागृह मे ३६ लडकियां थी।

अधिक नही, सहकारी समितियों को वित्त प्रवर्तित करें। बैंक की अधिकृत अशपूजी १० लाख रुपया तथा प्राप्त अशपूजी ५,३०,६५० रुपये है। बैंक की कुल सदस्यता २५,५७१ तथा कुल जमा राशि १९५३ ५४ वर्ष के अंत मे १४७२१७३ रुपये थी। वर्ष के अंत मे कर्जों की कुल अदत्त राशि १६ ६३,७९६ रुपये थी तथा बैंक से ९८ सहकारी समितियां सम्बद्ध थी। इसके अलावा श्रमिकों की ४२ सहकारी आवास समितियां, लगभग १ ६०० सदस्यो के साथ ३१ सहकारी साख समितियां ११ साख तथा पूर्ति समितियां और १७ वस्त्र श्रमिकों की उपभोक्ता समितियां थी।

शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रो के बीच सबधो को पुनर्योजित करने तथा सामजस्य स्थापित करने और ग्रामीण क्षेत्रो को जाने वाले श्रमिको की कठिनाइयो को दूर करने के ध्येय से सगठन ने ग्रामीण सहायता अनुभाग की स्थापना की जो १९५० ५१ से काय कर रहा है। ग्रामीण और शहरी श्रमिक वर्गों के बीच निकटतम सबधो का विकास करने के लिये ग्रामीण सहायता अनुभाग प्रयत्नशील रहा है। अनुभाग के पास पडोसी ग्रामीण जनसख्या की शिकायते आती हैं जिन्हें दूर करने का वह प्रयत्न करता है। इस अनुभाग ने १९५२–५३ मे ७५३ शिकायतो और १९५३–५४ मे ४७० शिकायतो को दूर किया। वस्त्र श्रमिक सगठन के पास सुप्रशिक्षित सघसेवको का एक दल है जिसे मजदूर सेवादल कहते है। सगठन द्वारा आयोजित सभी बैठको तथा सार्वजनिक उत्सवों म व्यवस्था बनाये रखने मे सेवादल सहायता करता है। दल मे ३,००० स्वयसेवक हैं।

नगर निगम से उचित सेवाएँ प्राप्त करने म सगठन सदस्यो की सहायता करता है। निगम म श्रमिको द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते है और ये प्रतिनिधि श्रमिको के लिये उचित सुविधाएँ यथा—पानी निकासी रोशनी सडकें टट्टी और पेशाबघर विपणन तथा बच्चो के क्रीडास्थल प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहे हैं। सगठन ने एक सुसम्पन्न शोध पुस्तकालय तथा सूचना केन्द्र के सांख्यिकी अनुभाग जो उद्योग की वास्तविक वित्तीय स्थिति की जानकारी के लिये स्थानीय कपडा मिलों से लेखे एकत्र करता है तथा उनका अध्ययन करता है की भी व्यवस्था की है। इस अनुभाग द्वारा कुछ औद्योगिक मामलो जैसे—अनुपस्थिति कीमतें औद्योगिक विवाद तथा निर्वाह मूल्य सूचकाक से सबधित सूचना भी एकत्र की जाती है और उसे सुरक्षित रखा जाता है। सगठन अपना पत्र 'मजदूर सदेश' भी सप्ताह म दो बार प्रकाशित करता है।

इस देश मे अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक सगठन ही ऐसा श्रमिक सघ है जिसने सदस्यो के लिये आत्मीय हित लाभो की व्यवस्था हेतु गभीरता से सोचा है। अन्य श्रमिक सघ अपने कुल व्यय का बहुत कम अश ऐसी सभी योजनाओं के लिये सुरक्षित रखते है। व्यावसायिक विवादो और लाभो पर कुल व्यय के प्रतिशत वितरण की सारणी से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। श्रमिक सघ अपने कुल

व्यय का बहुत कम प्रतिशत हित लाभों के वितरण में लगाते हैं। १९५०-५१ में विधि सहायता, व्यावसायिक विवादों तथा क्षतिपूर्ति में केन्द्रीय संघों का ४.५% तथा राज्य संघों का १०.५% व्यय था। १९५८-५९ में केन्द्रीय और राज्य संघों के लिये यह बढ़कर क्रमशः ५.१६% और १२.७५% हो गया। हित लाभकारी योजनाओं पर अब भी बहुत कम व्यय किया जाता है। यह १९५०-५१ में केन्द्रीय संघों के कुल व्यय का .९% तथा राज्य संघों के कुल व्यय का .४% था जो १९५८-५९ में बढ़कर क्रमशः ४.२८% तथा ५.१०% हो गया।

सारणी ५४

व्यावसायिक विवादों और लाभों पर श्रमिक संघों के कुल व्यय का प्रतिशत वितरण

कुल व्यय का प्रतिशत	१९५८-५९
केन्द्रीय संघ	
१. विधि व्यय	३.८२
२. व्यावसायिक विवाद	१.२४
३. व्यावसायिक विवादों के फलस्वरूप श्रमिकों को हानि की क्षतिपूर्ति	०.१०
४. अन्त्येष्टि, वृद्धावस्था, बीमारी, बेरोजगारी तथा अन्य लाभ	३.५६
५. शक्षणिक, सामाजिक तथा धार्मिक लाभ	०.७२
योग	९.४४
राज्य संघ	
१. विधि व्यय	५.९२
२. व्यावसायिक विवाद	५.८९
३. व्यावसायिक विवादों के फलस्वरूप श्रमिकों की हानि की पूर्ति	०.९४
४. अन्त्येष्टि, वृद्धावस्था, बीमारी, बेरोजगारी तथा अन्य लाभ	३.०८

१	२
५ शैक्षणिक सामाजिक और आर्थिक लाभ	२०२
योग	१७८७

बहुत से संघों ने लाभों को देने के प्रयत्न किये किन्तु उन्हें किसी अधिक सीमा तक सफलता नहीं मिल पाई। उत्तरप्रदेश में १६४९–५० वर्ष के दौरान ३३० संघों में से १०८ संघों ने जिनके विषय में सूचना उपलब्ध है विभिन्न तरह के हित लाभ जैसे—बीमारी दुर्घटना बेरोजगारी या व्यष्टि एक से लेकर ८७५ रुपये सदस्यों को वितरित किये। १६५०–५१ की अवधि में उत्तरप्रदेश के १०३ संघों ने ६ ६०८ रुपये इन हित लाभों के रूप में अपने सदस्यों के बीच वितरित किये। कुछ संघों ने सहकारी स्टोर पुस्तकालय स्कूल स्वास्थ्य सहायता आदि की अपने सदस्यों के लिये व्यवस्था की। १६५७–५८ तथा १६५८–५६ में आगरा के १० संघों के वित्त के गहन अध्ययन से क्षतिपूर्ति और कल्याण पर किये गये व्यय का निम्नलिखित प्रतिरूप मिलता है। उनमें से तीन ने इन मदों पर कुछ भी व्यय नहीं किया।

औद्योगिक विवादों के लिये क्षतिपूर्ति की धनराशि एक संघ से दूसरे संघ में तथा एक ही संघ में एक वर्ष से दूसरे वर्ष में उनकी आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न है। अन्त्येष्टि क्रिया बीमारी और बेरोजगारी हित लाभों पर व्यय अधिक सामान्य है। दोनों वर्षों में छः संघों ने इस मद पर व्यय किया। एक संघ की स्थापना १६५७–५८ में की गई थी। शैक्षणिक सामाजिक तथा आर्थिक हित लाभ इतने अधिक लाभप्रिय नहीं हैं। सात संघों में से तीन ने इन पर कुछ भी व्यय नहीं किया। इन हित लाभों की व्यवस्था के लिये धन नियमित रूप से व्यय नहीं किया जाता तथा कुल व्यय में से उसका अंश बहुत कम है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश के श्रमिक संघों के क्रियाकलापों में हित लाभकारी योजनाओं की व्यवस्था का सामान्य या महत्वपूर्ण स्थान नहीं है।

सारणी ५५

चुने हुए संघों द्वारा क्षतिपूर्ति तथा कल्याण पर किया गया व्यय (रुपयों में)

१९५७-५८ तथा १९५८-५९

संघों की संख्या	कुल-व्यय		औद्योगिक विवादों के लिये क्षतिपूर्ति		अन्त्येष्टि वृद्धावस्था, बीमारी बेरोजगारी लाभ		औद्योगिक सामाजिक वार्षिक लाभ	
	१९५७-५८	१९५८-५९	१९५७-५८	१९५८-५९	१९५७-५८	१९५८-५९	१९५७-५८	१९५८-५९
१—	२६५	२७६-५०	१४२ (५७ ३६)	—	४८ (१८ १२)	४६ (२० ०१)	—	३५ ४० (१२ ३५)
२—	८१३-२०	१६२८-२०	—		३८ (४ १७)	५१५ ७४ (३१ ३६)	— —	— —
३—	३८१-५०	३७८-००	४५ (११ ८)	—	१५ (४० १)	४२ ६० (११ २२)	— —	— —
४—	७४६-५०	३२६-८७	६१-१२ (१२ ३३)	—	१३६ १२ (१८ ३३)	४२ ३७ (१२ ८५)	१० ६ (१ ३६)	— —

१	२	३	४		५	६	७	८
५—	१५५-००	३७९-००	१८ (११.६१)	—	२४.५० (१५.८०)	९० (२३.७५)	— —	३२ (८.४३)
६—	७५३-५०	७४८-००	१५२.३३ (२०.२१)	१४२.२५ (१९.१२)	१३९.६२ (१८.२३)	१४६ (१९.४१)	१२६ (१६.६१)	— —
७—	—	१०९७-००	—	—	—	३० (२.७५)	—	—

कोष्ठक में दिये गये आँकड़े कुल व्यय का प्रतिशत है।

१२

सामूहिक क्रिया तथा औद्योगिक सम्बन्ध

कर्मचारियों की ओर से सामूहिक क्रिया आवश्यक हो गई क्योंकि यह अनुभव किया गया कि कर्मचारियों की सौदाकारी शक्ति नियोजकों से बहुत कम है। श्रम विपणन और श्रम की अवस्थाओं के बारे में एक नियोजक को अच्छा ज्ञान होता है तथा उसके पास अधिक शक्ति होती है। उसमें सौदाकारी की अधिक कुशलता होती है और यही स्थिति उसके रुकने और ठहरे रहने की शक्ति के बारे में है। दूसरी ओर एक वैयक्तिक श्रमिक कमजोर होता है तथा बहुत दिनों तक अपने श्रम को संचित नहीं कर सकता। कर्मचारियों और नियोजकों की सौदाकारी शक्ति को समान स्तर पर लाने के लिए अपने श्रमिक संघों के माध्यम से श्रमिकों द्वारा सामूहिक क्रिया एक उपाय थी। यह सुझाव नहीं दिया जा रहा कि श्रमिक संघों के बिना सामूहिक क्रिया सम्भव नहीं है। वार्तालाप चलाने के लिए श्रमिक संघ आवश्यक नहीं है। बैठकों में प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं या अस्थायी समितियों की स्थापना की जा सकती है। फिर भी श्रमिक संघ सामूहिक क्रिया को लाभ और अनवरतता प्रदान करते हैं जो अन्यथा सम्भव नहीं है। केवल श्रमिक ही शिकायतें दूर करने के लिए प्रभावशाली यन्त्र और सौदाकारी प्रक्रिया की उत्पत्ति कर सकते हैं तथा समझौतों का पूरे क्षेत्र में विस्तार तथा समझौतों के स्थिर और शान्तिपूर्ण परिवर्द्धन को सुनिश्चित कर सकते हैं। किन्तु सामूहिक क्रिया सौदाकारी या समझौते के पद श्रमिक संघों के साथ सहविस्तारी नहीं हैं। उनका क्षेत्र काफी व्यापक है।

सामूहिक सौदाकारी को ठीक ठीक पारिभाषित करना बहुत कठिन है। सेवायोजन की अवस्थाओं को नियमित करने के लिए कर्मचारियों द्वारा संयुक्त कार्यवाही इससे ध्वनित होती है। इसका अर्थ है कि नियोजकों की क्रियाओं की स्वतन्त्रता पर उनके कर्मचारियों के परिप्रेक्ष्य में रोक लगाना। इन नियमनों का अनुशासन कर्मचारियों द्वारा अपनी सेवाएं बन्द कर देने की धमकी से प्राप्त होता है।

सामूहिक क्रिया में यह धारणा निहित है कि एक विशेष व्यापार-संस्था के या सभी सामान्य श्रमिकों के महत्त्वपूर्ण समानहित होते हैं जो नियोजकों के हितों से

टकराते हैं और यह भी कि मजदूरी काम के घंटे तथा काम की अवस्थाओं के निर्धारण के पीछे कोई पूर्वनिश्चित प्रक्रिया नहीं है। ये तथा इसी तरह के अन्य मामले नियोजकों और कर्मचारियों की सापेक्षिक सौदाकारी शक्ति द्वारा नियमित किये जाते है। चूँकि सौदाकारी क्षमता लचीली होती है इसलिए संयुक्त या सम्मिलित क्रिया से पर्याप्त सीमा तक सुधार किया जा सकता है।

अपने सहकर्मियों से सहायता और सहयोग प्राप्त करने की श्रमिकों की स्वतन्त्रता भी प्रभावशाली सामूहिक क्रिया को निहित मानता है। अपने हितों के प्रवर्तन और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये इच्छानुसार वे किसी भी संगठन में सम्मिलित होने के लिये स्वतन्त्र हैं। इस दिशा में कोई भी प्रतिरोध नियोजकों या राज्य तथा श्रमिक संघों द्वारा भी नहीं लगाना चाहिये। इसी प्रकार श्रमिकों को अपने प्रतिनिधियों जिन्हें उन्होंने चुना है के माध्यम से अपनी शिकायतों को अभिव्यक्त करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये। यदि वे चाहते हैं तो उन्हें इस उद्देश्य के लिये व्यावसायिक व्यक्तियों को भी नियुक्त करने का अधिकार होना चाहिये। अधिकांशतः श्रमिक अज्ञानी होते हैं उनका ज्ञान तथा उनके संसाधन नियोजकों की तुलना में काफी घटिया होते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि श्रमिकों का दृष्टिकोण उनके द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिये जिनके पास ज्ञान तथा कुशलता है ताकि नियोजकों के उत्तम संसाधनों और योग्यता का विरोध किया जा सके।

सक्षम और व्यापक सामूहिक सौदाकारी के लिये सुसंगठित श्रमिक संगठनों के अस्तित्व की पूर्ण आवश्यकता है। यदि एक सुसंगठित संगठन नहीं है जिसे जनसमूह का समर्थन मिला हो तो निर्णयों को लागू करना बहुत कठिन होगा। श्रमिक संघों की बाहुल्यता तथा श्रमिकों के सहयोग के लिये प्रयत्नशील विरोधी संगठनों की स्थिति से सामूहिक क्रिया में बाधा पड़ती है। श्रमिक संघों को पर्याप्त सशक्त होना चाहिये ताकि नियोजक संगठनों के साथ किये गये समझौतों को वे क्रियान्वित कर सकें। इसी प्रकार नियोजक संगठनों को भी पर्याप्त शक्तिशाली होना चाहिये ताकि वे नियोजकों का विश्वास प्राप्त कर सकें तथा प्रभावशाली ढंग से सभी निर्णयों को क्रियान्वित कर सकें और पूरे उद्योग के लिये शर्तों तथा अवस्थाओं को नियमित कर सकें। शक्ति में दोनों दलों को समान रूप से सन्तुलित होना चाहिये। यदि दोनों दलों की स्थिति समानता की नहीं है तो सामूहिक सौदाकारी नहीं की जा सकती। वह केवल एकपक्षीय मामला रह जाएगा। यदि एक दल दूसरे से कमजोर है तो समझौते कमजोर दल का विश्वास नहीं प्राप्त कर पाते और जब भी अवसर उपलब्ध होता है उनका उल्लंघन किया जाता है।

छोटे छोटे वर्गों को वार्तालाप में भाग लेना चाहिये। बड़े संगठन ठीक और सर्वेगरहित रूप से औद्योगिक समस्याओं पर विचार विमर्श करने में अक्षम होते हैं। यह तभी सम्भव है जब छोटे किन्तु प्रतिनिधि वर्ग द्वारा विभिन्न समस्याओं पर

नियोजक सगठनों को नियमित रूप से इन समझौतों में निहित दायित्वों को पूरा करना चाहिए। श्रमिक संघों को चाहिए कि वे अपने सदस्यों से समझौते की शर्तें मनाने तथा उनका आदर करने का आग्रह करें।

सामूहिक सौदाकारी की शक्ति के सम्बन्ध में इस व्यापक विकास के बावजूद हड़तालें और तालाबन्दी होती जाती हैं। हड़तालों की संख्या यद्यपि कम हुई है किन्तु इसकी नियमितता बहुत अधिक है जिनसे उपभोक्ता और समाज को काफी असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। आज के समय में हड़तालों का परिव्याप्त बहुत विस्तृत होता है तथा कभी कभी सम्पूर्ण उद्योग निष्क्रिय हो जाता है। समाज, अर्थव्यवस्था आश्रित होने के कारण उद्योग के किसी क्षेत्र में काम बन्द होने से, सम्पूर्ण रूप से प्रभावित होता है। सार्वजनिक हित वाले सेवाओं में हड़ताल या तालाबन्दी के कारण के परिणाम विशेष रूप से अनिष्टकारी होते हैं।

यह तर्क दिया जाता है कि श्रमिकों के हड़ताल घोषित करने के अधिकार तथा नियोजकों के तालाबन्दी के अधिकार को राज्य द्वारा नियमित किया जाना चाहिये। श्रमिकों और नियोजकों के ये अधिकार निरपेक्ष और निरंकुश नहीं रहने चाहिये। फिर भी यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि केवल कुछ विरल मामलों को छोड़कर जिनमें नियोजकों या उनके सगठनों ने आरम्भ किया हो, साधारणतया श्रमिकों के उपक्रमण पर श्रमिक संघों द्वारा हड़ताल घोषित करने का ही प्रश्न है। नियोजक सबसे तरह से सगठित होते हैं उनके पास अधिक साधन होते हैं तथा उनके प्रकार तक प्रतिस्पर्धा होती है। वे किसी को भी प्रकार न्याय करने के इच्छुक होते हैं तथा औद्योगिक विवादों में उपक्रम करके वे जाने का अवसर प्राप्त नहीं चाहते। अतः अधिकतर यह होता है कि उपक्रम श्रमिक संघों के द्वारा किया जाता है। अतः हड़ताल या तालाबन्दी की स्वतन्त्रता में नियन्त्रण लाने का वास्तविक अर्थ है कि श्रमिक संघों के हड़ताल घोषित करने के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

कुछ लोग सामूहिक सौदाकारी के अनिवार्य पंचनिर्णय द्वारा प्रतिस्थापित करना चाहते हैं। राज्य को निष्पक्ष सत्ता के रूप में उपभोक्ताओं, श्रमिक उत्पादन, समाज तथा सामाजिक न्याय के लिए श्रमिकों को हड़ताल करने से रोकना चाहिए। राज्य को निष्पक्ष अधिनिर्णायक के रूप में नियोजकों और कर्मचारियों के बीच विवादों को हल करना चाहिए तथा उसके लिए पंचनिर्णय की व्यवस्था करनी चाहिए। साधारणतया सभी जगह अव्यवस्था का उत्पन्न होना न बहुत हानिकारक परिणाम उत्पन्न करता है। सम्भवतः भारत में राज्य का हस्तक्षेप और भी अधिक आवश्यक है। अतिम श्रमिकों को हड़ताल करने के लिए किसी भी सामान्य अधिकार का परिणाम अन्य औद्योगिक लागतों पर होगा। हड़तालों में केवल सामान्य जनता को असुविधाओं ही नहीं उठानी पड़तीं, श्रमिकों को भी बेकारी और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब कभी मध्यस्थ मजदूर हड़तालों में भाग

लेते हैं तो इसकी साधारण रूप मे उपेक्षा नहीं की जा सकती और न उन्हें हम उनकी भावनाओं को अभिव्यक्त करने मे रोक सकते है। कभी कभी जनता की असुविधाओं को टाला नही जा सकता। जब भी श्रमिक संघ ... की माग करते हैं तब मद और ... जनता को जागत ... उनके ... प्रबल स्रोतो म स एक है। वास्तविक ... प्रभावशाली रूप मे एमा करने पर जनता को जो ऐसा ... दाय ... बिना विमर्श किये अपने दायित्वों की अनुभूति ही नही हो ... असुविधा होनी ही चाहिये। ... जाता है तो यदि उदाहरण के लिए गाडी ... लेना प्रारम्भ कर ...ती है और कायव हो की मा... करती ह।[1]

राज्य ... मे भी औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिये प्रयत्न कर सकता है। उन परिस्थितियो को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये जो औद्योगिक विवाद को जन्म देते है। श्रमिक जिन सामाजिक स्थितियो म रहते हैं और काय करते है उनम सुधार होना चाहिये। इसी प्रकार काय और स्तर की अवस्थाओं मे सुधार स औद्योगिक सबध सुदृढ हो सकेंगे। यदि श्रमिको को उचित मान्यता दी जाय तो वे स्वय के लिये सामाजिक न्याय प्राप्त कर लेगे। सयुक्त विचार विमर्श और विवाचन तन्त्र की स्थापना के लिये अधिनियम भी पारित किये जा सकते हैं। इन सभी उपायो से औद्योगिक विवादो की सख्या कम हो जायगी तथा औद्योगिक साम जस्य के लिए अनुकूल स्थितियां पैदा हो जाएगी।

राज्य को इससे अधिक अधिकार नही ग्रहण करने चाहिये। औद्योगिक अशान्ति हमारी आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था म किन्ही आधारभूत दोषो का सकेत है। जबतक कि मूल परिवर्तन नही किये जाते केवल हडतालो पर रोक लगा देने से हम अपने ... को प्राप्त करने म सहायता नही मिलेगी किन्तु इससे विरोधी ... म उत्पन्न भी हो सकता है तथा आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण स अत्यधिक अवाछनीय रूपो म जनता के एक बडे समूह द्वारा विरोध भी प्रकट किया जा सकता है। ये परिणाम कुछ इन रूपो म प्रगट हो सकते है जैसे—श्रम आवर्त मे वृद्धि अधिक अनुपस्थिति मदगति तथा कम क्षमता। यह कहना अतिशयोक्ति नही होगा कि औद्योगिक अशाति की समस्या म लगभग सामाजिक सगठन की सभी प्रमुख समस्याएँ प्रतिबिम्बित होती ह तथा अन्तिम विश्लेषण म उपचार हमारे सामाजिक सगठन न केवल इसके आर्थिक पक्ष म किन्तु इसकी राजनैतिक सरचना और हमारी वयक्तिक तथा सामाजिक नैतिकता म भी के परिवर्तन म सन्निहित पाये जाएग।[2]

---

१ लास्की नाल्स द्वारा सदर्भित स्टाइक्स, ए स्टडी इन इडस्टियल कन्फिलक्टस पृ० २६२–६४।

२ नाल्स स्टाइक्स ए स्टडी इन इडस्टियल कन्फिलक्टस, पृ० २१२।

भारत में सामूहिक सौदाकारी

सामूहिक सौदाकारी की रीति को भारत में श्रमिक संघों ने व्यापक रूप से अपनाया है। संयुक्त सामूहिक क्रिया के माध्यम से श्रमिकों ने अपनी मांगें प्रस्तुत की हैं और सेवा की शर्तों और अवस्थाओं को निश्चित करने का प्रयत्न किया है। अन्य देशों के श्रमिकों की तरह भारत के श्रमिक भी बहुत पहले वैयक्तिक सौदाकारी के दोषों और सामूहिक सौदाकारी के लाभों को समझ गये थे। आधुनिक औद्योगिक वातावरण में अनुरूप वैयक्तिक सौदाकारी अप्रभावशाली, अनुपयुक्त तथा अपर्याप्त है। वे अच्छी रहने और काम करने की अवस्थाएं प्राप्त करना चाहते थे तो उनके स्थान पर सामूहिक क्रिया, सामूहिक एकता तथा सामूहिकता का आश्रय लेना था।

भारतीय श्रमिक संघों ने इस रीति का प्रयोग अनियोजित और सांयोगिक रूप से किया है। उन्होंने न तो सामूहिक सौदाकारी को विधिपूर्वक विकसित किया है और न उसकी प्रविधि और प्रक्रियाओं का प्रयुक्त ही किया। यह पूरी तरह से अनुभव नहीं किया गया कि औद्योगिक सुव्यवस्था की स्थापना और विकास के लिये यह महत्वपूर्ण है। भूतकाल में शायद ही कभी सामूहिक सौदाकारी का परिणाम सामूहिक समझौता के रूप में हुआ था। लेकिन हाल के वर्षों में इस ओर निश्चित प्रगति हुई है। भारत और विदेशों के संघों द्वारा सामूहिक सौदाकारी के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि इसकी प्रवृत्ति, रूप प्रविधियां तथा परिणाम एक देश से दूसरे देश में भिन्न रहे हैं। अमरीका तथा अन्य अत्यधिक औद्योगीकृत देशों में औद्योगिक विवादों को सुलझाने और स्वस्थ औद्योगिक संबंधों के विकास के लिये इस रीति के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। श्रम और प्रबन्ध के बीच अच्छे संबंध कायम रखने के लिये यह प्रभावकारी है। शान्तिपूर्ण औद्योगिक संबंधों के लिये आवश्यक है कि सौदाकारी करने वाले दल सशक्त हों तथा नियोजित रूप से सामूहिक सौदाकारी करें। बहुत से देशों में सामूहिक सौदाकारी को इतना अधिक महत्व दिया जाता है कि व्यवहार में इस कारण राज्य-विनियमन और राज्य हस्तक्षेप निष्क्रिय हो गया है। दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में सामूहिक सौदाकारी को औद्योगिक संबंधों को नियमित करने की रीति के रूप में राज्य या नियोजक और कर्मचारियों द्वारा यथावत् मान्यता नहीं दी गई है। राज्य विनियमन तथा राज्य हस्तक्षेप पर अत्यधिक बल देने और विश्वास करने के कारण विवादों के ऐच्छिक निपटारे और उद्योग का स्वविनियमन तथा स्वशासन उपेक्षित हो गया है। नियोजकों और कर्मचारियों में सम्मान करने की भावना का अभाव है तथा वे अवसर तथा दायित्वपूर्ण तरीके से कार्य नहीं कर पाते। दूसरे औद्योगिक प्रगतिशील देशों के अपने सहयोगियों की तरह वे उद्योग और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों की ओर पूर्णतया सजग नहीं हैं। दोनों दलों को यह अनुभव करना है कि वे एक ही जहाज के दो नाविक हैं तथा औद्योगिक

तूफानों और कठिनाइयों में से होकर संयुक्त रूप में और कुशलता पूर्वक जहाज को निकाल लाने में ही दोनों की मुक्ति है। कंधे से कंधा मिलाकर काम करना उन्हें सीखना चाहिये।

कठिनाई यह है कि हमारे देश में नियोजक और कर्मचारी वार्ता द्वारा औद्योगिक विवादों को सुलझाने की अपेक्षा हड़ताल और तालाबन्दी पर अधिक विश्वास करते हैं। श्रमिक संघ नेताओं ने प्रायः ही शांतिपूर्ण नीतियों, जैसे सीधी वार्ता, ऐच्छिक समाधान और ऐच्छिक पंचनिर्णय के द्वारा सामूहिक समझौता करने के लिये गम्भीर और निश्छल प्रयत्न किये बिना हड़ताल की कार्यवाही की है। नियोजकों के बारे में भी ऐसा ही है। दोनों दलों ने औद्योगिक युद्धक्रम के दुष्परिणामों का अनुभव नहीं किया है। बार बार हड़तालों और तालाबन्दियों से विक्षिप्तता और असहायता को बढ़ावा मिलता है।

हड़ताल करने का अधिकार एक मूल अधिकार है। इसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये। पाश्चात्य देशों में श्रमिक संघों को हड़ताल अधिकार प्राप्त है हड़ताल सामूहिक सौदाकारी हेतु अनिवार्य महत्वपूर्ण है। फिर भी इन देशों में श्रमिक संघों ने हड़ताल-अस्त्र का सीमित प्रयोग किया है। नियोजकों और कर्मचारियों दोनों ने अनुभव किया है कि हड़ताल और तालाबन्दी से न ही औद्योगिक विवाद निबटाये जा सकते हैं और न औद्योगिक शांति स्थापित की जा सकती है। हड़ताल और तालाबन्दी का तभी सहारा लेना चाहिये जब औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिये शांतिपूर्ण विधियों द्वारा प्रयत्न किये जा चुके हों और इनमें असफलता मिली हो। उन्होंने सीख लिया है कि यह अधिकार यद्यपि बहुत शक्तिशाली है खतरनाक और जोखिमपूर्ण है तथा इसलिये बहुत सोच समझकर कभी कभार केवल अन्तिम अस्त्र के रूप में इसका प्रयोग करना चाहिये। सामूहिक सौदाकारी में हड़ताल अस्त्र के प्रयोग के स्थान पर अत्यधिक विश्वास वार्तालापों का दिया जाता है। उद्योगों ने अपने संयुक्त विचार विमर्श तन्त्रों का विकास किया है। इसके विपरीत भारत में काफी समय बाद तक इकाई क्षेत्रीय या औद्योगिक स्तर पर संयुक्त विचार विमर्श तन्त्र की स्थापना के लिये कोई भी निश्छल और सम्मिलित प्रयत्न नहीं किये गये। श्रमिक संघियों ने झगड़ों को सुलझाने के लिये बार बार हड़ताल की है जबकि उन्हें शांतिपूर्ण रीतियों द्वारा सरलता से सुलझाया जा सकता था। फिर भी अब हड़तालों पर अब कम भार दिया जाने लगा है और हम आशा करते हैं कि आने वाले समय में स्थिति शनैः-शनैः स्थायी रूप से सुधर जायगी। भूतकाल में सामूहिक सौदाकारी की उपेक्षा के कारणों तथा गत वर्षों में किये गये प्रयत्नों तथा भविष्य की सम्भावनाओं का विवेचन हमने नीचे किया है।

प्रारम्भिक वर्षों में सामूहिक सौदाकारी की उपेक्षा का उत्तरदायित्व श्रमिक संघों, नियोक्ताओं, राजनैतिक दलों तथा राज्य पर है। दुर्भाग्यवश हमारे श्रमिक संघ

यह स्तर नहीं प्राप्त कर सके जो सामूहिक सौदाकारी की सफलता के लिए आवश्यक है। वस्तुतः ये संघ प्रामाणिक श्रमिक संघ नहीं हैं और न वे वास्तविक स्थिति में कार्य करते हैं। अनेक संस्थाओं ने दिन प्रति दिन की शिकायतों को लेकर आन्दोलन के लिए उत्थान किसी नियमित तंत्र का विकास नहीं किया। यह शिकायतें संचित होती जाती हैं और असन्तोष बढ़ता जाता है। एक सीमा के बाद यह असहनीय हो जाता है और तब सहसा उसकी सक्रियात्मक अभिव्यक्ति हड़ताल के रूप में होती है। श्रमिक क्षुब्ध और परेशान होकर अपना धैर्य खो बैठते हैं। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत वार्तालाप का संचालन उचित रूप में नहीं हो सकता। श्रमिक हड़ताल के लिए तैयार रहते हैं। वे विचार विमर्श समाप्त करने और हड़ताल की कार्यवाही को आरम्भ करने की मांग करते हैं। दूसरी ओर यदि एक नियमित तंत्र है तो जब भी शिकायतें पैदा हों उन्हें दूर किया जा सकता है। इसका श्रमिकों पर प्रभावकर प्रभाव भी पड़ेगा और वे शीघ्र ही शिकायतों को निपटाने के लिए विचार विमर्श का मूल्य समझने लगेंगे तथा हड़ताल की अपेक्षा संयुक्त विचार विमर्श पर दृढ़ आस्था और विश्वास होगा।

श्रमिक संघों की बहुलता तथा परिणामस्वरूप उनके बीच स्पर्धा ने भी सामूहिक सौदाकारी को बाधित किया है। यह सम्भव है कि श्रमिकों का एक वर्ग किसी भी श्रमिक संघ का सदस्य न हो। दूसरे श्रमिक विरोधी श्रमिक संघों के सदस्य हो सकते हैं जिनमें से प्रत्येक कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकता है। इसके साथ इन नियोजक तक को हतबुद्धि कर देते जो श्रमिक संघों से सहानुभूति रखते हों। वह नहीं समझ सकेंगे कि इस किस संघ के साथ बात करनी चाहिए। ऐसे उदाहरण हैं जहाँ केवल एक श्रमिक संघ के साथ व्यवहार करने के नियोजक के निर्णय पर श्रमिक समस्यायें पैदा हो गई हैं। स्वभावतः नियोजक संघों के साथ समझौता करने में झिझकते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि विरोधी संघ उसका विरोध करेंगे तथा नई मांगें प्रस्तुत करेंगे। अधिकांश नियोजक, जो अन्यथा भी श्रमिक संघों के साथ व्यवहार करने के लिए इच्छुक नहीं होते श्रमिक संघों के बीच इस स्पर्धा को श्रमिक संघ प्रतिनिधियों से बातचीत करने से इन्कार कर देने के लिये, बहाने के रूप में प्रयोग करते हैं।

श्रमिक संघ नेतृत्व भी कमजोर है। कभी-कभी अनावश्यक और काल्पनिक शिकायतें प्रस्तुत की जाती हैं। नेताओं में श्रमिकों को यह बताने का साहस नहीं होता कि वे गलती पर हैं जबकि वे स्वयं समझते हैं कि श्रमिक गलती पर हैं। वे श्रमिकों के बीच अपनी लोकप्रियता को बनाए रखना चाहते हैं। जब भी कभी कोई शिकायत उनके सामने आती है वे उसके लिए नियोजकों को दोषी ठहराते हैं। श्रमिकों की एक निश्चित धारणा बन जाती है कि उनकी गरीबी, कठिनाई और उत्पीड़न के लिए मुख्यतया नियोजक ही उत्तरदायी हैं। उत्तरदायित्व का उचित रूप में आंकलन और स्थितियों को उनके उचित परिप्रेक्ष्य में रखने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता।

ऐसे समय भी आते हैं जब श्रमिक अपनी माग पर डटे होते हैं तब उन्हें समझाने अथवा उन पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता होती है।

नियोजक श्रमिक संघों के साथ सामूहिक समझौता करने में हिचकते हैं क्योंकि उन्हें विश्वास नहीं होता कि संघ श्रमिकों को अपनी बात मनवाने में समर्थ हो सकेंगे। श्रमिक समझौते को तभी तक मानेंगे जबतक वे उसे उपयोगी पायेंगे अन्यथा वे बेशरमी के साथ उसका उल्लंघन करने लगेंगे। संघ के विरुद्ध समझौता भंग करने के लिये की गई कोई भी कार्यवाही केवल नियोजक और कर्मचारियों के बीच के सम्बन्धों को तीखा बना देगी। श्री एस० पी० जैन ने अखिल भारतीय औद्योगिक नियोजक संगठन के जुलाई १९५२ में आयोजित १९वें वार्षिक अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि यदि औद्योगिक सम्बन्धों के पारस्परिक नियमन को सफलतापूर्वक कार्य करना है तो श्रमिकों के जन समूह का यह समझना है कि दायित्वों के साथ ही अधिकारों की स्थिति है। श्रमिक नेताओं का जो इस देश में बहुधा श्रमिक श्रेणियों के बजाय बाहर से आते हैं श्रमिकों को नेतृत्व और निर्देशन प्रदान करने में बहुत बड़ा दायित्व है जब वे उनका राजनैतिक उद्देश्यों के लिए शोषण करते हैं। उन्होंने आगे भी कहा समझौता की क्या पवित्रता है यदि उनका पालन न किया जाय। इस सबंध में मेरा व्यक्तिगत अनुभव दुःखद है क्योंकि मैंने पाया है कि श्रमिक संघों और उनके नेताओं का दृष्टिकोण उत्साहजनक नहीं है। समझौते किये जाते हैं जब वे उनके अनुरूप होते हैं और जब दूसरे मामले उभर आते हैं तब उन्हें हवा में गेंद के समान उछाल दिया जाता है और जबतक यह दृष्टिकोण रहता है समझौते का पालन नहीं किया जाता। मुझे भय है कि समझौता और परम्पराओं को विकसित करने का कोई भी प्रयत्न असफल और अव्यावहारिक होगा। यह भी सही है कि बहुत से भारतीय नियोजकों ने आज भी अपनी संघ विरोधी नीति का त्याग नहीं किया। वे स्वयं विश्वास नहीं कर पाते कि श्रमिक संघता स्थायी है तथा प्रत्येक उद्योग का एक सामाजिक उद्देश्य है और उनका संचालन केवल निजी लाभों और वैयक्तिक हितों के लिये नहीं करना चाहिये। श्रमिक संघों के साथ वे समान स्तर पर व्यवहार नहीं करना चाहते। अधिकतर वे उन्हें एक आवश्यक बुराई के रूप में समझते हैं तथा प्रत्येक संभव अवसर की ताक में रहते हैं जिसमें कि उनसे छुटकारा पाया जा सके।

बाहरी नेतृत्व की उपस्थिति विशेषकर उनका जो वर्ग संघर्ष में विश्वास रखते हैं हड़तालों पर विश्वास तथा उन पर अधिक जोर देने के लिये कम उत्तरदायी नहीं है। बाहरी नेताओं के पास समय धैर्य तथा उद्योग के ज्ञान का अभाव होता है फलस्वरूप वे अन्य देशों के श्रमिक संघों द्वारा विकसित विस्तृत प्रक्रिया को न समझ पाते हैं और न उसका अनुसरण कर पाते हैं। सामान्य रूप से बिना किसी विशेष माग के श्रमिक संघ नेता हड़ताल की घोषणा कर देते हैं। एक बार हड़ताल की

घोषणा कर दी गई या फिर जल्दी जल्दी माँग भी तैयार कर ली जाती है। यहाँ तक कि ये माँगें भी नेतागण और उनकी समझ है। इन माँगों को तैयार करने में श्रमिकों का कोई हाथ नहीं होता है। श्रमिक संघ नेता माँगों के औचित्य, व्यावहारिकता अथवा उन्हें पूरा करने की नियोजकों की क्षमता के बारे में शायद ही कभी सोचते हैं। कभी कभी ऐसी अव्यावहारिक माँगें प्रस्तुत की जाती हैं कि नियोजकों के इच्छुक होने पर भी उन पर समझौता असम्भव हो जाता है।

स्वतन्त्रता-पूर्व काल में श्रमिक आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन से अत्यधिक प्रभावित था। उसकी छत्रछाया में ही वर्तमान में भारतीय श्रमिक का ऐसा स्वभाव बन गया है कि वार्ता के स्थान पर हड़ताल पर ही अधिक विश्वास प्रकट किया जाता है। असहयोग आन्दोलन और अन्य प्रकार के आन्दोलन के कारण भी श्रमिक आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ था। जन समूहों में बताया गया था कि वे अपना साहस बनाये रखें तथा सभी प्रकार के अन्यायों के साथ अहिंसात्मक रूप से असहयोग करें। श्रमिक वर्गों से सत्याग्रह और सहयोग की विशेष अपील की गई थी। इससे यह आशा रखना स्वाभाविक था कि उसका आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र पर भी प्रभाव पड़ेगा। यहाँ तक कि आज भी श्रमिक संघ नेता राजनीतिक दलों से सम्बद्ध होते हैं तथा बहुत सी हड़तालों के पीछे औद्योगिक हितों के बजाय राजनीतिक हित होते हैं। विरोधी दल जो सरकार को अविश्वसनीय ठहराने के इच्छुक रहते हैं, प्रायः अनौद्योगिक विवादों में भाग लेते हैं। अभिनवीकरण के प्रश्न पर १६५५ में कानपुर की कपड़ा मिलों में ८० दिनों तक चली, श्रमिक और अनिश्चित कार्यवाही का अच्छा प्रमाण है। इसी प्रकार के आरोप भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल के समय लगाये गये थे। भारत में औद्योगिक विवादों के कारणों के विश्लेषण से पता चलता है कि काफी संख्या में आर्थिक कारण अधिकांशतः प्रत्येक विवाद में सन्निहित रहते हैं। उनकी विविधता तथा गुरुत्व मामलों से उनकी असम्बद्धता पर आश्रित होता है। श्रमिक अज्ञानी और अशिक्षित होते हैं। वे केवल अस्पष्ट रूप से अनुमान कर पाते हैं कि हड़ताल का क्या परिणाम होगा। वे प्रायः अनुत्तरदायी नेताओं जो उनके नियन्त्रण से बाहर होते हैं के बीच के लिए कुछ नहीं कर पाते। राजनैतिक नेतृत्व के प्रभाव के अन्तर्गत वे भी असहिष्णुता, भय तथा असहयोग के शिकार होते हैं। इन सब कारणों से एक ऐसे वातावरण की सृष्टि हो गई है जिसमें किसी भी प्रश्न पर बिना शान्तिपूर्ण रीतियों द्वारा उसे सुलझाने का गम्भीर प्रयत्न किये श्रमिक हड़ताल करने के लिये तैयार रहते हैं। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारे श्रमिक हड़ताल के पक्ष में बात करने के लिये आसानी से सहमत हो जाते हैं।

जब तक नियोजक और कर्मचारी पारस्परिक रूप से मान्य समझौता करने के लिए इच्छुक न हों, सामूहिक सौदाकारी सफल नहीं हो सकती है। इसका पूर्व

मान्यता है कि दोनों पक्ष सेवा की शर्तों पर विचार विमर्श करने के लिये तैयार हैं। इससे श्रमिकों के इस अधिकार की मान्यता भी ध्वनित होती है कि वे अपना दृष्टिकोण को सगठनों तथा उनके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे देश में नियोजकों ने अभी तक अपने कर्मचारियों के इस अधिकार को मान्यता नहीं दी है कि वे संघों का सगठन करें और किसी सामूहिक समझौते पर पहुँचें। इसी कारण हमारे देश में कुछेक उद्योगों को छोड़कर सामूहिक सौदाकारी तन्त्र का अभाव है। केवल कुछ ही सामूहिक समझौते हैं और राष्ट्रीय समझौते तो एक भी नहीं हैं।

नियोजक श्रमिकों के साथ समानता के आधार पर व्यवहार करने के लिये अनिच्छुक रहते हैं। श्रमिक संघों को नियोजकों द्वारा मान्यता प्रदान नहीं की गई और उन्होंने श्रमिकों के प्रतिनिधियों से मिलने तथा उनके साथ विचार विमर्श करने से मना किया। फिर भी यदि उन्हें विवश होकर ऐसा करना पड़ा तो उन्होंने वे तरीके खोज निकाले जिनसे प्रामाणिक श्रमिक संघों की कार्य प्रणाली को ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया जाय। उन्होंने शिकायतों को इकट्ठा होने दिया और उन पर तभी विचार करना प्रारम्भ किया जब स्थिति असहनीय हो गई तथा हड़ताल के लक्षण स्पष्ट दीखने लगे। उन्होंने आज भी इस तथ्य से समाधान नहीं किया है कि आधुनिक आर्थिक जीवन में श्रमिक संघों का एक स्थायी स्थान है तथा वे न केवल अपने सदस्यों के जीवन और कार्य की अवस्थाओं का सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेंगे बल्कि उद्योग और समुदाय के विस्तृत हितों के लिये औद्योगिक शांति बनाये रखने और औद्योगिक उत्पादन और कुशलता में बढ़ोत्तरी करने में सहायक होंगे। उन्होंने स्थायी औद्योगिक शांति की कल्पना नहीं की है जिसका निर्माण सामूहिक सौदाकारी और सामूहिक समझौतों द्वारा ही किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में हमें ध्यान रखना चाहिए कि भारतीय उद्योग के पूर्व उद्यकर्ता विदेशी थे। वे लोगों के रीति रिवाजों तथा आदतों में भलीभाँति परिचित नहीं थे। वे विजेता के रूप में जातीय श्रेष्ठता का विश्वास लेकर आये थे। ऐसी स्थिति में, कैसे एक विजेता विजित लोगों के साथ एक मेज पर बैठकर वार्ता कर सकता था? वे शासक और शासित में भेद बनाये रखना चाहते थे। विदेशी नियोजक पार्थक्य और अनन्यता के दृष्टिकोण को छोड़ना नहीं चाहते थे वे आदेशों का पूर्ण पालन चाहते थे न कि बराबर वालों की तरह वार्ता करना। अपने श्रमिकों के साथ वे मोल भाव करने के लिये तैयार नहीं थे। धीरे धीरे उद्योग भारतीय नियोजकों के हाथ आते गये किन्तु उन्होंने उन्हीं परम्पराओं का अनुसरण किया और ब्रिटिश सरकार की संरक्षता में पार्थक्यवादी दृष्टिकोण का अनुलम्बन करते रहे। उनके पास कोई सामाजिक उद्देश्य नहीं था तथा उनके कार्य पूर्णतया वैयक्तिक लाभ भावनाओं से प्रेरित होते थे। उनमें से बहुत से श्रमिकों के साथ उचित व्यवहार करने के लिए तैयार

नहीं थे। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्थिति बदल रही है। स्वतन्त्र भारत में अपनी नई जिम्मेदारियों के प्रति नियोजक धीरे धीरे सचेत होते जा रहे हैं। परिवर्तित वातावरण में उत्तरोत्तर भिन्न तथा देश की नियोजित आर्थिक व्यवस्था में अपनी नई भूमिका के निवाह के प्रति चेतन्य हो रहे हैं।

देश में सामूहिक सौदाकारी की धीमी प्रगति का कारण राज्य की नीति भी रही है। उद्योगों की अपनी आन्तरिक व्यवस्था ठीक करने के लिये संयुक्त विचार विमर्श तन्त्र की स्थापना में कोई भी स्वच्छिन्न सद्भावी और दीर्घकालिक सहायता हेतु प्रयत्न नहीं किया गया। श्रम प्रबंध संबंधों को जो बिना निश्चित लक्ष्य और उद्देश्यों के भटकते रहे नियमित करने के लिये कोई स्पष्ट सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किये गये। सामूहिक सौदाकारी हेतु दोनों दलों को आपस में मिलाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किये गये। संयुक्त विचार विमर्श तन्त्र की स्थापना नहीं की गई। प्रारम्भ में राज्य ने श्रम प्रबंध संबंधों को नियमित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया तथा दोनों पक्षों को स्वतन्त्र छोड़ दिया गया। चूंकि श्रमिक संगठित नहीं थे इसलिए नियोजकों के साथ प्रभावशाली रूप से सौदाकारी करने के लिये संघों का अभाव था। उन्हें शोषित किया जाता था। श्रमिक संघ आन्दोलन देश में काफी देर से प्रारम्भ हुआ। और बिना सशक्त श्रमिक संघों के सामूहिक सौदाकारी संभव ही नहीं थी। राज्य ने भी सशक्त श्रमिक संघों के प्रवर्तन के लिये कोई सहायता नहीं की। सरकार केवल १९२६ में व्यवसाय संघ अधिनियम पारित करके संतुष्ट हो गई। यहाँ तक कि श्रमिक संघों की मान्यता के लिये कोई व्यवस्था भी नहीं की गई। बाद में जब राज्य द्वारा हस्तक्षेप करने का निर्णय किया गया तो विवादों को सुलझाने के लिये दलों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले शान्तिपूर्ण और एच्छिक तरीकों के स्थान पर अनिवार्य पंचनिर्णय को अत्यधिक महत्व दिया गया। दलों पर किसी प्रकार का प्रभावशाली दबाव डालने के लिये जनमत भी कमजोर और अज्ञानी था। परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों ने स्व विश्वास खो दिया और अधिकाधिक अपनी शिकायतों को दूर करने के लिये राज्य की सहायता पर निर्भर रहने लगे। सरकार को श्रम मन्त्रालय के माध्यम से एक निश्चित और रचनात्मक भूमिका का निर्वाह करना है। कम से कम संभव समय में उन्हें सामूहिक सौदाकारी की सफलता के लिये उचित वातावरण का निर्माण करना है। उन्हें श्रम सम्बन्धों की समस्याओं के प्रत्येक पक्ष को समझाना है तथा सन्निहित विभिन्न तथ्यों का धैर्यपूर्वक और सहानुभूतिक ढंग से विश्लेषण करना है।

राज्य का कार्य क्षेत्र धीरे धीरे विस्तृत होता जा रहा है। आज राज्य का कर्तव्य केवल शासन और नियन्त्रण करना ही नहीं बल्कि औद्योगिक उद्यमों का उपक्रमण करना भी है। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है तथा अधिक से अधिक उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में आते जा रहे हैं। आज राज्य सबसे

बडा नियोजक है। यद्यपि कुछ उद्योग निजी क्षेत्र को बाट गये है किन्तु वे भी राज्य के नियन्त्रण और नियमन के अधीन है और उन्हे निर्धारित भूमिका का ही निर्वाह करना पडता है। राज्य को एक आदर्श नियोजक होना चाहिये तथा सामूहिक सौदाकारी के क्षेत्र म उस निजी क्षेत्र के नियोजको के सम्मुख एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये। उपदेश देने की अपेक्षा उदाहरण प्रस्तुत करना श्रेयस्कर है। यदि सरकारी प्रतिष्ठान इस दिशा म आगे बढे तो निजी प्रतिष्ठान निश्चय ही उनका अनुसरण करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय अन्य केन्द्रीय मन्त्रालयों को प्रेरित करने म सफल नही हो सका है। भूतपूर्व श्रम मन्त्री श्री वी० वी० गिरि ने अगस्त १९५४ म त्याग पत्र दे दिया। यद्यपि उनके त्याग पत्र का कारण बैंक निर्णय (बैंक ऐवार्ड) म संशोधन था किन्तु वास्तविक मामला श्रम नीति का था। श्री गिरि द्वारा प्रस्तावित औद्योगिक संबंध विधेयक के अधिनियमन म विलम्ब का कारण यह बताया जाता था कि भारत सरकार के सेवायुक्ति करने वाले मन्त्रालय इसके विरोधी थे क्योंकि वे अपने श्रमिको को सामूहिक सौदाकारी का अधिकार नही देना चाहते थे और न अधिनियम के क्षेत्र के अन्तर्गत स्वयं को लाना चाहते थे। वे अपने वित्त प्रतिरक्षा तथा रेलवे के सहयोगियो के साथ समोदित निष्कर्षों पर पहुँचने म कठिनाई का अनुभव कर रहे थे। प्रत्येक सेवायुक्ति करने वाले मन्त्रालयो के बीच यह भावना बलवती होती जा रही है कि वे अपनी एक पृथक श्रम नीति और माग रखे। मन्त्रालयो द्वारा इस बात पर जोर दिये जाने से कि उनके अधीन औद्योगिक संस्थानो को श्रम अधिनियमो के क्षेत्र से बाहर रखा जाय उन्हे अपनी तीव्र इच्छा कि सरकार का आदर्श नियोजक होना चाहिये की उपलब्धि म कठिनाई का सामना करना पड रहा था।

किन्तु भारत सरकार के सेवायुक्ति करने वाले मन्त्रालयो का सर्वाधिक विक्षोभकारी लक्षण उनकी उत्साहहीन अभिवृत्ति है। श्री गिरि के त्याग पत्र से श्रम नीति की विक्षोभकारी विशेषतायें स्पष्ट हो जाती है। यदि सेवायुक्ति करने वाले मन्त्रालय अपने कर्मचारियो का सामूहिक सौदाकारी का अधिकार देने के लिये अनिच्छुक है तो यह आशा करना कि निजी क्षेत्र के नियोजक सामूहिक सौदाकारी को गम्भीरता पूर्वक स्वीकार करेंगे व्यर्थ होगा। सरकारी प्रतिष्ठानो म राज्य को विचार विमर्श और सामूहिक सौदाकारी को प्रवर्तित और प्रोत्साहित करना चाहिये। सरकारी प्रवक्ताओ द्वारा उच्च पादपीठ से सामूहिक सौदाकारी के लाभो के बारे म मौखिक सहानुभूति दिखाने और उपदेश देने से विवादो के आन्तरिक और ऐच्छिक निपटारे के लक्ष्य को प्राप्त करने म सहायता नही मिल सकेगी। यदि उपदेश व्यवहार द्वारा अनुसरित नही किये जाते है तो नियोजक और कर्मचारियो दोनो का विश्वास इस नई रीति के प्रति जिसकी सफलता सभी चाहते है कम हो जायगा। सामूहिक सौदाकारी के प्रति राज्य द्वारा एक संयुक्त मार्ग अपनाने की आवश्यकता है। केन्द्रीय

मरकार के सेवायुक्ति करने वाले मत्रालयों को केन्द्रीय श्रम मत्रालय द्वारा प्रतिपादित श्रम नीति का अवश्य पालन करना चाहिये। राज्य सरकारो को भी केन्द्रीय सरकार की सामूहिक सौदाकारी की नीति को स्वीकार करने के लिये प्रेरित करना पडेगा ताकि वे अपने सबधित क्षेत्रो के राज्य और निजी प्रतिष्ठानो मे भी इसे प्रवर्तित और प्रोत्साहित कर सके।

युद्धापरान्त और स्वतत्रता प्राप्ति के बाद के काल मे उस स्थिति की त्रुटियो पर जिसमे सामूहिक सौदाकारी को बहुत कम महत्त्व दिया गया था प्रकाश डाला गया। इस काल मे प्रत्येक बार औद्योगिक शाति भग हुई। सारे देश मे श्रृखला-बद्ध रूप मे हडताले हुई जिनसे केवल उत्पादन मे ही ह्रास नही हुआ बल्कि असतोष, विक्षिप्तता तथा बिगडते हुए औद्योगिक सबधो मे काफी वृद्धि हो गई। हडतालो से जो क्षति हुई तथा समाज को जो हानियां और असुविधायें सहनी पडी उनके बारे मे औद्योगिक विवादो सनिहित श्रमिको और काय दिनो की क्षति के आकडो से जाना जा सकता है।

सरकार ने देर से सयुक्त विचार विमश के महत्त्व का अनुभव किया। सविधिक आधार पर ऐसे सयुक्त विचार विमश की व्यवस्था के लिये विधानो का अधिनियमन किया गया। बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, १६४६ के अतगत नियोजक और कमचारियो के बीच सबधो को प्रभावित करने वाले सभी मामलो पर विचार विमश करने के लिये सयुक्त समितियो के स्थापना की व्यवस्था है जिनमे नियोजक और कमचारियो के समान सख्या मे प्रतिनिधि होते है। सभी सस्थानो जिनमे १०० या अधिक श्रमिक काय करते हैं मे काय समितियो की स्थापना के लिये औद्योगिक विवाद अधिनियम १६४७ मे व्यवस्था की गई है। सम्बधित सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह इच्छानुसार इन व्यवस्थाओ के अतगत किसी भी प्रतिष्ठान को सम्मिलित कर ले। काय समितियो मे भी नियोजक और कमचारियो के बराबर प्रतिनिधि होते हैं। इन व्यवस्थाओ के पीछे उद्देश्य यह था कि नियोजक और कमचारियो के बीच सबध अच्छे बने रहे। समाधान और न्यायाधिकरण तत्र की भी इन विधानो द्वारा व्यवस्था की गई है।

दूसरे देशो मे एच्छिक प्रयत्न द्वारा तथा नियोजक और कमचारियो की सयुक्त विचार विमश की अत्यावश्यकता की अनुभूति के परिणामस्वरूप जो कुछ उपलब्ध किया गया वही हमारे देश मे साविधिक उपायो तथा अनिवायता द्वारा उपलब्ध करने के लिये प्रयत्न किये गये। भारत मे सयुक्त विचार विमश पद्धति की काय प्रणाली से पता चलता है कि लक्ष्य की प्राप्ति नही हो पाई है। काय समितियो और इसी प्रकार के अन्य सयुक्त विचार विमर्शों की असफलता के अनेक कारण हैं। भारत मे काय समितियो का काय-क्षेत्र असतोषजनक अनावश्यक रूप से सकुचित तथा अस्पष्ट रूप मे परिभाषित है। काय समितियो और श्रमिक सघो के बीच

सुपरिभाषित संबंधों का अभाव एक अन्य मुख्य कारण है। नियोजकों ने प्राय: कार्य समितियों का श्रमिक संघों का स्थानापन्न या विरोधी के रूप में उपयोग करने का प्रयत्न किया है। सशक्त और स्थिर श्रमिक संघों का अभाव भी ऐसी संयुक्त विचार विमर्श पद्धति की सफलता के मार्ग में एक बाधा है।

ऐसी सभी योजनाओं के प्रति नियोजकों की अभिवृत्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण रहा है। उन्होंने अधिनियमों का केवल शाब्दिक अर्थों में पालन किया है जब कि ऐसी व्यवस्थाओं के प्रति उनमें भावनात्मक आस्था का अभाव रहा है। नियोजक श्रमिकों और उनके प्रतिनिधियों को अपने समान नहीं समझते और इसीलिए उन्हें आवश्यक तथ्य और सूचना से अवगत नहीं कराते। वे अपनी बात स्पष्ट रूप से रखने को तैयार नहीं रहते हैं। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संगठन ने विचार व्यक्त किया कि इन समितियों की स्थापना में सरकार का उद्देश्य था कि दोनों दलों को एक दूसरे के निकट लाया जाय तथा औद्योगिक सम्बन्धों में लोकतन्त्रीयता स्थापित की जाय। लेकिन आधी दर्जन मिलों को छोड़कर अन्य मिलों ने मुश्किल से समितियों को वास्तविक परीक्षण का अवसर दिया है। उन्होंने इन्हें अधिनियम द्वारा जबरदस्ती थोपी गई वस्तु के रूप में समझा है तथा दिखाऊ रीति से अपने दायित्व पूरे किये हैं। हम यह इच्छा प्रगट करते हैं आगामी वर्ष में नियोजक संयुक्त समितियों के कार्यों को गम्भीरतापूर्वक लेंगे तथा उचित कार्य करेंगे। बदले में श्रमिक प्रतिकार अवश्य करेंगे।[1]

ऐसे सभी प्रयत्नों की सफलता नियोजक और कर्मचारियों की अभिवृत्तियों पर निर्भर करती है। ये प्रबंध सतत होने चाहिये। पहले से ही दोनों दलों द्वारा एक निश्चित प्रक्रिया और समान रूप से प्रतिनिधित्व की एक निश्चित रीति स्वीकार कर लेनी चाहिये। योजनाओं में जड़ता नहीं होनी चाहिये। किन्तु संयुक्त विचार विमर्श सभी औद्योगिक व्याधियों के लिये रामबाण नहीं है। श्रमिक विक्षोभों के लिये अधिकांशत: यह औषधि के बजाय उपचार है। इससे औद्योगिक संघर्ष कम हो जाते हैं किन्तु पूर्णतया समाप्त नहीं होते। भारतीय परिस्थितियों के अन्तर्गत शीघ्र और स्थायी सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती क्योंकि प्रबंधकों में क्षमता और श्रमिकों में निष्ठा तथा विश्वास के विकास में समय लगेगा।

अनिवार्य पंचनिर्णय

आपत्कालीन उपाय के रूप में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अनिवार्य पंच निर्णय के सिद्धान्तों को भारत में लागू किया गया था। विवादों को अनिवार्य पंच निर्णय के लिए निर्देशित करने की व्यवस्था भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत की गई। युद्धोपरान्त काल में हड़तालों की अभूतपूर्व बाढ़ सी आ गई जिसमें उत्पादन में कमी

१ वार्षिक प्रतिवेदन, १९४९–५०

समय कब आई जब देश को सुविधा और अधिक उत्पादन की आवश्यकता थी । इसलिए अनिवार्य पंचनिर्णय के सिद्धान्त को उन औद्योगिक विवाद अधिनियमों में बनाये रखा गया जिन्हें लोकप्रिय सरकार ने पारित किया था । बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम १९४६ औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४७ उत्तरप्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ तथा मध्य प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ में निहित व्यवस्थानुसार सम्बन्धित सरकारों को अधिकार दिया गया था कि वे विवादों को अनिवार्य पंचनिर्णय के लिए निर्देशित करें । जब भी कहीं नियोजक और कर्मचारियों के बीच विवाद हो तो उनके अधिनिर्णयों के लिए कई न्यायिक तन्त्रों की स्थापना की गई । इन न्यायाधिकरणों और पंचनिर्णय मंडलों के अधिनिर्णयों को लागू करने का उत्तरदायित्व सरकार पर छोड़ दिया गया । सरकार ने वहाँ से औद्योगिक विवादों को विभिन्न न्यायाधिकरणों तथा पंचनिर्णय मंडलों को निर्देशित किया तथा उनके परिनिर्णयों को स्वीकार किया या संशोधित रूप में लागू किया ।

सरकार ने बाद में अनुभव किया कि केवल अनिवार्य पंचनिर्णय पर निर्भर रहकर सुस्थिर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना नहीं हो सकती । इन सम्बन्धों को प्रभावशाली सामूहिक सौदाकारी पर आधारित होना चाहिए । १९५० में सरकार ने सामूहिक सौदाकारी के उद्देश्य से नियोजकों और कर्मचारियों को निकट लाने के लिए विवेचन करने के बारे में विचार किया । किन्तु समझौता की शर्तों और स्वरूप के सम्बन्ध में दोनों दलों को पूर्ण स्वतन्त्रता की अनुमति दी जाती थी । सौदाकारी के समय राज्य द्वारा किसी प्रकार की अनिवार्यता नहीं लगायी जाती थी जिससे कि दल जल्दी जल्दी समझौता कर लें । उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती थी । राष्ट्रीय श्रम सभा ने सामूहिक सौदाकारी की एक सरल प्रक्रिया का परिनियम व्यवस्था के लिए सुझाव दिया तथा उन व्यवस्थाओं को श्रम सम्बन्ध विधेयक १९५० में सम्मिलित कर लिया । इस विधेयक में सर्वप्रथम सामूहिक सौदाकारी के सिद्धान्त को प्रदर्शित किया गया तथा सामूहिक सौदाकारी के समय कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए सौदाकारी अभिकर्ता संस्था की व्यवस्था की गई । श्रम सम्बन्ध सम्बन्धों के नियमित करने के लिए देश में सामूहिक सौदाकारी के अनुभव का अभाव था । देश में विधान द्वारा सामूहिक सौदाकारी की एक सरल प्रक्रिया का सूत्रपात करना था । प्रारम्भ से ही इस बात का जरा बराबर जटिलता पर ध्यान देना उचित नहीं समझा गया था । अनुभवों के आधार पर यदि आवश्यकता हुई तो प्रक्रिया में सुधार किये जा सकते थे । यहाँ तक कि इस सरल प्रक्रिया में व्यवस्था नहीं होना था और न ही सभी राज्यों के सभी उद्योगों में एक साथ प्रयुक्त किया जाता था । देश के विभिन्न राज्य औद्योगिक विकास की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में हैं तथा एक ही राज्य के विभिन्न उद्योग भी अपनी संरचना क्षमता और दृढ़ता में काफी भिन्न होते हैं । सरल प्रक्रिया के लिए भी यह विचार था कि सर्वप्रथम यह पूर्ण हो उद्योगों और औद्योगिक रूप से प्रगति

शील राज्यो के लिये उपयुक्त होगी। इसी कारण सामूहिक सौदाकारी की इन व्यवस्थाओं को लागू करना पूर्णतया सम्बद्ध सरकारों की इच्छा पर छोड़ दिया गया था। उन्हे इन व्यवस्थाओं को उन्हीं संस्थानों में लागू करना था जहाँ उनके मतानुसार सामूहिक सौदाकारी समुचित था। श्रम संबंध विधेयक द्वारा प्रचलित की जाने वाली सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया संक्षेप में निम्नलिखित है

समुचित सरकार द्वारा सामूहिक सौदाकारी के लिये घोषित समुचित संस्थान में कर्मचारियों के सौदाकारी अभिकर्त्ताओं और नियोजकों के बीच सामूहिक सौदाकारी होनी थी। सौदाकारी अभिकर्त्ताओं को श्रम न्यायालयों द्वारा प्रमाणित किया जाना था जिन्हें स्थापित करने के लिये इस विधान के अन्तर्गत प्रस्ताव रखा गया था। किसी स्थानीय क्षेत्र के किसी संस्थान या संस्थानों के वर्ग से संबंधित सौदाकारी अभिकर्त्ताओं के रूप में प्रमाणन के लिये निम्नलिखित में से कोई श्रमिकों के प्रतिनिधि प्रार्थना पत्र दे सकते थे।

१ श्रमिक संघ का एक पंजीकृत संधान जिसकी सदस्यता काफी अच्छी हो किन्तु कर्मचारियों की कुल संख्या के १५ प्रतिशत से कम न हो।

२ एक पंजीकृत श्रमिक संघ जिसकी सदस्यता काफी अच्छी हो किन्तु कर्मचारियों की संख्या के ३० प्रतिशत से कम न हो।

३ निर्धारित रूप से निर्वाचित कर्मचारियों के प्रतिनिधि।

दो या दो से अधिक संघ सौदाकारी अभिकर्ता के रूप में प्रमाणन के लिये संयुक्त प्रार्थना पत्र दे सकते थे। श्रम न्यायालय की जाँच के बाद अभ्यर्थी को सौदाकारी अभिकर्त्ता के रूप में प्रमाणित करना था। एक समय में किसी स्थानीय क्षेत्र के एक ही संस्थान या संस्थान के वर्ग के संबंध में एक से अधिक सौदाकारी अभिकर्ता नहीं होते थे। कर्मचारियों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के स्थान पर एक पंजीकृत श्रमिक संघ को तथा पंजीकृत श्रमिक संघ के स्थान पर एक पंजीकृत संधान को प्राथमिकता दी जाती थी। दो संधानों या दो संघों की स्थिति में बड़े संधान या संघ को अन्य संधान या श्रमिक संघ के स्थान पर प्राथमिकता दी जायगी। सौदाकारी अभिकर्त्ता के रूप में प्रमाणन के लिये बाद के प्रार्थना पत्रों पर प्रतिबंध लगाया गया था। एक प्रमाणित सौदाकारी अभिकर्ता की अवस्थिति पर श्रम न्यायालयों द्वारा नये प्रार्थना पत्रों पर तबतक साधारणतया विचार नहीं किया जाना था जबतक पूर्व सौदाकारी अभिकर्ता के प्रमाणन की तिथि को एक वर्ष न हो गया हो तथा उन मामलों में भी यही प्रक्रिया अपनायी जानी थी जहाँ कोई सामूहिक समझौता न लागू किया गया हो और यदि कोई सामूहिक समझौता लागू किया गया है तो उसकी तिथि में छः मास न बीत गये हों। श्रम न्यायालयों को अधिकार था कि वे सौदाकारी अभिकर्त्ताओं के प्रमाण पत्रों को रद्द कर दें यदि उन्होंने लगातार तीन महीने में अधिक उन शर्तों को न पूरा किया हो जिनके आधार

पर उन्हें सौदाकारी अभिकर्ता प्रमाणित किया गया था, या वे सामूहिक समझौते की किसी शर्त का कार्यान्वित करने में असमर्थ रहे हों या फिर उन्होंने श्रमिक संघ विधान के अन्तर्गत अनुचित कार्यवाही की हो।

एक प्रमाणित सौदाकारी अभिकर्ता को कुछ विशेषाधिकार और सुविधाएं मिलती थीं। इनके द्वारा नियोजक के साथ वार्तालाप करने के लिये कर्मचारियों के अन्य सभी अभिकर्ता प्रतिस्थापित कर दिये जाते थे और जबतक सौदाकारी अभिकर्ता का प्रमाणन वापस नहीं कर लिया जाता था तबतक उन्हें संस्थाओं के कर्मचारियों की ओर से सामूहिक सौदाकारी करने तथा सामूहिक समझौते द्वारा उन्हें बाधने का अधिकार होता था और जिसके लिये उन्हें प्रमाणित किया जाता था। कर्मचारियों की ओर से प्रमाणित सौदाकारी अभिकर्ता को सभी सूचनाएं देनी और प्राप्त करनी होती थीं तथा सामूहिक समझौता करने के लिए विशेष मांगें, पर दूसरे दल के साथ विचार विमर्श करना होता था। सूचनाओं की प्रतिलिपियाँ समुचित सरकार और सशोधन अधिकारियों को भी भेजनी होती थीं। एक बार उनके द्वारा किये गये सामूहिक समझौते में बार बार परिवर्तन करना वाञ्छनीय नहीं था। इस कारण यह व्यवस्था की गई थी कि जब एक सामूहिक समझौता लागू है तो उसमें निहित किसी भी विषय के संबंध में परिवर्तन की सूचना या तो समझौते की शर्तों के समाप्त होने से पूर्व दो मास के भीतर या समझौते के अवसान के पूर्व ही दी जा सकती है। प्रमाणित सौदाकारी अभिकर्ता और नियोजक के बीच हुए सामूहिक समझौते को (अ) उस नियोजक तथा (ब) उस सौदाकारी अभिकर्ता तथा संस्थान या संस्थान के वर्ग के सभी कर्मचारियों को जिनके लिये सौदाकारी अभिकर्ता प्रमाणित है मानना होता था।

दूसरे दल से प्राप्त सूचनाओं का उत्तर देना दोनों दलों के लिये अनिवार्य कर दिया गया था। उनके उत्तरों में प्रत्येक दल को वे विशिष्ट मांगें जो उन्हें स्वीकार्य हैं तथा उस स्थिति में जब उन्हें मांगें अस्वीकार्य हैं तो ऐसी अस्वीकृति के कारण देने पड़ते थे। यह उत्तर सात दिन के भीतर देना होता था। किन्तु दलों के बीच समझौते द्वारा इस अवधि को बढ़ाया जा सकता था। समझौते पर पहुँचने के लिये निर्धारित रूप से दूसरे दल के साथ सामूहिक सौदाकारी करना भी दलों के लिये अनिवार्य होता था। इस तरह से प्रारम्भ सामूहिक सौदाकारी को १४ दिन के भीतर किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाना चाहिये। समझौते की शर्तों के उल्लंघन या उनकी व्याख्या में उत्पन्न सभी विभेदों को बिना काम बन्द किये, अधिनिर्णय या अन्य साधनों द्वारा अन्तिम निबटारे के लिये प्रत्येक सामूहिक समझौते में व्यवस्था की जाती थी। प्रत्येक सामूहिक समझौते के पंजीकरण की भी व्यवस्था की गई थी। किसी भी दल से विशिष्ट मांगों की सूचना प्राप्त होने के बाद लोकोपयोगी सेवाओं में समाधान अधिकारी के समक्ष समाधान कार्यवाही अनिवार्य तथा अलोकोप-

मागी सेवाओं में विवचाधीन कर दी गई थी। मगाउन अधिकारी को सामूहिक सौदाकारी में संलग्न दना द्वारा सामूहिक समझौते के निर्णय में सहायता करनी होती थी। सामूहिक समझौते को उस अवधि तक लागू रहना था जो उनके कि सम्मति दी गई हो और यदि किसी ऐसी अवधि की सम्मति नहीं दी गई है तो एक वर्ष के लिए जबतक कि निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार उसे समाप्त न कर दिया जाय।

विधेयक में हड़ताल और तालाबन्दी पर प्रतिबंध लगाने की व्यवस्था निहित थी जबतक कि दलों ने सामूहिक सौदाकारी के लिए प्रयत्न न किया हो और उन्हें असफलता न मिली हो। परिवर्तन के लिये इच्छुक दल को परिवर्तन की सूचना देनी होती थी और तब सामूहिक सौदाकारी करना होता था। किसी व्यवस्था या सामूहिक समझौते के लागू होने की किसी अवधि में साधारणतया किसी भी कारण को लेकर हड़ताल या तालाबन्दी पर प्रतिबंध लगाया गया था। सामूहिक समझौते की प्रवर्तनावधि में केवल समुचित सरकार से प्रमाण-पत्र मिलने के बाद कि एक नया विवाद उठ खड़ा हुआ है जो सामूहिक समझौता करते समय न विद्यमान था और न तब उसके बारे में अनुमान ही हो सकता था हड़ताल और तालाबन्दी की जा सकती है।

नियोजक और कर्मचारी दोनों के लिए अनिवार्य था कि वे सामूहिक समझौता करें। एक कर्मचारी को जो सामूहिक समझौते की शर्तों को नहीं मानता अपने वेतन तथा भविष्य निधि में नियोजक के अंशदान के भाग को न मानने की अवधि में छोड़ना पड़ता था तथा उसे विसर्जित भी किया जा सकता था। सामूहिक समझौते की अवधि में अवधानिक हड़ताल करने वाले कर्मचारियों का ऐसी हड़ताल की अवधि के लिए मजदूरी छुट्टी वेतन भविष्य निधि में नियोजक के अंशदान तथा अन्य कोई सुविधाओं पर अधिकार नहीं रहता था। संघ तथा प्रमाणित सौदाकारी अभिकर्ता जो समझौते की शर्तें मानने से इन्कार कर देते थे अपनी मान्यता और प्रमाणन के अधिकार को खो देते थे। समझौते का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को ६ माह तक के कारावास या आर्थिक दण्ड या दोनों से दण्डित किया जा सकता था। अभियोग पर विचार करने वाले न्यायालय को अधिकार था कि वह उल्लंघन के परिणामस्वरूप पीड़ित व्यक्ति को दण्ड की पूरी या आंशिक राशि देने के लिए निर्देशन दे।

समझौते का उल्लंघन करके तालाबन्दी घोषित करने वाले नियोजकों को तालाबन्दी की अवधि के लिये साध्य से दुगनी दर पर मजदूरी भविष्य निधि में अंशदान तथा अन्य सुविधाएं देनी पड़ती थीं। नियोजक द्वारा देय धनराशि को भू राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जा सकता था। समुचित सरकारों को कुछ प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण करने का अधिकार दिया गया था। नियंत्रित प्रतिष्ठानों

के नियोजकों द्वारा समझौते की शर्तें न मानने पर, समुचित सरकार किन्हीं परिस्थितियों के अन्तर्गत निर्धारित रूप में समुचित जाँच पड़ताल करने के बाद उस नियंत्रण ग्रहण और निर्देशन करने के उद्देश्य से एक नियंत्रक की नियुक्ति कर सकती थी। कुछ अवस्थाओं में सरकार को प्रतिष्ठान जब्त कर लेने का भी अधिकार था।

समय के लम्बा हो जाने के कारण श्रम संहिता विधेयक पारित नहीं हुआ था और प्रस्तावित ये व्यवस्थाएं हमारे देश के वर्तमान औद्योगिक सम्बन्ध विधानों में समाविष्ट नहीं हो सकी हैं। लागू की जाने वाली सामूहिक सौदाकारी की व्यवस्थाएँ निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित थीं —

१ सामूहिक सौदाकारी करने में पक्षकारों को हड़ताल और तालाबन्दी नहीं करनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो अधिनियमित अनिवार्यता के अन्तर्गत उन्हें ऐसा करने के लिए विवश बनाया जाय।

२ सौदाकारी के समय पक्षों को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

एक बार सामूहिक समझौता होने पर पक्ष विधिपूर्वक उसे मानने के लिए बाध्य हैं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इनमें से कुछ व्यवस्थाओं को अधिनियमित नहीं किया गया है। १९५० से औद्योगिक विवाद अधिनियम समय-समय पर संशोधित होता रहा है तथा बहुत से संशोधन विचाराधीन भी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय के लिए सामूहिक सौदाकारी के अधिनियमन का विचार छोड़ दिया गया है।

अनिवार्य पंचनिर्णय बनाम सामूहिक सौदाकारी

हाल के वर्षों में अनिवार्य पंचनिर्णय तथा सामूहिक सौदाकारी के प्रश्न पर विवाद उठ खड़ा हुआ है। दो विभिन्न मतावलम्बी इस विवाद में सम्मिलित हैं। एक का विचार है कि सामूहिक सौदाकारी को प्रचलित और कुशलता से लागू करना चाहिए तथा अनिवार्य पंचनिर्णय को परिनियत पुस्तिका से हटाना आवश्यक है। दूसरे दल का कहना है कि बिना अनिवार्य पंचनिर्णय के, जिसे कि अन्तिम प्रयास के रूप में रखकर ही विवादों के निपटारे का श्रेय न करना चाहिए।

नियोजकों का दृष्टिकोण—अनिवार्य पंचनिर्णय की व्यवस्थाओं को हटा देने के लिए नियोजक समर्थन करते हैं। श्री एस० पी० जैन ने अखिल भारतीय औद्योगिक नियोजक संगठन के २६ वें वार्षिक अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में घोषणा की — "मैं मानता हूँ कि नियोजक-कर्मचारी सम्बन्धों को पारस्परिक विश्वास और सद्भावना पर अवश्य आधारित होना चाहिए और यदि श्रम तथा पूंजी के बीच स्वस्थ परम्पराएं और समझौते हों तो उनके सम्बन्धों को नियमित करने के लिए विधानों की आवश्यकता नहीं हो सकती है। यह जरूरी है कि समय आ गया कि नियोजक-कर्मचारी सम्बन्धों में सरकारी हस्तक्षेप का परित्याग किया जाय।' अखिल

भारतीय उत्पादक संगठन ने भी इस नई विचारधारा का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि भारतीय नियोजक बदलते हुए समय के प्रति पूर्णतया सचेत हैं और उसके अनुरूप अपने को बनाने के लिये प्रयत्नशील है। उनके प्रतिनिधियों ने इस बात पर जोर दिया कि जहां सामूहिक सौदाकारी और ऐच्छिक पर्चनिर्णय को प्रोत्साहित करना चाहिये, अनिवार्य पर्चनिर्णय का प्रयोग केवल आपत्कालीन स्थिति में ही करना चाहिये। किन्तु यह देखा गया कि नियोजक उतना सहयोग नहीं दे रहे थे जितने की आशा थी। श्री गिरि ने जो उस समय केन्द्रीय श्रम मन्त्री थे समय में उक्त भावनाएँ व्यक्त की जब उन्होंने कहा कि उनके पास ऐसा अनुभव करने के कारण है कि कुछ मामलों में नियोजक केवल अधिनिर्णय से बचना चाहते थे तथा संशोधन के प्रति अनिच्छुक थे। नियोजकों ने अधिनिर्णय का विरोध और संशोधन का समर्थन किया। किन्तु उनकी उक्तियों में निष्ठा का अभाव था। उनमें से अधिकांश ने अभी तक अपने को श्रमिक संघों के साथ समाहित नहीं किया है और न वे समझौता करने के लिये श्रमिकों के साथ विचार विमर्श सहयोग और सामूहिक सौदाकारी के लिये तैयार हैं। वे उद्योग में जिम्मेदार के बजाय मालिक की भूमिका का निर्वाह करना चाहते हैं। उन्होंने अपने हृदय से समाजवादी समाज के स्वरूप में अपनी नई भूमिकाओं को नहीं स्वीकार किया है जोकि एक ट्रस्टी की है और जिसके अन्तर्गत उन्हें उद्योग का संचालन राष्ट्र और समुदाय की सेवा के लिये करना चाहिये।

श्रमिक संघों का दृष्टिकोण—श्रमिक संघों के विचारों में स्थिरता नहीं रही है। पिछले कुछ वर्षों में उनमें पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। १९५० में संसद में जब श्रम संबंध विधेयक प्रस्तुत किया गया तो हिन्द मजदूर सभा और अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा ने अधिनियम का विरोध किया क्योंकि उनका यह विचार था कि इससे श्रमिकों के वार्ता के अधिकार का हरण हो जायगा। विधेयकों में सर्वाधिक काला की इसे संज्ञा प्रदान की गई। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा ने भी अनिवार्य पर्चनिर्णय हड़तालों पर प्रतिबंध द्वारा संगत सिद्धान्त का विरोध किया। १९४७ में औद्योगिक विवाद अधिनियम के धारण के समय अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा के महासचिव श्री एन० एम० जोशी ने केन्द्रीय विधान सभा में कहा कि औद्योगिक विवाद विधेयक में दासता की भावना निहित है क्योंकि इसके द्वारा श्रमिकों को विवश किया गया है कि वे इच्छा या अनिच्छा से अपने काम में लगे रहें। सिडनी वेब द्वारा प्रस्तावित मत का उन्होंने समर्थन किया कि अनिवार्य पर्चनिर्णय से हम 'सामूहिक सौदाकारी का पूर्णतया अधिक्रमण कर जाते हैं।' बाद में उन्होंने अपने विचार बदल दिये। नैनीताल में १९५२ में आयोजित द्वितीय सम्मेलन में हिन्द मजदूर सभा तथा अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा ने यह विचार व्यक्त किया कि अधिनिर्णयन अवश्य रहना चाहिये और जिसे अन्तिम आश्रय के रूप में भारतीय

राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने भी स्वीकार किया।

आज अधिकांश श्रमिक संघ यह स्वीकार करते हुए कि औद्योगिक विवादों का सुलझाने और औद्योगिक शांति बनाये रखने के लिए उत्तम रीति प्रत्यक्ष वार्ता और ऐच्छिक पंचनिर्णय है राज्य हस्तक्षेप और अनिवार्य पंचनिर्णय के आग्रही हैं। १९५२ में १२ के भारतीय श्रमिक सम्मेलन के अवसर पर आये हुए अधिकांश श्रमिक प्रतिनिधियों ने जिसमें प्रस्तावित औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया गया अनिवार्य पंचनिर्णय का समर्थन किया। हिन्द मजदूर सभा के प्रतिनिधियों ने उस स्थिति में राज्य हस्तक्षेप की माँग की जब संशोधन असफल हो जाय और वार्ता तथा सामूहिक सौदाकारी द्वारा विवाद को न सुलझाया जा सके। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के प्रवक्ताओं ने विवाद सुलझाने और नियोजकों द्वारा कर्मचारियों के सामने निबटाने के लिये एक स्थायी तंत्र की उत्पत्ति की माँग की।

भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के अध्यक्ष ने १९५१ के सामान्य अधिवेशन में सरकार से आग्रह किया कि श्रम प्रबंध संबंधों का सुधारने तथा उन विवादों में तुरन्त हस्तक्षेप करने के लिये जिनकी प्रतिक्रियाएँ समुदाय के आर्थिक जीवन में प्रतिकूल पड़ सकती है विधान का आस्थगन न किया जाय। यद्यपि अनिवार्य पंचनिर्णय के स्थान पर वार्ता और ऐच्छिक निबटारे पर अधिक जोर दिया जाने लगा था किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में अधिनियम द्वारा अधिनिर्णय के लिये व्यवस्था करनी ही होगी जबतक कि श्रमिक संघ आन्दोलन क्षीण रहता है। इस विवादास्पद मामले पर अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघ के महासचिव श्री गुरुस्वामी का मत विशेष ध्यान देने योग्य है। उन्होंने नवम्बर १९५२ में कहा कि श्री गिरी केन्द्रीय श्रम मंत्री विद्यमान अधिनिर्णय तंत्र को समाप्त करने के लिये प्रयत्न कर रहे थे क्योंकि वे चाहते थे कि नियोजक और कर्मचारियों के बीच श्रम विवाद सामूहिक सौदाकारी द्वारा सुलझाएँ जाय। इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि सत्ता की विजय और श्रमिकों के लिये असुविधा। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि बिना अधिनिर्णय पद्धति के श्रमिकों के पास आज जो कुछ है वह न मिला होता।

अनिवार्य पंचनिर्णय के सिद्धान्त को विदेशों के श्रमिक संघों द्वारा, विकास की अपनी प्रारम्भिक अवस्थाओं में भी समर्थन नहीं मिला। पूर्णरूपेण अनिवार्य पंचनिर्णय जो विरले है और यदा-कदा ही सफल होता है का आश्रय लेना ब्रिटिश मस्तिष्क में स्वमेव सम्मानित नहीं होता यद्यपि वैधानिक समझौता व्यवहार में निष्प्रभ है। १९३४ में श्रमिक संघ सभा ने अनिवार्य पंचनिर्णय के विरोध के कृत निश्चय को पुनः दोहराया। १९२८ में आयोजित औद्योगिक पुनर्गठन और औद्योगिक संबंध सम्मेलन ने विचार किया कि 'वार्तालाप तंत्र में अनिवार्यता के तत्त्व का प्रयोग

अस्वीकार्य और अवाछनीय होगा।' ब्रिटेन मे, युद्धकाल को छोडकर, साधारण औद्योगिक विवादो को सुलझाने के लिए अनिवार्य पचनिर्णय को लागू करने के विषय मे कोई प्रयत्न नही किये गये। औद्योगिक सम्बन्धो का ढाचा मुख्यतया ऐच्छिक आधार पर खडा किया गया था। युद्धकाल मे आपतकालीन स्थितियो से निबटने के लिये दलो की पारस्परिक अनुमति से ऐच्छिक पद्धति पर अनिवार्य पचनिर्णय अध्यारोपित किया गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रवर्तमान आपवादिक परिस्थितियो के कारण सेवायोजन अवस्थाओं और राष्ट्रीय पचनिर्णय आदेश १९४० के अन्तर्गत लागू की गई वह पद्धति ब्रिटिश श्रमिक सघ सभा और ब्रिटिश नियोजक प्रसधान की सम्मति से १९५१ तक चलती रही। अब उक्त आदेश का स्थान औद्योगिक विवाद आदेश १९५१ ने ले लिया है। इस आदेश मे अनिवार्य पचनिर्णय सिद्धान्त की व्यवस्था है किन्तु सेवायोजन की अवस्थाओं और शर्तों के सबध मे इसका अनुवर्तन अनिवार्य नही है। इसने हडताल और तालाबन्दी के आमत्रण को भी समाप्त कर दिया है। आदेश का उद्देश्य वर्तमान विचार विमर्श तत्र को पुनर्स्थापित करने के बजाय उसे और सशक्त बनाना है। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि ब्रिटिश उद्योगो मे केवल नियोजक और कर्मचारियो की इच्छित सहमति से अनिवार्य पचनिर्णय के सिद्धान्त को लागू किया गया था। इसे बाहर से लादा नही गया था। इसलिए वास्तविक रूप मे यह अनिवार्य नही था।

अमेरिकन श्रमिक आन्दोलन अपरिवर्त्य रूप मे अनिवार्य पचनिर्णय का विरोधी है। इसका विश्वास है कि अनिवार्य पचनिर्णय का अर्थ अनैच्छिक दासत्व, नागरिक स्वतन्त्रता का निवर्तन और वयक्तिक स्वतन्त्रता का ह्रास है। अमरिकन श्रमिक सघान ने विचार व्यक्त किया है अमेरिका के श्रमिक दासता के आगे कभी समर्पण नही करेगे और न वे अपनी इच्छा के विपरीत उन परिस्थितियो मे कार्य करेंगे जो उनके लिए हानिकारक है। यह उनका सुविचारित मत है कि अनिवार्य पचनिर्णय औद्योगिक शाति को प्रवर्तित नही करती। इससे केवल औद्योगिक विवादो की अवधि बढ जाती है। यह सामूहिक सौदाकारी का नाश करके वादशीलता को पुनर्स्थापित करती है।

भारत मे सघो के विचार इस भय पर आधारित प्रतीत होते हैं कि श्रमिक चूकि समुचित रूप से सगठित नही हैं इसलिए वे सौदाकारी मे नियोजक की अपेक्षा कमजोर हैं। और राज्य का हस्तक्षेप कमजोर दल के पक्ष मे होकर न केवल उचित सतुलन बनाये रहेगा बल्कि शक्तिशाली दल के शोषण से उसकी रक्षा भी करेगा। लगता है कि राज्य की सहायता और सहयोग पर निर्भर रहने मे श्रमिक सघ आन्दोलन और औद्योगिक सबधो विशेषकर उन स्थानो और उद्योगो मे जहा श्रमिक स्वमेव सगठित हुए हैं पर पडने वाले सभावित प्रभावो के बारे मे बहुत कम जानकारी है। श्रमिक सघो को अपने परो पर खडा होना है। उन्हे बिना किसी बाहरी

सहायता के अपना घर स्वयं ठीक करना है।

सरकार का दृष्टिकोण—सरकार के दृष्टिकोण में कोई संगति नहीं रही है। अनिवार्य पंचनिर्णय आवश्यक समझा गया है किन्तु इसके साथ ही सरकार ने एक विस्तृत और व्यापक सामूहिक सौदाकारी की पद्धति पर भी जोर दिया है। इस दिशा में प्रारम्भिक प्रयत्न औद्योगिक शांति प्रस्ताव १९४७ विभिन्न द्विपक्षीय और त्रिपक्षीय संस्थाओं की स्थापना और श्रम संबंध विधेयक १९५० में किए हुए हैं। सरकार का लक्ष्य था कि विचार विमर्श और सामूहिक सौदाकारी द्वारा विवादों को सुलझाया जाय। श्रम संबंध विधेयक के उद्देश्य और कारणों के विवरण में कहा गया है—"प्रगतिशील श्रम नीति का यह लक्ष्य होना चाहिए कि वह श्रम प्रबंध संबंधों को प्रभावित करे और जहाँ तक हो सके राज्य हस्तक्षेप का प्रत्याहरण करे। एक सशक्त श्रमिक संघ आन्दोलन ही, जो अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति पूर्ण सचेत हो, जो स्वयं अपने पैरों पर खड़ा हो और जिसे किसी की सहायता की आवश्यकता न हो औद्योगिक शांति शाश्वत बना सकता है। विधेयक का लक्ष्य है कि निश्चित आधार पर श्रम प्रबंध संबंधों का निर्माण करे और यदि दायित्वों के साथ अधिकारों का तालमेल होना है बीच तुला को बराबर रखने के उद्देश्य से किया गया है। सरकार ने विचार विमर्श और सामूहिक सौदाकारी का विकास करने के लिए परिनियत व्यवस्था की है। उपरोक्त विवरण में आगे कहा गया है—'नियोजक और उनके कर्मचारियों के बीच मैत्रीपूर्ण विचार विमर्श की क्षमता पर विश्वास इस विधेयक का मूल आधार है। विचार विमर्श के लिए प्रारम्भिक अवस्था में ही एक उचित वातावरण में प्रयत्न करना चाहिए यह नहीं कि जब हड़ताल प्रारम्भ हो जाय तो संशोधन अधिकारी मंच पर दिखाई पड़े। इन दोनों के बीच अनिवार्य विचार विमर्श और किन्हीं परिस्थितियों के अन्तर्गत अनिवार्य सामूहिक सौदाकारी के लिए विधेयक में व्यवस्था की गई थी। फिर भी सरकार अनिवार्य पंचनिर्णय के सिद्धान्त को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। वस्तुतः औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ की तुलना में श्रम संबंध विधेयक के अन्तर्गत अनिवार्य पंच निर्णय के विषय में अधिक कठोर व्यवस्था की गई थी। सरकार ने यह नहीं सोचा था कि इससे दोनों के सामूहिक सौदाकारी और विचार विमर्श के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा या इससे किसी प्रकार लक्ष्य तक पहुँचने की गति मन्द पड़ जायगी। चूँकि यह लक्ष्य कि नियोजक और मजदूर अपने स्वप्रयत्नों से औद्योगिक शांति का निर्माण करें और शीघ्रातिशीघ्र श्रम प्रबंध संबंधों के क्षेत्र से राज्य हस्तक्षेप का प्रत्याहरण किया जाय सरकार ने स्वयं अपने सम्मुख रखा था। अनिवार्य पंचनिर्णय की परिनियत व्यवस्था का श्रमिकों द्वारा पर्याप्त विरोध किया गया। किन्तु सरकार झुकी नहीं वरन् अनिवार्य पंचनिर्णय को बनाये रखने का निश्चय कर लिया।

सरकार की नीति १९५२ म बदली जब श्री गिरि केन्द्रीय श्रम मन्त्री हो गय। अपने पद का कार्यभार सभालने के बाद उन्होने बारम्बार कहा कि नियोजक और कर्मचारियो के बीच के सबध कम से कम सभव राज्य हस्तक्षेप के साथ पारस्परिक अवबोध और सद्भावना द्वारा शासित होने चाहिये। बत्तीस वर्ष के अनुभव अशत श्रमिक सघो के रूप म और अशत मन्त्री के रूप मे ने मुझे यह भली प्रकार समझने का अवसर दिया है कि यही उचित उपागमन मार्ग है। मैं किसी विधान की अपेक्षा पूजी और श्रम के बीच किये गये पारस्परिक समझौते पर अधिक विश्वास रखता हूँ। फिर भी मैं यह कहने म नही हिचकूगा कि अब भी कुछ मामलो मे काफी लोगो की नापसन्दगी के बावजूद विधान उपलब्ध हो सकता है। उन्होने नियोजको और कर्मचारियो को अपने दायित्व समझने के लिये उत्साहित किया। उनका कहना था कि वे उत्पादन के दो हाथ की तरह हैं तथा उन्हे न केवल अपने दल के हित के लिये बल्कि देश की सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिये भी आपस मे मिल कर काम करना चाहिये और दोनो अपना बराबर हिस्सा लें। यदि श्रमिको ने अपना भार वहन नही किया तो उद्योग का अस्तित्व ही खतरे मे पड जायगा और इस प्रकार सोने का अडा देन वाली मुर्गी ही समाप्त हो जायेगी। नियोजकों को, अपनी ओर स उचित काय की अवस्थाओ और समुचित सुविधाओ की व्यवस्था करके श्रमिको के अधिकार को मान्यता देनी चाहिय। श्रम और पूजी को सयुक्त उद्यम म हिस्सेदार के रूप मे काय करना चाहिय तथा अपने विभेदो और विवादो को आमने सामने बैठ और वार्ता करके निबटा लेना चाहिये। बिना सामूहिक सौदाकारी के भारतीय उद्योग कोई प्रगति नही कर सकत। सफलता प्राप्त करने के लिये बहुत समय लग जायेगा। इसके लिये दोनो दलो का सहयोग आवश्यक है जिन्हे अपने कर्तव्य और दायित्व समझने चाहिये। नियोजको को यह अनुभव करना चाहिये कि वे श्रम का शोषण नही कर सकत ह और न वे उसके साथ एक वस्तु की तरह व्यवहार कर सकत हैं। उद्योगो के प्रति नियोजक और श्रमिक का एक कर्तव्य है और दोनो के अपने दायित्व और विशेषाधिकार हैं। श्री गिरि के भाषणो का यही सार था। देश की स्थिति विवादो को आन्तरिक रूप से सुलझाने के विचार को बढ़ावा देने के लिये अनुरूप प्रतीत होती थी।

राज्य उद्योगो और सस्थानो मे, जहाँ श्रमिक सघ आन्दोलन विशेषकर कम जोर था, अनिवाय पचनिर्णय द्वारा सामूहिक सौदाकारी को प्रतिस्थापित करने की सशक्त इच्छा के प्रति श्री गिरि जागरूक थे। इससे श्रमिको और नियोजको के बीच असमान सघष मे अच्छे परिणाम निकलने की सभावना थी। इस मत के समर्थक चाहते थे कि जबतक वे उसके लिये तयार न हो जायें सामूहिक सौदाकारी की अग्निपरीक्षा स्थगित रक्खी जाय। लेकिन श्री गिरि इस मत के थे कि अधिक समय तक अधिक सारभूत मिलने वाले लाभो के लिये कभी-कभी तात्कालिक लाभ छोड़ने

पड़ते हैं या फिर उन्हें प्राय उनके सदर्भ मे रखना पड़ता है। फिर भी अनिवार्य पचनिर्णय के समर्थकों की सतर्क विचारधारा की प्रशंसा करते हुए वे अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये खतरा मोल लेने के लिये तयार थे। १९५२ म सरकार की नीति, जसाकि उस काल म समय-समय पर दी गई केन्द्रीय श्रम मन्त्री की उक्तिया से स्पष्ट है, कुछ खतरा उठा लेने के लिये इच्छुक प्रतीत होती थी। इच्छित परिणाम लाने के लिये सरकार विद्यमान विधाना की जाच कर रही थी। श्री गिरि जानते थे कि आपतकालीन स्थिति म सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। इसलिए उन्होंने प्रस्ताव रखा था कि 'आपतकालीन स्थिति को, जब भी पैदा हो, समुचित विधान द्वारा, यदि विधान सभा का अधिवेशन चल रहा हो, और यदि विधान सभा का अधिवेशन न चल रहा हो, तो अध्यादेश निगमित करके सभाला जा सकता है। श्रम सबधो के अपेक्षित विधान म भी आपतकालीन स्थिति के लिये स्थायी व्यवस्था निहित की जा सकती है।"

श्री गिरि वास्तविक अनिवार्यता की आवश्यकता के प्रति पूर्णतया सजग थे किन्तु उनका विश्वास था कि अनिवार्य पचनिर्णय के स्थान पर सामूहिक सौदाकारी के साहसी परीक्षण के लिये यह समय उपयुक्त था। इस साहसिक क्रिया मे सगठित श्रमिकों और नियोजकों का अपने साथ ले चलने की वे आशा रखते थे। किन्तु उनकी आशायें पूरी नही हुइ और धीरे धीरे उन्होंने अनुभव किया कि १९५२ के उनके विश्वास की तुलना म वस्तुत अनिवार्यता की अधिक आवश्यकता थी। उन्होंने अपने मत मे सशोधन किया और जिसम १९५२ के अन्त तक आमूल परिवर्तन हो गये। उन्होंने १९५३ के अन्त तक अपने उस परिवर्तन को केन्द्रीय और राज्य सरकारो की नीतिया म स्पष्ट किया तथा जनवरी १९५४ म आयोजित १३ वें भारतीय श्रमिक सम्मेलन के अधिवेशन म कहा कि वर्तमान परिस्थितिया के अन्तर्गत उन्हें विश्वास है, श्रम विवादो को सुलझाने के लिये अनिवार्य अधिनिर्णयन लागू रहना चाहिये, यद्यपि नैनीताल सम्मेलन म उन्होंने विवादा को सुलझाने के लिये अनिवार्य अधिनिर्णयन को पारस्परिक विचार विमर्श द्वारा प्रतिस्थापित करने की उक्ति दी थी। गिरते हुए लाभो, बड़े पैमाने पर छँटनी और प्रथम पचवर्षीय योजना के अति आवश्यक क्रियान्वयन के कारण अनिवार्य अधिनिर्णयन को बनाये रखने की आवश्यकता का उन्हें अनुभव हुआ था। उन्होंने कहा था कि श्रम सबध विधेयक १९५० म अधिनिर्णयन के सबध म व्यवस्था अपेक्षित विस्तृत विधान म बनी रहेगी। श्री गिरि ने शब्दों म 'पूर्ण विनम्रता के साथ, मान मर्दन के भाव से नहीं मैं कहना हूं कि श्री जगजीवनराम द्वारा लागू की गई श्रम सबध विधेयक की अधिनिर्णयन के सबध म धारा १० बनी हुई है तो वस्तुत मैंने अपने शब्दों का ही लगभग खंडन किया है। किन्तु कुछ प्रस्तावों को पचाने म समय लगा। इसलिए मैं सोचता हूँ कि यह अच्छा हुआ जो थोड़ी देर लगी।"

फिर भी उनका विश्वास बना हुआ है कि श्रमिक और नियोजकों के बीच किये गये पारस्परिक समझौते कानून की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हैं क्योंकि ऐसे समझौते स्थायी होते हैं और बहुत समय तक चलते रहते हैं। वे अनुभव करते हैं कि प्रजातांत्रिक आधार पर संगठित एक श्रमिक संघ अधिक अच्छे परिणाम उपलब्ध कर सकता है। बिना अधिनिर्णयन के विवाद सुलझाये जा सकते हैं और समझौते किये जा सकते हैं। बैंक परिनिर्णय के प्रश्न पर १९५४ में श्री गिरि ने त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने अनुभव किया कि भारत सरकार के सेवायुक्ति करने वाले विभाग अपनी पृथक श्रम नीति चाहते थे। वे विभिन्न दिशाओं की ओर खींचातानी कर रहे थे। और ऐसे में एक एकीकृत नीति कठिन हो गई थी। किन्तु इन सभी उतार चढ़ावों और मन्त्रिमण्डल सहयोगियों के साथ विभेदों के बावजूद भी वे सामूहिक समझौतों की प्रभावशीलता पर अपने विश्वास को डिगा नहीं पाये। वे श्रम और प्रबंध से कहते रहे हैं कि उन्हें अपने आपको विरोधी शिविरों का नहीं समझना चाहिये। दोनों को "सामूहिक सौदाकारी की अपेक्षा सामूहिक विचार पर" अधिक बल देना चाहिये। श्री गिरि का विश्वास है कि औद्योगिक शान्ति के लिये अधिनिर्णयन "प्रथम शत्रु" है। जुलाई १९५४ में प्रतिपादित औद्योगिक शांति योजना में उन्होंने सुझाव रखा था कि ब्रिटेन के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम १९१९ के अनुसार औद्योगिक न्यायालय हो सकते हैं। किन्तु उनके निर्णय कानून के द्वारा नहीं वरन् जनता की राय पर लागू किये जाने चाहिये।

१९५४ में श्री खण्डूभाई देसाई श्री गिरि के स्थान पर केन्द्रीय श्रम मन्त्री बने। उन्होंने अनिवार्य पंचनिर्णय के महत्त्व को स्वीकार करते हुए सामूहिक सौदाकारी के प्रवर्तन की उसी नीति का अनुसरण किया। वस्तुतः अनिवार्य अधिनिर्णय स्थायी हो गया है। अधिकांश राज्य सरकारें अनिवार्य पंचनिर्णय के पक्ष में थी और बनी हुई हैं। यहां तक कि १९५२ में उन्होंने श्री गिरि का समर्थन नहीं किया जब उन्होंने निर्भीक होकर परिनियत पुस्तिका में अनिवार्य पंचनिर्णय को निकाल देने का प्रस्ताव रखा।

श्री देसाई ने १९५५ के मध्य अपने समालोचनात्मक रेडियो भाषणों में से एक में कहा कि श्रम प्रबन्ध सहयोग के बारे में नये सिरे से सोचने की आवश्यकता है। पिछले आठ वर्षों के अनुभव से पता चलता है कि अनिवार्य पंचनिर्णय एक अमिश्रित वरदान नहीं रहा। यद्यपि बड़े पैमाने पर औद्योगिक हड़तालों को टाला गया है किन्तु इसने श्रमिक और नियोजकों के बीच तनाव और पृथक्कत्व का वातावरण पैदा कर दिया है। श्रम प्रबंध सहयोग की समस्या को अनिवार्य पंचनिर्णय ने अत्यावश्यक बना दिया है। फिर भी, जबतक स्वस्थ श्रम प्रबंध संबंध स्थापित नहीं हो जाते, विधान द्वारा स्थापित अधिनिर्णयन तंत्र कार्य करेगा और उसे अवश्य करना चाहिये, ताकि अव्यवस्था या उत्पादन के बंद होने को रोका जा सके। यह

अनुभव किया गया था कि पारस्परिक समझौते पर अधिक बल देने से स्वतः संतोषप्रद परिणाम निकलने की संभावना है फिर भी जब समझौते की अन्य सभी रीतियाँ असफल हो जाती हैं तो अनिवार्य पंचनिर्णय के माध्यम से हस्तक्षेप करने के सरकार के अधिकार को छोड़ देना जोखिमपूर्ण होगा। अनिवार्य पंचनिर्णय के अधिवक्ता इस बात पर सहमत हैं कि इसका प्रयोग यदा कदा और केवल अंतिम आश्रय के रूप में ही किया जाना चाहिए।

भारत सरकार ने बिना राज्य हस्तक्षेप के अपने विवादों का निबटारा करने हेतु दलों को अवसर प्रदान करने के लिये औद्योगिक विवाद विधान में ऐच्छिक पंचनिर्णय की व्यवस्था की। अनिवार्य पंचनिर्णय से सम्बद्ध व्यवस्थाएँ कुछ परिवर्तन के साथ बनी रही। इसलिए औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ में १९५६ में संशोधन किया गया। ऐच्छिक रूप से विवादों को पंचनिर्णय के लिये भेजने के सम्बन्ध में एक नई धारा जोड़ी गई। वस्तुतः अधिनियम में यह एक महत्वपूर्ण अभाव था। लम्बे समय से चलते आ रहे वाद विवाद के उपरान्त भी लगभग ६ वर्ष बाद ऐच्छिक पंचनिर्णय की व्यवस्था की गई। जहाँ कहीं औद्योगिक विवाद प्रारम्भ हो या प्रारम्भ होने की आशंका हो तो निश्चित समझौते के आधार पर इसे नियोजक और कर्मचारियों द्वारा पंचनिर्णय के लिये उन व्यक्तियों को, जिनके नाम समझौते में उल्लिखित हों, भेजा जा सकता है। सरकार द्वारा विवाद को न्यायालय या न्यायाधिकरण को भेजने से पूर्व ही दलों को इस प्रकार पंचनिर्णय के लिये विवाद सन्दर्भित करना होता है। समझौते की एक प्रति सरकार को भेजनी होती है जिसे वह १४ दिन के भीतर प्रकाशित करती है।

यह सुझाव भी दिया गया कि सभी उद्योगों और सेवावृत्तियों को लोकोपयोगी या अलोकोपयोगी सेवाओं के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिये। जहाँ तक लोकोपयोगी सेवाओं का प्रश्न है, सरकार को सभी अनिर्णीत विवादों को अनिवार्य पंचनिर्णय के लिये भेजने और हड़ताल तथा तालाबन्दी पर रोक लगाने का अधिकार होना चाहिये। अलोकोपयोगी सेवाओं के सम्बन्ध में सामूहिक सौदाकारी के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये तथा पारस्परिक सहमति द्वारा विवादों को सुलझाने के लिये एक स्थायी विचार विमर्श तन्त्र के सृजन पर बल देना चाहिए। इन सेवाओं में अनिवार्य पंचनिर्णय का परित्याग करना चाहिये किन्तु सरकार को विचार विमर्श, मध्यस्थता तथा पंचनिर्णय के लिये एक पद्धति तन्त्र के सृजन प्रवर्तन में सहायता प्रदान करनी चाहिये। दलों को उत्साहित करना चाहिये कि वे अधिक से अधिक जहाँ तक सम्भव हो पारस्परिक विचार विमर्श, ऐच्छिक समाधान और पंचनिर्णय पर ही विश्वास रखें। सरकार को अलोकोपयोगी सेवाओं में इस सिद्धान्त के प्रचलन को सावधानीपूर्वक देखना चाहिये और यदि इसे वहाँ सफलता मिलती है तो इसका उपयोग लोकोपयोगी सेवाओं में भी करना चाहिये। किन्तु बहुत से

राज्य इसे अलोकोपयोगी सेवाओं में परीक्षण हेतु भी प्रयोग करने के पक्ष में नहीं हैं।

अनिवार्य पचनिर्णय के अधिवक्ता प्रायः कामबन्दी तथा कार्य दिनों की हानि की गिरती हुई संख्या से अनिवार्य पचनिर्णय की सफलता को सूचित करते हैं। किन्तु इन आंकड़ों को अत्यन्त सावधानी से ही स्वीकार करना चाहिये। पचनिर्णय के परिणामस्वरूप परिहार्य कामबन्दी के पर्याप्त आंकड़े हमारे पास उपलब्ध नहीं हैं। इसी प्रकार हड़तालों की संख्या का अनुमान लगाना जो पचनिर्णय के अभाव में घटी होतीं बहुत कठिन है। इसकी भी बहुत सम्भावना है कि यदि अनिवार्य अधिनिर्णयन की व्यवस्था न होती तो भी हमारे देश में घटित कामबन्दियों की संख्या में कोई प्रभाव न पड़ता और न हड़ताल तथा तालाबन्दी की संख्या में काफी वृद्धि हो गई होती।

यह भी समान रूप में सही है कि सद्भावना और अच्छे सम्बन्धों का प्रायः लोप हो गया है तथा प्रत्येक पक्ष दूसरे के विचारों को लेकर चिंतित है। प्रत्येक पक्ष अपने विरोधी को हटाने के लिए कूटयुक्त योजना में तल्लीन रहता है। वे उद्योग को उन्नत बनाने और व्यवस्थित रखने के अपने दायित्व की उपेक्षा कर बैठे हैं। ऐसी अभिवृत्ति में वस्तुतः औद्योगिक शान्ति स्थापित नहीं होती। वर्तमान शांति से न तो पूंजी को संतोष मिला है और न श्रम को। पचनिर्णय की सरल उपलब्धता ने श्रमिक नेताओं के मस्तिष्क में अनुत्तरदायी विचारों का सृजन कर दिया है। प्रायः ही असम्भव मांग प्रस्तुत की जाती है। विचार विमर्श के लिए शायद ही कभी प्रयत्न किया जाता हो। और कोई भी अपनी बात स्पष्ट रूप से सामने रखने के लिए इच्छुक नहीं होता।

आजकल श्रमिक संघ संगठन एक प्रकार की विधि सहायता समितियां हो गये हैं। वे अपनी सारी शक्ति विभिन्न न्यायाधिकरणों और न्यायालयों में मुकदमा लड़ने और बाल की खाल निकालने वाले तर्कों में लगा देते हैं। जिस शक्ति को श्रमिक संघ आन्दोलन को स्वस्थ और सशक्त बनाने में लगाना चाहिये उसका दुरुपयोग और अपव्यय किया जा रहा है। सदस्यों की अस्थिरता, अर्थाभाव, अपर्याप्त क्रियाकलाप, सदस्यों की सामान्य उदासीनता, अन्तराश्रीय स्पर्धा और राजनैतिक उद्देश्यों के लिए श्रमिक संघों का शोषण अब भी है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि पचनिर्णय की सारी सुविधाएँ उपलब्ध होने के परिणामस्वरूप श्रमिक संघ कुकुरमुत्ते की तरह पैदा हो गये हैं। उनमें से एक अच्छी संख्या में संघ जब न्यायाधिकरणों या न्यायालयों के समक्ष मुकदमा हार जाते हैं तो उनका विलोप हो जाता है। ऐसे अल्पजीवी श्रमिक संघों की उत्पत्ति जिनका अस्तित्व ही बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर करता है श्रमिक संघ आन्दोलन को कमजोर बना देता है।

विभिन्न अधिनिर्णय मंडलों, न्यायाधिकरणों और न्यायालयों के परस्पर

विरोधी परिनिर्णयों ने सम्भ्रम और अनिश्चितता पैदा कर दी है। फलतः औद्योगिक योजना और प्रगति कठिन हो जाती है। उद्योगपतियों को श्रम प्रमापों, जिन्हें उन्हें मानना होगा के बारे में पूर्ण सूचना होनी चाहिये ताकि वे उनके लिये पर्याप्त व्यवस्था कर सकें। औद्योगिक सम्बन्ध नीति की प्रमुख बातों को स्पष्ट और निश्चित रूप से किसी उपयुक्त विधान के अन्तर्गत उल्लिखित कर देना चाहिये। औद्योगिक वातावरण में इच्छित परिवर्तन सामूहिक सौदाकारी पर अत्यधिक विश्वास रखकर लाया जा सकता है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि औद्योगिक विवादों को सुलझाने की रीति के रूप में अनिवार्य पंचनिर्णय की उपलब्धता से औद्योगिक संघर्षों के आन्तरिक निपटारे की प्रक्रिया को बाधा पहुँचती है। विवादों के ऐच्छिक निपटारे की प्रक्रिया को तबतक पूर्णतया प्रयोग में नहीं लाया जा सकता जबतक अनिवार्य पंचनिर्णय की अवस्थिति रहती है। अनिवार्य पंचनिर्णय के अभाव में दल विचार-विमर्श करने और किसी स्थायी समझौते पर पहुँचने के लिये सक्षम होंगे तथा समझौते के लिये सशक्त भावना भी पैदा होगी। विवादियों और सामान्य समुदाय को होने वाली कठिनाइयों की तब अधिक स्पष्ट और विशद अनुभूति होगी। जब उन्हें विवाद के परिणामस्वरूप होने वाली हड़ताल या तालाबन्दी के परिणामों की पूर्ण अनुभूति होगी तब वे विभेदों को सुलझाने के लिये अपनी ओर से भरसक प्रयत्न करेंगे तथा उसके लिये प्रयत्नशील और उत्सुक होंगे। राज्य हस्तक्षेप नियोजक और कर्मचारियों के सर्वोत्तम हित में नहीं है। औद्योगिक शान्ति न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों के निर्णयों द्वारा आरोपित नहीं की जा सकती है। इसे तो स्वयमेव ही ठोस बनाना है। अधिनिर्णायकों के निर्णयों से तो केवल कटुता, असंतोष, बद्धमूल शत्रुता और मनमुटाव का प्रजनन होता है। उनमें दलों की नैतिकता विनष्ट होने और सदैव के लिये बाहरी सहायता पर आधारित होने की सम्भावना भी रहती है। पृथकता और अलगाव की भावना जो उद्योग में विकसित होती है श्रम और पूँजी के बीच साझेदारी की भावना के विकास में घातक है। उसमें श्रमिक संघवाद के विकास में भी बाधा पड़ेगी। श्रमिक संघों पर श्रमिकों का विश्वास समाप्त हो जायगा। राज्य पर अत्यधिक निर्भरता का परिणाम संगठन में शिथिलता और श्रमिक संघों में अनुशासन की कमी के रूप में प्रतिफलित हो सकता है। इससे उनकी सुदृढ़ता और संगठनात्मक शक्ति पर भी प्रभाव पड़ेगा। यह श्रमिकों के व्यक्तित्व की वृद्धि और विकास को ही नहीं बल्कि अपने आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की क्षमता तथा उनके उत्तरदायित्वों और दायित्वों की भावना को भी प्रभावित करेगी।

पंचवर्षीय योजनाओं के सफल कार्यान्वयन के लिये यह आवश्यक है कि श्रम और प्रबन्ध के बीच समुदाय के हित की भावना से सम्पर्क स्थापन के लिये कदम उठाये जायें। उनको प्रोत्साहित करना चाहिये कि वे अधिनिर्णयन की अपेक्षा अपने विभेदों को वार्तालाप और समझौते द्वारा निपटायें। यदि दलों को वार्तालाप में असफलता

सकती हैं तो उन्हें अन्य विवादों को ऐच्छिक पंचनिर्णय के लिये सौंप देना चाहिये। श्रमिक अच्छे प्रबन्ध के लिये श्रमिकों को नियोजकों के साथ उत्तरदायित्व बाँट लेने चाहिये। वे उद्योग के निर्देशन और नियन्त्रण में अपना हाथ चाहते हैं। वस्तुतः समय भी आ गया है जब श्रमिकों को प्रबन्ध में हिस्सा दिया जाय। कुछ सदस्यों ने अगस्त १९५५ में कम्पनी विधेयक पर बहस के समय संसद में इस बात पर जोर भी दिया। श्रम मन्त्रालय ने इस विषय पर एक टिप्पणी योजना आयोग को भेजी थी। बाद में कुछ चुने हुए संस्थानों में उद्योग के प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग ग्रहण की योजना लागू भी कर दी गई है। औद्योगिक क्षेत्र में इस प्रकार के परिवर्तन को पूर्ण मान्यता है कि श्रम और प्रबन्ध के बीच उच्च सीमा तक निकट सहयोग होना चाहिये जिसे अभी तक व्यावहारिक रूप में सम्भव नहीं समझा जाता रहा है।

योजना आयोग ने कुछ सीमाओं के साथ श्रमिकों के संघ बनाने, संगठन और सामूहिक सौदाकारी करने के अधिकार को औद्योगिक सम्बन्धों के आधार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी है। उन्होंने कहा है कि विवादों को सुलझाने के लिये जो एक उद्योग में नियुक्त श्रमिकों के सामान्य हितों को प्रभावित करते हैं सामूहिक प्रयत्न किये जाने चाहिये। नियोक्ताओं और श्रमिक संघों को अपनी समस्यायें हल करने के लिये ऐच्छिक नीतियाँ ही अपनानी चाहिये। बाहरी सहायता से या उसके बिना वह निकट बैठकर आपस में विवादों का समाधान करना चाहिये। यदि वे अपनी समस्याओं को सुलझाने में स्वयं असमर्थ हैं तो उन्हें ऐच्छिक पंचनिर्णय के लिये उनको अर्पित कर देना चाहिये।

बिना कष्ट के किये विवादों को सुलझाने के लिये काफी संख्या में समझौता द्वारा लाने में सामूहिक सौदाकारी की नीति की वास्तविक प्राप्ति समझी जायगी। नियोक्ताओं और कर्मचारियों के लिये यह स्वाभाविक सम्मानीय और दक्षशक्ति पूर्ण मार्ग होगा। छोटे-छोटे विवादों को वार्तालाप और समझौता द्वारा मामलों में सुलझाया जा सकता है। सामूहिक सौदाकारी का वास्तविक मूल्य तो वस्तुतः समझौता द्वारा आंका जाता है जिसमें कार्य की अवस्थाओं के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण शर्तें निहित होती हैं तथा जिनसे औद्योगिक सम्बन्ध को आधार मिले विवादों का सुलझाव या व्यवस्था होती है। अभी हाल ही में अहमदाबाद में किया गया समझौता एक अच्छा उदाहरण है। देश के विभिन्न स्थानों में भी इसी प्रकार के समझौते होने चाहिये। हड़ताल या तालाबन्दी के अभाव या उनकी व्यापकता और गहराई के अवसान की अपेक्षा यह मानसिक अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम औद्योगिक उत्पादन के विभिन्न दलों द्वारा स्वयं निर्मित स्थायी औद्योगिक शान्ति चाहते हैं। यदि अशान्ति और असंतोष खतरनाक दशा में विद्यमान रहे तो कृत्रिम या अगणित शान्ति व्यर्थ है। सामूहिक समझौता की भी स्थिरता और स्थायित्व परिनिर्णयों में नहीं होता है।

किन्तु वर्तमान स्थिति बिलकुल ही सन्तोषपूर्ण नहीं है। सामूहिक सौदाकारी

की जड़ें जमी नहीं है। उसकी सफलता भी, जिसे सभी चाहते थे, आशा से बहुत कम रही है। राज्य ने अधिकाधिक अनिवार्य पंचनिर्णय पर भरोसा किया है। श्रमिकों ने भी अपना विश्वास अनिवार्य पंचनिर्णय, राज्य नियंत्रण और राज्य विनियमन पर प्रगट किया है। नियोजकों ने भी विवादों के एच्छिक निपटारे को महत्त्व नहीं दिया। वर्तमान स्थिति में प्रत्येक दल सामूहिक सौदाकारी में विश्वास तो प्रगट करता है किन्तु कोई भी दल उसे व्यवहार में नहीं अपनाना चाहता। उनमें से प्रत्येक की अपनी सीमायें हैं। जबतक यह स्थिति बनी रहती है, सामूहिक सौदाकारी की अधिक प्रगति की आशा नहीं की जा सकती है।

वर्तमान समय में मतैक्य अनिवार्य पंचनिर्णय के पक्ष में है। किन्तु राज्य हस्तक्षेप की मात्रा और स्वरूप तथा वह अवस्था जब इसका प्रयोग करना चाहिये के विषय में कोई सर्वसम्मति नहीं है। इस विषय पर विभिन्न दलों के मत अस्पष्ट और परिवर्ती हैं तथा विचारधाराओं में बहुत अधिक सम्भ्रम हैं। इसे कोई इन्कार नहीं करेगा—कि कभी-कभी और कुछ परिस्थितियों में अनिवार्य पंचनिर्णय आवश्यक और वांछनीय होता है। राज्य के हस्तक्षेप का स्वरूप, मात्रा और समय अवसर की आवश्यकता द्वारा निर्धारित होना चाहिये। राज्य को औद्योगिक संबंधों के क्षेत्र में सामाजिक न्याय और कमजोर दल को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से हस्तक्षेप करना चाहिये ताकि अन्तत: वह अपने पैरों पर स्वयं खड़ा हो सके और अपने विभेदों को बातचीत और सामूहिक सौदाकारी द्वारा सुलझायें। ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिये जिससे श्रमिक संघों में कमजोरी आये तथा विवादों के आंतरिक और एच्छिक निपटारे में बाधा पड़े।

हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि कानून के शब्दों की अपेक्षा औद्योगिक संबंधों के नियमन के लिये कानून का निष्पादन तथा कानून के क्रियाकरण के लिये उचित वातावरण का निर्माण अधिक महत्त्वपूर्ण है। तीनों दलों—राज्य, नियोजक और कर्मचारी—को स्वस्थ और प्रगतिवादी अभिवृत्ति का विकास करना चाहिये तथा औद्योगिक संबंधों की समस्याओं को सहयोग और समझौते की भावना से हल करना चाहिये। यह नहीं भूलना चाहिये कि ये दल शून्य स्थिति में कार्य नहीं कर रहे हैं। वे सामान्य समुदाय का एक अंग हैं। औद्योगिक संबंधों का कोई एकीकृत तथा सर्वांगीणी उपचार उस समय तक संभव नहीं है जबतक हम इस विषय पर साधारण जनता को शिक्षित और प्रबुद्ध न करें। दुर्भाग्यवश औद्योगिक संबंधों के इस पक्ष पर समुचित बल और ध्यान नहीं दिया गया है। सभी दलों द्वारा औद्योगिक संबंधों की समस्याओं में समाज को परिचित कराने के लिये गम्भीर प्रयत्न किये जाने चाहिये। प्रबोधित जनमत श्रम और प्रबंध के बीच बिना उत्पादन को अन्यवस्थित किये विवादों के शांतिपूर्ण हल को प्रवर्तन ही नहीं बल्कि देश के हित में दोनों दलों के बीच सहयोग की भी वृद्धि करेगा।

केन्द्र और प्रत्येक राज्य में औद्योगिक संबंधों के कानून का पालन करवाने और औद्योगिक शांति बनाये रखने के लिये औद्योगिक संबंध तंत्र की स्थापना कर दी गई है। इस तंत्र को एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना है क्योंकि इसके द्वारा श्रम प्रबंध सहयोग के एक नये युग का सूत्रपात हो सकता है। सामूहिक सौदाकारी की गति और उसकी सफलता केवल औद्योगिक संबंधों के कानून जिसमें अनिवार्य पंचनिर्णय के लिये चाहे व्यवस्था हो या न हो पर ही नहीं बल्कि समुचित प्रकार के सांविधिक और असांविधिक औद्योगिक संबंध तंत्र तथा उसे चलाने वाले उत्तरदायी सेविवर्ग पर भी निर्भर करेगी। तंत्र का परिपालन योग्य और प्रशिक्षित व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिये जो सद्भावी रूप से सराधन पर विश्वास रखें और उसके लिये उनमें क्षमता तथा अभिरुचि हो और जिन पर दोनों दलों द्वारा स्पष्ट विश्वास किया जा सके। औद्योगिक संबंध तंत्र के लिये सेविवर्ग को चुनने की वर्तमान रीति में काफी सुधार वांछनीय है। उन योग्यताओं और विशेषताओं का वर्णन करना जो एक अच्छे श्रम अधिकारी, सराधन अधिकारी और पंचनिर्णायकों में होनी चाहिये कठिन है। इन योग्यताओं को पहचानने और उचित प्रकार के व्यक्तियों को इस व्यवसाय के लिये चुनने की समुचित रीतियाँ प्रकल्पित और प्रयुक्त करनी होंगी। औद्योगिक संबंध व्यवसाय के लिये उन्हें विस्तृत और गहन प्रशिक्षण भी देना होगा।

वर्तमान समय में अधिकांश राज्यों द्वारा सराधन अधिकारियों की नियुक्ति उद्योगों के लिये न होकर क्षेत्रों के लिये की जाती है। यह अधिक अच्छा होगा यदि सराधन अधिकारियों को क्षेत्रों की अपेक्षा उद्योगों के आधार पर नियुक्त किया जाय। इससे वे उद्योगों के विभिन्न दलों के साथ स्वस्थ और व्यक्तिगत संबंध स्थापित कर सकते हैं तथा उद्योग की भीतरी और बाहरी कार्यकारी के विषय में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त औद्योगिक संबंध प्रशासन में पर्याप्त अधिकारी होने चाहिये ताकि वे विभिन्न समस्याओं की ओर अधिक व्यक्तिगत ध्यान दे सकें। यह उनका कर्त्तव्य है कि राज्य की औद्योगिक संबंध नीति की समुचित व्याख्या करें तथा श्रम प्रबंध को अपने विभेदों को परस्पर और मैत्रीपूर्ण ढंग से सुलझाने में सहायता करें। राज्य को ऐच्छिक आधार पर द्विदलीय विचार विमर्श को प्रोत्साहन देना चाहिये। इस उद्देश्य के लिये जो तंत्र स्थापित किया गया है उसे सशक्त और उन्नत बनाना चाहिये। जिन उद्योगों और स्थानों में यह तंत्र नहीं है जहां इसकी स्थापना के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिये। विचार विमर्श तंत्र की स्थापना सरलता से की जा सकती है जहां नियोजकों और श्रमिकों के संगठन पर्याप्त विकसित और प्रगतिशील हैं। मजदूरी और सेवा की अवस्थाओं की समस्यायें प्रत्येक उद्योग में श्रमिक और नियोजक के प्रतिनिधियों द्वारा अपने संयुक्त विचार विमर्श तंत्र के माध्यम से सुलझानी चाहिये। किसी ऐसी कार्यवाही जो इसके मूल्य और क्षमता के प्रतिकूल हो के परिहरण के लिए सर्वाधिक सावधानी बरतनी चाहिये। जब संयुक्त विचार विमर्श

तंत्र अस्तित्वहीन या अपर्याप्त हो तो सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो सकता है किन्तु जहाँ तक सभव हो सरकार को अनिवार्य पचनिर्णय के अधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि वार्तालाप द्वारा सफलता न मिले तो उन्हें अनिवार्य साधन द्वारा विवादों को सुलझाने के लिये सत्यनिष्ठ प्रयत्न करने चाहिये। और जब यह रीति भी असफल हो जाय अथवा उसे कार्य रूप में लाना सम्भव न हो, तो उस स्थिति में ही राज्य हस्तक्षेप करके विवाद को पचनिर्णय के लिये निर्देशित कर सकता है। बधनकारी और अबधनकारी अनिवार्य पचनिर्णय के प्रकार की भी व्यवस्था कर दी जानी चाहिये। अबधनकारी अनिवार्य पचनिर्णय का प्रयोग केवल महत्वपूर्ण विवादों और आपातिक स्थितियों में करना चाहिये। जहाँ तक बधनकारी अनिवार्य पचनिर्णय का प्रश्न है, न्यायाधिकरणों के परिनिर्णय दोनों दलों की सम्मति से लागू किये जायेंगे। न्यायोद्दीप्त जनमत विवादियों पर दबाव डालेगा और वे शनैः शनैः अपने विभेदों को स्वयं सुलझाना सीख जायेंगे। सामूहिक सौदाकारी के लिये यह बहुत बड़ा उद्दीपन होगा। यदि वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत राज्य अनिवार्य पचनिर्णय के अधिकार को छोड़ने के लिये तैयार नहीं है तो औद्योगिक सबध कानून को इन्हीं दो प्रकार के पचनिर्णयों की व्यवस्था करनी चाहिये। इस पर विचार करने का अधिकार राज्य को ही होगा और उसके निर्णय के अनुसार इसका प्रयोग किया जायगा। बोधगम्य राज्यनीति तथा दोनों प्रकार के पचनिर्णयों का समय की आवश्यकतानुसार विवेकसंगत प्रयोग पर्याप्त समय तक औद्योगिक उत्पादन की अव्यवस्था को रोकने तथा सामूहिक सौदाकारी को सफल बनाने में सहायक होगा।

श्रमिक विधानों के क्षेत्र में बहुत देर बाद राज्य महत्वपूर्ण श्रम विषयों, जैसे—मजदूरी काम के घंटे, छुट्टी, सामाजिक बीमा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण तथा काम की अन्य अवस्थाओं के सबध में न्यूनतम आवश्यकताओं को निर्धारित करने की ओर उन्मुख हो पाया है। इससे श्रमिकों को शोषक परिस्थितियों तथा अमाननीय व्यवहारों से बचाने के लिये सरकार द्वारा बारम्बार हस्तक्षेप की आवश्यकता समाप्त हो जायगी। राज्य को श्रम प्रबंध सबधों में, उतनी जल्दी-जल्दी जितना कि अब करना पड़ता है, हस्तक्षेप भी नहीं करना पड़ेगा। जहाँ तक सभव हो, श्रमिकों के इस उत्पादन से श्रमिक लाभ सामूहिक सौदाकारी द्वारा नियमित होने चाहिये।

१३

वैधानिक क्रिया

श्रमिक सघो ने अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये राज्य नियत्रण तथा नीतियो को प्रभावित करके श्रम अधिनियमो को पारित कराने का प्रयत्न किया है। भूतकाल मे श्रमिक सघो को इस रीति मे अधिक सफलता नही मिली क्योंकि अबन्धन नीति के सिद्धात के कारण राज्य ने श्रम प्रबध सबधो को नियमित करने से इन्कार कर दिया था। इस रीति के सापेक्षित अमहत्त्व का एक दूसरा कारण विधान सभाओ मे नियोजको का अत्यधिक प्रभुत्व था।

राजनतिक परिस्थितियाँ बदली। अबन्धन नीति के स्थान पर राज्य नियत्रण और विनियमन नीति को मान्यता दी गई। आर्थिक मामलो मे राज्य ने अधिक रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया। चूकि कल्याणकारी राज्य के आदर्श को मान्यता दी गई थी इसलिए राज्य ने समाज के सभी वर्गों को सामाजिक न्याय प्रदान करने की जिम्मेदारी भ्रोढ ली। श्रमिक वर्गों को मतदान का अधिकार मिला तथा उनकी शक्ति बढ गई। वे विभिन्न मामलो मे हस्तक्षेप तथा मत व्यक्त कर सकते हैं जिनकी अधिकृत सरकार अवहलना नही कर सकती। श्रमिको को शोषण से बचाना तथा उनके लिये किन्ही न्यूनतम प्रमापो की गारन्टी देने हेतु श्रम अवस्थाओ का नियमन करना राज्य की घोषित नीति है। श्रमिको के हितो के लिये अधिकतम वधिक सुरक्षा प्राप्त करना श्रमिक सघ कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। वे आशा करते हैं कि राज्य उनके कल्याण की रक्षा करे प्रगतिशील श्रम विधानो का अधिनियमन करे।

ये उद्देश्य केवल तभी प्राप्त किये जा सकते हैं जब श्रमिको को विभिन्न विधान सभाओ और निर्वाचित निकायो मे अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो तथा जहाँ उनकी आवाज सुनी जाय। इसके अतिरिक्त मताधिकार पर्याप्त विस्तीर्ण होना चाहिये ताकि अन्य प्रतिनिधियो के निर्वाचन मे भी वे अपना महत्त्व अनुभव कर सकें। मतदाताओ के लिये सम्पत्ति या उच्चशैक्षणिक योग्यता की कोई बाध्यता नही होनी चाहिये। इस रीति के प्रभावशाली प्रयोग के लिये सार्वत्रिक वयस्क मताधिकार आवश्यक है।

किन्तु समुचित वधिक उपायो का अधिनियमन एक लम्बी प्रक्रिया है। प्राय विधि के अधिनियमन मे आवश्यकता से अधिक समय लग जाता है। कार्यवाही बड़ी

मंद गति से चलती है। फिर विधायिका के बहुमत को पक्ष में करने के लिये बहुत अधिक प्रचार और सम्मिलित प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। संघों के अथक प्रयत्न करने पर भी लाभ की मात्रा बहुत कम हो सकती है। केवल कुछ ही विधान सबसे बड़ी बुराइयों को दूर करने के लिये पारित किये जा सकते हैं। श्रमिक संघों की मांगों की पूर्ति केवल आंशिक रूप में हो सकती है। यह प्रक्रिया कठोर और थका देने वाली भी है। लाभ इसमें यह है कि जब एक बार वैधानिक नियम बन जाते हैं तो उन्हें स्थायित्व और सार्वभौमिकता मिल जाती है। इन्हें सरलता से विघटित नहीं किया जा सकता है। यह भी सम्भव है कि समय की गति के साथ साथ ऐसे विधान अधिकाधिक प्रगतिशील बनते जायें। इससे औद्योगिक संघर्ष कम और आर्थिक प्रतिरोध न्यूनतम रह जाता है। इसलिए यह रीति श्रम मामलों, जो महत्त्वपूर्ण हैं तथा जिनके स्थायी न्यून प्रमाप निर्धारित करने की आवश्यकता है, को नियमित करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारत में उपलब्ध परिस्थितियों ने श्रमिक संघों को वैधिक अधिनियमन की रीति के प्रभावशाली उपयोग के लिये प्रोत्साहित नहीं किया। विधान सभाओं में श्रमिकों द्वारा निर्वाचित अथवा नामांकित प्रतिनिधि भी नहीं थे। श्रमिक संगठन पर्याप्त विकसित न होने के कारण अन्य प्रतिनिधियों के निर्वाचन में वे अपना महत्त्व नहीं जता सकते थे। श्रमिक समस्याओं के प्रति राजनीतिज्ञ साधारणतया उदासीन थे। सुधार अधिनियम (Reforms Act) १९१९ ने प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान सभाओं में श्रम के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करके इस दिशा में साधारण शुभारम्भ किया। किन्तु यह प्रतिनिधित्व अपर्याप्त था। केन्द्रीय विधान सभा के १४० सदस्यों में से श्रमिकों का केवल एक प्रतिनिधि था जबकि नियोजकों के २० थे। प्रान्तीय विधान सभाओं में यूरोपियनों, भूस्वामियों, वाणिज्य और उद्योग, बागान तथा खान के लिये ८५ रक्षित सीटों की तुलना में श्रमिकों को केवल ९ सीटें दी गई थीं। स्पष्टतया प्रतिनिधित्व की यह पद्धति नियोजकों के पक्ष में अधिक थी। श्रमिकों का प्रतिनिधित्व इतना कम और अमहत्त्वपूर्ण था कि उनके प्रतिनिधि प्रभावशाली ढंग से कार्य नहीं कर सकते थे।

संघों के मार्ग में अत्यन्त सीमित मताधिकार एक सबसे बड़ी बाधा थी। मतदाताओं के लिये सम्पत्ति और शैक्षणिक योग्यताओं का प्रतिबन्ध था। इन शर्तों के कारण लगभग सभी श्रमिक मताधिकार से वंचित कर दिये गये थे क्योंकि वे इन शर्तों को पूरा नहीं कर सकते थे। उनकी निर्धनता के कारण वे सम्पत्तिशाली नहीं हो सकते थे। तथा उनमें शिक्षा के अभाव और श्रमिक शिक्षा के प्रति राज्य की उदासीन अभिवृत्ति ने उनके मताधिकार प्राप्त करने में रुकावट डाली।

श्रमिक प्रतिनिधित्व की पद्धति में बहुत दोष भी थे। श्रमिकों की कम संख्या में रक्षित सीटों के लिये निर्वाचन की व्यवस्था भी नहीं थी। इन सीटों के लिये सब

धित सरकारों द्वारा श्रमिक प्रतिनिधि नामांकित किये जाते थे। प्रतिनिधित्व की यह पद्धति बुरी थी तथा श्रमिक इस शंका की दृष्टि से देखते थे। यह पूर्णतया अप्रजातान्त्रिक थी जिसमें श्रमिक प्रतिनिधियों को कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं थी।

श्रमिकों के प्रति राज्य की अभिवृत्ति भी असहायक और कभी कभी प्रतिरोधी थी। चूंकि प्रारम्भिक उद्यमी विदेशी थे इसलिए राज्य के लिये यह स्वाभाविक था कि यह श्रमिकों के विरुद्ध नियोजकों को समर्थन प्रदान करे। राज्य पूंजीवादियों के हितों की रक्षा करना चाहता था। इसने श्रमिक संघों पर सन्देह किया क्योंकि राजनैतिक नेता श्रमिक आन्दोलन से सम्बद्ध थे। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा ने अपने आठवें अधिवेशन में भारत सरकार की नीति का विरोध करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया जो सभा के साथ संघों के संवर्धन तथा व्यवसाय संघ अधिनियम के अन्तर्गत उनके पंजीकरण में बाधक थी। सभा ने अपने नवें अधिवेशन में पुनः हड़ताल या तालाबन्दी के लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवसर पर हड़तालियों को समर्पण हेतु अभित्रासित करने के लिये पुलिस और मिलिटरी की नियुक्ति का बलपूर्वक विरोध किया। प्रस्ताव में आगे कहा गया—"सभा का यह मत है कि नियोजकों के हित में पुलिस का प्रयोग तथा श्रमिकों को नियोजकों के विरुद्ध सुरक्षा न प्रदान करना जिसकी उन्हें प्राय आवश्यकता होती है औद्योगिक विवादों में सरकार की तटस्थता और निष्पक्षता की घोषित नीति के विपरीत है।

हमारे देश में बहुत प्रारम्भ से ही श्रमिकों के अधिक प्रतिनिधित्व और मताधिकार की विस्तीर्णता के लिये मांगें प्रस्तुत की गई थीं। श्री बी० पी० वाडिया जो मद्रास श्रमिक संघ के पीछे निदेशन शक्ति थे ने १६१६ में ही श्रमिकों के मताधिकार की मांग की जब वे भारतीय सुधारों के संबंध में संसद की दोनों सभाओं की संयुक्त समिति जिसकी अध्यक्षता लार्ड सेलबार द्वारा की गई के समक्ष उपस्थित हुए। इसी प्रकार श्री एन० एम० जोशी ने बम्बई प्रान्तीय श्रमिक संघ सभा के सम्मुख भाषण देते हुए कहा, "हम उस समय मिल रहे हैं जब केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं के लिये चुनाव लड़े जा रहे हैं। हम इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकते हैं कि हमारे देश के श्रमिक वर्गों का वस्तुतः उनमें कोई प्रतिनिधित्व नहीं है और यह हमारा कर्त्तव्य होगा कि हम श्रमिकों के अधिकारों की निर्भीकता से मांग करें। इसलिए उनकी संख्या के अनुपात में हमें श्रमिक वर्गों के प्रतिनिधित्व की मांग करनी चाहिये। हमें श्रमिक वर्गों के लिये स्थानीय निकायों तथा अन्य वधानिक संस्थाओं में भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व की मांग करनी चाहिये।" श्री वापतिस्ता ने उसी सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए विचार प्रकट किये कि "अब यह अनिवार्य है हमारी विधान सभाओं में श्रमिकों के प्रतिनिधि होने चाहिए जिससे उनके हितों का प्रवर्तन और उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा हो सके। यह उचित ही है कि श्रमिक संगठनों को वधानिक संस्थाओं के लिये सदस्यों के निर्वाचन में नियोजक संगठनों के समान स्तर पर रखना

चाहिए अथवा कम से कम श्रम संगठनों की सलाह पर सरकार को नामांकन करना चाहिये।"

अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा के विभिन्न अधिवेशनों में भी विस्तीर्ण मताधिकार की मांग करते हुए प्रस्ताव पारित किये गये ताकि सरकारी संस्थाओं में श्रमिकों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो सके। अन्य श्रमिक सभा और श्रमिक नेताओं ने भी विभिन्न संस्थाओं में श्रमिकों के वर्तमान से अधिक अच्छे प्रतिनिधित्व की वांछनीयता पर बल दिया। भारत सरकार अधिनियम १९३५ के सम्बन्ध में नियुक्त विभिन्न आयोग और समितियों ने भी श्रम प्रतिनिधित्व की समस्या पर विचार किया। रॉयल कमीशन ने भी कहा कि "ऐसी बहुत सी दिशायें हैं जिनमें श्रमिकों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व से उनका और समाज का भी हित होना चाहिए। सर्वप्रथम, उन उपायों, विशेषकर श्रम को प्रभावित करने वाले पर समुचित रूप से विचार करने के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिकों की इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं को उपस्थित प्रतिनिधि ग्रहण और उन्हें ठोस प्रस्तावों में प्रस्तुत करने में समर्थ हों। किन्तु श्रम कल्याण विशुद्ध रूप से तथा कथित श्रम उपायों पर ही निर्भर नहीं करता। संपूर्ण रूप में नीति और विधानों की प्रवृत्ति पर इसकी भलाई निर्भर करती है। इस संबंध में हितों की रक्षा के लिये अधिक पर्याप्त श्रम प्रतिनिधित्व आवश्यक है और यदि संगठित श्रमिकों को अवसर प्रदान किया जाय तो वे राष्ट्रमंडल में अच्छी सरकार का महत्व पूर्ण योगदान दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिकों का उचित प्रतिनिधित्व स्वयं शिक्षाप्रद है। राजनैतिक संस्था के अंश के रूप में इनके दावों की मान्यता से सम्पूर्ण समाज के साथ वृद्धोत्तर उत्तरदायित्व और समुदाय की भावना उद्भूत होगी। इसके विपरीत, राष्ट्र परिषदों में श्रमिकों को उचित भाग लेने से वंचित करने पर वे अनिवार्यतः, अन्य माध्यमों द्वारा अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये अनावश्यक रूप से विश्वास करने लगेंगे जिससे उनका और राष्ट्र का अहित होगा।'

श्रमिकों के अधिक प्रतिनिधित्व की आवश्यकता को भारत सरकार अधिनियम १९३५ के अन्तर्गत स्वीकार किया गया। तदनुसार केन्द्रीय विधान सभा में श्रमिकों के स्थान १ से बढ़ाकर १० तथा प्रान्तीय विधान सभाओं में इनकी संख्या ६ से ३८ कर दी गई। उद्योग और वाणिज्य के साथ कुछ अधिक या कम श्रमिकों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इस प्रकार केन्द्रीय विधान सभा में उद्योग और वाणिज्य के लिये रक्षित स्थान ११ थे जबकि श्रमिकों के १०। प्रान्तीय विधान सभाओं में भी केवल आसाम और बंगाल को छोड़कर कुछ कम या अधिक समानता को स्वीकार किया गया था। श्रमिक प्रतिनिधियों के नामांकन की अप्रजातान्त्रिक रीति के स्थान पर श्रमिक प्रतिनिधियों के निर्वाचन की पंजीकृत श्रमिक संघ निर्वाचन क्षेत्रों या विशेष श्रमिक निर्वाचन क्षेत्रों के द्वारा व्यवस्था की गई। श्रमिक प्रतिनिधियों के निर्वाचन की रीति के संबंध में विभिन्न मत थे। रायल श्रमिक आयोग ने पंजीकृत

श्रमिक सघो द्वारा निर्वाचन का समर्थन किया। आयोग का मत था कि यह रीति सघवाद के स्वस्थ विकास मे सहायक होगी। विशेष श्रम निर्वाचन क्षेत्र को इसने सामयिक व्यवस्था के रूप मे स्वीकार किया। भारत सरकार अधिनियम १९३५ ने श्रमिको के प्रतिनिधित्व की निम्नलिखित व्यवस्था की —

सारणी ५६

श्रमिक प्रतिनिधित्व अधिनियम १९३५

प्रान्त	व्यवसाय सघ निर्वाचन क्षेत्रो के अनुसार			विशेष श्रम निर्वाचन क्षेत्रो के अनुसार			योग
बम्बई	वस्त्र सघ	३	६	वस्त्र (शोलापुर)	१		७
	रैलवे सघ	२					
	सामुद्रिक सघ	१					
बगाल	रैलवे सघ	१	२	खनन	१	६	८
				रोपण	१		
	जल यातायात	१		सामान्य	४		
मद्रास	रैलवे सघ	१	२	वस्त्र	१	४	६
				फक्ट्री	२		
	वस्त्र सघ	१		मोदी	१		
उत्तरप्रदेश	व्यवसाय सघ	१		फक्ट्री	२		३
पजाब	उत्तरी पश्चिमी रैलवे सघ	१		सामान्य	२		३
बिहार	खनन सघ	१		फक्ट्री	२		३
केन्द्रीय प्रान्त	नागपुर सघ	१		फक्ट्री	१		२
आसाम	—			विभिन्न जिले	४		४
उडीसा	—			सामान्य	१		१
सिन्ध	—			सामान्य	१		१
योग		१४			२४		३८

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि अधिनियम १९३५ ने श्रमिक सघ निर्वाचन क्षेत्रो को प्रमुखता नही प्रदान की। प्राथमिकता विशेष श्रम निर्वाचन क्षेत्रो को दी गई क्योंकि ३८ श्रमिक प्रतिनिधियो म से २४ का चुनाव इनके द्वारा होना था।

एक श्रमिक संघ को निर्वाचन इकाई होने के लिये अधिनियम में निम्नलिखित शर्तें रखी गई थी

१ पूर्णतया या मुख्यतया औद्योगिक या निर्वाह निधि के उद्देश्यो के लिए ही एक प्रामाणिक श्रमिक संघ होना चाहिए ।

२ इसकी स्थिति दो वर्ष की तथा पंजीकरण कराये कम से कम एक वर्ष होना चाहिए ।

३ प्रमाण पत्र देने के पूर्व सारे वित्तीय वर्ष में इसकी सदस्यता कम से कम २५० रहनी चाहिये तथा सदस्यों ने उस सम्पूर्ण वर्ष के लिए सदस्यता शुल्क जमा कर दिया हो ।

४ रजिस्ट्रार द्वारा पुस्तकों के निरीक्षण और लेखा की परीक्षा के संबंध में श्रमिक संघ अधिनियम १९२६ के अन्तर्गत आरोपित किसी भी आवश्यकता की पूर्ति इसके द्वारा की गई हो ।

विभिन्न प्रान्तों में इस उद्देश्य के लिए केवल २१९ संघों को मान्यता प्रदान की गई गई थी । निम्नलिखित सारणी में प्रान्तो के आधार पर इन संघो की संख्या दिखाई गई है ।

सारणी ५७

प्रान्तीय विधान सभाओं के निर्वाचन के लिये मान्य श्रमिक संघ

प्रान्त	संघों की संख्या
बंगाल	१०१
मद्रास	४२
बम्बई	१५
केन्द्रीय प्रान्त और बरार	२
बिहार	१
पंजाब	१६
उत्तर प्रदेश	२०
सिन्ध	१०
उडीसा	२
योग	२१९

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में यह व्यवस्था पूर्णतया परिवर्तित हो गई है। श्रमिकों के लिये कोई रक्षित स्थान नहीं है किन्तु भारतीय संविधान में वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने के कारण श्रमिकों का मत प्रभावशाली हो गया है। श्रमिकों की स्थितियों में सुधार के लिये निर्वाचित मन्त्रालयों और उनकी योजनाओं ने उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बना दिया है। साथ ही श्रमिकों में राजनैतिक चेतना और शिक्षा का प्रसार भी हो रहा है। राजनैतिक दल अपने निर्वाचन घोषणापत्रों में श्रमिकों के लिये उन्नत सुविधाओं की प्रतिज्ञा करते हैं। श्रमिक मताधिकार के मूल्य को अधिकाधिक समझते जा रहे हैं। श्रमिकों की सुरक्षा और उनके अधिक कल्याण के लिये जनमत विधान का पक्षपाती रहा है। राज्य का यह उत्तरदायित्व हो गया है कि वह श्रमिकों के लिये सामाजिक न्याय और उचित स्तर की निश्चित व्यवस्था करे।

किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों में श्रमिक संघों को उतना अधिक लाभ नहीं मिला जितना मिलना चाहिये था। उनके जन धन के साधन नियोजकों की तुलना में कम हैं। नियोजकों के शक्तिशाली संगठन हैं। अपने विचारों के प्रचार के लिये उनके स्वयं के समाचार पत्र हैं। वे उपभोक्ताओं की सहज प्रवृत्ति को उकसाकर मान्य नागरिकों की सहायता प्राप्त कर सकते हैं। फिर नियोजक श्रमिक संघों को कमजोर बनाने के लिये प्रत्येक सम्भव उपाय को प्रयोग में लाते हैं। जनमत के माध्यम से, जिसे वे आसानी से प्रभावित कर सकते हैं व राज्य की श्रम नीति को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत हम देखते हैं कि बहुत कम संघ अपनी पत्रिकायें और समाचार पत्र प्रकाशित करते हैं अथवा अपने विचारों का प्रचार करते हैं। नियोजकों के प्रचार को निष्फलित करने के लिये उनके पास साधन नहीं हैं। बहुत कम संघों के पास राजनैतिक कोष है। उनका संगठन क्षीण और प्रबंध अवनतिक है उनकी सदस्यता परिवर्ती अस्थिर अनपढ़ अशिक्षित तथा अज्ञानी है। यहाँ तक कि उनके स्वयं के नेता भी नहीं हैं। अधिकांश नेता बाहरी हैं। जबकि दूसरे देशों में संघों का राजनैतिक दलों पर उनकी संगठित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रभाव है भारत में उनका मान्य राजनैतिक दलों द्वारा नियन्त्रित और निर्देशित किया जाता है।

श्रमिक आन्दोलन में एकता का अभाव है। ऐसा कोई एक राष्ट्रीय संघान नहीं है जो संपूर्ण श्रमिक आन्दोलन का प्रतिनिधित्व कर सके। श्रमिक कई संघपरक वर्गों में विभाजित हैं। उनके पारस्परिक संघर्षों के कारण इस रीति का पूर्ण उपयोग सम्भव नहीं हो पाता।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विधि अधिनियमन की यह रीति श्रमिक संघों की कठिनाइयों को दूर करने में प्रभावशाली नहीं रही है। किन्तु इस निष्कर्ष को चुनौती दी जा सकती है। क्योंकि यदि विधि नियमन की रीति सफल

नहीं हुई है तो देश में इतनी अधिक सख्या में श्रम विधान कैसे अधिनियमित किये गये। यह तर्क दिया जा सकता है कि ये विधान वस्तुतः राजनैतिक क्षेत्र में श्रमिक संघों की प्रभावशीलता को स्पष्ट करते हैं और एक आकस्मिक पाठक इस पर विश्वास कर सकता है। किन्तु देश के श्रम विधानों के एक अध्ययन से पता चलता है कि श्रमिक संघों की शक्ति का श्रम विधानों के अधिनियमन से कोई संबंध नहीं है। इन्हें अधिकांश रूप में लोकोपकारियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रयत्नों से पारित किया गया है। नियोजक सामान्यतया इन विधानों के विरोधी थे और सरकार उन्हें नाराज नहीं करना चाहती थी। किन्तु इसके बावजूद विधानों को पारित किया गया क्योंकि भारतीय फैक्ट्रियों की स्थिति इतनी खराब, इतनी अमाननीय और सक्षोभी थी कि एक विदेशी सरकार भी उनके प्रति उदासीन न रह सकी। ऐसा लंकाशायर मिलों के व्यापारिक हितों और अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन, जिसका भारत संस्थापक सदस्य था, के हितकर दबावों के कारण भी संभव हुआ। इस मत के समर्थन में कि श्रमिक संघों की माँग के परिणामस्वरूप विभिन्न श्रम विधानों का अधिनियमन किया गया कुछ भी नहीं है। प्रथम फैक्ट्री अधिनियमन जब पारित किया गया जब देश में श्रमिक संघों का अस्तित्व ही नहीं था। इसी प्रकार १९२६ में व्यवसाय संघ अधिनियम पारित किया गया क्योंकि बाहरी नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा ब्रिटिश जनमत ने इसके लिये बराबर आग्रह किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में काफी संख्या में हड़तालें हुई और फैक्ट्री तथा संस्थान विनियमन, सामाजिक बीमा, न्यूनतम मजदूरी, श्रम कल्याण और औद्योगिक संबंधों के क्षेत्र में अनेक नये अधिनियम पारित किये गये। कोई इससे यह अनुमान लगा सकता है कि ये अधिनियम अभूतपूर्व हड़तालों, जो इनके पारित होने के पूर्व घटित हुई, का प्रत्यक्ष परिणाम थे। किन्तु यह कोई निश्चित मत नहीं है। सत्य यह हो सकता है कि लोकप्रिय नेताओं ने जो कल्याणकारी राज्य और समाज के समाजवादी स्वरूप के आदर्श के समर्थक थे और जो भविष्य के निर्वाचनों में श्रमिक वर्ग के मत का महत्व समझते थे, स्वप्रेरित होकर इन विधानों को पारित किया और उनके द्वारा लाभ प्रदान किये जो कालातीत थे। यह बिल्कुल संभावित है कि औद्योगिक विवादों से सम्बद्ध इन विभिन्न विधानों ने श्रमिक संघों और श्रमिकों के हितों की अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की हो। बिना राज्य की सहायता के काफी संख्या में हड़तालें पूर्ण विफल हो गई होतीं और इस प्रकार श्रमिकों और श्रमिक संघों के मनोबल को क्षति पहुँचती। सराधन और पंचनिर्णय की कार्यवाहियों ने नई परम्पराएँ स्थापित कीं जिससे श्रमिक संघों के विकास को सहायता मिली। यह भी निस्संदेह सही है कि यदि ये व्यवस्थाएँ उपलब्ध न होतीं तब भी काफी संख्या में हड़तालें सफल हुई होतीं। आज श्रमिक अधिक अच्छी तरह संगठित हैं और सार्वजनिक मंत्रालयों के अन्तर्गत हमारी स्वतंत्रता के पन्द्रह वर्षों में श्रमिक आन्दोलन ने

पर्याप्त प्रगति की है। १६१८ से १६४७ तक के श्रमिक सघवाद के सम्पूर्ण काल मे श्रमिको को जो लाभ हुए वे १६४७ के बाद की थोडी अवधि म प्राप्त लाभो की तुलना म महत्वहीन रह जाते हैं। इसमे कोई सदेह नही कि स्वतत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि मे सघो ने विधान सभाओ और राज्य नीतियो पर अधिक परिगामी प्रभाव डाला। किन्तु नये श्रमिक विधानो का अधिनियमन पूर्णतया उनकी शक्ति और प्रयत्नो के कारण नही हुआ।

भविष्य मे श्रमिक सघो को विधि अधिनियमन की रीति पर वृद्धोत्तर विश्वास रखना पडेगा। पारस्परिक बीमा या स्वायत्त विनियमन की रीति अव्यावहारिक है और इसे अपनाकर श्रमिक सघ अपने लक्ष्यो को प्राप्त नही कर सकते हैं। एक साध्य श्रमिक इतना निर्धन होता है कि वह पर्याप्त चन्दा नही दे सकता जिससे कि श्रमिक सघ लाभकारी योजनाएँ चला सकें। श्रम कल्याण और श्रमिको के लिये सामाजिक बीमा की व्यवस्था मे राज्य अधिकाधिक रुचि ले रहा है। सामूहिक सौदाकारी की रीति भी बहुत सफल नही रही है। सगठनात्मक दक्षता और अनुशासन मे ह्रास हो गया है। नियोजक केवल असहयोगी और असहानुभूतिक ही नही बल्कि विरोधी भी हैं और विवादो को सुलझान के लिये जनता औद्योगिक सघर्षों का अनुमोदन नही करती। अत यही एक उपाय रह जाता है कि विधि अधिनियमन पर अधिकाधिक निर्भर रहा जाय। श्रमिको म शिक्षा मताधिकार तथा राजनैतिक जागृति से श्रमिक सघ भविष्य मे इस रीति का सफल उपयोग कर सकेंगे। 'निर्धनता के कारण पारस्परिक बीमा की कार्य रीति को स्वीकार करने म असमर्थ होने तथा अपने लक्ष्यो की प्राप्ति के लिय नियोजको के साथ सामूहिक सौदाकारी के प्रयत्नो म क्यारोपित होने से ये उसी रीति क माध्यम स अधिकाधिक प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे जो उन्हे उपलब्ध होगी।' [१]

---

१ लोकनाथन इडस्ट्रियल वेलफेयर इन इण्डिया पृ० १८०।

१४

राजनैतिक कार्यकलाप

प्राय यह कहा गया है कि भारतीय श्रमिक सघ आन्दोलन मे बहुत अधिक राजनैतिक है तथा श्रमिक सघ नेताओ ने देश के राजनैतिक विकास मे जो अधिक रुचि ली उससे श्रमिक सघो के उचित कार्यकलाप उपेक्षित रह गये। श्री वर्नेट हर्स्ट ने अवलोकन करते हुए कहा "स्पष्ट बात यह है कि इन सघो की स्थापना, श्रमिकों के सर्वोत्तम हित मे न होकर, मुख्यतया राजनैतिक लक्ष्यो के लिये श्रमिको की शक्ति और आवाज का उपभोग करने हेतु की गई है।" प्रो० रशब्रुक विलियम्स ने भी कहा है कि भारत मे श्रमिक सघवाद के नेता अधिकाशत मध्यम वर्ग के व्यक्ति, व्यावसायिक वकील तथा अन्य रहे हैं जो आर्थिक और राजनैतिक विचारो मे विभेद नही कर पाये। इसी प्रकार के विचार १६२७ मे ब्रिटिश श्रमिक सघ प्रतिनिधि-मडल द्वारा व्यक्त किये गये जब उसने कहा कि उनके कार्य औद्योगिक होने की अपेक्षा अधिक राजनैतिक और सामाजिक अधिक हैं। तब से परिस्थितियो मे बहुत अधिक परिवर्तन नही हुए हैं। इसी कारण प्राय यह सुझाव दिया जाता है कि हमारे श्रमिक सघो को राजनीति से दूर रहना चाहिये और राजनैतिक दलो को अपने दलीय उद्देश्यो के लिये श्रमिक सघो का शोषण नही करना चाहिये।

ब्रिटिश शासन काल में भारत मे प्रवर्तमान विशेष परिस्थितियो ने राजनीति के प्रति श्रमिक सघियो की अभिवृत्ति को रूप दिया और निर्धारित किया। यह निस्सदेह सही है कि श्रमिक सघो की नीतिया पर्याप्त सीमा तक राजनैतिक नेताओ, भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस तथा देश के अन्दर घटित अन्य राजनैतिक घटनाओ से प्रभावित थीं। लेकिन यह आवश्यक था। राजनैतिक मामलो से औद्योगिक प्रश्नो को पूर्णतया अलग नही किया जा सकता। श्रम अवस्थाओ के नियमन औद्योगिक नीति औद्योगीकरण की गति तथा इसी प्रकार के अन्य मामलो के प्रश्न विशुद्ध रूप से आर्थिक नही रह सके तथा वे राजनीति के साथ मिश्रित हो गये। उनमे से प्रत्येक पर देश मे तत्स्थित राजनैतिक परिस्थितियो के सदर्भ मे राजनैतिक दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता था। इन नीतियों ने श्रमिको को बहुत गम्भीरता से प्रभावित किया। जब ऐसे राष्ट्रीय महत्त्व के महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर वाद विवाद किया जा रहा हो तब श्रमिक नेता मुह बन्द कर बैठे नही रह सकते थे।

श्रमिक सघ आन्दोलन का विकास भारतीय श्रमिक की विशिष्ट विशेषताओं से प्रभावित हुआ है। भारतीय श्रमिक मुख्यकर स अनपढ थे और अब भी हैं तथा उनके स्वय के वग से कुछ ही नेता है जिनस वे निर्देशन की अपेक्षा रखते है। इसी कारण शिक्षित मध्यम वग ने अधिकाश मे नेतृत्व प्रदान किया जिन्हे औद्योगिक जीवन का बहुत कम वयक्तिक अनुभव था। ये बाहरी लोग दलितो के लिये वास्तविक सहानुभूति से प्रेरित हुए थे तथा उन्हे सहायता देने की उनम सत्यनिष्ठ आकाक्षा थी। उनके अपने राजनतिक विचार थे और इन्ही विचारो ने श्रमिक सघ नीतियो को पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित किया।

देश एक विकट राष्ट्रीय सघष मे लगा हुआ था। इस देश म श्रमिक सघों की उत्पत्ति और विकास विदेशी सत्ता को उखाड फेंकने के लिये गहन राजनतिक आन्दोलन के साथ सपाती रहा। इसलिए यह स्वाभाविक था कि श्रम आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का गौण हो। राजनीतिक श्रमिक वर्गों को उपेक्षित नहीं कर सके। राजनतिक आन्दोलक जानत थे कि उनके हित के लिये नगरीय श्रमिकों की शक्तिशाली सेना कसी सम्पत्ति होगी। किसी उद्देश्य के लिये उत्पीडित होने और त्याग करने का साहस दलितो मे होता है। सम्पत्तिशाली वग तथा वे जिनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ है किसी सघष के पीडन को बदाश्त करने म उतन समथ नही होते। बिना इस जन-समूह के सहयोग के राष्ट्रवादी आन्दोलन असफल भी हो सकता था और इसी लिए राजनतिक आन्दोलन देश के श्रमिक आन्दोलन से वियोजित नही किया जा सका। इसी कारण हम देखते हैं कि ये दोनो आन्दोलन अन्त सम्बद्ध हैं तथा कम या अधिक दोनो ने एक साथ प्रगति की है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उसके नेता कुछ स्मरणीय श्रमिक वग सघर्षों मे सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे हैं।

राजनतिक प्रवाह से पृथक भारत मे उस समय की विशिष्ट परिस्थितिया के अन्तगत, श्रमिक सघ आन्दोलन भी अधिक प्रगति न कर सका होता। समथन और सहानुभूति की मात्रा जो हमारे श्रमिक सघ प्राप्त कर सकते थे पर्याप्त रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति इनकी अभिवृत्ति पर निभर करती थी। जबकि देश विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिये एक लम्बे सघष म सनद्ध था, कोई भी आन्दोलन जो राष्ट्रवादियो की उपेक्षा कर के केवल अपनी ही प्रगति करना चाहता तो उसको राष्ट्रविरोधी और समाजविरोधी के रूप मे भरसना की गई होती। राजनतिक और श्रमिक दोनो आन्दोलनो के लिये इससे भयकर परिणाम हुए होते।

ऐसे सभी जन आन्दोलना की प्रति अधिकृत सरकार के विद्वेष के कारण दोनो आन्दोलन निकट आगये। श्रमिक सघ आन्दोलन से सरकार प्रतिकूल थी। उसने श्रमिक सघ सगठन मे बाधाएँ उपस्थित करने के लिये प्रयत्न किये। नियोजकों का, एक वग के रूप मे उन्होने पक्ष लिया। श्रमिक सघ कमजोर थे तथा उन्हे बाहरी सहायता की आवश्यकता थी। इन परिस्थितिया मे अन्तगत श्रमिक सघियो के समक्ष

केवल यही वकल्प था कि वे मुख्य राजनैतिक दलों का सहयोग प्राप्त करें तथा जनता की सहानुभूति और सहायता उपलब्ध करें। सम्भवत यही कारण था जिससे मद्रास श्रमिक संघ ने, जो हमारे देश का प्रथम आधुनिक श्रमिक संघ था, १७ अगस्त, १९१८ को निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया 'कि मद्रास श्रमिक संघ की यह बैठक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से प्रार्थना करती है कि वह हमारी शिकायतों, जो हमारे अध्यक्ष श्री बी० पी० वाडिया द्वारा मिल में प्रबंधक को लिखे गये पत्र में उल्लिखित हैं, पर विचार करे और ऐसे कदम उठाये जो आवश्यक हों।"

विभिन्न राजनैतिक दलों ने ऐसी व्यवस्था की थी जिसके द्वारा वे लोग, जो विशेषाधिकारहीन तथा दलित थे, तथा जो अपनी शिकायतों को दूर कर सकने में असमर्थ थे, अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकें तथा जनता से सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करने के लिये प्रचार कर सकें। राजनैतिक दल, जो विशेषाधिकारहीनों के निमित्त संघर्ष नहीं करते थे, और श्रमिक नेता, जो राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग नहीं देते थे शीघ्र ही कुख्यात हो जाते थे और उन्हें लोकप्रिय समर्थन मिलना समाप्त हो जाता था। यही कारण था कि 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय साम्यवादी नेता जन समूह के बीच अप्रिय हो गये थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों आन्दोलन केवल समसामयिक ही नहीं बल्कि अन्योन्याश्रित भी थे। लाला लाजपतराय, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस तथा महात्मा गांधी जैसे उच्च-श्रेणी के राजनैतिक नेताओं द्वारा श्रमिक संघ आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेना तथा स्थानीय और राष्ट्रीय स्तरों पर श्रमिक संघ संस्थाओं के साथ उनका निकटवर्ती सम्बन्ध इस बात की पुष्टि करता है।

राजनैतिक रूप से श्रमिक संघ नेता भी प्रबुद्ध थे। वे चाहते थे कि श्रमिक देश के सामाजिक और राजनैतिक जीवन में अपनी भूमिका का निर्वाह करें तथा जब राजनैतिक विकास या सुधार हो जायें तो वे अपने हितों की रक्षा के प्रति सचेत रहें। देश की सर्वोत्तम परिषदों में श्रमिकों के प्रतिनिधित्व की माँग बहुत पहले ही १९१८ में मद्रास श्रमिक संघ द्वारा प्रस्तुत की गई थी जब एक प्रस्ताव पारित किया गया था कि "यह बैठक पुनः कांग्रेस से अनुरोध करती है कि भारतीय सुधार परिषद् के सम्मुख उनका प्रतिनिधित्व करने के लिये कम से कम यह एक ऐसा प्रतिनिधि चुने जो अधिकार से बोल सके और जिसे भारतीय श्रमिकों की कठिनाइयों का ज्ञान हो।" श्री बी० पी० वाडिया, अध्यक्ष, मद्रास श्रमिक संघ ने कहा कि "यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रमिक आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन के एक अभिन्न अंग के रूप में मान्यता दी जाय। राष्ट्रीय आन्दोलन प्रजातन्त्र की उचित दिशा में सफलता नहीं प्राप्त कर सकेगा यदि भारतीय श्रमिक वर्गों को स्वयं अपनी शक्तियों को संगठित करने के योग्य नहीं बना दिया जाता।" एक दूसरे अवसर पर श्री वाडिया ने कहा 'किन्तु जब ही श्रमिकों की स्थानीय कठिनाइयाँ दूर कर दी जाती हैं, मैं नहीं समझ

पाता कि मुझे उनको राजनतिक रूप से शिक्षित करने के लिये क्यो नही प्रयत्न करना चाहिये । भारतीय श्रमिको को क्यो नही इस योग्य बनाना चाहिये ताकि वे वतमान फक्ट्री अधिनियम के विरुद्ध आदोलन कर सकें तथा काय के घटे कम करवा कर तथा अन्य विविध लाभ प्राप्त कर अपने हितो की रक्षा करे । अभी श्रमिको की ओर से न कोई प्रतिनिधित्व करता है और न समथन । पूजीपति-यूरोपियन और भारतीय समान रूप से—श्रमिको का शोषण करते है और हम इस पर रोक अवश्य लगानी चाहिय । श्रमिको की समस्या जन समूह की एक समस्या है । क्योंकि अब भारत मे राजनतिक स्वरूप का जन आदोलन किसी समय प्रारम्भ होना है इसलिए किसी को यह समस्या सुलझानी है । मेरा विचार है कि इसे प्रारम्भ करने का समय आ गया है और मैं ही क्या न यह काय करूँ ।"

श्री बी० पी० वाडिया के भाषणा के इन उद्धरणो से यह स्पष्ट होता है कि श्रमिक नेताओ ने देश म हो रहे या होन वाले राजनतिक विकासो को बहुत अधिक महत्त्व दिया था । वे नही चाहते थे कि राजनतिक परिवतन म श्रमिको को हानि हो । उनम से बहुतो के लिये राजनतिक क्रान्ति का अथ एक शासक दल का दूसरे से प्रतिस्थापन नही था । वे समाज मे ऊपर से लेकर नीचे तक सभी के लिये स्वतन्त्रता चाहते थे ।

हम देखते हैं कि श्री जोशी ने भी श्रमिको की ओर से गोल मेज सम्मेलन मे इसी प्रकार के विचार प्रगट किये थे । श्री जोशी न कहा 'मैं और मेरे मित्र श्री शिवाराव इस सम्मेलन म इस आशा स आये है कि स्वशासित भारत का सविधान इस प्रकार से बनाया जायेगा कि श्रमिको का अपनी सरकार पर राजनतिक प्रभाव आज की तुलना मे बहुत अधिक होगा इस उद्देश्य के लिये सवप्रथम हम यह चाहग कि सविधान मे श्रमिको के मूलभूत अधिकारो की घोषणा निहित हो । दूसरे सविधान को सावभौम वयस्क समानुज्ञा पर अवश्य सस्थापित होना चाहिये । भारतीय श्रमिक इस बात के लिये आग्रही हैं कि श्रम विधान हमेशा केन्द्रीय या सघीय विषय रहे ।"

श्रमिक नेता केवल श्रमिको के हितो की सुरक्षा की माँग करके ही सतुष्ट नही रहे । उन्होने देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनतिक समस्याओ के प्रति अधिक सकारात्मक नीति अपनायी । अखिल भारतीय श्रमिक सघ सभा के विभिन्न सम्मेलनो मे बिना किसी शत के सभी अधिकारो का जनता को हस्तातरण, भारतीय राज्यो और परजीवी भूपतियो की समाप्ति कृषको की सभी शोषण और अपहरण से स्वतन्त्रता, भूमि, लोकोपयोगी और खनिज ससाधनो का राष्ट्रीयकरण देश के आर्थिक जीवन का श्रमिको और कृषको द्वारा नियन्त्रण की माँग करत हुए प्रस्ताव पारित किये ताकि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के फलो को पूजीपति हरण न कर सकें । भारतीय श्रमिक सधान ने युद्धोपरात काल मे देश के भविष्य के विकास के लिये 'जनता की योजना' बनाकर एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया ।

श्रमिक संघ आन्दोलन के श्रेष्ठ नेताओं ने अनुभव किया कि देश के नये सामाजिक और राजनैतिक विकास में श्रमिकों का पर्याप्त हित सन्निहित है और इसलिए भविष्य की योजनाएं बनाने में उनका प्रभावशाली दखल होना चाहिए। विभिन्न श्रमिक संघ संगठनों के उद्देश्य भी इस के राजनैतिक संगठन में रुचि लेते रहे हैं। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा का लक्ष्य भारत में समाजवादी राज्य की स्थापना करना है। इसके कार्यक्रम में जहाँ तक सम्भव हो सके उत्पादन, वितरण, विनिमय के साधनों का राष्ट्रीयकरण और समाजीकरण करना, श्रमिक वर्ग के दृष्टिकोण से भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता के संघर्ष में सहयोग देना और सक्रिय रूप से भाग लेना तथा जाति, समुदाय जाति या धर्म पर आधारित राजनैतिक या आर्थिक सुविधाओं को समाप्त करना सम्मिलित हैं। इसी प्रकार भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के उद्देश्य हैं, 'एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना जिसमें इसके व्यक्तिगत सदस्यों के सर्वोन्मुखी विकास के मार्ग में कोई बाधाएँ न हों, जो मानवीय व्यक्तित्व के सभी पक्षों के विकास को बढ़ावा दे, और जो सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक शोषण और असमानता, समाज के संगठन और आर्थिक कार्य कलापों में लाभ हित तथा किसी भी रूप में समाजविरोधी शक्ति के केन्द्रीयकरण को प्रगामी रूप से समाप्त करने के लिए अंतिम सीमा तक प्रयत्नरत रहे।' हिन्द मजदूर सभा की महत्त्वाकांक्षा "भारत में प्रजातान्त्रिक समाजवादी समाज की स्थापना के लिए संगठन और प्रयत्न करना है।" संयुक्त श्रमिक संघ सभा का लक्ष्य "भारत में समाजवादी समाज की स्थापना करना, भारत में श्रमिकों और कृषकों का राज्य स्थापित करना, उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों का राष्ट्रीयकरण और समाजीकरण करना है।'

श्रमिक संघ आन्दोलन के साथ राजनैतिक नेताओं के सम्पर्क ने स्वतन्त्र भारत में श्रमिक वर्गों के लिए उचित व्यवहार को सुनिश्चित कर दिया। भारतीय संविधान में श्रमिकों के हितों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की गई है। संविधान कानून के समक्ष सभी नागरिकों को समानता के अधिकार प्रदान करता है। इसी प्रकार सार्वजनिक सेवा-नियुक्ति, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, शान्तिपूर्ण संगठन, संगठन या संघ बनाने के मामलों में भी समान अवसर प्रदान किये गये हैं। संविधान ने धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी नागरिक के साथ विभेद करना भी निषिद्ध किया है।

राज्य नीति के निर्देशात्मक सिद्धान्तों में व्यवस्था है कि 'राज्य उपलब्धि और संरक्षण द्वारा लोगों के कल्याण के प्रवर्तन हेतु अधिकाधिक प्रभावशाली ढंग से एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के लिए प्रयत्नरत रहेगा जिसमें राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थायें सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय पर सुरक्षित होंगी।' राज्य अपनी नीति को विशेषकर इस तरह से निर्देशित करेगा जिससे यह सुनिश्चित रहे—(अ)

कि सभी नागरिको, पुरुष और महिलाओ को आजिविकोपार्जन के पर्याप्त साधनो पर समान अधिकार मिले, (ब) कि समुदाय के भौतिक ससाधनो का स्वामित्व और नियत्रण इस रूप म वितरित किया जाय कि अधिक से अधिक लोगो का भला हो, (स) कि आर्थिक पद्धति उत्पादन के साधनो और धन के केन्द्रीयकरण म फलित न हो जिसस समुदाय का अहित हो (द) कि पुरुष और महिलाओ दोना को समान काय के लिये समान वेतन मिले (य) कि श्रमिको पुरुष और महिलाओ के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बच्चो की कोमल अवस्था का अनुचित उपयोग न किया जाय तथा नागरिक आर्थिक आवश्यकताओ से विवश होकर ऐसे व्यवसाय न अपनायें जो उनकी अवस्था और शक्ति के अनुपयुक्त हो तथा (र) कि बच्चो और युवको को शोषण तथा नैतिक और भौतिक परित्याग के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की जाय।

निदेशात्मक सिद्धान्तो म यह भी व्यवस्था है कि राज्य कुछ मामलो म काय, शिक्षा तथा सावजनिक सहायता, काय की उचित और मानवीय अवस्थायें तथा प्रसूति सहायता प्रदान करने के लिये भी प्रयत्न करेगा। जहाँ तक श्रमिको का सम्बन्ध है भारतीय सविधान की धारा ४३ विशेष महत्त्व की है। इसमे कहा गया है कि 'राज्य सभी श्रमिको कृषीय, औद्योगिक अथवा अन्य, के लिये समुचित विधान या आर्थिक सगठन का किसी अन्य माध्यम से काय, निवाह मजदूरी काय की अवस्थायें जिसमे समुचित जीवन स्तर सुनिश्चित हो, तथा अवकाश और सामाजिक तथा सास्कृतिक अवसरो के पूर्ण उपभोग की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करेगा।'

स्वतत्र भारत के सविधान के इन उपबन्धो से उन लक्ष्यो की विजय दीख पडती है जिनके लिये श्रमिक सघवाद का अस्तित्व है। इससे श्रमिक सघो के लिये नये विस्तार खुल गये हैं। तथा उनके लिये चुनौती भी है कि वे इन उद्देश्यो के सफल क्रियान्वयन और उपलब्धि के लिये प्रयत्नशील रहें।

इसलिए स्वतत्र भारत मे श्रमिक सघो का राजनीति म भाग लेना बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। भारत अपने प्रत्येक नागरिक और प्रत्येक सघ या सगठन से इन आदर्शों जिनके लिये वह वचनबद्ध है और जिन्हे सविधान मे सविस्तार दिया गया है की प्राप्ति के लिये प्रयास करने की आशा करता है। श्रमिक सघ अपने उत्तरदायित्वो और दायित्वो की उपेक्षा नही कर सकते हैं और न करना चाहिये। यदि वे ऐसा करते हैं तो वे भारतीय सविधान के विरोधी होंगे। वयस्क मताधिकार का लागू होना श्रमिको में राजनैतिक जागरूकता की वृद्धि और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की अवधि म श्रमिक सघो की सापेक्ष रूप से अधिक सगठनात्मक शक्ति कुछ ऐसे तथ्य हैं जिससे भविष्य म राजनैतिक कार्यवाही कर सकना श्रमिक सघो के लिये सभव हो गया है।

हम अब योजना के युग मे रह रहे हैं। प्रथम और द्वितीय पचवर्षीय योजनायें पूर्ण हो गई हैं तथा तृतीय पचवर्षीय योजना अब आधे पर है। श्रमिक वग के दृष्टि

षाएण से योजना के लक्ष्य अनुसरित की जाने वाली पूवता-क्रम, समुदाय के विभिन्न अनुभागों द्वारा सापेक्ष त्याग, योजना के सफल क्रियान्वयन के लिये श्रमिकों का सहयोग, श्रमिकों के लाभ—य और इसी प्रकार के अन्य विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। हम यह सुनते है कि पचवर्षीय योजनाओं से आय की असमानता बढ़ गई है। जब देश का भविष्यकालीन सामाजिक और आर्थिक ढाचा नियोजित किया जा रहा है श्रमिकों के लिये यह आत्मघाती होगा कि वे तटस्थता की नीति अपनाएँ। उन्हें योजनाएँ बनाने और उनके क्रियान्वयन में अवश्य अपना भाग लेना चाहिये। राज्य की नीति निर्धारित करने वाले सर्वोच्च अधिकारियों पर अपना प्रभाव डालने की उनमें शक्ति होनी चाहिये। इसके लिए आवश्यक है कि श्रमिकों और श्रमिक वर्ग सगठनों की ओर से राजनैतिक कार्यवाही की जाय। एक नियोजित आर्थिक व्यवस्था कठोरता से श्रमिक सघियों के हड़ताल घोषित करने के अधिकार का मायनित करती है। अन्यथा भी शक्ति परीक्षा की रीति, जिसमें दल हड़ताल और तालाबन्दी का आश्रय लेते हैं जनता की भलाई में अनावश्यक रूप से अहितकारी समझी जा रही है। इस कारण श्रमिक सघों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अधिकाधिक विधि अधिनियमन की रीति पर निर्भर रहना पड़ेगा। विभिन्न व्यक्तियों के चुनाव को प्रभावित करना तथा प्रचार करना श्रमिकों का अन्तर्निहित अधिकार है। इसके लिये आवश्यक है कि श्रमिक आन्दोलन विभिन्न राजनतिक समस्याओं पर सुविचारित मत प्रस्तुत करें।

भारतीय सविधान में प्रजातान्त्रिक राज्य की स्थापना की व्यवस्था है। प्रजातन्त्र वधिक उद्देश्यों के लिये सघ बनाने, भाषण की स्वतन्त्रता तथा सभी यथार्थ और शांतिपूर्ण साधनों से दूसरों के मतों को प्रभावित करने के निर्विरोध वयक्तिक अधिकार को स्वीकार करता है। हमारे सविधान द्वारा ये स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गई हैं। इनको स्वीकार कर लेने के बाद श्रमिकों को राजनतिक विवादों पर अपने मत रखने तथा सभी यथार्थ और शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा जन-समूह के लिये स्वीकार करने योग्य बनाने हेतु अपने मतों को प्रचार करने से नहीं रोका जा सकता है। वस्तुत श्रमिकों के राजनतिक कार्यकलाप एक स्थायी विशेषता हो गये हैं और भविष्य में उनके अधिकाधिक वृद्धि की सभावना है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य श्रमिक सघ कार्यकलाप अमहत्वपूर्ण हैं तथा श्रमिक सघों को अपने अन्य कार्यों को एक ओर रखकर विशुद्ध रूप से राजनतिक सस्थाएँ हो जाना चाहिये। सच पूछा जाय तो अन्य कायकलाप बहुत महत्त्वपूर्ण हैं तथा कोई भी वास्तविक श्रमिक सघ उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता है या फिर अपने को बड़े सकट से नहीं बचा सकता। अन्य क्षेत्रों के कायकलापों में उनकी सफलता वस्तुत राजनतिक क्रिया और राजनतिक क्षेत्र में सफलता के लिये श्रमिक सघों को उचित सज्जा प्रदान करेगी। इससे श्रमिक सघों को शक्ति और अनुशासन

की प्राप्ति होगी। श्रमिक संघ के आर्थिक क्षेत्र में अपने कार्यकलापों को सीमित कर पाने का साहस नहीं करना चाहिए।

साथ ही साथ यह भी सही है कि आर्थिक और अनार्थिक कार्यों के बीच रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। अहस्तक्षेप-नीति राज्य से कल्याणकारी राज्य के परिवर्तन ने अन्तर को और भी अस्पष्ट कर दिया है। स्पष्ट रूप से आर्थिक तथा अनार्थिक के बीच तथा राजनैतिक और अराजनैतिक के बीच हित और क्रिया में विभेद कर पाना कठिनतर होता जा रहा है। इस प्रकार मजदूरी में वृद्धि की माँग एक अराजनैतिक विषय है और पूर्णतः आर्थिक समझा जा सकता है किन्तु जब श्रमिक अपनी माँग पूरी करवाने के लिए हड़ताल का आश्रय लेते हैं और सरकार या तो कानून और व्यवस्था बनाये रखने के लिए या जनता को असुविधा न होने देने के लिए हस्तक्षेप करती है, जो विषय राजनैतिक भी हो जाता है। श्रमिक संघों के बहुत से काम और लम्बे समय में अन्ततः राजनैतिक हो जाते हैं। इसलिए श्रमिक संघ अपनी आर्थिक क्रियाओं की राजनैतिक प्रतिक्रियाओं की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

श्रमिक संघवाद अर्थात् श्रमिक संघों के कार्यकलापों का बढ़ाव से आर्थिक क्षेत्र में सीमीमन के लिए अनिश्चयन करना ग़लत है। कोई भी विचार जो श्रमिक को सामाजिक संबंधों की जटिलता जिसमें वह संनिहित है से अपने काम को सम्बद्ध करने से हतोत्साहित करता है भयंकर है और विशेष रूप से इसलिए भी क्योंकि उसे विस्तीर्ण आशा की वास्तविकता से इनकार करने तथा मस्तिष्क की उसी स्थिति में उसे प्रतिबन्धित करने जिसे विशेषाधिकारी वर्ग उनके द्वारा स्वीकार करने की आकांक्षा रखता है ताकि उनके विशेषाधिकारों को चुनौती न दी जा सके को उसके द्वारा आग्रह किया जाता है। श्रमिक संघवाद के सिद्धान्त संनिहित होने चाहिए जो श्रम नीति को सम्पूर्ण सामाजिक सम्बन्धों—जिनमें श्रमिक संनिहित होते हैं से सम्बद्ध कर बजाय इसके कि उनके निष्क्रिय सिद्धान्त हो जायें इन सम्बन्धों को एक परस्पीय रूप दे दें और यह परिधि श्रमिकों के कार्यों को चारों ओर से घेरे रहे, जिनसे वे सम्बन्धित हों किन्तु उनके केन्द्र बिन्दु को वे न समझ पायें।[1] इसलिए ऐसा कोई कदम जो श्रमिक संघों के कार्यकलापों को केवल आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित करने के लिये उठाया जाय श्रमिक के दृष्टिकोण को संकुचित कर देगा और उन पक्षों को सट्टार बाजारी के बीच ही सीमित कर देगा। इससे उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधा पड़ेगी। एक प्रजातान्त्रिक राज्य के एक नागरिक के रूप में प्रजातन्त्र के सभी पक्षों के विकास निमित्त कुछ भी अंशदान दे पाने में समर्थ नहीं होगा। यदि काफी तादाद में लोगों को राजनैतिक क्रिया का अधिकार नहीं दिया जाता क्योंकि वे विशेषाधिकारी वर्ग से सम्बन्धित नहीं हैं तो यह प्रजातन्त्र के निमित्त यथार्थ अवहेला होगी।

---

१ लास्की—ट्रेड यूनियन एण्ड द सोसायटी पृ० १६।

फिर भी यह कहा जा सकता है कि श्रमिकों को राजनैतिक क्रियाओं के लिये श्रमिक संघों का उपयोग नहीं करना चाहिये। राजनैतिक क्रिया के लिये एक पृथक श्रमिक दल संगठित किया जा सकता है। श्रमिक दल और श्रमिक संघ के क्षेत्र पृथक होने चाहिये। एक श्रमिक संघ को प्राथमिक रूप से अपने सदस्यों के हित को सुरक्षित रखने से सम्बन्धित होना चाहिये। इसका मुख्य कार्य सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिक वर्ग के लिये अधिक से अधिक सम्भव लाभ प्राप्त करना होना चाहिये। दूसरी ओर श्रमिक दल का मुख्य कार्य वर्तमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को, यदि वह दोषपूर्ण है प्रतिस्थापित करने के लिये प्रयत्न करना है। किन्तु यह कार्य एक श्रमिक संघ का नहीं है।

हमारे देश में श्रमिक संघ अपने को किस प्रकार राजनैतिक रूप से महत्त्वपूर्ण बना सकते हैं? इसके लिये दो सम्भव मार्ग हैं। एक तो यह है कि श्रमिक संघ तटस्थ रहें और विभिन्न राजनैतिक दलों को, श्रमिकों के निमित्त उनकी प्रतिज्ञाओं और सहानुभूति के अनुसार सहायता करें। इस प्रकार श्रमिक अपना राजनैतिक दल बनाये बिना अपने हित के लिए राजनैतिक क्रिया कर सकते हैं। दूसरा मार्ग यह है कि श्रमिक अपना पृथक राजनैतिक दल संगठित करें, अपने पृथक कार्यक्रम और आर्थिक पक्ष रखें तथा सरकार बनाने का प्रयत्न करें और अपनी नीति तथा कार्यक्रम निष्पादित करें।

श्रमिकों के सक्रिय सहयोग से पृथक राजनैतिक दल की स्थापना ही वास्तविक उपचार है। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है राजनैतिक और अराजनैतिक उद्देश्यों के बीच की विभाजक रेखा दिन प्रतिदिन तीव्रगति से धूमिल पड़ती जा रही है तथा सामान्य व्यक्तियों की राजनीति को प्रतिनिधित्व करने के लिये एक पृथक श्रमिक दल की आवश्यकता स्पष्ट है। एक उदार सामाजिक और राजनैतिक कार्यक्रम से श्रमिक आन्दोलन को जनता की सहानुभूति और सफलता मिलेगी। श्रमिक संघवाद को अवश्य एक पूर्ण सिद्धान्त होना चाहिये। हमारे देश में ऐसी नीति की आवश्यकता और अधिक स्पष्ट रूप से स्वीकार की जाने लगेगी जैसे जैसे श्रमिक संघ बृहद् और वर्द्धमान रूप से केन्द्रित होते जाएँगे। श्रमिक संघों के विस्तार और केन्द्रीकरण से नेताओं और साधारण श्रमिकों के बीच सम्बन्ध समाप्त हो जाएँगे। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत एक साध्य श्रमिक की श्रमिक संघों के प्रति निष्ठा बनाये रखने के लिए केवल वही आदर्श हो सकते हैं जिनकी संघ कामना करते हैं और जिनके लिये वे वचनबद्ध हैं। चाहे हम किसी समस्या पर विचार करें निष्कर्ष यही निकलेगा कि प्रत्येक अवस्था में वास्तविक महत्व के राजनैतिक प्रश्न सन्निहित हैं और इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि श्रमिक संघों की दो, दीर्घकालीन नीति और दर्शन होने चाहिये तथा उनके कार्य उनके द्वारा निर्णीत होने चाहिये।'[1]

१ लास्की—ट्रेड यूनियन्स एण्ड न्यू सोसायटी, पृ० १७८।

विशेष रूप से श्रमिक संघो का परमकर्त्तव्य राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में आर्थिक नीति का निर्धारण करना है जिसमें सफलता की अधिक संभावना रहे। इस समय राजनैतिक परिप्रेक्ष्य किसी भी तात्कालिक लाभ चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, की तुलना में बहुत अधिक महत्वपूर्ण है जो वर्तमान श्रमिकों और नियोजकों के अनुपाठी प्राधिकार का सम्बन्ध के अनुरूप परिभाषित नहीं करता और जिसके लिये राज्य शक्ति का अवश्य उपयोग होना चाहिये।'[१]

भारत में श्रमिक दल संगठित करने के लिए बहुत पहले ही प्रयत्न किये गये थे। श्री बी० पी० वाडिया उन लोगों में उल्लेखनीय हैं जिन्होंने ऐसे प्रयत्न किये। उन्होंने ब्रिटिश श्रमिक नेताओं तक का सहयोग प्राप्त करने के लिये भी प्रयत्न किये। १९२१ में अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा के सम्मुख श्रमिक दल की स्थापना के लिये एक सुझाव रखा गया। उसी वर्ष मद्रास में 'हिन्दुस्तान का श्रमिक और किसान दल' संगठित किया गया। दल का एक विस्तृत कार्यक्रम था जो केवल कागजों पर ही रहा। १९२३ में बंगाल में भारत श्रमिक संघ की स्थापना की गई।

१९२५ में श्रमिक दल की स्थापना के प्रश्न को गम्भीरतापूर्वक लिया गया जब फरवरी मास में श्रमिक दल के संगठन के लिये श्रमिक नेताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन ने लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में एक उपसमिति नियुक्त की जिसमें सर्व श्री वी० जे० पटेल चमनलाल जोशी टी० सी० गोस्वामी डी० पी० सिन्हा समीउल्ला खाँ तथा एस० डी० मिश्रा सदस्य थे। उसी वर्ष श्री रंगा ने बम्बई मिल श्रमिकों के निर्णय की घोषणा की कि वे अपना पृथक दल बनाएँगे तथा परिषद् में अपना उम्मीदवार भेजने के लिये प्रयत्न करेंगे। श्री रईकर ने जून १९२५ में केन्द्रीय प्रान्त श्रमिक सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए एक स्वतन्त्र श्रमिक दल की स्थापना का समर्थन किया। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा ने भी श्रमिक दल की स्थापना के प्रश्न पर विचार करने के लिये एक उपसमिति की नियुक्ति की। साम्यवादियों ने भी बहुत से राजनैतिक दलों का संगठन किया जैसे—उत्तर भारत में कीर्ति किसान और नौजवान सभा तथा बम्बई में श्रमिक और कृषक दल। १९२८ में श्रमिक प्रतिनिधित्व समिति का बम्बई में संगठन किया गया परन्तु इसका अस्तित्व थोड़े दिन ही रहा।

इसके उपरान्त श्रमिक दल की स्थापना का प्रश्न गौण हो गया। श्रमिक संघ आन्दोलन में फूट तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाये गये सविनय अवज्ञा आन्दोलन में नेता व्यस्त हो गये। फिर भी श्रमिक दल की आवश्यकता लोप नहीं हुई थी। श्री शिवाराव ने मार्च १९३१ में मद्रास श्रमिक संघ को संबोधित करते हुए कहा कि वह समय आ गया है जब भारत में श्रमिकों को अपना दल स्थापित करने के विषय में गंभीरता से सोचना चाहिये।

१ लास्की—ट्रेड यूनियन एण्ड यू सोसायटी, पृ० १७८।

भारत सरकार अधिनियम १९३५ के अन्तर्गत श्रमिक स्थानों के लिये बहुत से सस्थाना द्वारा चुनाव लडे गये। राष्ट्रीय श्रमिक मघ सवान, अखिल भारतीय श्रमिक सघ सभा, कृषक प्रजा पार्टी, बगाल, बम्बई और केन्द्रीय प्रान्त के स्वतत्र श्रमिक दल तथा भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने विभिन्न श्रमिक स्थानो के लिये निवाचन प्रतियोगिता म भाग लिया। किसी श्रमिक दल के अभाव मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस म श्रमिक स्थाना के लिये बहु सख्या म चुनाव जीता। इसके अलावा जब भी ससदीय कामवाहिया, जसे—१९३५, १९४६, १९५१ मे, हुई एक स्वतत्र श्रमिक दल की आवश्यकता का अनुभव किया गया किन्तु नेतृत्व को सफलता नहीं मिली।

श्रमिक दल की स्थापना म वस्तुत कुछ स्पष्ट अड़चनें हैं। श्रमिकों की निरक्षरता और अनानना, उनका प्रवासी स्वभाव अनिश्चित सदस्यता, बडी सख्या म श्रमिकों का प्रत्यावतन, कमजोर श्रमिक सघ जिनम साधनों की कमी है तथा सगठनात्मक क्षमता का अभाव—कुछ अधिक गभीर बाधाएँ हैं। भारत की कुल जन सख्या के अनुपात म सगठित श्रमिक की नगण्य सख्यात्मक शक्ति एक अतिरिक्त बाधा रही है।

किन्तु सबसे महत्त्वपूण कारण राजनतिक दलो द्वारा श्रमिक आन्दोलन का नियन्त्रण रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूव की अवधि मे श्रमिक दल इसलिए सगठित नहीं किया जा सका क्योंकि तब राष्ट्रीय आन्दोलन का प्राबल्य था और सभी नेता इसम व्यस्त थे। इसी कारण श्रमिक दल की स्थापना की ओर गभीरता से ध्यान नही दिया गया। और यह प्राबल्य अब भी समाप्त नहीं हुआ है। राजनतिक दल श्रमिक सघों के कार्यों पर अपना नियन्त्रण समाप्त करने के लिये इच्छुक नहीं हैं। उनके हाथ मे किसी न किसी राष्ट्रीय श्रम सधान का सगठन, व्यवहार तथा प्रशासन था, और है। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा का समथन करती है साम्यवादी दल का अखिल भारतीय श्रमिक सघ सभा पर आधिपत्य है और प्रजा समाजवादी दल सक्रिय रूप से हिन्द मजदूर सभा के साथ सम्बद्ध है। जनसघ न अभी हाल ही म भारतीय मजदूर सघ का सगठन किया है और समाजवादियों की अपनी हिन्द मजदूर पचायत है।

भारत म पहले ही बहुत से राजनतिक दल हैं। यह कहा जा सकता है कि ऐसी स्थिति म राजनतिक दलों म और वृद्धि उचित नही होगी। तीन महत्त्वपूण राजनतिक दलों, यथा—काग्रेस प्रजा समाजवादी दल, तथा साम्यवादी दल, के उद्देश्य लगभग वही है जो एक श्रमिक दल के होने चाहिए। उनके उद्देश्यों म इतना अधिक अन्तर नहीं है जितना क्रियान्वयन की उनकी रीतियों म है। अत श्रमिक दल की स्थापना मे कोई सुधार की सभावना नहीं है। यदि श्रमिक दल केवल श्रमिक वग के मतों पर निभर करता है तो इसे बहुत मत और अधिक स्थान नहीं मिलेंगे और यदि यह अन्य वर्गों से मत प्राप्त करने का प्रयत्न करे तो इसे पुराने सुसगठित राजनतिक

दलो के विरोध का सामना करना पडेगा ।

इसके अतिरिक्त राजनैतिक विभेद मुख्यतया श्रमिक सघ आन्दोलन मे फूट डालने के लिये उत्तरदायी रहे हैं । ये विभेद श्रमिक सघ एकता मे बाधक हैं और यहाँ तक कि औद्योगिक मामला मे भी श्रमिक सघ इनके कारण एक सयुक्त मोर्चा नहीं बना पाते । इसलिए यह बहुत कठिन है कि विभिन्न वग अपने विभेदो को एकदम भुलाकर एक सयुक्त श्रमिक दल की स्थापना कर पाएँगे । वतमान परिस्थितियो मे एक श्रमिक दल की स्थापना कितनी ही वाछनीय क्यो न हो किन्तु सभव नही । चूकि राजनैतिक विभेदो के कारण श्रमिको की एकता भग होती है इसलिए श्रमिक सघो के लिये यह अधिक अच्छा होगा कि कम से कम कुछ समय के लिये वे राजनीति से दूर रहे । सवप्रथम एकता स्थापित होने दी जाय । श्रमिक दल की स्थापना श्रमिक सघ एकता के पूव नही बल्कि बाद मे होनी चाहिये ।

इसलिए श्रमिको के लिये यह अधिक अच्छा होगा कि वे प्रथम माग अपनाएँ । निर्वाचन के समय उन्हे प्रभावी वग के रूप मे काय करना चाहिये तथा विभिन्न राजनैतिक दलो द्वारा खडे किये गये व्यक्तियो का समथन या विरोध करना चाहिये । उनका समथन या विरोध वास्तव मे राजनैतिक दलो की उनके प्रति अभिवृति पर निभर करेगा । इस पर भी बहुत सी कठिनाइया हैं । हमारे देश के कुल मतो मे श्रमिक वग के मतो का भाग बहुत कम है । श्रमिक सघो का प्रबध और इन पर आधिपत्य राजनैतिक दलो के हाथ म है । परिणामस्वरूप, जो प्रभाव वे डाल सकते हैं उसका मूल्य सन्देहास्पद है । पिछले आम चुनावो मे विभिन्न राजनैतिक दलो ने श्रम प्रधान्य क्षेत्रों से अपने व्यक्ति खडे किये थे और उस क्षेत्र के श्रमिक सघ सगठनो से सलाह तक नही ली थी ।

दोनो मार्गों की कुछ स्पष्ट सीमाए ह । यह उचित अवसर है कि इस समस्या पर गभीरता म विचार किया जाय । श्रमिक सघो को एक राजनैतिक मोर्चा खोलना चाहिये । और अपने सदस्यो को शिक्षित करना चाहिये । श्रमिको मे साक्षरता और शिक्षा के प्रसार से यह काय सरल हो जायगा । कुछ श्रमिक सघो के सविधान मे राजनैतिक समितियो की स्थापना की व्यवस्था है किन्तु ये समितियाँ श्रमिक वग मे राजनैतिक ज्ञानोद्दीपन लाने मे अभी तक सफल नही हुई हैं ।

राजनैतिक दल तथा श्रमिक आन्दोलन

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना १८८५ में हुई थी । प्रारम्भिक काल मे यह प्रधानत मध्यम वग का एक सगठन था जिसने प्रशासन म अत्याधश्यक व्ययाओ को दूर करने मे अधिक रुचि ली । बारबार से देश के औद्योगीकरण के प्रवतन और बेकारी को कम करने के लिये प्राथना करते प्रस्ताव पारित किये गये । विशेषकर

प्रथम विश्वयुद्ध में और उसके बाद देश में औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस की नीति में मूलभूत परिवर्तन आया। यह जन समूह का संगठन हो गया तथा उसका उद्देश्य साधारण जनता के हित की रक्षा करना तथा उसे उचित रूप में संगठित करना निर्धारित किया गया। औद्योगिक अशान्ति विचारणीय हो रही थी तथा महात्मा गांधी के निर्देशन में अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संगठन की स्थापना की गई। अन्य स्थानों पर भी श्रमिक संघों को स्थापित किया गया। १९१९ में अमृतसर कांग्रेस में प्रान्तीय समितियों और अन्य सम्बद्ध संघों से अनुरोध करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया गया कि सारे देश में श्रमिक वर्गों की सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों को उन्नत करने तथा उनके लिए उचित जीवन स्तर तथा भारत के सर्वधानिक निकाय में समुचित स्थान प्राप्त करने के दृष्टिकोण से श्रमिक संघों का प्रवर्तन किया जाय।' कांग्रेस के बाद के अधिवेशनों में भी इसी प्रकार के प्रस्ताव पारित किये गये। एक केन्द्रीय अखिल भारतीय श्रमिक संघ संगठन की भी आवश्यकता अनुभव की गई। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा जब १९२० में इसकी स्थापना हो गई, की सहायता हेतु कांग्रेस ने एक समिति की नियुक्ति की ताकि भारत के श्रमिकों को संगठित किया जा सके। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने निकट सहयोग में कार्य किया तथा कांग्रेस के अध्यक्ष और सचिव प्रायः ही श्रमिक संघ सभा के भी अध्यक्ष और सचिव होते थे। १९२८ के बाद श्रमिक संघ आन्दोलन में राजनैतिक मतभेदों तथा साम्यवादी प्रभाव की प्रधानता के कारण फूट पड़ गई। श्रमिकों के बीच एकता स्थापित करने के लिये राष्ट्रीय कांग्रेस की शक्ति व्यय की जाने लगी। श्रमिक संघ एकता समिति की स्थापना की गई। श्रमिक संघ एकता समिति के प्रयत्न सफल हुए जब राष्ट्रीय श्रमिक संघ संघान की स्थापना की गई और बाद में जब राष्ट्रीय श्रमिक संघ संघान तथा अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा आपस में विलय हो गये।

राष्ट्रीय कांग्रेस ने करांची में आयोजित १९३१ के अपने अधिवेशन में स्वराज्य की व्याख्या की। प्रस्ताव में कहा गया कि स्वतंत्र भारत में सरकार को श्रमिकों के लिये निम्नलिखित व्यवस्था करनी चाहिए—

१ औद्योगिक श्रमिकों के लिए जीवन निर्वाह मजदूरी कार्य के सीमित घंटे स्वस्थ कार्य की अवस्थाएँ वृद्धावस्था बीमारी और बेरोजगारी के आर्थिक परिणामों के विरुद्ध सुरक्षा।

२ श्रमिकों को दासत्व में अथवा उन स्थितियों से जिनमें दासत्व को बल मिले मुक्ति।

३ स्कूल जाने वाली अवस्था के बच्चों की फैक्ट्री में नियुक्ति पर प्रतिबंध।

४ अपने हितों की रक्षा के लिये संघ बनाने का श्रमिकों का अधिकार तथा

विवादो को सुलझाने के लिये समुचित तत्र ।

काग्रेस जन-समूह का सगठन हो गई थी तथा राष्ट्रीय सघर्ष चालू रखने के लिये सभी वर्गों का समर्थन पाने हेतु प्रयत्न कर रही थी । काग्रेस का मूल उद्देश्य स्वतत्रता प्राप्त करना था तथा अन्य सभी उद्देश्य गौण थे । जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिये इसने स्वतत्रता के बोध की अपनी व्याख्या की । यह भी अनुभव किया गया कि स्वतत्रता का अर्थ केवल शासन का बदलना ही नहीं बल्कि जीवन के सभी क्षेत्रो म प्रगति होना चाहिये । इसी कारण श्रमिको को उचित रूप से सगठित करने म काग्रेस की रुचि थी । गाधी सेवा सघ की श्रमिक उप-समिति ने हिन्दुस्तान मजदूर सेवक सघ का सगठन किया जिसका उद्देश्य था कि देश के सभी औद्योगिक केन्द्रो के श्रमिको को उचित रीति से सगठित किया जाय ताकि उचित औद्योगिक सबधो की स्थापना हो किसी भी रूप मे शोषण का उन्मूलन हो जीवन और उनकी काय की अवस्थाओ म वेग से सुधार हो तथा उन्ह उद्योग और समाज मे प्रतिष्ठा मिले, और इसके अलावा, यह श्रमिको के तथा देश की शान्तिपूर्ण प्रगति के हित मे सर्वोच्च महत्त्व का है कि महात्मा गाधी द्वारा प्रतिपादित सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तो पर श्रमिक सघ कायकलापो तथा व्यावसायिक विवादो के सुलझाने म बल दिया जाय और उनका अधिकतम सीमा तक प्रयोग किया जाय ।

श्रमिको पर काग्रेस का नियत्रण दृढ था । १६३७ के प्रान्तीय चुनाव म २० स्थानो के लिये लडे गये चुनाव म काग्रेस का १८ स्थान प्राप्त हुए ।

श्रमिक सघो के साथ जहाँ तक काग्रेस के सम्बन्धो का प्रश्न था उसम १६४२ के भारत छोडो आदोलन के बाद कुछ धक्का पहुँचा । काग्रेसी नेताओ को बन्द कर लिया गया था । दमनकारी प्रावस्थाओ के कठोरतम दौर म देश को गुजरना पडा और जितने भी काग्रेस के उद्देश्य के प्रति सहानुभूति दिखाइ उसे जेलों म बन्द कर दिया गया । साम्यवादियो ने युद्ध को जनयुद्ध घोषित कर दिया । भारतीय श्रमिक सघान, एक विरोधी सगठन की स्थापना की गई । सरकार ने भारतीय श्रमिक सघान की धन से सहायता की और काग्रेस का श्रमिको पर नियत्रण पर्याप्त रूप से कम हो गया ।

काग्रेसी नेताओ के जेल से छूटने के बाद देश के राजनैतिक वातावरण मे फिर परिवर्तन आया । शक्ति के हस्तातरण के लिये वार्तालाप आयोजित किये गये । काग्रेसी नेता एक बार फिर हमारे देश के श्रमिक वर्ग के बीच अधिकतम लोकप्रिय हो गये । १६४६ के प्रान्तीय निर्वाचनो म काग्रेस का ६६ १ प्रतिशत मत मिले तथा ३८ स्थानो म से कुल २३ स्थानो म इसकी जीत हुई । श्रमिको के क्षेत्र मे भी सवाधिक प्रतिनिधित्व सगठन काग्रेस को ही स्वीकार किया गया ।

देश म द्रुत अनुक्रम से राजनैतिक विकास हो रहे थे । काग्रेस को पहले अन्त कालीन सरकार और बाद म केन्द्रीय प्रथम लोकप्रिय सरकार बनाने का दायित्व

सौंपा गया। काग्रेसी सरकारें राज्यों में भी काय कर रही थीं। लोकप्रिय सरकारों को अप्रमतम औद्योगिक सघर्षों का सामना करना पड़ा। १९४५ मे विवादों की सख्या ८२० थी जो १९४६ मे १६२९ और १९४७ म १८११ हो गई। इन विवादों के फलस्वरूप जितने काम कर दिनों की क्षति हुई उनकी सख्या क्रमश ४०,५४,४९९ १ २७ १७,७६२ तथा १ ६५ ६२ ६६६ थी। काग्रेस न अनुभव किया कि वह श्रमिक मोर्चे पर कुछ अधिक नहीं कर रही और अखिल भारतीय श्रमिक सघ सभा की भूमिका भी उचित नहीं है। काग्रेस न एक श्रमिक सगठन की भी आवश्यकता महसूस की जो उसकी श्रम नीतियों को श्रमिकों तक पहुँचा सके, उनके बीच प्रभावशाली प्रचार कर सके और सरकार के कायक्रम तथा नीतियों के लिये उनका सहयोग प्राप्त कर सके। इसी कारण मई १९४७ म भारतीय काग्रेस के सक्रिय समथन से भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा का सगठन किया गया। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा ने बहुत शीघ्र प्रगति की और अब यह सर्वाधिक प्रतिनिधि सगठन है।

काग्रेस द्वारा प्रवर्तित श्रमिक सगठनों को सुधारवादी की सज्ञा दी गई है क्योंकि ऐसा अनुभव किया जाता है कि उनका वतमान सामाजिक और आर्थिक पद्धतियों म मूलभूत परिवतन करने के लिये कोई प्रस्ताव नहीं है। यह सामान्यतया उन लोगों का मत है जो वग-सघर्ष के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। वग-सघर्ष की अनिवायता पर काग्रेस ने कभी विश्वास नहीं किया है। दूसरी ओर उसका विश्वास है कि वतमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का शान्तिपूर्ण और प्रजातान्त्रिक रीति से बदला जा सकता है। श्रम नीति के क्षेत्र म स्वराज्य के अन्तगत श्रमिकों के अधिकारों को लेकर कराँची म १९३१ म जो प्रस्ताव पारित किया वह एक युगान्तकारी घटना है। काग्रेस की नीति मुख्यतया इसी प्रस्ताव द्वारा निर्देशित हुई है। काग्रेस न अपने सम्मुख समाज के समाजवादी स्वरूप का लक्ष्य रखा है। इस दृष्टि से काग्रेस द्वारा प्रवर्तित श्रमिक सगठनों को सुधारवादी कहकर निन्दित करना अनुचित है। यद्यपि रीतियों म अतर है किन्तु अन्तिम लक्ष्य एक ही है।

काग्रेस द्वारा प्रवर्तित सगठनों पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि वे नियोजक वग के पक्षपाती हैं। वास्तव में यह कहा जाता है कि काग्रेस ने स्वय पूजीपतियों तथा अन्य स्वार्थनिहित व्यक्तियों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार सम्पूर्ण रूप म काग्रेस की भर्त्सना करना अन्यायपूर्ण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूव की अवधि म काग्रेस वस्तुत अपने वास्तविक अर्थों म दल नहीं था बल्कि एक मच था। काग्रेस समाज के अधिक से अधिक सम्भव वर्गों का समथन चाहती थी। श्रम और पूजी के बीच आन्तरिक विवादों म यह अपनी शक्ति बरबाद नहीं करना चाहती थी। और इसलिए काग्रेस इसका दलीय नीति नहीं अपना सकी क्योंकि इसका उद्देश्य राष्ट्रीय एकता और एक शक्ति विरोधी ताकत को भगा देना था। यह भी सत्य है कि पूजीपतियों और अन्य निहित स्वाथ वाले व्यक्तियों ने मुख्यतया लाभ

वमान की अपनी इच्छा से प्रेरित होकर ही काग्रेस का समर्थन किया था। लेकिन यह भी सामान्य रूप से सही है कि काग्रेस कभी पूजीपतियो का या पजीपतियो द्वारा अधिरूढ सगठन नही रहा है। वह हमेशा अपने सर्वश्रेष्ठ रूप मे जनसमूह का सगठन बनी रही है। और उसकी नीतिया जनता की उन्नति और सम्वृद्धि के विचारो से निर्धारित होती रही है।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस तथा भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के बीच सबधो को हमारे प्रधानमत्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा समेकित किया गया है। उन्होने काग्रेसियो से अनुरोध किया कि वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को सर्वोच्च सस्था के रूप मे मानें और उसकी आचार-सहिता का पालन करें। पारिभाषिक रूप से भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस दो पृथक सगठन हैं तथा कोई भी एक दूसरे के अधीन नही है। फिर भी यह कहने की आवश्यकता नही कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा अधिकाशत काग्रेसियो द्वारा प्रवर्तित और पोषित रही है और उसे काग्रेस के नैतिक और अन्य समर्थन से शक्ति मिलती है। तदनुसार यह अनिवार्य है कि सभी राजनैतिक मामलो मे भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा मे कार्य करने वाले सभी काग्रेसियो को अपनी सर्वोच्च सस्था के रूप म काग्रेस को मानना चाहिये और उसकी आचार-सहिता का पालन करना चाहिये।'

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के साथ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के सबध हमेशा सुखद नही रहे हैं। इन दो सगठनो के बीच कुछ राज्यो म मतभेद पदा हुए है। हाल ही मे मध्य भारत मे काग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के बीच स्पर्धा अधिक स्पष्ट हो उठी थी १६५५ मे मध्य जब मध्य भारत काग्रस की कार्य कारिणी समिति की बठको मे इस विषय पर चर्चा की गई तो गर्मागर्म बहसें और कठोर शब्दो का आदान प्रदान तक किया गया। राज्य भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के नेता श्रीयुत रामसिंह वर्मा और राज्य काग्रेस के प्रमुख द्वारा आरोप और प्रत्यारोप लगाये गये। श्रीयुत वर्मा ने रतलाम और ग्वालियर के काग्रेसियो की श्रमिक क्षेत्र मे भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के विरुद्ध विरोधी सगठन स्थापित करने के लिये भर्त्सना की। दूसरी ओर कुछ सदस्यो ने इन आरोपो का खण्डन करते हुए श्रमिक नेताओ पर अनावश्यक वितण्डा खडा करने का दोषारोपण किया। काग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के सम्बन्धो पर घटो गर्मागर्म बहस के बाद कार्यकारिणी समिति ने सम्मति प्रकट की कि काग्रेस कार्यकारिणी समिति द्वारा हाल ही मे लिये गये निर्णय को क्रियान्वित किया जाय। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के अध्यक्ष श्री जी० डी० अम्बेकर ने जुलाई १६५५ म कलकत्ता म यह घोषणा की कि काग्रेस उच्च सत्ता (Congress High Command) के नये निदेश के अनुसार अब किसी भी काग्रेसी को भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के विरोधी किसी भी सस्पर्धी सगठन के साथ अपने को सम्बन्धित करने की आज्ञा नही प्रदान की

जायगी। चूंकि दोनों संगठन—कांग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा—गांधीवादी आदर्शों के मार्ग का अनुसरण करते हैं इसलिए कांग्रेस कार्यकर्ताओं और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के कार्यकर्ताओं के बीच किसी प्रकार के मतभेद पैदा होने का कोई कारण ही नहीं है। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा का कार्य पूर्णतया श्रमिकों तक सीमित था। अन्य राजनैतिक दलों में सम्बद्ध व्यक्ति सम्मिलित होकर सभा के साथ कार्य करते हैं। प्रत्येक कांग्रेसी के लिये भी यह अनिवार्य था कि वह भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करे।

कांग्रेस के महासचिव श्री श्रीमन् नारायण ने भी मध्यभारत कांग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के विवाद में हस्तक्षेप करते हुए यह स्पष्ट कर दिया था कि श्रम के क्षेत्र में कांग्रेस द्वारा किया जाने वाला प्रत्येक कार्य पूर्णतया और एकाधिकृत रूप में भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के माध्यम से ही किया जाना चाहिये। श्रमिक संघों के प्रतिनिधियों को कांग्रेसी होने के नाते उन्हें कार्यालय में पद ग्रहण करने और दलीय चुनाव लड़ने की स्वतन्त्रता थी। वे कांग्रेस संगठन के अभिन्न अंग थे। उन्हें नगरपालिका परिषदों और अन्य स्थानीय संस्थाओं में श्रमिक क्षेत्रों तथा अन्य औद्योगिक स्थानों में प्रतिनिधित्व करने का पूर्ण अधिकार था। कांग्रेस के संविधान में निहित है कि प्रत्येक प्रभावशाली सदस्य को रचनात्मक कार्य करना चाहिये। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के कार्यकर्ताओं को दलीय कार्यालयों से बाहर रखने में कोई औचित्य भी नहीं था।

कांग्रेस महासचिव के श्रम साध्य प्रयत्नों से अन्ततः समझौता हो गया। मध्य भारत कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने निर्णय लिया कि स्थानीय भारतीय श्रमिक संघ सभा द्वारा स्थापित भूमिहीन श्रमिक संगठन को कांग्रेस द्वारा संगठित किसान समिति के साथ पूर्ण सहयोग रखना चाहिये। किसान समिति को पूर्ण सहयोग देने की बात भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने स्वीकार भी कर ली। जहाँ तक खेतिहर मजदूर संघ, भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा का एक संगठन था प्रश्न था, यह निश्चित किया गया कि उसमें केवल भूमिहीन श्रमिक ही सदस्य बनाये जांय। सामान्य हित के मामलों विशेषकर श्रमिक क्षेत्र में संगठनात्मक स्तर पर पैदा होने वाली समस्याओं पर विचार करने के लिये तीन व्यक्तियों—दोनों संगठनों, भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा तथा राज्य कांग्रेस के अध्यक्ष और मुख्यमन्त्री की एक समिति स्थापित की गई। यद्यपि अन्य राज्यों में कांग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के बीच सम्बन्धों पर इतना अधिक स्पष्ट असन्तोष नहीं है जितना मध्यभारत में मुखरित हुआ, किन्तु फिर भी इस बात के संकेत मिलते हैं कि उनके सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण नहीं हैं।

विभिन्न राज्यों की प्रान्तीय कांग्रेस समितियों के प्रति श्रमिक संघों की अपूर्ण निष्ठा ने भी प्रायः आन्दोलन के स्वस्थ विकास में बाधा पहुँचाई है और श्रमिक संघ

स्याएँ पैदा की हैं। लौहा और इस्पात कम्पनी के सभापति के भाषण से लिए गये निम्नलिखित उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कैसे एक ही राजनीतिक संगठन के दो वर्गों के बीच श्रमिक संघ सम्बधी के फलस्वरूप औद्योगिक संघर्ष पैदा हुए और श्रमिक आंदोलन की एकता भंग हुई। सर्वप्रथम धातु चद्दर मिल में धीरे काम करो हड़ताल का आश्रय लिया गया और जिसने विभिन्न हल्के वस्तुओं तथा पिसाई का काम ठप्प कर दिया। उसका प्रारम्भ जनवरी १९५२ में हुआ था और जैसे जैसे समय बीतता गया यह स्पष्ट होता गया कि समस्या का मूल कारण विरोधी संघों एक बिहार राज्य कांग्रेस द्वारा प्रवर्तित तथा दूसरा पश्चिमी बंगाल राज्य कांग्रेस द्वारा स्थापित के बीच प्रतियोगिता में निहित है। यह भी व्यक्त था कि विवाद से प्रबंध का कोई सम्बन्ध नहीं था किन्तु जब भी परिस्थितियाँ अनुकूल हुई दोनों पक्षों द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक उसका उपयोग किया गया। अन्त में प्रबंध द्वारा २४ अगस्त को तालाबन्दी की घोषणा की गई जो साढ़े तीन सप्ताह तक चलती रही और जिसने स्पष्टतः दोनों की अक्ल ठिकाने लगा दी। यह स्पष्ट हो गया था कि प्रतियोगी दल संघर्ष को चालू रखने के इच्छुक थे किन्तु प्रबंध द्वारा तुरन्त कदम उठाये गये ताकि धीरे धीरे बर्नपुर स्थित कार्यालयों और कारखानों में सामान्य स्थिति स्थापित की जा सके। इस विवाद से उत्पादन को काफी क्षति पहुँची। प्रबंध ने इसके लिए श्रमिक राजनीति तथा राजनैतिक हस्तक्षेप को दोषी ठहराया। उन्होंने इस बात पर खेद प्रगट किया कि देश के विभिन्न श्रमिक संघों पर विभिन्न राजनैतिक दलों का आधिपत्य है। ऐसी स्थितियों के कारण वर्तमान तनाव निकृष्टतम रूप से विकसित हो उठता है तथा श्रम और प्रबंध के बीच की दूरी और बढ़ जाती है।

ऐसे भी उदाहरण है जहां कुछ स्थानों पर भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के नेता कांग्रेस के अलावा अन्य राजनैतिक दलों में आये। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के नेताओं पर किसी अन्य राजनैतिक दलों के साथ सम्बद्ध होने से रोक नहीं लगाई गई है। वस्तुतः बारबार इस बात पर बल दिया गया है कि वे लोग जो श्रमिक वर्ग की अवस्थाओं में सुधार करने और उनके हितों को प्रवर्तित करने में रुचि रखते हैं भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा में सम्मिलित हो सकते हैं भले ही उनके कुछ राजनैतिक संबंध हों। कुछ राज्यों में दोनों प्रजा समाजवादी दल और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के अन्तर्गत कार्य कर रहे थे। किन्तु राजनैतिक संबंध ने इन नेताओं को श्रमिक संघवाद के क्षेत्र में एक साथ कार्य करने पर बाध्य किया इसका एक रुचिकर उदाहरण पश्चिमी बंगाल की भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की शाखा थी जहां दो विरोधी वर्ग थे और जिनमें काफी समय से मतभेद चला आ रहा था। एक वर्ग का नेतृत्व डा० श्रीमती मैत्रेयी बोस कांग्रेस दल की सदस्या के हाथ में था तथा दूसरे वर्ग का प्रजा समाजवादी दल के श्री देवेन सेन के हाथ में। ये मतभेद १९५३ में अपनी चरम सीमा पर

पहुँच गये जब बंगाल प्रान्तीय श्रमिक संघ सभा की सामान्य परिषद् और कार्य कारिणी समिति के चुनाव हुए। विवाद इस प्रश्न को लेकर उठ खड़ा हुआ कि बंगाल प्रान्तीय श्रमिक संघ सभा के कुछ भूतपूर्व नेता, जिनमें डॉ० एस० सी० बनर्जी और श्री देवन सेन भी सम्मिलित थे, इससे मजदूर दल में सम्बद्ध हो गये जो अब प्रजा समाजवादी दल में विलय हो गया है। यह विवाद १९५७ के प्रारम्भ में निर्णयार्थ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की सामान्य परिषद् को भेजा गया जिसने प्रजा समाजवादी दल द्वारा नियन्त्रित बंगाल प्रान्तीय श्रमिक संघ सभा की कार्यकारिणी समिति को विघटित कर दिया तथा दिन प्रतिदिन का कार्य देखने के लिये पाँच व्यक्तियों की एक तदर्थ समिति स्थापित की जिसके श्री काली मुकर्जी, कांग्रेसी विधान सभा सदस्य, संयोजक थे।

निर्वाचन के समय कांग्रेसी और कांग्रेसियों में मतभेद पैदा हो गया और डॉ० मैत्रेयी बोस द्वारा नियन्त्रित हुई सम्पूर्ण बैठक को यह कहा गया कि यह 'अनियमित और अवैधानिक' है, छोड़कर चले आये। चूंकि कार्यकारिणी समिति ने तदर्थ समिति को विघटित किया था इसलिए बैठक को अनियमित घोषित किया गया। उनका कहना था कि प्रजा समाजवादी दल ने साम्यवादियों के साथ हाथ में हाथ मिलाकर कार्य करने का निश्चय कर लिया था और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के कांग्रेसी पक्ष के लिये यह असम्भव हो गया था कि वह प्रजा समाजवादी दल के वर्ग, जिसका नेतृत्व डॉ० एस० सी० बनर्जी और श्री देवन सेन कर रहे थे, के साथ संयुक्त कार्यकारिणी समिति की स्थापना करें। दोनों ही वर्गों ने राज्य के श्रमिकों के बहुमत को प्रतिनिधित्व करने का दावा किया। डॉ० श्रीमती बोस के वर्ग को श्री अतिन घोष से समर्थन मिला तथा कांग्रेसियों से प्रार्थना की कि वे उन्हें सफल बनायें। इसके विपरीत श्री देवन सेन का कहना था कि श्रमिक संघवाद को राजनैतिक सम्बन्धों से मुक्त रखा जाय। श्री सेन के विचारों को भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के नेताओं से भी समर्थन मिला। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के अध्यक्ष और सचिव क्रमशः श्री जौहरी और श्री शास्त्री ने 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के साथ एक अनन्य साक्षात्कार में कहा कि "श्री देवन सेन और अन्यों का प्रजा समाजवादी दल से सम्बद्ध होना तब तक भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा, जो एक श्रमिक वर्ग का स्वतन्त्र संगठन है, के साथ उनके कार्य करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं पैदा करेगा जब तक वे संगठन की कार्य रीतियों और उद्देश्यों का पालन करते हैं।" श्री जौहरी ने कांग्रेसियों द्वारा बैठक छोड़कर चले जाने पर क्षोभ प्रगट करते हुए कहा कि यह उनका प्रथम कर्तव्य था कि वे श्रमिक आन्दोलन को उचित श्रमिक संघ प्रणाली पर बनाये रखते तथा दलीय विचारों से उसे प्रभावित नहीं होने देते। श्री शास्त्री ने श्री जौहरी के विचारों का समर्थन किया और कहा कि ऐसा समय की आवश्यकता थी। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने श्रमिक संघवाद में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का पालन

किया है तथा कोई भी चाहे उसके कोई भी दलीय सिद्धान्त हो, जो इन सिद्धान्तो का पालन करना है संगठन मे कार्य कर सकता है। पण्डित नेहरू ने भी कहा है कि यद्यपि प्रजा समाजवादी दल काग्रेस का विरोधी था किन्तु जहा भी सम्भव हो दोनो संगठनो को कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करना चाहिये।

बाद में नई परिषद् और कार्यकारिणी समिति की स्थापना की गई। श्रमिक संघ संगठन के विरोधी पक्षो के बीच अधिक समय से चले आ रहे मतभेदो को काफी हद तक सुलझाते हुए उनमे प्रजा समाजवादी दल और काग्रेस दोनो के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये थे। श्री विपिनबिहारी गागुली सदस्य विधान सभा (काग्रेस) को अध्यक्ष तथा श्री देवेन सेन (प्रजा समाजवादी दल) और श्री दयाराम सदस्य विधान सभा, (काग्रेस) को महासचिव निर्वाचित किया गया।

किन्तु हम इस तथ्य की अवहेलना नही कर सकते है कि देश मे कुछ निकृष्ट तम निर्णयो के लिये काग्रेस प्रशासन उत्तरदायी रहा है। उनमे से सबसे भयकर बैंक न्यायाधिकरण के परिनिर्णय पर सरकार की सूझ बूझ थी। न्यायाधिकरण के परिनिर्णय को निर्यान्वित करने से मना कर देना सबसे अधिक आश्चर्यजनक था। न्यायालय आर्थिक और सामाजिक समस्याओ के प्रति रूढिवादी दृष्टिकोण के लिए विख्यात है। किन्तु इस मामले मे कार्यकारी ही केवल रूढिवादी सिद्ध हुए और सरकार, जो असमानता को कम करने तथा समाजवादी समाज को स्थापित करने के लक्ष्य की घोषणा करती रही गलत और लोकहित के प्रतिकूल सलाह पर विपरीत दिशा की ओर बढ गई। श्री वी० वी० गिरि, जो उस समय श्रम मन्त्री थे ने इस प्रश्न पर त्यागपत्र देना उचित समझा जिससे यह स्पष्ट होता है कि काग्रेस मे अब भी ऐसे व्यक्ति थे जो अपने प्रिय उद्देश्य के लिये त्याग करने हेतु इच्छुक रहते थे। इसी प्रकार परिनियत पुस्तिका मे निवारक विरोध अधिनियम को बनाये रखना श्रमिको के दूसरे वर्ग से सम्बद्ध श्रमिक नेताओ को सामूहिक रूप से गिरफ्तार करना तथा बिना किसी भेदभाव के धारा १४४ का प्रयोग करना काग्रेस प्रशासन के लिये श्रेयस्कर नही है।

फिर भी हम निस्सकोच यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कुछ इक्के दुक्के मामलो को छोडकर सामान्यत काग्रेस ने इस देश के श्रमिको की भलाई के लिये कार्य किया है।

साम्यवादी दल

वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त का साम्यवादी समर्थन करते हैं और उसका प्रचार करते हैं तथा वर्तमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को उखाड फेंकने के लिये श्रमजीवी क्रान्ति की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। वे श्रमिको की ओर से सामूहिक राजनतिक क्रिया का अधिवचन करते है। इस कारण पूजीवादी पद्धति के विरुद्ध वे श्रमिक संघो को अपने व्यूह कौशल का एक अग मानते हैं। उनके लिये बढता हुआ

असन्तोष तथा निष्क्रिय शान्ति का मिट जायगा । इसलिए श्रमिक समस्याओं के प्रति साम्यवादियों का बिलकुल भिन्न दृष्टिकोण है । प्रत्येक देश में विशेषाधिकारहीनों में साम्यवादी रूस के प्रति उत्सुकता रहती है । रूसी क्रान्ति ने तो राज्य की प्रबन्धक नीति की नींव ही हिला दी है । इसने सिद्ध कर दिया है कि उस देश के आर्थिक क्षेत्र में नई समस्या व बेरोजगारी एक अनिवार्य तत्व नहीं है । फिर सर्वहारा रूस ने इतनी बहुत बड़ी संख्या में लोगों को [illegible] तथा निर्धनता से बचाया है । इसने लोगों के हृदय में असन्तोष और विद्रोह की भावना भर दी है जो, रूस के समान, उस सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिये प्रयत्नशील रहती है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति व्यक्ति का शोषण करता है तथा एक वर्ग के लोगों को एक बहुत ही निम्न जीवन स्तर का व्यतीत करने के लिये बाध्य किया जाता है । इसने प्रत्येक देश के विशेषाधिकारहीन वर्गों में सामान्य और सामूहिक क्रिया के लिये नई आशा और इच्छा का संचार कर दिया है ।

साम्यवादियों ने १९२४ से श्रमिक संघ आन्दोलन में रुचि लेना आरम्भ किया यद्यपि साम्यवाद का जन्म १९२० में हुआ जब वाममार्गी अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ ने पूर्वी देशों की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया । साम्यवाद के साथ कठोर शब्दावली और हिंसा का भी सूत्रपात हुआ । दो मुकदमे कानपुर और मेरठ—आयोजित किये गये । १९२८–३१ के वर्षों में साम्यवाद अपने चरम स्तर पर था जबकि देश में कुछ भीषण हड़तालें हुईं ।

साम्यवादी प्रभाव ने श्रमिक संघ आन्दोलन को भी विभक्त किया । अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा को उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया था । चूँकि सुधारमार्गी नेताओं के लिये उनके साथ काम करना सम्भव नहीं था इसलिए एक समय यह आया जब देश में बहुत से असम्बद्ध संगठनों के अलावा चार राष्ट्रीय श्रमिक संघ संगठन बन गये, यथा अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा, वाममार्गी श्रमिक संघ सभा, भारतीय श्रमिक संघ संघात तथा राष्ट्रीय श्रमिक संघ संघात । उदारवादियों और साम्यवादियों के बीच की खाई पूरी हो गई थी जिसे पाटा नहीं जा सकता था । यद्यपि बहुत कठिनाई के बाद १९३८ में एकता स्थापित हो गई थी । और यह भी अधिक दिन तक नहीं रही तथा युद्ध अवसरों में भारत के सम्मान के प्रश्न को लेकर भंग हो गई । सरकार की सक्रिय सहायता से भारतीय श्रमिक संघों का संगठन किया गया । क्योंकि जर्मनी ने रूस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया था इसलिए साम्यवादी नेताओं ने युद्ध प्रयत्नों में हर प्रकार की सहायता की । साम्यवादियों ने "भारत छोड़ो आन्दोलन" तथा कांग्रेस की उसकी युद्ध विरोधी नीति के लिये आलोचना की ।

साम्यवादी और असाम्यवादी वर्गों के बीच प्रतिद्वन्द्व की शक्ति परीक्षा चल रही है । रूस और [illegible] सिद्धान्तों के कारण साम्यवादी नेताओं की निन्दा की जाती है । यह कहा जाता है कि [illegible] द्वारा साम्यवादी रूस की नीति

स्थिर की जाती है। उन्होंने बहुत बार देश के हित का ख्याल नहीं किया है। भारत के विरुद्ध चीन के आक्रमण तथा चीन द्वारा हमारी भूमि पर अधिकार कर लेने के प्रति साम्यवादी दल की अभिवृत्ति इस विश्वास की और पुष्टि करती है कि उन्हें बाहर से प्रेरणा मिलती है। साम्यवादियों ने अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिये जो रीतियाँ प्रयुक्त की, उन्हें भी सामान्य अनुमोदन नहीं मिला है। उनकी कूटनीतियाँ सदैव उचित और निष्कपट नहीं रही हैं।

साम्यवादी वर्ग द्वारा अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा को नियंत्रित किया जाता है। यह निस्सन्देह रूप से सही है कि कुछ देनों में अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा बहुत शक्तिशाली है। साम्यवादी प्रभाव भी अब स्थायी हो गया है। वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त पर प्रादिसत्य रूप से आग्रह तथा क्रान्ति की अनिवार्यता, अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कोई भी रीति अपनाने के लिये प्रस्तुत रहने तथा अपने कार्यकलापों को शान्तिपूर्ण और यथार्थ साधनों द्वारा संचालित न करने से श्रमिक आन्दोलन में फूट पड़ गई है तथा सौहार्द स्थापन सुदूर तथा कठिन प्रतीत होने लगा है।

समाजवादी दल

इन दो चरम सीमाओं के मध्य समाजवादी दल की स्थिति है। उनकी कार्यप्रणाली भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की दक्षिणपंथी और अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा की वामपंथी नीति के कहीं बीच में पड़ती है। समाजवादी भी वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं किन्तु उनका विश्वास है कि परिवर्तन शान्तिपूर्ण और प्रजातान्त्रिक रीतियों से लाया जा सकता है।

समाजवादियों का प्रभाव १९३४ से माना जा सकता है जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्तर्गत ही कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की गई। कांग्रेस समाजवादी दल का उद्देश्य था कि जन समूह का संगठन बनाया जाय और उसकी नीतियाँ वाममार्ग की ओर उन्मुख हों। कांग्रेस की नीतियों को परिवर्तित करना तथा उन्हें अधिक प्रगतिशील और युयुत्सु बनाना दल की आकांक्षा थी। कांग्रेस समाजवादी दल कांग्रेस का ही एक अभिन्न अंग था। वस्तुतः प्रारम्भिक काल में कांग्रेस की सदस्यता अनिवार्य थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समाजवादी वर्ग और दक्षिणपंथी या अधिक संयतमार्गी वर्ग के बीच मतभेद चरमसीमा पर पहुँच गये। बाद में समाजवादियों ने मुख्य संगठन को छोड़कर अपना समाजवादी दल बना लिया। तदुपरान्त समाजवादी दल किसान मजदूर दल जो उन कांग्रेसियों द्वारा संगठित किया गया था जो कांग्रेस की अधिकारिक नीति का अनुमोदन नहीं करते थे के साथ समामेलित हो गया। इसके बाद समाजवादी दल और किसान मजदूर दल ने विलय होकर प्रजा समाजवादी दल की स्थापना की।

समाजवादी वर्ग ने कांग्रेस के साथ निकट सहयोग से श्रमिक मोर्चे पर कार्य

किया था। किन्तु उन्होंने जल्दी ही अनुभव किया कि जहाँ अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा पर साम्यवादियों का आधिपत्य है, भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा बहुत अधिक कांग्रेस के नियन्त्रण में है और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने प्रायः ही बहुत सी महत्वपूर्ण श्रमिक समस्याओं के प्रति सरकार और कांग्रेस समर्थक अभिवृत्ति अपनायी है। यह भी अनुभव किया गया कि कांग्रेस और सरकार अ-कांग्रेसी श्रमिक नेताओं के साथ भेदभाव का बर्ताव करती है।

इसलिए १९४८ में समाजवादियों ने हिन्द मजदूर सभा की स्थापना की। हिन्द मजदूर सभा ने स्थिर रूप में प्रगति की है और अब भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के बाद द्वितीय सर्वाधिक प्रतिनिधि श्रमिक संगठन है।

समाजवादी नेताओं के एक वर्ग का यह विचार था कि श्रमिक संघों को किसी राजनैतिक दल से सम्बद्ध नहीं होना चाहिये। परिणामस्वरूप उन्होंने एक पृथक् राष्ट्रीय संगठन—संयुक्त श्रमिक संघ सभा का निर्माण किया। हाल ही में समाजवादी दल ने हिन्द मजदूर पंचायत की भी स्थापना की है।

साम्प्रदायिक राजनैतिक दल

साम्प्रदायिक राजनैतिक संगठनों का अब भी श्रमिकों पर सशक्त नियन्त्रण नहीं है। साम्प्रदायिक आधार पर किसी भी श्रमिक संघ का संगठन नहीं किया जा रहा है। मुस्लिम लीग द्वारा इस दिशा में कुछ प्रयत्न किये गये थे किन्तु इन्हें सफलता नहीं मिली। हिन्दू महासभा और इसी तरह के अन्य संगठन भी श्रमिक क्षेत्र में अपना पैर जमाने के बारे में सोच रहे हैं। लेकिन उनके द्वारा अभी तक कोई श्रमिक संघ संगठन स्थापित नहीं किया गया है। वस्तुतः यह श्रमिक आन्दोलन के लिये एक दुःखद दिन होगा यदि साम्प्रदायिक आधार पर उसका विभाजन हो जाये। हम केवल आशा कर सकते हैं कि भारत के साध्य श्रमिक में इतनी सूझ-बूझ और बुद्धि है कि न एम किसी दुस्साहस को समाप्त कर दें।"[1]

---

[1] हाल ही में भारतीय जनसंघ ने भारतीय मजदूर संघ का संगठन किया है और जनसंघ का दावा है कि वह एक असाम्प्रदायिक राजनैतिक दल है।

२५

श्रमिक सघो के कोष तथा बिल

अन्य सभी प्रतिष्ठानो की तरह श्रमिक सघो को भी कोष की आवश्यकता होती है। किन्तु श्रमिक सघ सगठनो के लिये धन स्वय मे लक्ष्य नही है बल्कि लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये वह एक आवश्यक साधन मात्र है। अन्य व्यापारिक सस्थाओ से श्रमिक सघ भिन्न हैं। उनका उद्देश्य लाभ कमाना या लाभ की वृद्धि के लिये बृहत् कोष सचित करना नही है। साथ ही यह सत्य है कि बिना पर्याप्त कोष के श्रमिक सघो का अस्तित्व सभव नही है। अपने दिन प्रतिदिन के प्रशासन को चलाने सगठनात्मक अभियान प्रारम्भ करने विभिन्न हित लाभो को जो वे अपने सदस्यो को देना चाहे की व्यवस्था करने विभिन्न वैधानिक और स्थानीय निकायो म अपने प्रतिनिधि भेजने तथा नियोजको के साथ अपनी सौदाकारी शक्ति को मजबूत बनाने के लिये उन्ह वित्त की आवश्यकता होती है। बिना पर्याप्त वित्तीय साधनो के वे शीघ्र ही निर्जीव होकर समाप्त हो जाएँगे।

कुछ लोगो का विचार है कि कोष-सचय उच्च आदर्शों की उपलब्धि म बाधक है क्योकि धनी लोगो या धनी सस्थाओ म उत्सग त्याग की भावना तथा उद्देश्य की दृढता का अभाव पाया जाता है। वे चाहते है कि श्रमिक सघो को कोष सचय के लिये प्रोत्साहित नही करना चाहिये। वे नही चाहते कि श्रमिक सघ अपने क्रातिकारी स्वरूप को भूल जाएँ और उनके नेता सघो के वित्तीय मामलो म फँसे रह। यह सत्य है कि श्रमिक सघ पूँजीपतियो के सगठन नही है और उन्ह अपने को धन के मोह से स्वतन्त्र रखना चाहिये। सघो के साधन यदा कदा ही नियोजकों के साधनो के अनुरूप दृढ हो सकते है। मस्तिष्क म यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये कि सघ की शक्ति बैंक की रोकड पर नही बल्कि अपने सदस्यो और सगठन के प्रति उनकी निष्ठा पर निर्भर करती है।

अपर्याप्त कोष के कारण भारतीय श्रमिक आदोलन की उत्पत्ति और विकास म बाधा पडी है। दुर्भाग्यवश धन की कमी से हमारे सघ ऐसे कार्यकलाप, जो श्रमिको म रुचि जागृत करने और बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं करने म असमर्थ है। फलत श्रमिक सघवाद के प्रति श्रमिको म सामान्य उदासीनता रहती है। इन परिस्थितियो के लिये कम से कम आशिक रूप से श्रमिक सघो के नेताओ की वर्तमान अनुत्तरदायी

अभिवृत्ति भी जिम्मेदार है। यदि श्रमिक सघो के लिये पर्याप्त कोष उपलब्ध रहे तो वे सगठन मे श्रमिको की रुचि बनाये रखने के लिये विभिन्न कार्यकलाप कर सकेंगे और उनके नेताओ मे भी वित्त के उपयोग से उत्तरदायित्व की भावना पैदा होगी। तब श्रमिक सघ नियोजको के साथ व्यवहार करने और अपने सदस्यो मे अनुशासन बनाये रखने की अधिक अच्छी स्थिति मे होगे। श्रमिक सघो को अपनी आय अपने कोषो को बढाने के लिये गभीर प्रयत्न करने चाहिये। भारतीय श्रमिक वर्ष पुस्तिका मे प्रतिवर्ष श्रमिक सघो के वित्त के सम्बन्ध मे सूचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। श्रमिक वर्ष पुस्तिका के १९५९ के सस्करण से अग्राकित सारणी मे १९५८–५९ वर्ष के लिये श्रमिको के सामान्य कोष और नियोजक सघो के बारे मे सूचना उद्धृत की गई है।

सारणी ५८

पजीकृत व्यवसाय सघो के सामान्य कोष १९५८–५९ (रुपया म)

	विवरण भेजने वाले सघो की सख्या	प्रारम्भिक शेष	आय	व्यय	सवरण शेष
श्रमिक सघ	४६३०	८६ ८६,१५६	१ ०५,६६ ६४५	९९ २३ २२०	९३,४९ ५०१
केन्द्रीय	१२२	७,८० ८८२	९ ९४,१८५	८ २९ ४४२	९,४५,६२५
राज्य	४५०८	७९,०५ २७४	९६ ०२ ४७०	९०,९३ ७७८	८४ १३ ९६६
नियोजक सघ	८०	२० ५९ ४२३	१२ ७४ ४५३	१२ ५३,४८१	२०,८० ४९५
केन्द्रीय	१	६२,१०१	९ १८२	६ ७६१	३ ६२२
राज्य	७९	१९ ९७ ३२२	१२ ६६,२७१	१२ ४६ ७२०	२०,१६ ८७३
योग	४७१०	१,०७ ४५ ५७९	१ १८ ७१ २०८	१ ११ ७६ ७०१	१,१४ ४० ०९६

श्रमिक वर्ष पुस्तिका मे प्रकाशित १९५०–५१ तक के आँकड़े राज्य 'अ' तथा कुछ राज्य 'स' से सम्बन्धित हैं। कुछ 'ब' राज्यो के संबध मे भी सूचना उपलब्ध थी। १९५१–५२ से बाद के आकड़े जम्मू और काशमीर को छोड़कर संपूर्ण भारतीय संघ स सम्बद्ध हैं। कभी-कभी कुछ राज्यो का कुछ संघो से सम्बन्धित सूचना उपलब्ध नही रहती ता सारणी के नीचे की गई टिप्पणी मे स्पष्ट कर दिया जाता है। किन्तु इन सूचनाओ के न रहने पर भी उनसे जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उनकी वधता समाप्त नही हो जाती। भारतीय व्यवसाय संघ विधान के अन्तर्गत दोनो श्रमिको और नियोजको के संघो को व्यवसाय संघ माना जा सकता है। यदि हम श्रमिक संघो के वित्त का पृथक विश्लेषण करें तो स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी।

आय

संघो की आय का मुख्य स्रोत उनके सदस्यो द्वारा दिया जाने वाला चंदा और अंशदान है तथा बना रहेगा। साधारणतया उनका कोई प्रवेश शुल्क नही होता है। १९५०–५१ मे सभी संघो की कुल आय का ६९ ७%, राज्य श्रमिक संघो की कुल आय का ७४ ७% केन्द्रीय श्रमिक संघो की कुल आय का ८५ ९%, राज्य 'अ' और स के संघानो की कुल आय का आय का ८३ ६% तथा राज्य 'ब' के सभी श्रमिक संघो की कुल आय का ७९ ६% सदस्यो द्वारा दिया गया चंदा था। हाल के वर्षों म अंशदान से हुई आय का प्रतिशत गिर गया है। १९५९–६० मे यह प्रतिशत सभी संघों के लिये ५७ राज्य श्रमिक संघो के लिये ५५ ६, केन्द्रीय श्रमिक संघो के लिये ६६ ६ तथा श्रमिक संघो के संघानो के लिय ७८ ६ था। दोनो राज्य और केन्द्रीय संघ निजी क्षेत्र की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र म इस स्रोत से अधिक धन कमाते हैं। इनके विपरीत राज्य नियोजक संघो न अपनी आय का ४९ ४% और ३५ २% क्रमश १९५०–५१ और १९५९–६० म सदस्यो के अंशदान से प्राप्त किया। किन्तु केन्द्रीय नियोजक संघो की आय का मुख्य स्रोत चंदा नही है। उन्ह १९५०–५१ म आय का ७३ २% दान से तथा १९५९–६० म कुल आय का ६७% आय स्रोतो से प्राप्त हुआ।

संघो की प्रशासित और उनके केन्द्रीय निकायो या संघानो से संबधन को नियन्त्रित करने वाले नियमो के अनुसार चंदे से हुई आय को स्थानीय, प्रान्तीय और केन्द्रीय संघो तथा संघानो म बाटा जाता है। कुछ उदाहरणो से स्पष्ट हो जायेगा कि कसे उनकी आय को विभिन्न संगठनो म वितरित किया जाता है। आसाम के रोपण उद्योग के अकुशल श्रमिको के संघ जो भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की प्रान्तीय शाखा स सम्बद्ध थे, पहले प्रति सदस्य प्रतिवर्ष एक रुपया आठ आना की दर से चन्दा एकत्र करते थे। इसम स एक आना प्रति सदस्य प्रतिवर्ष के हिसाब से अखिल आसाम रोपण श्रमिक संघान तथा रु० ०–०–६ प्रति श्रमिक प्रतिवर्ष की दर स भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की आसाम राज्य शाखा को भेज दिया जाता

था। असम चाय कर्मचारी संघ, जो चोदर्ण उद्योग के क्लिर्कों और कर्मचारियों का संघ था, आठ आने प्रति मास चन्दा देता था। इसमें से आधा अर्थात् चार आने प्रति श्रमिक असम चाय कर्मचारी संघ से सम्बद्ध मंडल संघ द्वारा रख लिया जाता था और शेष आधा असम चाय कर्मचारी संघ के मुख्य कार्यालय को भेज दिया जाता था। मुख्य कार्यालय अपने हिस्से में से भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की असम राज्य शाखा को रु० ०—०—६ प्रति सदस्य की दर से, अखिल भारतीय रोजगार श्रमिक संधान को एक आना प्रति सदस्य की दर से तथा केन्द्रीय भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा को रु० ०—०—६ प्रति सदस्य के हिसाब से अंशदान देता था।

चंदे की वर्तमान दरें बढ़ाकर सभी सदस्यों से नियमित रूप से चन्दा एकत्र करके, श्रमिक संघों की सदस्यता में वृद्धि करके तथा आय के नये स्रोत खोजकर संघों की आय बढ़ाई जा सकती है। संघों के कोषों की रचना मुख्यतया उनके सदस्यों के अंशदानों तथा उपरोक्त रीतियों से की जाती है। यदि वे सुझावों का अनुसरण करें तो संघों की आय ही नहीं बढ़ेगी बल्कि उनके कोषों में भी स्थिरता आयेगी।

चंदे की वर्तमान दरें बहुत कम हैं। वे भी एक संघ से दूसरे संघ में तथा एक ही संघ के विभिन्न वर्गों में भिन्न भिन्न हैं। श्री एस० सी० जोशी ने अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा तथा भारतीय श्रमिक संधान के प्रतिनिधि स्वरूप के विषय में १६४७ में अपने प्रतिवेदन में कहा है कि चंदे की अन्यिन्त न्यूनतम दर चार आना तथा अधिकतम दर बत्तीस रुपये थी। न्यूनतम से अधिकतम दर २५८ गुना होने से विस्तृत भिन्नता स्पष्ट है। साधारणतया सभी सदस्यों के लिये एक ही दर निश्चित की जाती है। चंदा कुछ आना या कुछ रुपया प्रतिमास या प्रतिवर्ष हो सकता है। कभी कभी वेतन के आधार पर विसर्पी अनुमाप (Sliding Scale) से चंदा निर्धारित किया जाता है। अंशदान वर्ष की मजदूरी के कुछ दिनों के बराबर हो सकता है या वेतन के प्रतिशत के रूप में निर्धारित किया जा सकता है। इसके पीछे विचार यह होता है कि सभी वर्ग के कर्मचारी अपनी भुगतान करने की क्षमता के अनुसार संघ के कोष में अंशदान दें। विसर्पी दरों की अपेक्षा एक सी दरें अधिक प्रचलित हैं। कुछ संघों में दोनों ही सिद्धान्तों का आश्रय लिया जाता है। वे लिपिक और शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिकों तथा कुशल और अकुशल श्रमिकों के बीच विभेद करते हैं और प्रत्येक वर्ग के लिये पृथक समरूप दरें निर्धारित करते हैं। एक विशेष वर्ग के विभिन्न सदस्यों में फिर और विभेद नहीं किया जाता है। अकुशल और शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिकों की अपेक्षा कुशल और लिपिक कर्मचारियों के लिये चंदे की दर अधिक होती है। किन्तु चंदे की यह भिन्नता उल्लेखनीय नहीं होती है और न उसे सावधानी पूर्वक भुगतान करने की क्षमता से सम्बन्धित किया जाता है।

कुछ संघों में सदस्यों के दो वर्ग होते हैं—साधारण तथा मानदेय। मानदेय सदस्यों से अधिक शुल्क वसूल किया जाता है। १६५८—५६ में आगरा के १० श्रमिक

संघों के एक अध्ययन से पता चला कि ६ संघों में साधारण सदस्यों द्वारा दिया जाने वाला चन्दा १२ नये पैसे के बीच प्रतिमास था। एक संघ में चन्दे की दर एक रुपया प्रति वर्ष थी। ६ संघों में साधारण सदस्यों के लिये चन्दे की दरें २५ पैसे (नये) से ५० नये पैसे के बीच प्रतिमास थी। एक संघ में मानद्य सदस्य एक रुपया प्रतिवर्ष दे रहे थे। चार संघों में साधारण और मानद्य सदस्यों में एक ही दर पर चन्दा लिया जाता था तथा पाँच संघों में मानदेय सदस्यों द्वारा दूनी दर पर चन्दा लिया जाता था। सात संघ अपना चन्दा मासिक तथा दो वार्षिक एकत्र कर रहे थे तथा एक ने सदस्यों पर छोड़ दिया था कि वे चाहे वार्षिक या त्रैमासिक रूप से अपना चन्दा जमा करें।

चन्दे की समरूप दरें रखना अधिक अच्छा है। उच्च वेतन पाने वाले कर्मचारी चन्दे की दर में भिन्नता पसन्द नहीं करते हैं क्योंकि उनको भी कम या अधिक रूप में वही सेवाएँ उपलब्ध होती हैं जो अन्य कर्मचारियों को दी जाती हैं। फिर वे कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों के प्रति हीनता और अपने प्रति श्रेष्ठता की भावनाएँ रख सकते हैं। और इसका निर्धन सदस्यों के आत्म सम्मान प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। यदि संघ अपने विभिन्न वर्गों के सदस्यों के साथ भेदकारी व्यवहार करते हैं तो इसमें मतभेद पैदा हो सकते हैं तो श्रमिक संघ की एकता खतरे में पड़ सकती है। इसलिये जहाँ तक सम्भव हो सभी श्रमिकों से एक ही दर पर चन्दा वसूल किया जाना चाहिये। अधिक से अधिक सदस्यों को दो बड़े वर्गों में बाँटा जा सकता है। किन्तु फिर प्रत्येक वर्ग में और अन्तर या विभाजन नहीं होना चाहिये। दोनों वर्गों के सदस्यों के लिये उपलब्ध की जाने वाली सेवाओं और लाभों में भी अधिकांशतः अन्तर नहीं होना चाहिये। किन्तु संघ द्वारा नकद लाभ वितरण के समय अंशदान के आधार पर विभेद किया जा सकता है। श्रमिक संघ एकता को खतरे में डालने के लिये कुछ भी नहीं किया जाना चाहिये। यदि कम चन्दा देने वाले वर्ग के सदस्य अधिक नकद लाभ पाना चाहते हैं तो उन्हें अधिक दर में चन्दा देने के निर्वाचन की सुविधा दी जानी चाहिये।

अब हम इस पर विचार करेंगे कि चन्दे की वर्तमान दरें कम क्यों रखी गई हैं और उन्हें कब और किस प्रकार बिना अभिलाषाओं पर अनुचित भार डाले बढ़ाया जा सकता है। वस्तुतः वर्तमान दरों को समुचित गणना और सावधानी पूर्वक सोच विचार कर नहीं निर्धारित किया गया है। श्रमिक संघ अपने कार्यक्रमों का कोई पूर्व कार्यक्रम और उसके अनुसार आवश्यक वित्त के आय व्यय का निर्धारण नहीं करते हैं। श्रमिक संघ जो भी छोटी धनराशि एकत्र कर सकते हैं और उन्हीं सीमित साधनों से जो भी योजनाएँ बना पाते हैं उसी पर सन्तुष्ट हो जाते हैं। यह सुझाव दिया जा सकता है कि श्रमिक संघों को अपनी योजनाएँ बनाने में प्रजातान्त्रिक और क्रियात्मक होना चाहिये तथा उनके क्रियान्वयन के लिये उन्हें अपने सदस्यों के सम्मुख

प्रस्तुत करना चाहिये। इससे श्रमिको को प्रेरणा मिलेगी और वे उनकी पूर्ति के लिये प्रयत्न करेंगे। श्रमिक संघो को अपने उद्देश्यो तथा अपने सदस्यो की आर्थिक और जीवन निर्वाह की स्थितियो को ध्यान मे रखते हुए उनके सहयोग और सलाह से योजनाएँ बनानी चाहिये। यदि संघ की योजनाओं के प्रति सदस्यो मे उत्साहवर्धक प्रेरणा होगी तो उनके लिये धन एकत्र करने मे कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि श्रमिक यह अनुभव करने लगें कि योजनाएँ उनकी हैं और उनके लाभ के लिये हैं तो वे अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार आवश्यक भार उठाने के लिये तयार हो जाएँगे।

न्यून चंदे का कारण श्रमिको की निर्धनता ही है। यह तर्क किया जाता है कि अंशदान की दर इसलिये कम रखी जाती है ताकि सदस्य उसे दे सकें। किन्तु वतमान चंदे की दर इतनी अधिक नहीं है जितना कि श्रमिक अपनी वतमान आय मे से दे सकते हैं। उन्हें अंशदाताओं को होने वाली किसी कठिनाई के भय के बिना बढाया जा सकता है। किन्तु ऐसा करने से पहले संघो को अपने संगठन के प्रति सदस्यो की रुचि जगानी होगी और उन्हें इस बात से सहमत करना पड़ेगा कि उन्हें अधिक इसलिये चाहिये क्योंकि वे इसके अधिकारी हैं। वतमान स्थिति यह है कि साधारण सदस्य श्रमिक संघो के क्रियाकलापो के प्रति उदासीन रहते हैं।

वयक्तिक संघो की अपनी वित्तीय आवश्यकताओं तथा संघो के कोष मे उनके सदस्यो की अंशदान की क्षमता के अनुसार सदस्यता शुल्क का निर्धारण करना पड़ेगा। फिर भी यह वाछनीय है कि न्यूनतम सदस्यता शुल्क या तो विधान द्वारा निश्चित कर दिया जाना चाहिये या फिर उसके लिये विभिन्न केन्द्रीय संघो और संघानो के बीच समझौता होना चाहिये। कुछ ऐसे प्रयत्न भूतकाल मे वयक्तिक संघो और कुछ प्रान्तो मे विधानो द्वारा किये गये हैं। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा ने १९४३ मे यह निश्चय किया था कि यदि किसी संघ का वार्षिक सदस्यता शुल्क बारह आने से कम है तो उसे सम्बन्धन की अनुमति न दी जाय। किन्तु यह अपने निश्चय पर अटल नहीं रही और ऐसे संघो को भी सबधन की अनुमति प्रदान की जिनकी चंदे की वार्षिक दरें बारह आने से कम थी। सम्भवत ऐसे नियमो का अधिक अच्छी तरह पालन किया जा सकता है यदि एक विशेष उद्योग के सभी विभिन्न संघो द्वारा आपस मे समझौता किया जाय। बम्बई औद्योगिक सबध अधिनियम १९४६ के अन्तर्गत अनुमोदित संघो के लिये न्यूनतम सदस्यता शुल्क की व्यवस्था है। अधिनियम के अधीन श्रमिक संघो के एक रजिस्ट्रार की नियुक्ति करनी होती है जो अनुमोदित संघो की सूची अपने पास रखता है। यदि किसी संघ का सदस्यता शुल्क ४ आने प्रतिमास से कम है तो उसे अनुमोदित सूची मे नहीं रखा जा सकता। अनुमोदित संघो को अपने सदस्यों की ओर से प्रतिनिधित्व और सौदाकारी करने की कुछ सुविधाएँ और अधिकार दिये जाते हैं। यदि सभी केन्द्रीय श्रमिक संघ संघान और औद्यो-

गिक सघा सबधन के लिये निर्धारित न्यूनतम सदस्यता शुल्क की पूर्व शर्त रखें तो श्रमिक सघो की वित्तीय स्थिति मे सुधार के अलावा दरें कम करने की अन्तर्साधिक प्रतियोगिता म भी रोक लगेगी तथा स्वस्थ और उत्तरदायी नेतृत्व को भी प्रोत्साहन मिलेगा।

व्यवसाय सघ अधिनियम १६२६ म, १६६० के सशोधन के पूर्व, सघों के सदस्यता शुल्क के बारे म कोई व्यवस्था नहीं थी। इसमे यह भी स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं था कि व्यवसाय सघो के नियमो म चदे की दरो की व्यवस्था होनी चाहिए और चन्दा न देने वाले सदस्यो का नाम सदस्यता सूची से हटा दिया जाय। श्रमिक न्यायालय की आज्ञा पर श्रमिक सघा की अनिवार्य मान्यता की व्यवस्था के लिये १६४७ म अधिनियम म सशोधन किया गया था। किन्तु सशोधित अधिनियम मे यह व्यवस्था नहीं की गई थी कि अनिवार्य मान्यता प्राप्त करने के लिये सघ को न्यूनतम सदस्यता शुल्क की भी पूर्व शर्त स्वीकार करनी होगी। १६५० के श्रमिक सघ विधेयक द्वारा इन दोषो को समाप्त करने के लिये प्रयत्न किये गये थे किन्तु यह पारित नहीं हो सका। विधेयक की धारा मे श्रमिक सघो के पजीकरण के लिये शर्तों की विशद व्याख्या की गई थी। सामान्य सदस्यो द्वारा दिये जाने वाले चदे की दर दो आने प्रतिमास से कम नहीं थी। इस सम्बन्ध म व्यवस्था जड नहीं थी। सम्बद्ध सरकारो को कृषि ग्रामीण क्षेत्रो के कुटीर उद्योगो, मालवहन सेवा और ऐसे ही अन्य शोषित उद्योगो जिन्हें अधिसूचित किया जाय, के श्रमिको के लिये चदे की अधिक निम्न दर निर्धारित करन का अधिकार दिया गया था। श्रमिक सघो का किसी निश्चित समय तक चन्दा न देने के अलावा अपने नियमो म उन परिस्थितियों का भी उल्लेख करना था जिनमे सदस्यता सूचिका से सदस्या का नाम काट दिया जायगा। किन्तु इसमे यह नहीं था कि अनिवार्य मान्यता के लिये इच्छुक सघो को ऊची दर से सदस्यता शुल्क वसूल करना चाहिये। श्रमिक सघ अधिनियम को १६६० म यह व्यवस्था करने के लिये सशोधित किया गया है कि सदस्यता शुल्क प्रतिमास प्रति सदस्य २५ नये पैसे से कम नहीं होना चाहिये।

श्री एस० सी० जोशी ने अपने उपरिलिखित प्रतिवेदन मे यह मत व्यक्त किया था कि चदे की दर एक आना प्रतिमास से कम नहीं होनी चाहिये। बम्बई की सरकार ने 'अनुमोदित' सघो के लिये न्यूनतम चार आने प्रतिमास निर्धारित किया है। केन्द्रीय सरकार ने भी १६५० मे चदे की न्यूनतम दर चार आने निर्धारित करने की अपेक्षा की थी। भारतीय श्रमिक सघ आन्दोलन के पिता श्री एन० एम० जोशी ने प्रति सदस्य प्रतिमास ४ आने न्यूनतम चदे का सुझाव दिया था। हिन्द मजदूर सभा ने आठ आने प्रतिमास की दर सुझायी है। हमारा यह मत है कि सामान्य सघो के लिये चदे की न्यूनतम दर चार आने प्रतिमास से कम नहीं होनी चाहिये तथा जो सघ नियोजको से मान्यता प्राप्त करने के लिये राज्य की सहायता प्राप्त करने के इच्छुक

हैं उनके लिये सदस्यता दर कम से कम प्रतिमास आठ आने होनी चाहिये। सरकार को यह अधिकार होना चाहिये कि वह उपयुक्त मामलो म छूट दे सके। भारत म औद्योगिक श्रमिको की वार्षिक माध्य आय कही भी ५०० रुपये से कम नही रही। उसमे अनवरत रूप से वृद्धि भी होती रही है तथा १९५९ म प्रति व्यक्ति वार्षिक आय ७७६ रुपये थी। सारणी ५९ मे भारतीय उत्पादक उद्योगो की पिछली दशाब्दी मे वार्षिक आय के आकडे दिये गये हैं।

राज्यो के अनुसार माध्य अर्जित आय का वितरण सारणी ६० म दिखाया गया है। १९५६ के बाद से विवरण भेजने वाली फैक्ट्रियो की सख्या, माध्य सेवायोजन, तथा विवरण भेजने वाली फैक्ट्रियो म प्रति व्यक्ति माध्य अर्जित आय के आकडे भी उपलब्ध हैं।

सारणी ५९

उद्योगो के अनुसार फक्ट्रियो मे नियुक्त व्यक्तियो जिनकी २०० रुपये से प्रतिमास कम आय है, की वास्तविक माध्य आय

१९५३–१९६१

उद्योग का नाम	१९५३	१९५४	१९५५	१९५६*	१९५७*	१९५८*	१९५९	१९६०	१९६१
कृषि से सबधित विधा (ओटना तथा दबाना)	१७०	१८९	१५७	२११	१९५	१९७	२०३	२०७	२२८
खाद्य पेय को छोडकर	५३४	५३६	४८०	६३६	६२२	६७७	६३६	६६२	१२१५
तम्बाकू	४१९	४४६	३९५	४६१	५१८	४९३	६७६	७१०	१५२१
पेय	९१६	८८९	९८४	८६१	९३६	८८९	९७८	९५७	१०३९
वस्त्र उद्योग	१११६	१०९९	११९१	१२४५	१२४३	१३०६	१३३७	१४०७	१४८५
सूती मिलें	१२२८	११७२	१३०२	१३६०	१३६४	१४३५	१४७७	१५६१	१६५८
जूट मिलें	९१४	९३६	९९५	१०३४	१०३७	१०४५	१०५७	११३०	१०९३
सिल्क मिलें	९५३	१०३६	११३१	४२१८	१२१६	१३११	११४६	१३०१	१२६६
ऊनी मिलें	१०४७	९८८	९५४	१०२५	९८६	१०७०	११७९	१३५९	१३६१

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
जूते अन्य पहनने वाले तयार वस्त्र तथा सामान	१०३८	११०७	११०१	१०९८	१३०८	१३३६	१३९९	१४२५	१४५९
लकड़ी और काग फर्नीचर को छोड़कर	७१७	७४६	६७०	७६२	७२७	८४६	८४३	८५८	८५६
फर्नीचर और लकड़ी का सामान	८८३	९७०	६८१	७१६	६५९	७८१	८३१	१०३१	११२४
कागज तथा कागज की वस्तुएँ	९९८	९४८	१०६३	१०३६	११५८	१२२६	१२०६	१२९४	१२५४
मुद्रण प्रकाशन तथा तत्संबंधी उद्योग	११२३	१२१४	११५२	११८९	१२१८	१२१०	१३१६	१२२८	१२१९
चमड़ा तथा चमड़े की वस्तुएँ जूते छोड़कर	८७९	८१५	८३७	७५७	८९०	१११८	१०५५	९४४	११८०
रबर तथा रबर की वस्तुएँ	१४३२	१३३६	१३६८	१५०२	१४९७	१३२६	१२७४	१४१६	१४९१
रसायन तथा रसायन की वस्तुएँ	१०३६	१०२१	९५७	९८१	११४७	१३०८	१३६७	१३३४	१४६२
पेट्रोल तथा कोयले की वस्तुएँ	१४०८	१३४०	१४९३	१६८६	१९९०	१८५०	२१९५	२०४२	१८५५
धातुरहित खनिज पदार्थ कोयला और पेट्रोल की वस्तुएँ छोड़कर	८२४	७६०	७८२	८३३	८३५	८८५	९२०	१००८	१०१४
मूल धातु उद्योग	१७११	१६१३	१६७३	१४८८	१४६३	१५५७	१५२९	१४९९	१५०६
धातु पदार्थ (मशीन और यातायात के उपकरणों को छोड़कर)	१०३२	१११८	११००	११३६	११८९	१३२२	१२१६	१२२५	१२९६
विद्युत मशीनरी, उपकरण तथा यंत्र आदि	१३०९	१२७५	१३४०	१३१४	१४३८	१६७०	१६९०	१६३५	१४९३
यातायात उपकरण	११६४	१३९२	१४३०	१४७३	१४८२	१४५८	१४७३	१४२२	१६४१
विविध उद्योग	१०७४	११६२	१२१०	११७०	१२४९	१२११	१२६२	१२८४	१२८६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
विद्युत गस और भाप	१४१३	१३२६	१३७२	१४५५	१५६२	१५६८	१५४८	१५०६	१५७२
जल तथा सफाई सेवाएँ	८६६	१०४६	१०४१	१११६	११४८	१२०७	१२४२	१११०	१३०४
मनोरंजन सेवाएँ	६२०	६४६	१०३७	१२२७	१३०२	११६७	१०५६	१२२१	१४२१
वयक्तिक सेवाएँ	३३७	३७४	३६३	४६५	४८८	५६८	७७०	७२२	६८१

सारणी ६०

दो सौ रुपये प्रतिमास से कम पाने वाले फैक्ट्री श्रमिकों की माध्य वार्षिक आय (सावत्सर उद्योग)

	१९५०	१९५१	१९५२	१९५३	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७	१९५८	१९५९	(प्र) १९६०	(प्र) १९६१
आंध्र				८८१ ८	६६४ ०	६१० ४	५९४ ९	१०३० ८	७०८ १	८८५ १	८५५	१०१८
आसाम	१०१८ ६	१०१७ ९	१०८६ ५	१२६५ १	१२३१ ४	१३२५ ४	१५२५ ४	१८३३ ६	१२२३ ०	१६०७ ३	१३७०	१२३७
बिहार	१०५९ १	१२४१ ५	१४२२ ७	१४७४ २	१४५० ०	१३८७ ९	१२३५ ६	१२९९ २	१२८३ २	१३५८ ६	१३९४	१४८४
बम्बई	११७० ३	१२७० ३	१३८८ ८	१३४६ ४	१२७३ १	१३२५ ६	१४१४ ८	१४५२ ६	१४५८ ०	१४४९ ८	—	—
गुजरात	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१६१७
केरल	—	—	—	—	—	—	७३५ ९	८०५ ०	—	९६५ २	९६०	११४९
मध्यप्रदेश	९३६ ८	८६२ ८	८७६ ८	८९८ ०	९६६ ५	९९८ ३	९८२ ४	११३८ ७	१२१७ १	१२११ ५	—	—
महाराष्ट्र	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१६३६
मद्रास	५९१ २	६६४ ९	८३७ ८	८०४ ७	८२२ ०	१०४ ४	९५० ०	—	—	—	—	१४११
उड़ीसा	६८० ६	७६२ ४	८४७ २	८८० ८	८९४ ९	८९९ २	९४८ ५	९५६ ८	९१८ ०	१०७६ ४	१०९०	११५४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
पंजाब	७७१ ३	७१६ ३	८०६ ४	८९० ८	१०४७ ६	९७५ ७	९९१ ०	९५५ ३	१२१२ २	७६६ २	८९९	१०००
राजस्थान	—	—	—	—	—	—	७६९ ६	९०७ १	९४४ १	९१२ ३	८४२	७२७
उत्तरप्रदेश	९९३ ०	९६० ४	१००२ ९	१०१९ ६	९९७ ०	९९५ ५	१०१४ १	१०७७ १	१२१३ ४	११३४ ०	११५४	१२०१
पश्चिमीबंगाल	८७७ ५	९४२ ३	९८७ ७	९६३ ५	१०५७ ४	१११० ६	११४१ ६	११७३ ६	११९८ ९	१२२५ ९	१२८५	१३१०
अजमेर	६६० ०	६९४ २	७०२ २	७०३ ९	६३४ ६	६९२ ६	—	—	—	—	—	—
अंडमान और निकोबार द्वीप	—	—	—	—	—	—	६८८ ८	६५७ १	१०१७ ४	९८२ ५	१०६४	११४९
दिल्ली	१०६१ ६	१२९७ ६	१३४० ५	१३११ ६	१३१९ ५	१३४५ ३	१४६६ ९	१४९३ ४	१३२९ ७	१३४५ १	१५२१	१४९५
त्रिपुरा	—	—	—	—	—	—	८५४ ३	९३३ ०	११४७ १	१३४५ १	—	—

टिप्पणी —उपयु क्त आँकडे पहले दशमलव अक तक पूर्णांक मानकर रुपये मे दिये गये हैं। १६४६ के पूव मजदूरी देय अधिनियम के अन्तगत ऐसी फक्ट्रियाँ शामिल थी जिन्हे फक्ट्री अधिनियम १६३४ के वग २ की धारा (जे) म परिभाषित किया गया था जबकि १६४६ से अधिनियम के अन्तगत वे फक्ट्रियाँ आइ जो फक्ट्री अधिनियम १६४८ के वग २ की धारा (एम) म परिभाषित थी।

* आँकडे पुनगठित राज्यो से सबधित होन के कारण इनम अजमेर और कुग, जिनका पृथक् अस्तित्व नही रहा के आँकडे सम्मिलित नही है। पहले वर्षों की सारिणी म न' राज्य सम्मिलित नही किये जाते थ किन्तु १६५६ से सम्बद्ध पुनगठित राज्यो के साथ सारिणी म उन्हे सम्मिलित किया जाने लगा है। १६५८ के आँकडो मे मद्रास मैसूर, केरल हिमाचल प्रदेश, जम्मू और काश्मीर तथा १६५६ के आकडो मे मैसूर की सूचनाएँ सम्मिलित नही हैं। १६६६ के आकडो म मध्यप्रदेश और मद्रास तथा १६६१ में आध्रप्रदेश और मध्यप्रदेश के अनुमानित आँकडे सम्मिलित किये गये हैं।

आसाम के आकडो को छोडकर।

स्रोत —मजदूरी देय अधिनियम १६३६ के अन्तगत वार्षिक विवरण-पत्र

अ—अनुमानित।

अन्य तथ्यो के अलावा, विवरण भेजने वाली फक्ट्रियो की सख्या एक ही राज्य मे विभिन्न वर्षों मे और एक ही वष म विभिन्न राज्यो म भिन्न भिन्न होने के कारण भी श्रमिको की आय मे अन्तर पडता ह। इन आकडो स यही निष्कष निकलता है कि अधिक सदस्यता शुल्क भुगतान करने की श्रमिको मे क्षमता है।

इन सारणियो से स्पष्ट है कि न्यूनतम सुझाया गया चन्दा न तो श्रमिको की भुगतान करने की क्षमता से अधिक है और न इससे उन्हे कोई बोझ या कठिनाई उठानी होगी। वस्तुत बहुत से मामलो मे चन्दा न्यूनतम से भी अधिक आसानी से बढाया जा सकता है। सामान्य सघ की अपेक्षा एक मान्यता प्राप्त सघ को अधिक सुविधाएँ मिलती हैं। सुस्थित वित्त से सघो की प्रतिष्ठा बढ जायगी और किसी सीमा तक नियोजको की उनके साथ सव्यवहार करने की अनिच्छा भी समाप्त हो जायेगी। इसलिये यह आवश्यक है कि जो सघ राज्य की सहायता द्वारा नियोजको से अनिवाय मान्यता प्राप्त करना चाहते हे उनका सदस्यता शुल्क अधिक दर पर निर्धारित किया जाना चाहिये। सभी नये सदस्यों के लिये विधान मे प्रवेश शुल्क की भी व्यवस्था होनी चाहिये ताकि आय के एक नये स्रोत तथा स्वस्थ और स्थिर सदस्यता को सुनिश्चित किया जा सके।

श्रमिक सघो को नियमित रूप से चदा एकत्र करने की समस्या स भी निबटना होता है। सभी सदस्यो को चाहिये कि वे अपना चदा सत्वर रूप से समय पर दे दें। सदस्यता रजिस्टर की सदस्या की सख्या की अपेक्षा नियमित रूप से चदा देने

वाले सदस्यो की संख्या अधिक महत्त्वपूर्ण है। भारत मे श्रमिक संघो द्वारा अपने सदस्यो की बढ़ा चढ़ाकर दिखाई गई संख्या की तुलना मे वास्तविक सदस्यो की संख्या जो अपना चंदा जमा करते हैं, बहुत कम होती है। वस्तुत एक संघ का सदस्यता रजिस्टर उसकी नियमित सदस्यता का प्रतीक नही होता है। १९५१ म चार केन्द्रीय अखिल भारतीय श्रमिक संगठनो ने ३५ लाख की कुल सदस्यता का दावा किया था जबकि सभी श्रमिक संघो से प्राप्त विवरणो के अनुसार कुल संघो जिनमे ये चार केन्द्रीय अखिल भारतीय श्रमिक भी सम्मिलित थे, की कुल सदस्य संख्या १७५६ लाख ही थी। विवरणो से आकलित की हुई वास्तविक सदस्यता की तुलना मे अध्यर्थित सदस्यता दूनी है। इस बड़े अन्तर का आंशिक कारण काफी संख्या मे संघो द्वारा विवरण न भेजना है और अंशत केन्द्रीय संगठनो द्वारा बढ़ा चढ़ाकर सदस्यता के आंकडे बताने की प्रवृत्ति हैं।

देय चंदे की काफी बडी राशि सदस्यों द्वारा भुगतान नहीं की जाती है। १९४९-५० मे केवल बम्बई मे ही लगभग ४,१६,७३२ रुपये या कुल चंदे का २५ प्रतिशत अदत्त थे। चंदे की अवशिष्ट राशि के बारे मे कोई नियमित लेखा उपलब्ध नहीं होता है किन्तु निस्संदेह यह राशि काफी अधिक होती है। बहुत से संघो के सदस्यता रजिस्टर पर ऐसे सदस्यो के नाम बने रहते हैं जो लगातार चंदा न देने के दोषी हैं। संघो के नियमानुसार न तो उन्हें बहिष्कृत किया जाता है और न स्वत ही उनकी सदस्यता समाप्त होती है। दोषी सदस्यो को बहिष्कृत करने के लिये शायद ही कभी संबंधित नियमो का पालन किया जाता हो। श्रमिक संघ अधिनियम के क्रियाकरण सम्बन्धी प्रतिवेदन मे ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जहाँ श्रमिक संघो के रजिस्टर पर अंकित संख्या तथा नियमित रूप से चन्दा देने वाले सदस्यो की संख्या के बीच भिन्नता रहती है। केन्द्रीय संघो के प्रतिनिधि स्वरूप के निर्धारण के लिये सम्बद्ध संघो की सदस्यता को लिया जाता है। इसी से संघो मे दोषी सदस्यों को बनाये रखने की असमान प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। विशिष्ट संघो में सम्मिलित होने के लिये सदस्यता म स्फीति भी श्रमिको को धोखा देने की एक विधि है। इस प्रवृत्ति को श्रमिक संघ सामयिक रूप से केन्द्रीय सरकार अधिकारियो द्वारा केन्द्रीय संघो के प्रतिनिधि स्वरूप को निश्चय करने के लिये श्रमिक संघो के सदस्यता के आंकडे का सर्वेक्षण किया जाता है। इन अधिकारियो के पास सदस्यता को पूरी तरह जाँचने के लिये न तो समय होता है और न साधन। चूँकि उनकी जाँच प्रभावशाली नहीं होती है इसलिये कोई भी इन आँकडो की पूर्ण सत्यता पर विश्वास नहीं कर सकता है।

श्रमिक संघों द्वारा चंदे की देय राशि समय पर वसूल न कर पाने के महत्वपूर्ण कारण कर्मचारियो की कमी, अकुशल संगठन, दोषी सदस्यो के विरुद्ध उचित कार्यवाही कर सकने में असमर्थता तथा साधारण श्रमिको की श्रमिक संघों के कार्यों के

प्रति उदासीन अभिवृत्ति है। निर्धनता, कम मजदूरी तथा ऋण जैसे कारण, जो श्रमिकों की चंदा न दे पाने की क्षमता को प्रभावित करते हैं महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते हैं।

चंदा न देने का आंशिक कारण यह भी है कि उन लोगों की तुलना में, जो नियमित रूप से चंदा देते हैं, चंदा न देने के दोषी सदस्यों को कोई हानि नहीं होती है। एक साधारण श्रमिक उदासीन होता है और उसे इस बात की परवाह नहीं रहती कि वह सदस्य है अथवा उसकी सदस्यता समाप्त हो गई है। सदस्यता खोने से उसे नुकसान ही क्या होता है? औद्योगिक विवाद पैदा हो जाने की स्थिति में वह पुनः संघ में सम्मिलित हो सकता है। संघ अपने प्रतिनिधि स्वरूप और नियोजकों से मान्यता प्राप्त करने की उत्सुकता में हमेशा सभी श्रमिकों—नये सदस्य और पुराने दोषी—के स्वागत के लिये तैयार रहते हैं। श्रमिक संघ श्रमिकों को आकर्षित करने तथा उन पर नियन्त्रण रखने में तबतक सफल नहीं होंगे जबतक वे अपने सदस्य कार्य-कलापों को स्थायित्व न प्रदान कर दें और साधारण श्रमिक को यह पूरी तरह विश्वास न दिला दें कि आधुनिक औद्योगिक जीवन में वे आवश्यक हैं तथा कार्य-स्थान के आन्तरिक और बाह्य दोनों ही क्षेत्रों में उन्हें अपने दिन प्रति दिन के कार्य कलापों में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना होता है।

श्रमिक संघों को स्थायी कर्मचारियों की नियुक्ति तथा कोष एकत्र करने के लिये अपने संगठन को अनुकूल बनाना चाहिये। यदि श्रमिकों को वेतन मिलने के दिन या उसके नजदीक चंदा देने के लिये कहा जाय तो वे सहर्ष अपना चंदा दे देंगे। आखिरकार युद्धोपरान्त काल में मजदूरी बढ़ जाने से चंदे की राशि उनकी कुल आय का बहुत छोटा भाग ही तो होती है। श्रमिक संघों के नेता प्रायः बाहरी हैं। उनकी व्यस्तता और रुचि के अभाव के कारण वे संघों के दैनंदिन प्रशासन में पर्याप्त समय नहीं दे पाते। दुर्भाग्यवश धन एकत्र करने में विलम्ब हो जाता है और जब श्रमिकों से चंदे के लिये कहा जाता है वे अपना पैसा खर्च चुके होते हैं। अवशिष्ट राशि बढ़ती जाती है और जिसे बाद में दे पाना उनके लिये कठिन हो जाता है।

अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संगठन का उदाहरण अनुकरणीय है। संगठन के निर्वाचित प्रतिनिधि प्रतिष्ठान के भवन में ही जब श्रमिकों को वेतन दिया जाता है चंदा एकत्र करते हैं तथा जो अपना चंदा देते हैं उन्हें रसीद दे दी जाती है। जिन श्रमिकों का चंदा तीन महीने से अधिक समय के लिये बकाया होता है उन्हें सदस्यता से निष्कासित कर दिया जाता है। चंदा एकत्र करने के प्रबंध के निरीक्षण हेतु चंदा उपसमिति की स्थापना की गई है। चंदा एकत्र करने की सत्वर रीति के कारण संगठन की आय ४५००० से ५०००० रुपये के बीच रहती है।

चंदा एकत्र करने की विभिन्न रीतियाँ हैं। साधारणतया चंदे मासिक या वार्षिक रूप से एकत्र किये जाते हैं। श्री एन० एम० जोशी ने अपनी पुस्तक भारत

में श्रमिक संघ आन्दोलन' में लिखा है कि सामुदायिक संघों द्वारा चंदा या तो जब व्यक्ति जल यात्रा पर जाता है या वहाँ से लौटता है तब एकत्र किया जाता है। आसाम में बागानों में कोष एकत्र करने की एक नई रीति अपनायी जाती है। अधिकतर बागानों के लिये मंडल संघों द्वारा बागान समितियाँ स्थापित की जाती हैं जो प्रायः सामाजिक और धार्मिक विवादों को सुलझाने के लिये पंचायत की तरह काम करती हैं। ये समितियाँ अपराधियों पर जुर्माना लगाती हैं जिसे पूंजी कोष में जमा किया जाता है और जिसका उपयोग सामाजिक और धार्मिक कार्यकलापों में किया जाता है। यद्यपि यह श्रमिक संघों के वित्त का एक भाग नहीं होता है किन्तु यह श्रमिक संघ अधिकारियों, जो पंचायतों में सदस्य के रूप में काम करते हैं की अभिरक्षा में रहता है। कभी कभी जब बागान समितियाँ अपने सदस्यों का चन्दा समय पर भेज पाने में असमर्थ हो जाती हैं तो वे बागान समिति की कार्यकारिणी समिति की अनुमति और जानकारी से पूंजी कोष से आवश्यक धन राशि कोष में स्थानान्तरित कर देती है। बाद में जब चन्दा न देने वाले सदस्यों से धन प्राप्त हो जाता है तो उसे पूंजी कोष में जमा कर लिया जाता है। देय राशि को वसूल करने की रीतियाँ इतनी उचित और पूर्ण नहीं रही हैं। श्रमिक संघों के अधिकारी कभी कभी श्रमिकों से नियोजकों के प्रति शिकायतें दूर करवाने के लिये तथा सरकार और अधिकरणों की कार्यवाहियों में उनका सामने या प्रतिनिधित्व करने के लिये, कुछ शुल्क ले लेते हैं। यह शुल्क चन्दा न देने वाले सदस्यों की अवशिष्ट राशि को चुकता करने में प्रयोग किया जाता है जो बहुत ही अवांछनीय प्रक्रिया है। श्रमिकों से प्राप्त रकम, जिन्हें संघ की सहायता की आवश्यकता होती है को चन्दे की बकाया राशि में समायोजित आखिर किया ही क्यों जाय ? फिर, संघों द्वारा की जाने वाली सेवाओं के लिये यदि शुल्क वसूल किया जायगा तो इससे श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास में बाधा पड़ेगी।

श्रमिक संघों के कोष को एकत्र करने के लिए कौन सा उचित अभिकरण होना चाहिए? भूतकाल में, नियोजकों ने कुछ मामलों में अनुरोध करने पर समय समय मजदूरी में से काटकर श्रमिक संघों के लिए धन एकत्र किया है। यह क्रिया अब देय मजदूरी अधिनियम १९३६ के अन्तर्गत अवधारित हो गई है जिसमें इसके अन्तर्गत अनधिकृत कटौतियों पर रोक लगायी गई है। इस पर प्रतिबन्ध लगाने से पूर्व भी यह क्रिया श्रमिकों में लोकप्रिय नहीं रही है। श्रमिक संघों के लिए भी यह उचित नहीं है कि वे नियोजकों के माध्यम से अपना कोष एकत्र करें। रॉयल श्रमिक आयोग ने इस क्रिया का अनुमोदन नहीं किया। उन्होंने कहा—"इस तथ्य के अतिरिक्त कि श्रमिक संघों का धन व्यक्ति की मजदूरी पर प्रथम प्रभार हो जाता है और जो श्रमिकों की निर्भरता और अज्ञानता से बचा उनकी पूर्ण सहमति के बिना कटौतियों के प्रारम्भ या उनके चलते रहने में कठिन हो जाता है यह प्रक्रिया निश्चय ही संघों के प्रभाव

नहीं देते हैं कि काम के स्थान या उसके निकट चंदा एकत्र किया जाये। श्रमिकों के लिए भेदभाव और अत्याचार का भय वास्तविक है। हम इससे इन्कार नहीं करते हैं कि कोष एकत्र करने के लिए यह रीति सरल और प्रभावकारी है किन्तु उपरोक्त कारणों से इसे यहाँ नहीं अपनाया जा सकता। श्रमिक संघों को चंदा एकत्र करने के लिए बाहरी किसी सहायता पर निर्भर रहने के बजाय स्वयं ही कोई व्यवस्था करनी चाहिए। इससे उन्हें नियोजकों की अभिवृत्ति पर भरोसा करने की अपेक्षा स्वयं पर भरोसा करने की शिक्षा मिलेगी। मुकदमों या वेतन लिपिकों जो संघ के सदस्य हो सकते हैं, के माध्यम से चंदा एकत्र किया जा सकता है। असम चाय कर्मचारी संघ द्वारा प्रायः ही वेतन लिपिकों के माध्यम से, जो संघ के सदस्य होते हैं, चंदा एकत्र किया जाता है। वेतन लेते समय सदस्य स्वेच्छा से अपना चंदा वेतन लिपिक को दे देते हैं। यह भी सुझाव दिया जा सकता है कि श्रमिक संघ प्रतिनिधियों के माध्यम से, जो वहाँ रहते हों, विभिन्न बस्तियों में चंदा एकत्र किया जाय। जो संघ समर्थ हैं उन्हें इस उद्देश्य के लिए स्थायी कर्मचारी नियुक्त करने चाहिये।

किन्तु सरकारी सेवाओं और राज्य प्रतिष्ठानों में श्रमिकों की लिखित प्रार्थना पर वेतन देते समय चंदा एकत्र करने की प्रणाली का शुभारम्भ किया जा सकता है। राज्य सेवाओं की स्थिति भिन्न है। फिर भी किसी प्रकार की अनिवार्यता नहीं होनी चाहिये। प्रारम्भ सावधानीपूर्वक ही किया जाना चाहिये। इससे वेतन मजदूरी अधिनियम में भी अनुचित परिवर्तन की आवश्यकता होगी। बाद में इस प्रणाली को उचित समय पर जब संघ पर्याप्त सशक्त हो जायं और वे नियोजकों के प्रभाव से स्वतंत्र होकर काम कर सकें, अन्य उद्योगों में भी लागू किया जा सकता है।

श्रमिक संघों को काम के स्थानों पर ही कोष एकत्र करने की सुविधा दी जानी चाहिये। बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम के अन्तर्गत अनुमोदित संघों को यह अधिकार है। इसी प्रकार की व्यवस्था श्रमिक संघ अधिनियम में भी करके पंजीकृत संघों के अधिस्वीकृत प्रतिनिधियों को काम के स्थान या वेतन कार्यालय में चंदा एकत्र करने का अधिकार दिया जाना चाहिये। नियोजकों से इस बात की प्रार्थना की जानी चाहिये कि वे उन्हें इस उद्देश्य से सभी समुचित सुविधाएँ प्रदान करें।

श्रमिक संघों को भी अपनी सदस्यता बढ़ाने के लिये अभियान चलाना चाहिये। बहुत बड़ी संख्या में मजदूर श्रमिक संघों के सदस्य नहीं हैं। यद्यपि कुछ उद्योगों में सुसंगठित संघ हैं किन्तु श्रमिकों के कुछ ऐसे वर्ग भी हैं जो उनमें सम्मिलित नहीं हैं। कुछ उद्योगों और कुछ स्थानों पर श्रमिक उचित रूप से संगठित नहीं हैं और इसलिए नये तथा प्रभावशाली संघ स्थापित किये जाने चाहिये। भारत में अभी हम उस अवस्था में नहीं पहुँचे हैं जब श्रमिकों को समझाने-बुझाने और उन्हें संघों में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करने या बाध्य करने की आवश्यकता न हो क्योंकि वे अपने

जीवन और काय की अवस्थाओ मे सुधार के लिये श्रमिक सगठनो की परम आवश्यकता अनुभव करते हैं और वे विश्वास करते हैं कि सघ उनके जीवन का महत्वपूर्ण भाग हैं। इसमे कोई सदेह नही कि यह एक कठिन काय है किन्तु श्रमिको को उचित रूप से सगठित करने के लिए गम्भीर प्रयत्न किये जाने चाहिये। सघो को अपने सगठनो के प्रति श्रमिको मे उत्साह की भावना पैदा करनी चाहिये। श्रमिक सघो के काय-कलाप इतने बहुमुखी और विविध तथा इतने आवश्यक और आकर्षक होने चाहिये कि श्रमिक सदस्य बनने के लिये अपने मे एक उत्कट प्रेरणा का अनुभव करें। लेकिन कोई इसमे इन्कार नही करेगा कि काय बहुत कठिन है।

श्रमिक सघो की आय के अन्य स्रोत महत्व के क्रम मे दान, पत्रिकाओ और अन्य साहित्य की विविध बिक्री तथा विनियोग पर ब्याज हैं। स्रोतो के अनुसार वर्गीकृत आय के वितरण का प्रतिशत अग्रान्कित सारणी मे दिया गया है।

सारणी ६१

स्रोतों के अनुसार १९५०–५१ तथा १९६०–६१ में व्यवसाय संघों की आय का प्रतिशत वितरण

आय के स्रोत	सभी संघ		श्रमिक-संघ						नियोजक	संघार्द्ध		
					राज्य		केन्द्रीय	राज्य संघ	केन्द्रीय १९५०–५१			
	१९५०–५१	१९५९–६०	१९५०	१९५९	१९५०	१९५९	१९५०	१९५९	१९५०	१९५९		१९५९–६०
सदस्यों द्वारा दिया गया चंदा	१६७	५७०	७४७	५५६	८५६	६६६	५६४	३५२	६६	६६	८३६	७८७
दान	८०	२४०	१२८	२७१	७६	१३१	०२	२४५	७३३	—	१३३	२६
पत्रिकाओं से बिक्री आदि	०४	११	०५	०२	२२	४५	—	१६	—	—	—	८६
विनियोग पर ब्याज	११	१२	१३	०५	—	२४	२३	६७	२०२	२६१	१२	०१
विविध	२०८	१६७	११७	१६६	४३	१३४	३८१	३१७	—	६७०	१६	१००

• १९५९–६० के आँकड़े श्रमिक संघानों तथा १९५०–५१ के आँकड़े नियोजक संघ संघानों से सम्बन्धित हैं।

१९५०–५१ म 'ब' वग के राज्यो के मघो की आय के स्रोत वही थ जो अ वग के राज्यो के मघा के थ यथा (अ) सदस्या द्वारा दिया गया अशदान ७६ ६% (ब) दान ८ १% (स) पत्रिकाओ म बिक्री आदि २% (द) विनियोग पर व्याज ० ४% तथा (य) विविध १० ३%। य आँकडे केवल ५ ब वग राज्यो हैदराबाद मध्यभारत राजस्थान सौराष्ट्र तथा ट्रावनकोर कोचीन—मे सम्बधित थे। विविध स्रोतो म प्रवेश शुल्क हडताल कोष पर्चा/एाय के व्यय को पूरा करने के लिये विशेष अशदान तथा भवन कोष मरण्ठन कोष आदि जम अन्य कोष सम्मिलित हैं। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक सगठन न विभिन्न विभागो और कार्यालयो के आवास की व्यवस्था के लिय भवन कोष का प्रवतन किया था। इस कोष म प्रत्येक सदस्य को पाँच रुपये देने थे तथा १९५०–५१ तक तीन लाख रुपये एकत्र कर लिय गये थ। कभी-कभी विशेष प्रस्ताव पारित करके विशेष कोष के लिये धन एकत्र किया जाता है। विशेष सेवाओ जसे स्मारक-निर्माण उसी या अन्य उद्योग के श्रमिको की सहायता तथा प्राकृतिक विपदाओ से पीडित व्यक्तियो की मदद के लिये तदथ कोष भी स्थापित किय जात हैं। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक सगठन न १९५०–५१ म दो एसे कोष यथा—सरदार वल्लभ भाइ पटल कोष तथा असम महायता कोष—प्रारम्भ किय। असम सहायता कोष म १९५०–५१ तक २५ ८५ रुपय एकत्र किये गये थे। सरदार वल्लभ भाइ पटेल कोष के लिय न्यूनतम और अधिकतम चदा क्रमश एक रुपया और पाच रुपया था।

इन वर्षों म आय के स्रोतो के तुलनात्मक अध्ययन स पता चलता है कि आय के विभिन्न स्रोतो का भिन्न भिन्न महत्त्व है। सदस्यो द्वारा दिया गया अशदान आय का मुख्य स्रोत रहा है किन्तु इसके प्रतिशत मे तीक्ष्ण ह्रास दिखाई देता है। सघाओ को छोडकर और सभी मामलो म दान आय का एक बडा साधन है। पत्रिकाओ आदि की बिक्री से आय प्राप्त भी बहुत कम है किन्तु गत वर्षों की तुलना म इसम पर्याप्त वृद्धि हुई है। श्रमिक सघ साहित्य की बढती हुई बिक्री का यह प्रतीक है। सघाना से श्रमिक सघो की विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। अब निजी और सावजनिक क्षेत्रो के श्रमिक और नियोजक सघो की पृथक सूचनाएँ उपलब्ध होने लगी हैं। १९४८–४९ मे १६ सघान पजीकृत थे जिनम स १३ न विवरण भेजे थ। उनकी कुल आय चार लाख रुपये थी। इस आय के ८२ ' के लिये केवल अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक सगठन ही उत्तरदायी था। ३१ माच १९५८ को समाप्त होने वाले वष मे ८ राज्यो तथा दिल्ली सघीय क्षेत्र म ७२ सघान थे। इनम से ८७ ने अपने वित्तीय विवरण भेजे थे जिनके अनुसार उनकी आय ६०१ ०१९ रुपय था। इन सघानो स सम्बद्ध सघो की सख्या ११११७ थी।

अधिकाश सघो की आय बहुत ही कम और अपर्याप्त है। महत्वाकाक्षी लाभ कारी योजनाएँ चलाने की बात तो अलग उनके पास दिन प्रतिदिन के प्रशासन को

सफलतापूर्वक चलाने के लिए पर्याप्त कोष नहीं होता है। बहुत से संघ किसी तरह निर्वाह करते हैं। हाल के वर्षों में व्यवसाय संघों की वित्तीय स्थिति में भी कोई सुधार नहीं हुआ है। सभी श्रमिक संघों की सदस्यता में वृद्धि होने से कुल आय तो हाल के वर्षों में बढ़ी है किन्तु व्यवसाय संघों की माध्य आय स्थिर रूप से घट रही है। माध्य आय १९४५–४६ में ४,२१८ रुपये और १९४६–४७ में ४,२५६ रुपये से घटकर १९४९–५० में २४४० रुपये रह गई है। १९४९–५० के बाद प्रति सदस्य माध्य आय बिल्कुल अपरिवर्तित रही है।

सारणी ६२

१९४५–४६ से १९५९–६० तक विवरण भेजने वाले पंजीकृत व्यवसाय संघों की आय (रुपयों में)

वर्ष	वित्तीय विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	सदस्यता विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	सदस्यता विवरण भेजने वाले संघों की सदस्य संख्या	आय	प्रति संघ माध्य आय	प्रति सदस्य माध्य आय
१९४५–४६	५८५	५८५	८ ६४ ०३१	२४ ६७ ६०७	४२१८	३–८६
१९४६–४७	९९८	९९८	१३ ३१ ९६२	४२,५०,३३१	४,२५९	३–२०
१९४७–४८	१६२०	१६२०	१६ ६२ ९२९	५६,८९ ३५१	३ ४९४	३–४५
१९४८–४९	१८४८	१८४८	१९ ६० १०७	५८ ८३,०६२	३,१८४	३–००
१९४९–५०	१९२९	१९२९	१८ २१ १३२	६९,५९,५७०	३,६१५	३–८२
१९५०–५१	२०१३	२००२	१७ ५६ ९७१	७०,१९ ००८	३ ४८७	३–९७
१९५१–५२	२२५६	२५५६	१९ ९६ ७२०	७९ ५७ ०००	३ ११३	३–९९
१९५२–५३	२७१८	२७१८	२०,९९ ०००	८८ ६० ०००	३ २६४	४ २२
१९५३–५४	३२७५	३२७५	२१ १२ ९६५	९७ ४० ०००	२ ९७६	४–६१

१	२	३	४	५	६	७
१९५४–५५	३५६४	३५६४	२१ ७० ०००	७१ १८ ०००	१ ९९७	३–२८
१९५५–५६	४००६	४००६	२२,७४ ०००	८४ ५६,०००	२,१०६	३–७२
१९५६–५७	४४२१	४३९९	२३ ७२०००	८७,१०,०००	१ ९७०	३–६७
१९५७–५८	५५३१	५५२०	३०,१५,४४३	१ २८ ९० ०००	२ ३३४	४–२८
१९५८–५९*X	६०३१	६०४०	३६,४७ ०४९	१,३८,२८,०००	२,२९३	३–७६
१९५९–६०*	६५६४	६५६४	३९ २१ ०००	१ ६० ८४ ०००	२ ४४०	४–१०

*४ और राज्यों को छोड़कर।

* आंकड़े केवल आठ राज्यों से संबंधित हैं क्योंकि अन्य राज्यों की सूचना उपलब्ध नहीं है।

उपयु क्त सारणी से श्रमिक सघो की सही स्थिति के बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता है क्योकि इसमे नियोजक सगठनो के विवरण भी सम्मिलित हैं। निम्नलिखित सारणी द्वारा नियोजको और श्रमिको के सगठनो की वित्तीय स्थिति को अलग अलग स्पष्ट किया गया है। सभी सघो की सदस्यता और वित्त स सबधित सूचनाएँ उपलब्ध न होने के कारण स्तम्भ दो और तीन के आकडे हमेशा मेल नही खाते है। प्रति सदस्य की माध्य आय की गणना सूचनाएँ भेजने वाले सघो की सदस्यता के आधार पर की गई है जो वित्तीय विवरण भेजने वाले सघो की सदस्यता स कुछ भिन्न हो सकती है। सभी क्रियात्मक उद्देश्यो के लिये ये आंकडे विश्वसनीय हैं क्योकि प्रत्येक श्रमिक की माध्य आय मे एक या दो नये पैसे से अधिक अन्तर नही होगा।

सारणी ६३

विवरण भेजने वाले श्रमिक संघों की आय (रुपयों में) १९४७-४८ से १९५९-६० तक

वर्ष	वित्तीय विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	सदस्यता विवरण भेजने वाले सदस्यों की संख्या	सदस्यता	आय	प्रति संघ माध्य आय	प्रति श्रमिक माध्य आय
१९४७-४८	१५८०	१५८०	१६,५१,८०७	३६,८८,९८७	२३३५	२-२३
१९४८-४९	१८१३	१८१३	१९,५१,८५६	४३,११,८१९	१९३०	२-२१
१९४९-५०	१८९७	१८९७	१८,१६,२५५	४४,३८,९८९	१९७४	२-४६
१९५०-५१	१९७६	१९७६	१७,५१,९३३	४४,५६,१३९	१९९६	२-५५
१९५१-५२	२५०९	२५५६	१९,९६,०००	५०,८४,०००	२००२	२-७२
१९५२-५३	२६९०	२६६५	२०,६०,०००	५२,०५,०००	१९३५	२-५३
१९५३-५४	३२३८	३२५८	२१,०६,०००	५९,७६,०००	१८४६	२-८४
१९५४-५५	३५३५	३५१७	२१,६७,०००	६६,३१,०००	१८७६	३-१२
१९५५-५६	३९७०	३९६८	२२,६९,६७९	८२,९४,०००	२०८९	३-६५

१	२	३	४	५	६	७
१९५६-५७	४३९०	४३७०	२३,७३ ०००	८०,१७,०००	१८२६	३-२८
१९५७-५८ ×	५४७०	५४६०	३०,०६ ०००	१०२,८८,०००	१८८१	३-४२
१९५८-५९	५९४२	५९५२	३६,३५ ८४४	१२४,९२ ०००	२११७	३-४१
१९५९-६०●	६४९२	६४९३	३९,०८ ०००	१५३,८४ ०००	२३७०	३-९४

× केवल उन्ही सघो की सूचना दी गई है जिनका वर्गीकरण ज्ञात है।

● आकड़े केवल आठ राज्यो से सम्बन्धित हैं। सभी सघो के पूर्ण वर्गीकरण की सूचना उपलब्ध नही है।

प्रति संघ की माध्य आय में बहुत अन्तर नहीं है। लेकिन प्रति श्रमिक की माध्य आय में काफी वृद्धि हुई है। १९५९–६० में यह ३–६४ रुपये थी जबकि इसकी तुलना में १९४७–४८ में केवल १ ३३ रुपये। प्रति नियोजक संघ और नियोजक संघ के प्रति सदस्य की माध्य आय में कोई समरूप प्रवृत्ति नहीं है जैसा कि नियोजक संघों की आय से सम्बन्धित अग्रांकित सारणी से स्पष्ट है।

सारणी ६४

विवरण भेजने वाले नियोजक संघों की आय (रुपयों में)*

वर्ष	वित्तीय विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	सदस्यता विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	सदस्यता	आय	प्रति संघ माध्य आय	प्रति सदस्य माध्य आय
१९४७–४८	४८	४८	११ १२२	२०,००,३७४	४१,६७०	१७६–८६
१९४८–४९	३५	३५	८ २७१	१५ ७१,२४३	४४ ३९२	१८६,९७
१९४९–५०	२६	२६	४,८७७	२५ २० ५८१	८६ ९१७	५१६ ९५
१९५०–५१	३७	३७	५,०३८	२५ ६२ ८६९	६९ २६७	५०८ ७३
१९५१–५२	४७	३६	५ ९२२	२८,७३,०००	६४,६६७	४२५–८८
१९५२–५३	२८	२८	४ ९६८	३६,५५ ०००	१३४ १०७	७३७–१०
१९५३–५४	३७	३७	६ ६५३	३७,७१ ०००	१०१ ९१९	५५१ ७८
१९५४–५५	२९	२८	३ ५९५	६ ८७ ०००	१६,७९३	१३५,६६
१९५५–५६	३९	३८	५ ०००	१,६२ ०००	४ १५५	३२–४०

१	२	३	४	५	६	७
१९५६-५७	३१	२६	३ ०००	६,८३ ०००	२२,३५५	२३१-००
१९५७-५८	६१	६०	६,०००	२६,०२,०००	४२ ६५७	२८८-८१
१९५८-५९	८६	८८	१२ ०००	१३,२६ ०००	१४,८६४	११०-६०
१९५९-६०	१०२	१०१	१३ ०००	७,०३ ०००	६ ८९२	५४-०७

* (क्षेत्र के सीमित होने तथा विवरणों की अनियमितता के कारण इन आँकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया जा सकता है। कुछ संघों द्वारा विवरण न भेजने से साध्य आँकड़े गड़बड़ हो जाते हैं।)

इन सारणियों से स्पष्ट है कि जहाँ तक वित्तीय स्रोतों का प्रश्न है नियोजक सगठन श्रमिक सगठनों की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। ८० नियोजक सघों की आय कुल आय की १० ७ प्रतिशत थी। नियोजक सघों की माध्य आय श्रमिक सगठनों की माध्य से कई गुना अधिक है। १६५८–५६ में प्रति नियोजक सघ और नियोजक सघ के प्रति सदस्य की माध्य आय क्रमश १५ ६३२ रुपये और १२८ ६० रुपये थी। इसकी तुलना में प्रति श्रमिक सघ की माध्य आय २ ८२० रुपये तथा श्रमिक सघ के प्रति सदस्य की माध्य आय ३ २० रुपये थी। श्रमिक और नियोजक सघों की आय के अनुपात में प्रतिवर्ष काफी परिवर्तन होता रहता है। इस तथ्य के द्वारा श्रमिक सघों की वित्तीय स्थिति अधिक स्पष्ट होती है कि १६४६–५० में १३७ सघों में से जिनकी सदस्य सख्या १००० या उससे अधिक थी केवल ८६ सघों की मासिक आय १००० रुपये या उससे अधिक थी ३७ सघ ऐसे थे जिनकी मासिक आय सौ रुपये से कम थी तथा एक सघ ऐसा था जिसकी आय केवल पाच रुपये थी। १६५८–५६ में आगरा के १० सघों जिनका अध्ययन किया गया में से पाच की वार्षिक आय ४०० रुपये से कम तीन की १००० रुपये से कम एक सघ की वार्षिक आय ११०८ रुपये तथा दूसरे की २०६३ रुपये थी। प्रति श्रमिक सघों की माध्य आय निम्न बने रहने से इस प्रवृत्ति में परिवर्तन नहीं हुआ है।

बम्बई के सघों की वित्तीय स्थिति अधिक अच्छी प्रतीत होती है। बम्बई के पंजीकृत केन्द्रीय सघों की माध्य आय १६४६–५० और १६५०–५१ में क्रमश १२ ३२५ रुपये और ११ ६१४ रुपये थी जबकि इन वर्षों का अखिल भारतीय माध्य ८ ६२० रुपये और ७ ५६१ रुपये था। इसी प्रकार राज्य सघों के सम्बन्ध में भी बम्बई की स्थिति अच्छी है। १६४६–५० वर्ष में बम्बई राज्य सघों की माध्य आय उच्चतम ४३०० रुपये थी। न्यूनतम आय ६२ रुपये प्रति सघ कुर्ग में थी। १६५०–५१ में उच्चतम माध्य आय प्रति सदस्य ५ ६ रुपये पंजाब राज्य में थी। इसी प्रकार श्रमिक सघ कोषों में भी अधिक मात्रा में केन्द्रीकरण है। तदनुरूप श्रमिक सघ कोषों के कुल का लगभग एक तिहाई बम्बई राज्य के सघों के पास था। अन्य महत्त्वपूर्ण राज्य पश्चिमी बंगाल और उत्तरप्रदेश थे जहा समस्त का क्रमश पाचवा और दसवाँ भाग था। इन तीनों राज्यों में मिलाकर कुल श्रमिक सघ कोषों का १६४६–५० में लगभग दो तिहाई भाग और १६५०–५१ में लगभग ५० प्रतिशत था। १६४६–५० में कुल आय का लगभग ४८ प्रतिशत तथा १६५०–५१ में कुल आय का लगभग आधा उत्पादन वर्ग के सघों द्वारा अर्जित किया गया। उत्पादन वर्ग में वस्त्र उद्योग के सघों की आय लगभग ५० प्रतिशत थी। १६४६–५० और १६५०–५१ में सर्वोच्च माध्य आय क्रमश २१ ६४२ रुपये तथा १६ ०६६ रुपये सामुद्रिक सघों की थी। अन्य महत्त्वपूर्ण वर्ग वस्त्र उद्योग रोपण तथा रेलवे थे जिनकी माध्य आय क्रमश ५ ७१७ रुपये और ४ ८६८ रुपये ५ ७६७ और ११ ०८१ रुपये तथा ६ ३४३

व्यय और ५ ८६/ रुपए थी। सामुद्रिक संघों तथा 'वाणिज्य' और 'खाद्य, पेय तथा तम्बाकू' के वर्गों में प्रति सदस्य माध्य आय अधिक थी।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे श्रमिक संघों की वित्तीय संरचना कमजोर है। पहले बताये गये उपायों के द्वारा संघों को अपनी आय बढ़ानी चाहिए तथा आय के नये स्रोत भी खोजने चाहिए। हमारा सुझाव है कि नियोजकों की अदावी मजदूरी और श्रमिक संघ सदस्यों पर लगाये गये जुर्माने का एक भाग श्रमिक संघों को हस्तान्तरित कर देना चाहिए। नियोजकों के लाभों को बढ़ाने के लिए जुर्माने की राशि का उपयोग नहीं किया जा सकता है। वेतन मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत सभी जुर्मानों को निर्धारित रजिस्टर में चढ़ाना और दण्ड-कोष में जमा करना होता है। उचित अधिकारी की स्वीकृति पर इस कोष का उपयोग श्रमिकों के लाभ के लिए किया जा सकता है। लाभ बोनस अदावी मजदूरी के लिए भी इसी प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिये। जुर्माना अदावी मजदूरी तथा लाभ बोनस का, एक ओर नियोजक तथा संघों, तथा दूसरी ओर विभिन्न संघों के बीच उपयुक्त अधिकारी द्वारा उनके द्वारा प्रस्तुत श्रम लाभकारी योजनाओं को जाँचने और विभिन्न संघों द्वारा अभ्यर्थित सदस्यता को सत्यापित करने के बाद बटवारा करना चाहिए इस सम्बन्ध में आवश्यक परिवर्तन वेतन मजदूरी अधिनियम में किये जाने चाहिए।

युद्ध और युद्धोपरान्त काल में लाभ बोनस बहुत से उद्योगों में सामान्य हो गया है। लाभ बोनस के एक भाग का उपयोग श्रमिक संघ कोषों को बढ़ाने के लिये किया जा सकता है। लाभ बोनस साधारणतया इकट्ठा ही दिया जाता है। श्रमिक संघ सदस्यों को लाभ बोनस प्राप्त करते समय प्रेरित किया जा सकता है कि वे उसका कुछ प्रतिशत श्रमिक संघ-कोष को दे दें। इसे बिना अधिक कठिनाई के उन स्थानों और उद्योगों में जैसे अहमदाबाद में किया जा सकता है जहाँ श्रमिक सुसंगठित हैं। दूसरे स्थानों में औद्योगिक न्यायालयों द्वारा लाभ बोनस के एक भाग को श्रमिक संघों को देने के परिनिर्णय के प्रश्न पर राज्य और सम्बंधित दलों द्वारा विचार किया जाना चाहिए। किन्तु यह अधिक अच्छा होगा यदि विभिन्न संघों और केन्द्रीय संघ इस मामले में कोई समझौता कर सकें।

व्यय

पंजीकृत व्यवसाय संघों के सामान्य कोषों को किन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु व्यय किया जा सकता है यह भारतीय व्यवसाय संघ अधिनियम में स्पष्ट कर दिया गया है। समुचित सरकार उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भी व्यय स्वीकृति कर सकती है जो अधिनियम में उल्लिखित नहीं है। अतः इस सम्बन्ध में कोई कठोर नियम नहीं है। अधिनियम में निर्दिष्ट उद्देश्य व्यापक और सर्वांगपूर्ण हैं तथा उनके अन्तर्गत श्रमिक संघों के सभी स्वभाव कार्यकलाप आ जाते हैं। अधिनियम का उद्देश्य श्रमिक संघों के वित्त को नियमित और नियंत्रित करना है ताकि उनका उपयोग केवल प्रमाणिक श्रमिक

सब उद्देश्यों के लिये किया जा सके तथा सदस्यों के हितों की रक्षा करते हुए कोषों का अपहरण और लेखों को मिथ्या बनाने से रोका जा सके। श्रमिक संघों को पगु करने की भावना नहीं है। सरकार ने इस सम्बन्ध में अपने विवेक का उपयोग नहीं किया है और न उद्देश्यों की सूची में कुछ और जोड़ा है। श्रमिक संघों ने भी नये उद्देश्यों के लिये जिन पर वे सामान्य कोष व्यय करना चाहते हैं सरकार से अनुमोदन की प्रार्थना नहीं की है। उद्देश्यों का विस्तीर्ण करने की आवश्यकता के बारे में न सरकार ने और न ही श्रमिक संघों ने कभी अनुभव किया है।

भारतीय श्रम वर्ष पुस्तिका में व्यय की विभिन्न मदों के प्रतिशत वितरण के आँकड़े प्रकाशित किये जाते हैं। १९५१–५२ और १९५९ के संस्करणों में प्रकाशित व्यय के आँकड़ों से अग्रांकित सारणी को संकलित किया गया है।

सारिणी ६५

१९५०-५१ तथा १९५८-५९ वर्षों के लिये व्यय की मदों के अनुसार व्यय का प्रतिशत विवरण

व्यय की मद	वर्ष	सभी संघ	श्रमिक संघ राज्य	श्रमिक संघ केन्द्रीय	नियोजक संघ राज्य	नियोजक संघ केन्द्रीय	श्रमिक संघों के संघान
स्थापना, वेतन, भत्ते तथा लेखा परीक्षक शुल्क	१९५०-५१	४३ ६	४० ८	५७ ४	४६ ६	४८ ३	२८ ७
	१९५८-५९	४७ ४६	४५ २३	४३ १६	६६ ९७	२५ ८६	८० ८४
व्यावसायिक विवाद, वैधानिक व्यय और व्यावसायिक विवादों के कारण होने वाली हानि की पूर्ति को मिलाकर	१९५०-५१	१० ५	१० २	४ ५	११ १	३ ४	५ ६
	१९५८-५९	११ ५४	१२ ७५	५ १६	६ ६८	—	७ ०७
कल्याण तथा बीमा व्यवस्था	१९५०-५१	२ ७	४	० २	० १	—	४५ ६

१	२	३	४	५	६	७	८
	१९५८–५९	४ ५३	५ १०	४ २८	० ५६	—	२६ २२
पत्रिकाओं का प्रकाशन	१९५०–५१	५ ६	८ ६	१ ३	० ३	—	१४ ०
	१९५८–५९	१ ०	० ५६	६ ६६	० २४	—	६ ६७
अन्य	१९५०–५१	३७ ३	३४ ८	३५ ६	४१ ०	४८ ३	६ ८
	१९५८–५९	३६ ४४	३६ ३६	४० ४१	२५ २५	७८ ११	१६ ६०

वेतन, भत्ते, लेखापरीक्षण तथा स्थापन अकेले ही व्यय की सबसे बड़ी मद है। १९५०–५१ में इस मद पर राज्य श्रमिक संघों के कुल व्यय का ४१%, केन्द्रीय संघों के कुल व्यय का ५७% तथा संघानों के कुल व्यय का २५.६% खर्च किया गया था। १९५८–५९ में आँकड़ों का संवादी प्रतिशत क्रमशः ४५.२३, ४३.१६ तथा ४०.८४ था। लगभग कुल आय का आधा वेतन स्थापन तथा अन्य उपरि व्ययों में खर्च हो जाता है। बीमा तथा कल्याण कार्यों जैसे—प्राविडेन्ट क्रिया, वृद्धावस्था बीमारी, बेरोजगारी, शिक्षा, सामाजिक तथा धार्मिक लाभ में व्यय राज्य श्रमिक संघों में ०.४% तथा केन्द्रीय श्रमिक संघों में ०.९% अर्थात् नहीं के बराबर था। १९५८–५९ में यह बढ़कर ५.१० तथा ४.२८ प्रतिशत हो गया। किन्तु संघानों ने अपनी आय का पर्याप्त अनुपात १९५०–५१ में ४५.६% बीमा तथा कल्याण कार्यों में व्यय किया। १९५८–५९ में यह प्रतिशत घटकर केवल २८.२२ रह गया। १९५८–५९ के आँकड़े श्रमिक संघानों से ही संबंधित हैं। यह आश्चर्य की बात है कि व्यावसायिक विवादों, नियम वैधानिक व्यय, हड़तालों का संचालन तथा व्यावसायिक विवादों में उत्पन्न हानि की क्षतिपूर्ति भी सम्मिलित है में आय का बहुत कम भाग व्यय किया जाता है। १९५०–५१ में इस मद पर श्रमिक, राज्य और केन्द्रीय संघों द्वारा किया गया कुल व्यय १०.५% ४.५% और ५.९% था जो १९५८–५९ में १२.७८% ५.१६% तथा ७.७७% हो गया। श्रमिक राज्य संघों और संघानों द्वारा किये गये खर्च की एक बड़ी मद पत्रिकाओं का प्रकाशन था। इस पर उनका व्यय क्रमशः ६.६ तथा १४ प्रतिशत था। १९५८–५९ में सभी प्रकार के संघों का व्यय इस मद पर कम हो गया था। 'अन्य' मद पर श्रमिक और नियोजक संघों के कुल व्यय का लगभग एक तिहाई से लेकर आधे तक व्यय हो जाता है। १९५८–५९ में केन्द्रीय नियोजक संघों द्वारा इस मद में कुल का लगभग तीन चौथाई खर्च किया गया था। इस वर्ग के अन्तर्गत व्यय की कौन-कौन सी मदें आती हैं इसके बारे में सूचना उपलब्ध नहीं है। केवल उन कार्य कलापों के बारे में थोड़ी ही जानकारी है जिनके लिये इस वर्ग के अन्तर्गत वित्त-व्यवस्था की जाती है। श्रमालय (Labour Bureau) को सरल और अधिक व्यापक वर्गीकरण प्रकाशित करना चाहिये।

सारणी ६६

विवरण भेजने वाले नियोजक सघो का व्यय १९४७-४८ से १९५८-५९

वर्ष	वित्तीय विवरण भेजने वाले सघो की सख्या	सदस्यता विवरण भेजने वाले सघों की सख्या	सदस्यता	व्यय	प्रति सघ माध्य व्यय	प्रति सदस्य माध्य व्यय
१९४७-४८	४८	४८	११ १२२	१५ ८३,९८४	३२ ३७५	१४१ १८
१९४८-४९	३५	३५	८,२७१	२० ९५ ४७१	५९ ६७९	२५१ ८७
१९४९-५०	२६	२६	४ ८७७	२० ७२ ३९९	७१ ९००	४१४ ६०
१९५०-५१	३७	३७	५ ०३८	२५,२२,९११	६८,१७६	५०४ ६०
१९५१-५२	४७	३९	५,९२२	२९ ८९,०००	६३ ९००	४९७ ३३
१९५२-५३	२८	२८	५ १६८	२८,७५,०००	१०२,७००	५५५ ००
१९५३-५४	३७	३७	६ ६५३	३८ ८८,०००	१०५,०८१	५८५ ४
१९५४-५५	२९	२८	३,९९५	४,६४,०००	१६,०००	११६ ००
१९५५-५६	३९	३८	५ ०००	१,९१,०००	५,०००	३८ २०

१	२	३	४	५	६	७
१९५६–५७	३१	२९	३ ०००	७ २०,०००	२३ २२६	२४० ००
१९५७–५८	६०	६०	९,०००	२७ ७९,०००	४५ ५५७	३०८ ७८
१९५८–५९	८९	८८	१२,०००	१२,८४ ०००	१४ ४२७	१०७ ००
१९५९–६०	१०२	१०१	१३,०००	५ ७५ ०००	८६३७	८९ ६१

व्यवसाय सघों के व्यय का स्वरूप सबधित सघों की आय की सरचना के अनुसार होता है। चूकि नियोजक सगठनो के पास अच्छे साधन हैं इसलिए व अपने सदस्यो पर अधिक व्यय कर सकते हैं। १६५८–५६ म नियोजक सगठन के प्रति सघ और प्रति सदस्य का माध्य व्यय क्रमश १५६२२ रुपये तथा १२८ रुपय था। नियोजक सगठनो न जो विवरण भेजने वाले सघो का १७% थे कुल व्यय का लगभग ११२% खच किया। नियोजक सघो का माध्य व्यय सारणी ६६ म दिया गया है।

श्रमिक सघो का माध्य व्यय बहुत कम है। नियोजक सगठन जो व्यय करते हैं उसका यह एक प्रभाव होता है। १६५१–५२ म श्रमिक सघो का माध्य व्यय २००२ रुपये तथा १६५६–६० म २०७० रुपये था। इन्ही वर्षों म प्रति सदस्य का माध्य व्यय नाममात्र के लिये २४४ रुपये तथा ३४५ रुपये था। इस छोटी सी राशि म से लगभग ५०% स्थापन म व्यय किया गया था। इसके उपरान्त फिर कल्याणकारी कार्यों म व्यय करने के लिये कोइ गुजाइश ही नही रह जाता है। १६५८–५६ मे आगरा के १० सघो के अध्ययन स पता चला कि ६ सघो का वार्षिक व्यय ४०० रुपये स भी कम था। एक सघ का व्यय ७४८ रुपय तथा दो सघो का व्यय १००० रुपये और ११०० रुपये क बीच था। केवल एक सघ का वार्षिक-व्यय १८२८ रुपये था। ६ सघो म प्रति सदस्य व्यय १०५ रुपये से कम ३ सघो म दो और तीन रुपये के बीच तथा एक सघ में ४ रुपये स अधिक था। १६५८–५६ में ४७ श्रमिक सघो का व्यय ५६२१६७ रुपये था। अग्रांकित सारणी में श्रमिक सघो के माध्य व्यय का विवरण दिया गया है।

सारणी ६७

विवरण भेजने वाले श्रमिक संघों का व्यय (रुपयों में) १९४७–४८ से १९५८–५९ तक

वर्ष	वित्तीय विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	सदस्यता विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	सदस्यता	व्यय	प्रति संघ माध्य व्यय	प्रति श्रमिक माध्य व्यय
१९४७–४८	१५८०	१५८०	१६,५१ ८०७	२९,४९ ०९९	१,८६७	१ ७९
१९४८–४९	१८१३	१८१३	१९,५१,८५६	३४,११ १९७	१,९३०	१ ८०
१९४९–५०	१८९७	१८९७	१८,१६,२५५	३७,४४,४२८	१,९७४	२ ८०
१९५०–५१	१९७६	१९७६	१७ ५१,९३३	३९,४१,१४०	१,९९६	२ २५
१९५१–५२	२५०९	२५२६	१८,४७,२९१	४५,३२,०००	२,००२	२ ४४
१९५२–५३	२६९०	२६६५	२०,५९,९६४	४५,४३,०००	१,६८९	२ २१
१९५३–५४	३२३८	३२५८	२१,०६,०८२	५२,१७,०००	१,६११	२ ४८
१९५४–५५	३५३५	३५१७	२१,६६,८५५	५७,१९,०००	१,६१८	२ ६०
१९५५–५६	३९७०	३९६८	२२ ६९ ६७९	६५ ०६ ०००	१,६३९	२ ८७

१	२	३	४	५	६	७
१९५६-५७	४३१०	६३७०	२३,७३,०००	७१,८१,०००	१,६३६	३ ०३
१९५७-५८	५४७०	५४६०	३०,०६,०००	९२,६२ ०००	१,६९५	३ ०८
१९५८-५९	५९४२	५९५७	३६,३५,०००	११६,५५ ०००	१,९६३	३ २१
१९५९-६०	६४९२	६४९३	३९ ०८,०००	१३४,११,०००	२,०७०	३ ६४

बम्बई राज्य में प्रति संघ तथा प्रति सदस्य माध्य व्यय अधिक है। किसी भी अन्य राज्यों के संघों की अपेक्षा बम्बई के संघों की वित्तीय स्थिति अधिक अच्छी है। यदि उद्योगों के अनुसार संघों का वर्गीकरण किया जाय तो उत्पादक वर्ग के संघों में व्यय केन्द्रित पाया जाता है जो कुल व्यय का लगभग ५०% है। इस वर्ग में वस्त्र उद्योग संघों का प्राधान्य है। रोपण और रेलवे अन्य वर्ग हैं जहाँ माध्य व्यय अधिक है। प्रति सदस्य माध्य व्यय सामुद्रिक संघों, वाणिज्य वर्ग के संघों, वस्त्र उद्योग संघों तथा खाद्य पेय और तम्बाकू वर्ग के संघों में अधिक है।

श्रमिक संघों के वित्त में आरक्षित पूँजी का महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं होता है। संघों का आय व्यय बहुत संक्षिप्त रूप से संतुलित होता है। आरक्षित कोषों की राशि कम होती है और अधिकांश संघ किसी आपातकालीन स्थिति का मुकाबला करने में समर्थ नहीं होते हैं। हड़ताल के समय वे अपने सदस्यों की सहायता और उन्हें पोषित करने में असमर्थ रहते हैं और इसलिये उनकी सौदाकारी शक्ति कमजोर होती है। ऐसे समय में या तो वे क्षीण अथवा फिर नष्ट हो जाते हैं। किन्तु कुछ संघ अस्थायी समाप्ति की स्थिति का सामना करने के लिये विशेष अनुदान अथवा सार्वजनिक अनुदान का सहारा लेते हैं। १९५२ के चाय संकट के समय छँटनी किये गये श्रमिकों की सहायता के लिये आसाम राज्य संघों ने सहायतार्थ टिकट जनता में बेचने का आयोजन किया था। लेकिन सफलता अधिक नहीं मिली। बड़ी मात्रा में छँटनी के कारण सामूहिक बेरोजगारी या काफी समय तक चलते रहने वाली हड़तालों के फलस्वरूप आरक्षित कोषों पर अधिक बोझ पड़ जाता है। वर्तमान समय में संघ अपने अपर्याप्त वित्तीय साधनों के कारण साधारणतया विवाद और कल्याण लाभ की व्यवस्था कर पाने में असमर्थ होते हैं।

हमारे संघों की वित्तीय संरचना बहुत कमजोर है अतः उसे दृढ़ बनाने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। जहाँ एक ओर संघों की आय बढ़ानी है वहीं दूसरी ओर उनके व्यय को भी समानीकृत और कम करना है। छोटे संघों को सम्मिलित करके बड़े और शक्तिशाली संगठन बनाना चाहिये। इससे ऊपरि व्यय और स्थापना खर्चों में काफी बचत होगी। अधिकांश संघ शहरों में केन्द्रित हैं जहाँ उन्हें बहुत अधिक किराया देना पड़ता है। उन्हें मकान उचित किराये पर प्राप्त कराने अथवा उनके अपने भवनों के निर्माण में उनकी सहायता करनी चाहिये। इन संघों के लिये जिनकी निर्धारित सदस्यता है सरकार को आवास की अधिप्रतीत व्यवस्था करनी चाहिये। औद्योगिक आवास योजनाओं के लिये सरकारी उपलब्ध सहायता का संघों को भी लाभ उठाना चाहिये। इससे संघों को धन बचाने और उसे अपने सदस्यों के हित और उनके कल्याण के प्रवर्तनकारी तथा अन्य कार्यकलापों में व्यय करने में सहायता मिलेगी।

यद्यपि श्रमिक संघों का पंजीकरण ऐच्छिक है किन्तु उनके कोषों का लेखा

परीक्षण अनिवार्य है। एक श्रमिक संघ तभी पंजीकृत किया जा सकता है जब उसके नियमों में साथ अभिरक्षण निर्धारित रूप में वार्षिक लेखा परीक्षण तथा श्रमिक-संघ सदस्यों और अधिकारियों द्वारा लेखा पुस्तकों के निरीक्षण के लिये पर्याप्त सुविधा की व्यवस्था हो। प्रत्येक पंजीकृत संघ को एक निश्चित तिथि तक सभी आय और व्यय तथा सम्पत्ति और देयता का सामान्य विवरण जो निर्धारित विधि से परीक्षित किया गया हो रजिस्ट्रार के पास वार्षिक रूप से भेजना होता है। लेखा परीक्षकों की योग्यताएँ अधिनियम के अन्तर्गत रचित व्यवसाय संघ विनियमन में निर्धारित की गई है। प्रार्थना करने पर राज्य को सरकारी लेखा परीक्षकों द्वारा निःशुल्क लेखा परीक्षण की सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिये। अधिनियम में आवश्यक परिवर्तन करके ऐसी सेवा की व्यवस्था अनिवार्य कर देनी चाहिये। रायल श्रमिक आयोग ने सुझाव दिया था कि सभी संघ सरकारी अधिकारियों द्वारा अपने लेखा-परीक्षण की निःशुल्क सुविधा प्राप्त करने में समर्थ होने चाहिये। श्रमिक संघों के लेखा परीक्षण और जाँच पर अधिकारीय लेखा परीक्षकों का प्रतिवेदन जनता तथा संघ दोनों को उपलब्ध होना चाहिये।' वर्तमान समय में पंजीकृत श्रमिक संघों को अनिवार्य वार्षिक लेखा-परीक्षण का शुल्क स्वयं भुगतान करना पड़ता है। चूंकि वे उचित रूप से योग्य लेखा परीक्षकों के लेखा परीक्षण का शुल्क दे पाने में समर्थ नहीं होते हैं इसलिए सरकार को उनके लेखा का परीक्षण करने के लिये ऐसे व्यक्तियों को अनुमति देनी पड़ती है जिनके पास हिसाब किताब की कोई योग्यता ही नहीं होती। अब सरकार को चाहिये कि वे श्रमिक संघों के लेखों के परीक्षण का दायित्व अपने कंधे पर ले लें जैसा कि उन्होंने सरकारी समितियों के संबंध में किया है। जो संघ योग्य व्यक्तियों द्वारा निजी लेखा परीक्षण की व्यवस्था करना चाहते हैं उन्हें ऐसा करने की अनुमति दे देनी चाहिये। संघों के लिये लेखा-परीक्षण की सुविधाएँ प्रदान करने में सरकार को बहुत कम खर्च उठाना पड़ेगा जबकि पंजीकृत संघों का जिनमें से अधिकांश की आय बहुत कम है पर्याप्त राहत मिलेगी। अयोग्य व्यक्तियों द्वारा निजी लेखा परीक्षण की अपेक्षा सरकारी लेखा परीक्षण अधिक दक्ष और प्रभावशाली होगा। कोषों के अपहरण और दुरुपयोग के उदाहरण कम नहीं हैं। यह उचित समय है जब सरकार को रायल श्रमिक आयोग के सुझाव पर कार्यवाही करनी चाहिये।

वर्तमान समय में लगभग आधे पंजीकृत संघ विवरण नहीं भेजते हैं। वर्तमान अधिनियम के अन्तर्गत इसके लिये दो प्रकार के दण्डों की व्यवस्था है—आर्थिक दण्ड जो पचास रुपये से अधिक नहीं होता तथा पंजीकरण का विलोपन। इस स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। श्रमिक संघों की वित्तीय अवस्था को स्थिर और सुदृढ़ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि सभी संघों द्वारा विवरण भेजे जांय। यह भी आवश्यक होगा कि वांछनीय परिवर्तन किये जांय। विवरण न भेजने लेखा के कूट

करण तथा कोषों के अपहरण के मामलों में संघ की कार्यकारिणी समिति से बाहरी लोगों को तीन वर्ष के लिये बहिष्कृत कर देना चाहिये। इसी तरह का परिवर्तित व्यवसाय संघ विधेयक १९५० में प्रस्तावित किया गया था किन्तु वह व्यापक और सर्वांगपूर्ण नहीं था। चूक और अपहरण के लिये बाहरी लोगों पर किसी भी दण्ड की व्यवस्था नहीं थी। प्रायः ही कोष बाहरी लोगों के संरक्षण में होते हैं और ऐसी धारा निश्चित ही उन्हें अधिक उत्तरदायी बना देगी। संघों के कोषों के अपहरण की स्थिति में उन्हें पुनः प्राप्त करने के लिये राज्य को श्रमिक संघों की सहायता करनी चाहिये। वर्तमान समय में दीवानी न्यायालयों के माध्यम से ही रुपया वसूला जा सकता है। इसके लिये काफी व्यय की आवश्यकता होती है जिसे अधिकांश संघ कर पाने की स्थिति में नहीं हैं। व्यवसाय संघ विधान में इस उद्देश्य के लिये एक सहज और बिना व्यय वाली प्रक्रिया निहित करनी चाहिये। यह आवश्यक है कि श्रमिक-संघ कोषों के दुरुपयोग को रोकने के लिये सभी सावधानियाँ बरती जाँय।

राजनैतिक कोष

भारतीय व्यवसाय संघ अधिनियम में संघ के सामान्य कोषों का राजनैतिक उद्देश्यों के लिये व्यय करना निषेध है किन्तु राजनैतिक क्रिया कलापों में श्रमिक संघों के भाग लेने पर कोई रोक नहीं लगायी गई है। इसके अलावा यह व्यवस्था अवश्य है कि जो संघ राजनैतिक कार्य-कलापों को उपयोगी समझें वे उसके लिये पृथक कोष का निर्माण कर सकते हैं। राजनैतिक कोष के लिये पृथक शुल्क लगाना पड़ता है। इस कोष को अधिनियम में उल्लिखित राजनैतिक उद्देश्यों के लिये ही खर्च किया जा सकता है। ये उद्देश्य हैं—(अ) किसी सामान्य अथवा स्थानीय निकाय के निर्वाचन में सम्भावी प्रत्याशी के चुनाव के लिये व्यय करना, (ब) उनके निर्वाचित हो जाने पर उनका पोषण करना, (स) राजनैतिक सभाओं का आयोजन करना, तथा (द) राजनैतिक साहित्य का वितरण करना।

राजनैतिक कोष में चन्दा देने के लिये सदस्यों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई दबाव नहीं डालना चाहिये। अधिनियम में इस बात की निश्चित व्यवस्था है कि (अ) राजनैतिक कोष में अंशदान देने के लिये किसी सदस्य को विवश नहीं किया जायेगा (ब) श्रमिक संघ में प्रवेश के लिये इस कोष में अंशदान की शर्त नहीं रखी जायगी तथा (ग) अंशदान न देने वाले सदस्य केवल कोष के प्रबन्ध और नियन्त्रण को छोड़कर अन्य मामलों में पूर्ण अधिकार रखेंगे। अन्य सदस्यों की तुलना में ऐसे कोषों में चन्दा न देने वाले सदस्यों को संघ के किसी अन्य मामले में किसी बाधा या असुविधा का सामना नहीं करना पड़ेगा इस कारण कि उन्होंने राजनैतिक कोष में चन्दा देने से इन्कार कर दिया है।

दोनों ब्रिटिश और भारतीय व्यवसाय संघ विधानों में पृथक राजनैतिक कोष

की रचना पूर्णतया ऐच्छिक है। दोनों ही देशों में राजनैतिक खर्चे सामान्य कोष से नहीं किये जा सकते हैं। दोनों देशों के राजनैतिक कोषों के बीच मुख्य अन्तर यह है कि ब्रिटिश अधिनियम में राजनैतिक कोष का सदस्यता अलिखित प्रसंविदा पर आधारित होती है जबकि भारतीय अधिनियम के अन्तर्गत लिखित प्रसंविदा की व्यवस्था है।

रेलवे कर्मचारियों की समामेलित समिति के एक सदस्य विलियम आस्बर्न ने संघों द्वारा अपने कोषों के राजनैतिक उद्देश्यों के लिये व्ययवतन करने के अधिकार को चुनौती दी थी। न्यायालय ने इस विचार का समर्थन किया और १९०९ में आस्बर्न निर्णय के अन्तर्गत राजनैतिक लक्ष्यों के लिये संघों द्वारा अपने कोष के प्रयोग करने के अधिकार को अवैध बताया। फलस्वरूप १९१३ में एक नया विधान पारित किया गया ताकि संघ राजनैतिक कार्य कलापों को उपक्रमित कर सकें और इस उद्देश्य के लिये पृथक राजनैतिक कोष का निर्माण कर सकें। जो सदस्य राजनैतिक कोष में अंशदान देने की अपनी अनिच्छा प्रकट करते थे अर्थात् प्रसंविदा नहीं करते थे, उन्हें शुल्क देने से मुक्त करना होता था। इस प्रकार श्रमिक संघों को राजनैतिक कोष रखने का अधिकार दिया गया था साथ ही अल्पमत सदस्यों के हितों की भी रक्षा की गई थी। किन्तु संघों का राजनैतिक कार्य कलापों में सन्निहित होने का प्रश्न अन्तिम रूप से नहीं सुलझाया गया था जिससे उस पर बराबर वाद विवाद होता रहा है। यह तर्क दिया गया था कि अलिखित प्रसंविदा की रीति अनुचित और स्वेच्छापूर्ण थी। केवल कुछ ही व्यक्ति अलिखित प्रसंविदा के खिलाफ इच्छा प्रकट करते थे और इस उदासीनता के लिये माध्य श्रमिक उत्तरदायी थे। दूसरों का कहना था कि इससे उनकी स्वीकृति की पुष्टि हो जाती है। इंगलैण्ड में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जो औद्योगिक असंतोष फैला उसकी परिणति १९२६ में आम हड़ताल में हुई। आम हड़ताल के समाप्त होने के तुरत बाद ही श्रमिक संघ कार्यकलापों को आमन्त्रित करने के लिये सरकी सरकार जो उस समय अधिकार में थी ने १९२७ में व्यावसायिक विवाद और व्यवसाय संघ अधिनियम पारित किये। इसने राजनैतिक शुल्कों के अंशदान के लिये अलिखित प्रसंविदा करने की रीति को लिखित प्रसंविदा की रीति से प्रतिस्थापित कर दिया। इस प्रणाली के अन्तर्गत सदस्यों को लिखित रूप से देना पड़ता था कि वे राजनैतिक शुल्क देने के लिये इच्छुक हैं। उनकी इच्छा मान नहीं ली जाती थी, जैसा कि पहली पद्धति में था, बल्कि उन्हें लिखित रूप से प्रसंविदा करना होता था। किन्तु इस परिवर्तन से आर्थिक व्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इससे श्रमिक संघों का वित्त कम हो गया तथा उनके राजनैतिक कार्यकलापों में गंभीर अड़चन पैदा हो गई। श्रमिक आन्दोलन ने इस नई व्यवस्था का विरोध किया तथा इसे समाप्त करने के लिये आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। श्रमिक दल ने इसे समाप्त करने का वचन दिया था इसलिए जब १९४५ में

में यह सम्पन्न हुई, अधिनियम को १९४६ में निखण्डित कर दिया गया। अब वही स्थिति है जो १९२७ के अधिनियम के पारित होने से पूर्व थी। १९१३ के अधिनियम में निहित राजनैतिक शुल्कों के लिये अलिखित प्रसंविदा की प्रणाली लिखित प्रसंविदा की प्रणाली के स्थान पर आ गई। यह दावा किया जाता है कि इससे संघों के सदस्यों को राजनैतिक कोषों में अंशदान देने के लिये प्रोत्साहित किया है।

इस पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में हमें राजनैतिक कोषों के लिये भारत में लागू की गई लिखित प्रसंविदा की प्रणाली का अध्ययन करना है। भारतीय अधिनियम १९२६ में पारित किया गया था जबकि ब्रिटिश सरकार ने अपने यहाँ लिखित प्रसंविदा की प्रणाली को लागू करने का निश्चय कर लिया था। हम ऐसा अनुभव करते हैं कि भारत की वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत भी राजनैतिक कोषों के लिये अलिखित प्रसंविदा प्रणाली के स्थान पर लिखित प्रसंविदा प्रणाली को ही प्रमुखता देनी चाहिये। हमारे श्रमिक निरक्षर अज्ञानी तथा नागरिक चेतना से विहीन हैं। राजनैतिक दलों द्वारा नेतृत्व प्रदान किया जाता है। इसलिए ऐसे कदम अवश्य उठाये जाने चाहिये जिससे श्रमिकों को उनकी इच्छा के विपरीत राजनैतिक कार्यकलापों में घसीटा न जा सके। हमें यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि श्रमिक समझते हैं, जागरूक हैं तथा राजनैतिक कार्यकलापों के प्रति पूर्णतया सहानुभूति है, इससे पहले कि उनसे वित्त की माँग की जाय। स्थिति का पुनरवलोकन करने की आवश्यकता हो सकती है जब काफी प्रगति हो जाय। यह कहा गया है कि ब्रिटिश सरकार ने देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन से श्रमिक संघों को दूर रखने के लिए राजनैतिक कार्यकलापों पर प्रतिबंध लगाया था। ऐसा श्रमिक संघ आन्दोलन के व्यापक हित और श्रमिक संघ कोषों के उचित प्रयोग की सुरक्षा के लिये किया गया था।

राजनैतिक कोषों के सम्बन्ध में दो और सुधार वांछनीय प्रतीत होते हैं। सर्वप्रथम, श्रमिक संघों को केवल तभी राजनैतिक कार्यकलापों में भाग लेने तथा उन पर धन व्यय करने की अनुमति होनी चाहिये जब समुचित अधिकारी के निरीक्षण में सदस्य बहुसंख्या में इसके पक्ष में मत दें। वे परिस्थितियाँ, जिनके अन्तर्गत संघ राजनैतिक कोष का निर्माण कर सकते हैं स्पष्ट रूप से उल्लिखित होनी चाहिये। देश के राष्ट्रीय श्रमिक संघों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनैतिक सिद्धान्तों के कारण प्रायः ही और अब भी श्रमिक संघ एकता समाप्त हुई है और होती है। यदि राजनैतिक कोष बिना बहुसंख्यक सदस्यों की इच्छित अनुमति के स्थापित किये जाते हैं तो सभी स्तरों पर श्रमिक संघ एकता खतरे में पड़ जायगी और विघटन की शक्तियाँ मुक्त होकर श्रमिक संघ आन्दोलन को कमजोर बना देंगी। राजनैतिक कार्यकलापों में श्रमिक संघवाद के स्वतन्त्र विकास में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़नी चाहिये। इन्हें श्रमिक संगठनों को सुदृढ़ बनाना चाहिये कमजोर नहीं।

दूसरे वर्तमान अधिनियम में उन सदस्यों, जिन्हें राजनैतिक कोष में अंशदान न देने के कारण भेदभाव का सामना करना पड़ सकता है के लिए कोई लिखित प्रतिकार नहीं है और न ही उन संघों के खिलाफ जो ऐसा भेदभाव करें, किसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था है। वर्तमान समय में इस समस्या की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है क्योंकि बहुत कम संघों के पास राजनैतिक कोष हैं। लेकिन अनिच्छुक सदस्यों को उनकी इच्छा के विरुद्ध राजनैतिक कार्यकलापों में सम्मिलित करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। प्रत्येक श्रमिक को राजनैतिक कार्यकलापों में भाग लेने के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। इसलिए समुचित संरक्षण आवश्यक और वांछनीय है।

तीसरे सरकारी कर्मचारियों को सक्रिय राजनीति से अलग रहना चाहिए। व्यवसाय संघ विधेयक १६५० के अन्तर्गत कुछ वर्गों पर राजनैतिक कोषों में अंशदान देने पर रोक लगाने की व्यवस्था की गई थी। जब श्रमिक संघ पूर्णतया सरकारी कर्मचारियों का हो तो ऐसे पृथक कोष की स्थापना नहीं की जाती थी और यदि संघ में अंशतः सरकारी और आंशिक रूप से अन्य कर्मचारी हों तो सरकारी कर्मचारियों से राजनैतिक कोष में अंशदान देने के लिये नहीं कहा जाता था। वर्तमान अधिनियम में ऐसी कोई निषेधक धारा निहित नहीं है तथा सरकारी कर्मचारियों को उनके सेवा नियमों के अन्तर्गत राजनैतिक कार्यकलापों से विवर्जित किया गया है।

हमारे संघों में राजनैतिक कोष अधिक प्रचलित नहीं हैं। उनमें से बहुत कम के पास नियमित राजनैतिक कोष हैं तथा उनके कार्यकलाप भी स्थिर नियमित और पर्याप्त नहीं हैं। इन कोषों में धनराशि बहुत कम है और उनके लिए चंदा एकत्र करने हेतु कोई सम्मिलित प्रयत्न नहीं किये जाते हैं। प्रायः संघों के कोई राजनैतिक कार्यक्रम नहीं होते हैं और न वे सीधे राजनैतिक कार्यकलापों की चेष्टा ही करते हैं। निर्वाचन के समय राजनैतिक कार्यकलाप महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं और कभी-कभी उनके लिये विशेष चन्दा एकत्रित कर लिया जाता है। किन्तु विशेष शुल्क एकत्र करने की सामान्य रीति नहीं है। राजनैतिक कोषों की विशद सूचनाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। १६४४–४५ में केवल ४ संघों के पास राजनैतिक कोष थे। उनकी संख्या १६४६–४७ में बढ़कर ८ तथा १६४६–५० में ११ हो गई जिनमें एक संघान भी सम्मिलित था। अभी तक हमारे श्रमिक संघों के राजनैतिक कार्यकलाप उल्लेखनीय नहीं रहे हैं किन्तु यह आशा की जाती है कि वे देश के राजनैतिक जीवन में अधिक प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह करेंगे।

राजनैतिक उद्देश्यों के लिये सामान्य कोष के प्रयोग पर वर्तमान निषेध ने श्रमिक संघों की उत्पत्ति और विकास में लाभदायक सिद्ध हुआ है। इससे श्रमिक संघों के सीमित वित्त की रक्षा हुई है और उसका दुरुपयोग रोका गया है। प्रारम्भ में और आज भी श्रमिक संघों का नेतृत्व राजनैतिक दलों द्वारा किया जाता है सभी

के कार्यकलापों में राजनैतिक संस्था का प्राबल्य होता है। यह प्रलोभन, कि श्रमिक संघों के सीमित वित्त को उनके यथार्थ कार्यकलापों की अपेक्षा बाहरी लोगों के राजनैतिक कार्यकलापों में लगा दिया जाय, हमेशा बना रहता है और उसे समाप्त करना चाहिये। संघों के कोष बाहरी नेताओं द्वारा अपनी स्थिति को मजबूत बनाने तथा राजनैतिक दलों, जिनसे वे सम्बद्ध हैं, के हितों को बढ़ाने के लिए नहीं हैं। किन्तु इन नियामक व्यवस्थाओं के अभाव में श्रमिक आन्दोलन धन की कमी के कारण समाप्त हो गया होता। उनके दारिद्र्य और कम वित्त ने थोड़े ही अंश को व्यापकतर करने में उन्हें कठोर आघात लगा होता। नेतृत्व विभिन्न राजनैतिक दलों से प्राप्त किया जाता है तथा सदस्य विभिन्न राजनैतिक विचार रखते हैं। इसलिए यह अस्वाभाविक है कि वे राजनैतिक उद्देश्यों के लिए कोष के वितरण पर आपस में सहमत हो जायँ। ऐसा कोई प्रयास श्रमिकों को श्रमिक संघों से दूर रखता और इससे बहु प्रतिसंघीय सम्बन्धी दलबन्दी की रचना, सामूहिक पक्षपात और समानान्तर संघों की स्थापना को बढ़ावा मिला होता। श्रमिक संघों में सम्मिलित होने के लिए श्रमिक इच्छुक और सन्देही होते हैं। ऐसे किसी विकास से श्रमिक संघों से उनका विश्वास हिल जाता जो उन्हें पूर्णतया उदासीन बना देता। उन्होंने चन्दा देने और सदस्य बनने से इन्कार कर दिया होता। इसलिए ये नियामक व्यवस्थायें भारत में श्रमिक संगठनों के लिये लाभकारी रही हैं।

१९

आन्दोलन का नेतृत्व

प्रारम्भ से लेकर अब तक भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन की एक ही विशेषता रही है कि इस पर बाहरी नेतृत्व का प्रभाव रहा है। बहुत से देशों में श्रमिक आन्दोलन का निर्देशन प्रारम्भिक काल में बाहरी लोगों ने किया। ब्रिटिश श्रमिक वर्ग आन्दोलन के इतिहास में बाहरी लोगों जैसे रॉबर्ट ओवेन, फ्रांसिस प्लेस और बाद में सिडनी वेब, लुडलो, फ्रेडरिक हैरिसन तथा अन्यों ने श्रमिक संघवाद और श्रम के हेतु व्यापक योगदान किया। जैसे जैसे आन्दोलन में कुछ प्रौढ़ता आई, बाहरी नेतृत्व का स्थान धीरे धीरे श्रमिक वर्गों से प्राप्त नेतृत्व को मिला।

भारत में बाहरी लोगों द्वारा जो श्रमिकों के जीवन और कार्य की गिरी हुई अवस्था से दुखी होकर उनके हितों का पृष्ठपोषण किया गया। श्रमिक संघों का संगठन करके उन्होंने श्रमिकों के भाग्य को सुधारने के लिये प्रयत्न किये। किन्तु अब भी जबकि श्रमिक आन्दोलन लगभग आधी शताब्दी पुराना हो चुका है, बाहरी नेतृत्व की प्रधानता है। बाहरी लोगों का प्रभाव बहुत ही प्रबल है और वे श्रमिक संघों के भाग्य का नियन्त्रण करते हैं। आन्दोलन का पथप्रदर्शन आज भी सामाजिक कार्यकर्ताओं, राजनैतिक दलों से मध्यम-वर्ग के नेताओं और उदार व्यवसायों के व्यक्तियों जो कभी श्रमिक नहीं रहे हैं और जो औद्योगिक मामलों तथा श्रम समस्याओं से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं, द्वारा किया जा रहा है। बहुत कम ऐसे संघ हैं जिनकी उत्पत्ति विशेष रूप से श्रमिकों के प्रयत्नों पर निर्भर रही हो और जिनका प्रबंध बिना बाहरी सहायता के उनके द्वारा किया जाता हो।

श्रमिकों के वर्ग के नेतृत्व के विकास की आवश्यकता बहुत पहले ही से अनुभव की गई थी। इस समस्या की ओर १९३१ में रॉयल श्रमिक आयोग ने ध्यान आकर्षित किया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कहा गया है कि बाहरी लोगों पर अपनी कार्यकारिणी के रूप में संघों की निर्भरता श्रमिक आन्दोलन में अस्वस्थ प्रवृत्ति का एक प्रमुख स्रोत है। किसी ऐसे व्यक्ति पर बहुत अधिक निर्भरता जो औद्योगिक श्रमिकों के वर्ग से सम्बन्धित नहीं है श्रमिकों की स्वयं संगठित होने की क्षमता को कमजोर करती है तथा श्रमिक वर्ग से नेतृत्व के विकास को भी पंगु बना देती है। फिर भी यह स्वीकार किया जाता है कि श्रमिक संघों के पदाधिकारियों में

से बाहरी लोगों की सख्या कम कर देने से श्रमिक सघ सगठन के कार्यकर सेविवग के क्षेत्र मे रिक्तता पदा होने की सभावना है। बाहरी लोगो का उन्मूलन वाछनीय तो समझा जाता है किन्तु व्यावहारिक नही। श्रमिक सघ विधेयक १९५० म प्रस्तावना की गई थी कि श्रमिक सघो म बाहरी लोगो की सख्या कम कर दी जाय। लेकिन उपरोक्त आशका के कारण केन्द्रीय सरकार ने बाद मे इस मामले पर निर्णय नही लिया। श्रमिक वग मे नेतृत्व उनका अतिम लक्ष्य है और तृतीय पचवर्षीय योजना म श्रमिक वग से नेतृत्व के प्रगतिशील विकास की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

द्वितीय योजना के अन्तगत दो प्रकार के बाहरी लोगो का उल्लेख है—एक वे जो पूरे समय के लिये श्रमिक सघ कायकर्ता हैं तथा दूसरे वे जिनके लिये उनके विभिन्न कायकलापो मे श्रमिक सघो का काय भी एक भाग है। यह स्वीकार किया जाता है कि श्रमिक सघो को अब भी प्रथम प्रकार के कत्तव्यपरायण कायकर्त्ताओ की आवश्यकता ह तथा ऐसे व्यक्तियो को कायकारिणी समिति म चुनने के उनके अधिकार का हनन नहीं करना चाहिये। इसी प्रसग मे दूसरे प्रकार के श्रमिक सघ नेतृत्व का भी विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इसमे वे पेशेवर लोग सम्मिलित हैं जिनके लिये श्रमिक सघ काय जीविका का साधनमात्र है। स्वभावत ऐसे व्यक्ति श्रमिको के कल्याण या जिस सघ से वे सम्बद्ध हैं उसका भला चाहने की अपेक्षा अपने वयक्तिक हितो का अधिक ध्यान रखते हैं। उनके लिये यह एक सहायता और भरण पोषण का साधन है। कभी कभी उन्होंने श्रमिको को गलत निर्देशन भी दिया है। अपने नेतृत्व को बनाये रखने के लिये वे वर्गीय प्रतिद्वन्द्विता और कलह को उकसाते हैं। वे श्रमिको को अज्ञानी तथा अप्रबुद्ध रखना चाहते हैं ताकि उन पर नियन्त्रण बना रहे। वे नियोजको के साथ गुप्त रूप से समझौता करके श्रमिको की स्थिति खराब कर सकते हैं। उनके कारण योखा के दुरुपयोग का भी भय है। निस्सदेह ऐसे व्यक्ति आन्दोलन म काफी समय से रहे हैं किन्तु उनकी सख्या बहुत कम थी। रॉयल श्रमिक आयोग ने टिप्पणी की है "इनम से कुछ ने अपने निजी और वयक्तिक हितो की पूर्ति के लिये आन्दोलन म स्वयमेव रुचि ली है। किन्तु बहुसख्या उन लोगो की है जो श्रमिको की सहायता के लिये अपनी वास्तविक इच्छा से प्रेरित हुए हैं।' यह आशका की जाती है कि आन्दोलन म पेशेवर लोगो की सख्या कम नही हुई है। उनके कायकलापो पर दृष्टि रखनी आवश्यक है तथा उन्हें यहि पृत करने के लिये आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिये।

इस बात का भी खतरा है कि कही श्रमिक सघो पर नियोजको या उनके वेतनिक कमचारियों का आधिपत्य न हो जाय। १९५४-५६ म आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा की कायकारिणी समिति के अध्ययन से विदित हुआ कि कायकारिणी समिति के बहुसख्यक सदस्यो का भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा से

वेतन मिलता था। इन २५ सदस्यो मे से २१ पूर्ण समय या आंशिक समय के लिये सभा के कमचारी थे। चार म से, जिनको वेतन नही मिलता था एक ससद के सदस्य थे तथा तीन वकील जिन्हे श्रमिक सघो के साथ सम्बद्ध होने के कारण अप्रत्यक्ष रूप म अपने विधि व्यवसाय म लाभ होता होगा। इस प्रकार आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा म बाहरी लोगो का आधिपत्य था जो सगठन के कमचारी थे। आगरा के श्रमिक सघ नेतृत्व के अध्ययन से पता चला कि ६ बाहरी शीर्ष नेताओ मे से तीन को सघो से वित्तीय सहायता प्राप्त हो रही थी तथा अन्य तीन अपनी सेवाओ के लिये वयक्तिक सदस्यो स शुल्क ले रहे थे। वस्तुत य स्वस्थ विकास नही हैं। श्रमिक वग से अत्यधिक प्रतिनिधित्व और उनका सशक्त नियन्त्रण होना चाहिये। बाहरी व्यक्तियो का प्रभाव कम होना चाहिये लक्ष्य यह होना चाहिये कि उनका समूल उन्मूलन कर दिया जाय।

प्रारम्भ म बाहरी लोगो की उपस्थिति आवश्यक थी। भूतकाल मे उनकी सहायता की आवश्यकता का अनुभव किया गया था। चूकि उनका काय अवतनिक था इसलिए उन्हे कृतज्ञता की अपेक्षा आलोचनाएँ ही मिली। फिर भी वे अपने काय पर अटल रहे क्योकि उन्हे श्रमिको के कल्याण के लिये काय करना प्रिय था। रॉयल श्रमिक आयोग ने अपने १६३१ के प्रतिवेदन म कहा है कि बिना उनकी सहायता के 'आन्दोलन सभवत अपनी वतमान अवस्था म न पहुँच पाता तथा आने वाले वर्षों म भी उन सभी के लिये जो सहायता करने के लिये उत्सुक हैं सेवा के उपयोगी क्षेत्र की सभावना हो सकती है।' इसी प्रकार के विचार लगभग २५ वष बाद योजना आयोग ने भी द्वितीय पचवर्षीय योजना म दिये हैं। इसे अवश्य स्वीकार करना चाहिये कि देश के श्रमिक सघ आन्दोलन के निर्माण म बाहरी लोगो ने स्मरणीय भूमिका का निर्वाह किया है। उनके सहयोग के बिना आन्दोलन अपने वतमान परिमाण और शक्ति को भी प्राप्त नही कर पाता।

हाल के वर्षो म श्रमिक सघो का प्रबन्ध करने वाले बाहरी लोगो की सख्या म कमी हुई है। उनकी सख्या म कमी की यह प्रवृत्ति उत्साहवधक है। लेकिन साथ ही यह भी स्वीकार करना पडेगा कि वतमान परिस्थितियो म अभी काफी समय तक श्रमिक सघो के साथ बाहरी लोगो की सम्बद्धता को समाप्त नही किया जा सकता है। कुछ समय तक के लिये श्रमिक सघ उनकी सेवाओ को छोड सकने का सामथ्य नही जुटा सकते हैं। श्रमिक सघो के काय बढ रहे हैं और उन्हे उचित रूप से करने के लिये काफी मात्रा म लिपिक और प्रशासकीय श्रम की आवश्यकता होती है। इसकी अधिकाश रूप मे पूर्ति समाजसेवी बाहरी लोगो द्वारा अवतनिक रूप से की जाती है। चूकि सघो की वित्तीय स्थिति खराब है इसलिए वे वतनिक कमचारी नही रख सकते हैं। फलत बाहरी लोगो की सहायता के अभाव म श्रमिक सघो का काय ठप्प हो सकता है। सघो के कोषो का सुरक्षित अभिरक्षण मे रखना चाहिये तथा

अन्य वेतन पाने वाले श्रमिकों द्वारा वित्त के व्यपहरण या अनुचित उपयोग करने के प्रलोभन पर प्रतिबंध लगाया जा सके। भारत में श्रमिक निरक्षर और अशिक्षित हैं। उनमें ज्ञान, शिक्षा और योग्यता का अभाव है जो निपुण और सफल नेता बनने के लिये आवश्यक है। उनमें उस विश्वास का अभाव है जो नियोजकों या उनके प्रतिनिधियों के साथ बराबर के स्तर पर वार्तालाप करने के लिए प्रेरित करता है। बलीकरण का भय भी श्रमिकों के बीच में नेतृत्व के उभरने में बाधक रहा है। श्रमिकों के प्रति अधिकांश नियोजकों की अभिवृत्ति प्रतिशोधात्मक होती है जिससे श्रमिकों को बलीकरण का भय बना रहता है। चूंकि नियोजक संघों को पसन्द नहीं करते हैं इसलिए संघीकरण के मार्ग में जितने रोड़े अटका सकते हैं उनने अटकाने का प्रयत्न करते हैं। सहयोगी नियोजक किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके पीछे नियुक्ति का पुछल्ला लगा हो नियुक्त नहीं करते। बेरोजगारी के इन दिनों में एक वियुक्त कर्मचारी के लिए दूसरी नौकरी पा जाना प्राय असम्भव हो होता है। संघ भी इतने कमजोर होते हैं कि उनकी रक्षा नहीं कर पाते। वैधानिक कार्यवाही इतनी खर्चीली होती है कि उसका आश्रय लेने की श्रमिकों में सामर्थ्य ही नहीं होती। फिर उनके पास कोई बचत भी नहीं होती है जिससे वे बेरोजगारी के समय अपना भरण-पोषण कर सकें और वैधानिक खर्चों को पूरा कर सकें। इसके अलावा श्रमिक श्रम विधानों में निहित अपने स्वत्वाधिकारों के प्रति अनजाने होते हैं। विद्यमान विधान इतने दोषपूर्ण हैं कि वे श्रमिकों की इस सम्बन्ध में कोई रक्षा नहीं कर पाते हैं।

प्रमुख बाहरी लोगों, विशेषकर राजनैतिक नेताओं को संघों के साथ सम्बद्ध होने से प्रबन्धक, श्रमिक जनता और राज्य की दृष्टि में उन्हें सम्मान और प्रतिष्ठा मिलती है। चूंकि नियोजक श्रमिकों को अपने आर्थिक स्तर से घटिया समझते हैं इसलिए वे उनके साथ बराबर का व्यवहार करने के लिए तैयार नहीं होते हैं। परिणामस्वरूप वे बाहरी नेताओं के साथ विचार विमर्श करने के लिये अधिक इच्छुक रहते हैं तथा सौदाकारी में उनके साथ अधिक समझौता क्षमता प्रदर्शित करते हैं। ऐसा तब और भी अधिक होता है जब बाहरी लोग शासक दल से सम्बन्धित होते हैं। श्रमिकों के नेतृत्व के विकास में बलीकरण और नियोजकों की प्रतिरोधी अभिवृत्ति के अलावा अन्य भी अड़चनें हैं। श्रमिकों में संघीय कार्यों के प्रति वास्तविक रुचि होने पर भी उनके पास सक्रिय भाग लेने के लिए समय नहीं रहता। दिन भर काम करने और और घरेलू वस्तुओं के निवाह के बाद वे पूर्णतया शक्तिहीन हो जाते हैं और उनके पास आराम के लिए भी बहुत कम समय रहता है। श्रमिकों को अपने अधिकारों का पूर्ण ज्ञान भी नहीं होता है। वे भाग्यवादी होते हैं तथा हर बात को उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि श्रमिक अशिक्षित हैं तथा उन्हें नेतृत्व, संगठन और प्रशासन में प्रशिक्षण नहीं दिया गया है। इस कमी को पूरा करने के

लिये हमारे संघों ने कुछ भी नहीं किया है। उनमें से कुछ इस उद्देश्य के लिये अनियमित रूप से विचार विमर्श, वाद विवाद, भाषण तथा अध्ययन गोष्ठी का आयोजन करते हैं। चूंकि यह सब आकस्मिक समस्या की अत्यावश्यकता पर योजना आयोग ने भी ध्यान आकर्षित किया है। 'यदि श्रमिकों को इस सम्बन्ध में आत्म निर्भर होना है तो श्रमिक संघ दर्शन और रीति में उनका प्रशिक्षण आवश्यक हो जाता है।' (द्वितीय पंचवर्षीय योजना)। इसी प्रकार के विचार तृतीय पंचवर्षीय योजना में भी व्यक्त किये गये हैं। यह आशा की जाती है कि जैसे जैसे श्रमिक शिक्षा का कार्यक्रम बढ़ेगा वैसे वैसे श्रमिक वर्ग से नेतृत्व का विकास भी त्वरित हो जायगा।

श्रमिक संघों के साथ बाहरी लोगों के साहचर्य पर नियोजकों द्वारा भी आपत्ति उठाई गई है। कभी कभी वे अपने श्रमिकों द्वारा प्रेरित संघ के साथ सद्व्यवहार करने के लिये तैयार हो जाते हैं और बाहरी लोगों को मान्यता तक नहीं देते। उनका विरोध तब और अधिक स्पष्ट हो उठता है जब संघों का नेतृत्व किन्हीं विशेष प्रकार के व्यक्तियों जैसे—उनके द्वारा सेवायुक्त श्रमिक या किन्हीं राजनैतिक दलों के नेता, द्वारा किया जाता है। कुछ राजनीतिज्ञ में जो संघों को राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संघों का प्रयोग करना चाहते हैं वर्तमान कठिनाई हो जाती है। वस्तुतः संघों में बाहरी लोगों को वैधानिक मान्यता देने के कारण उनके साहचर्य पर नियोजकों की आपत्तियां काफी कम हुई हैं। लेकिन वे बाहरी लोगों विशेषकर अपने भूतपूर्व कर्मचारियों, की नियुक्ति को पसन्द नहीं करते हैं यद्यपि अब उन्होंने इस स्थिति से समझौता कर लिया है। जैसे—सेवायुक्त कर्मचारियों के कार्य श्रमिकों के कल्याण और संघों की भलाई की भावना से प्रेरित होने के बजाय उनकी वैयक्तिक शिकायतों से अधिक प्रभावित होते हैं। नियोजक उनके साथ किसी प्रकार का भी व्यवहार नहीं रखना चाहते हैं। तथा यह है कि वे संघ में उन्हें कोई प्रभावशाली स्थिति नहीं प्राप्त करने देना चाहते। उनकी इच्छा बहुत स्वाभाविक और समझने योग्य है। रॉयल श्रमिक आयोग का मत था कि वास्तविक अनुभव में ऐसे व्यक्तियों को उनके संगठन या बहिष्कार करके या उन्हें हटा देने के आग्रह द्वारा दबाने के प्रयत्न सदा सदा ही सफल हुए हैं। इसके विपरीत नियोजकों के विरोध के कारण ऐसे कई व्यक्तियों को स्मरणीय शक्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। किन्तु नियोजक के उद्देश्य चाहे कितने पवित्र क्यों न हों किन्तु जब वह उनके नेताओं को दूर रखकर अपने कर्मचारियों की सुरक्षा के लिये प्रयत्न करता है तो उसकी स्थिति कमजोर हो जाती है। वह नेता जो संघ की भलाई के लिये ईमानदारी से कार्य नहीं करता बहुत समय तक नहीं बना रह सकता जबतक कि उसे अत्याचार द्वारा सहायता न मिलती रहे। संघ की सामान्य बुराइयों को दमन के स्थान पर सहिष्णुता द्वारा कहीं सम्भवतः अधिक आसानी से समाप्त की जा सकती है।

बाहरी लोगों के सम्मिलन पर इस कारण भी आपत्ति उठाई जाती है कि उन्हें श्रमिक मामलों का पूरा ज्ञान नहीं होता है। उन्हें उद्योग की कठिनाइयों की बहुत कम या बिलकुल ही जानकारी नहीं होती है तथा उनका अपूर्ण, अपर्याप्त और कभी कभी गलत ज्ञान भी विवादों के सुलझाने के मार्ग में बाधक होता है। आगरा श्रमिक संघों के ६ सर्वाधिक प्रभावशाली बाहरी लोगों में से किसी ने कभी किसी उद्योग में काम नहीं किया था। आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की १९५८–५९ की कार्यकारिणी समिति के सदस्यों का वितरण उनके औद्योगिक अनुभव के आधार पर नीचे दिया गया है —

सारणी ६८

आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के नेताओं का औद्योगिक अनुभव

	सदस्यों की संख्या	प्रतिशत
बाहरी लोग जिन्हें उद्योग में कभी नियुक्त नहीं किया गया	१८	७२
बाहरी लोग जिन्हें पहले उद्योग में नियुक्त किया गया किन्तु जो अध्ययन के समय नियुक्त नहीं थे	४	१६
उद्योग में नियुक्त श्रमिक	३	१२
	योग २५	१००

इस प्रकार कार्यकारिणी समिति के ८८ प्रतिशत सदस्य बाहरी लोग थे। २२ बाहरी लोगों में से केवल चार को कुछ औद्योगिक अनुभव था क्योंकि वे पहले उद्योग में विभिन्न पदों पर काम कर चुके थे। उनमें से एक पहले आसाम तेल कम्पनी के कर्मचारी थे। उन्होंने उन्हें अपना श्रमिक संघ के प्रति झुकाव के कारण त्यागपत्र दे दिया था। दूसरे सदस्य चाय कम्पनी में कम्पाउण्डर के पद पर काम कर रहे थे। उन्होंने स्वयं नौकरी छोड़ दी और श्रमिक संघ के कार्यों में अधिक समय देने लगे। इन चारों में से एक त्यागपत्र देने से पूर्व चाय बागान में एक उच्च निरीक्षक के पद पर थे। चूंकि सभी सदस्य साक्षर थे, इसलिए वे लिखित रूप में प्रतिनिधित्व कर सकते थे। विभिन्न नेता समाज के भिन्न भिन्न वर्गों से सम्बद्ध थे। अध्यापक, भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा तथा असम राज्य के कर्मचारी, वकील, पादरी, भूतपूर्व सरकारी कर्मचारी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कर्मचारी और राजनीतिक कार्यकर्ता कार्यकारिणी समिति में सम्मिलित थे। तुलनात्मक किसी एक वर्ग में

मवेन्द्रित नही था । किन्तु कार्यकारिणी समिति में श्रमिको का प्रतिनिधित्व बहुत कम था । फलत इस व्यवस्था मे सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व असम्भव हो गया । आसाम म, जहाँ चाय सबसे प्रमुख उद्योग है बागानो के कुलियो को प्रतिनिधित्व नही दिया गया था ।

किन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि नियोजको की आपत्तिया प्राय उनके इस अनुभव और अनुमान पर ही आधारित है कि पूर्णतया श्रमिको द्वारा गठित कार्यकारिणी समिति कमजोर अधीन और विनयशील होगी। अपने "व्यक्तियो" से सद्व्यवहार करने की उनकी इच्छा प्राय एस व्यक्तियो से वार्तालाप करने का प्रयत्न होता है जो दृढ न हो । वे व्यक्ति जिनकी जीविका नियोजक की शुभेच्छा पर निभर करती है, सक्रिय रूप से श्रमिक सघो के काय नही कर सकते हैं । यह भी सभावना रहती है कि कहीं उन्हे हित या लाभ के आश्वासना से जीत न लिया जाय ।

राजनतिक आन्दोलनकारियो के साहचय पर आपत्तिया जो अपने वयक्तिक हितो की पूर्ति के लिये श्रमिको पर नियन्त्रण प्राप्त करते हैं बिलकुल न्यायसगत हैं । उन्हे निकाल देने से सम्पूर्ण श्रमिक वग का लाभ होगा । ऐसा प्राय सुना जाता है कि वे बाहरी लोग राजनीति म ही लगे रहते है वे राजनतिक मान्यताओ को आर्थिक मान्यताओ से पृथक नही करते तथा उनके काय औद्योगिक की अपेक्षा अधिक राजनतिक और सामाजिक होते है ।' श्री ए० आर० बर्नेट हुस्ट ने टिप्पणी की है कि श्रमिको के छोटे छोटे समूह गठित करने का सूत्रपात राजनीतिज्ञो और वकीलो द्वारा किया गया किन्तु जहा यह अवश्यम्भावी था वही शोचनीय भी था कि सामाजिक कायकर्ताओ न इस सम्बध म कोई रुचि नही ली तथा उन्होन इन सस्थाओ का नियन्त्रण और आधिपत्य वकील और राजनीतिज्ञ वग पर ही छोड दिया स्पष्ट रूप से इन सघो की स्थापना श्रमिको के सर्वोत्तम हित मे नही की गई है बल्कि अधिकाशत राजनतिक लक्ष्यो के लिय उनकी शक्ति और आवाज को उपयोग करने की दृष्टि से किया गया '

लेकिन यह टिप्पणी पूर्णतया ठीक नही है । व्यक्तिगत मामलो मे ये आरोप सही हो सकते हैं किन्तु सम्पूर्ण रूप से श्रमिक सघ नेतृत्व की इस प्रकार निन्दा करना उचित नही है । सम्पूर्ण रूप से सघो और नेताओ के विरुद्ध यह आरोप प्रमाणित नही किये जा सकते हैं । जहातक कि विदेशी प्रतिनिधियो ने भी जो हमारे देश मे आये, यह विचार व्यक्त किया कि इन बाहरी लोगो के कार्यो मे श्रमिक आन्दोलन को सबसे अधिक लाभ पहुँचा है । 'यह कहना उचित ही है कि ऐसे अनेक सार्वजनिक हित भावना मे प्रभावित लोग है जो बिना किसी निहित उद्देश्य के अमूल्य सेवाएँ प्रदान करते हैं (सयुक्त वस्त्र कायशाला श्रमिक सगठन द्वारा भेजे नये ब्रिटिश व्यवसाय सघ प्रतिनिधि मडल का प्रतिवेदन) । इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय वस्त्र उद्योग श्रमिक सघान के प्रतिनिधि मडल के अध्यक्ष ने भी कहा है "शिक्षित वर्ग जो स्वयं

श्रमिक नहीं हैं द्वारा प्रवर्तित और प्रशासित जो कुछ भी विकसित किया गया वह बिलकुल स्वतंत्र संगठनों की एक शृंखला थी और जिसके लिये प्राय यह आरोप लगाया जाता है कि संघों के संस्थापकों के कार्यकलापों के मुख्य स्रोत आर्थिक न होकर केवल राजनैतिक हित थे। किन्तु एक बात निश्चित थी कि सिवाय शिक्षित तथा सुसंस्कृत भारतीयों के जो श्रमिक संगठनों के सशक्त विकास में सहायता देने के लिये अपने समय और शक्ति का व्यय कर रहे थे, उन्होंने ऐसा कुछ नहीं देखा जो उन्हें इस प्रकार का कोई विश्वास दिला सके। हमने अपने तर्क के समर्थन में पहले ही रायल श्रमिक आयोग और योजना आयोग के मत उद्धृत किये हैं। क्या कोई महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डा० राजेन्द्रप्रसाद, पंडित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, एन० एम० जोशी, अशोक मेहता, जयप्रकाश नारायण, हरिहरनाथ शास्त्री, भाई देसाई, वी० वी० गिरि, गुलजारीलाल नन्दा जैसे अन्य अनेक नेताओं द्वारा श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास और श्रम के निमित्त की गई अमूल्य सेवाओं का प्रत्याख्यान कर सकता है?

कुछ बाहरी लोगों के राजनैतिक कार्यकलाप अनिवार्य थे। देश स्वतंत्र होने से पहले मुख्य प्रश्न राजनैतिक था। कोई भी समसामयिक आन्दोलन राजनैतिक विकासों से अप्रभावित नहीं रह सकता था। जिन परिस्थितियों में हमारे श्रमिक संघियों को कार्य करना पड़ा उनमें पूर्ण स्वतंत्र श्रमिक संघ आन्दोलन की प्रतिजीविता सर्वथा सन्दिग्ध थी। इसका विकास निश्चित रूप से अवरुद्ध हो गया होता। एक आन्दोलन जो देश के स्वतन्त्रता संग्राम से पृथक होता, वह कितना ही अच्छा और लाभदायक क्यों न होता जनता द्वारा उसकी भर्त्सना ही की गई होती। उदाहरण के लिये, उस समय जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत छोड़ो आन्दोलन का सूत्रपात किया साम्यवादियों ने सक्रिय रूप से युद्ध प्रयत्नों में सरकार को सहयोग दिया फलस्वरूप उनकी इस नीति ने उन्हें जन समूह के बीच पूर्णतया अप्रिय बना दिया। वस्तुतः स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व श्रमिक आन्दोलन को एक गौण भूमिका का निर्वाह करना था। परिस्थितियां १९४७ से बदली हैं। स्वतंत्र भारत में अब श्रमिक आन्दोलन को किसी अन्य आन्दोलन का गौण नहीं होना चाहिये। यदि श्रमिक संघवाद को सफल होना है तो यह आवश्यक है कि वे स्पष्ट रूप से जन साधारण की नीतियों का प्रतिपादन करें। सार्वजनिक हित और न्याय पर आधारित नई सामाजिक व्यवस्था में उभरने के लिये इसे शोषित और दलित लोगों का आन्दोलन होना चाहिये।

फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि अब भी काफी सीमा तक राजनैतिक दल आन्दोलन के नेतृत्व की सहायता करते हैं जिसके परिणामस्वरूप कभी कभी राजनैतिक उद्देश्यों के लिये श्रमिकों का शोषण किया जाता है। सामान्यतः बाहरी लोगों का संयोजन कुछ राजनैतिक दलों से होता है। उनमें से कुछ अपने को तथा दलों को सबल बनाने के उद्देश्य से श्रमिक आन्दोलन में भाग ले

सकते हैं। इसकी अधिक सभावना है कि जब कभी सघ और दल के हितो मे सघर्ष हो तो दल की भलाई के लिये सघ के हित का त्याग कर दिया जाय। श्रमिको की सेवा स्वय म साध्य नही है। यह दल के हितो के प्रवतन के साध्य का केवल साधन मात्र है राजनैतिक नेता श्रमिक सघो म इसलिए प्रवेश करते हैं ताकि व उनके बीच अपने सिद्धान्तो का प्रचार करके स्थानीय निकायो विधान सभाग्रो तथा ससद मे अपने अभ्यर्थियो की विजय हेतु श्रमिक वग के मतो को प्रभावित कर सकें।

आगरा के ६ शोष बाहरी श्रमिक सघ नेताग्रो मे से पाच १९५९ में राजनतिक दलो के सक्रिय सदस्य थ चार बाहरी लोगो ने स्वतत्र होने का दावा किया था। उनमे से दो प्रमुख राजनतिक कायकर्त्ता रहे थे किन्तु अपने वयक्तिक मतभेदो के कारण उन्होने दल छोड दिया था। इस प्रसग मे यह स्मरणीय है कि भारत के बहुत से राजनीतिज्ञ अवसरवादी हैं जिनके राजनतिक सबध उनकी सुविधानुसार टूट जाते हैं या फिर जुड जाते हैं। शेष दो स्वतत्र नेता एक स्वतत्र बाहरी व्यक्ति के कमचारी थे और उन्हे उससे आज्ञा प्राप्त करनी होती थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सभी बाहरी लोगो का सम्बन्ध किसी न किसी रूप मे राजनतिक दलो से था।

आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा की १९५५-५६ की कायकारिणी समिति के सदस्यो के राजनतिक स्वरूप के विश्लेषण से पता चला कि उसके २५ सदस्यो मे से १० सदस्य भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के भी सदस्य थे तथा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष जसे शीष पदो पर आसीन थे। उनम म पाच विधान सभा के सदस्य थे तथा शेष पाँच काग्रेस के सक्रिय कायकर्त्ता थे। केवल एक सदस्य का सम्बन्ध प्रजा समाजवादी दल से था। चूंकि यह विरोधी दल से सम्बन्धित था इस लिए उसका अधिक प्रभाव नही था। १४ स्वतत्र सदस्यो म स १० भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के कमचारी थे, एक विधि सलाहकार था तथा तीन श्रमिक थ। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा पर भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का प्रभुत्व था।

श्रमिक सघ कार्यों और कायकलापो मे सक्रिय रुचि लेने से श्रमिको को हतोत्साहित करने का आरोप भी बाहरी लोगो पर लगाया गया है। यदि यह एक तथ्य है तो वे आन्दोलन को बहुत बडी क्षति पहुँचा रहे हैं। वास्तविक उत्साह श्रमिको मे ही पदा होना चाहिये। सदस्यो को सघीय कायकलापो मे सक्रिय शक्ति बनाने के बजाय उन्हे निष्क्रिय समथक रहने देने की प्रवृत्ति पायी जाती है। नेतृत्व की विशिष्ट कठिनाइयाँ इसके लिये उत्तरदायी है। श्रमिक सघ नेताग्रो के समक्ष जटिल समस्याएँ हैं। उनके सामने केवल दो ही विकल्प हैं प्रथम, अधिकाश काय स्वय करके उच्च काय-कुशलता के लिये प्रयत्न करें तथा दूसरे अपने सदस्यो को उत्तरदायित्व सौंपकर उन्हे गलतियाँ करने का अवसर देते हुए प्रशिक्षित करें। अधिकाश नेता प्रथम विकल्प को ही प्राथमिकता देते हैं। श्रमिक कमजोर हैं तथा नेताओ की सख्या कम

है। वे अनेक संघों से सम्बद्ध होते हैं और उनके पास इतना अधिक कार्य होता है कि वह श्रमिकों को नेतृत्व में प्रशिक्षित करने के लिये समय ही नहीं मिल पाता। इसके अलावा अधिक संघवाद में सदस्यों का प्रशिक्षण बहुत से मामलों में, कम से कम कुछ समय के लिये, संघ की प्रभावशीलता को अपने सदस्यों को सुरक्षित कर पाने की दृष्टि से क्षीण कर देगा जो नेता नहीं चाहते हैं। "आन्दोलन समृद्धिशाली नहीं हो सकता है यदि वह पूर्णतया शीर्ष उद्दीपन पर निर्भर रहे, इसके लिये आन्तरिक सामूहिक इच्छा की आवश्यकता होती है। इसे कई तरह से विकसित किया जा सकता है—आवश्यकता केवल समय और धैर्य की है। प्रयत्न यही करना चाहिये कि अधिक से अधिक सम्भावी सदस्यों को कार्य में हिस्सा दिया जाय। सभाएँ, चाहे वे छोटी ही हों जल्दी जल्दी होनी चाहिये, यदा कदा सामूहिक सभाओं जिनका बहुत कम स्थायी प्रभाव होता है, की अपेक्षा नियमित शाखा सभाएँ अधिक मूल्यवान होती है।" आन्तरिक नेतृत्व के विकास व बाहरी लोगों की भूमिका के प्रश्न पर रॉयल श्रमिक आयोग का यह सुविचारित मत था।

यह विचार स्पष्ट रूप से गलत है कि बाहरी लोग जानबूझकर और सप्रयोजन सदस्यों को अपने संघ के कार्यकलापों में सक्रिय रूप से भाग लेने से रोकते है। इससे इन्कार नहीं किया जा रहा है कि आन्दोलन में कुछ ऐसे व्यक्ति भी हो सकते है जिनका मुख्य उद्देश्य अपना जीवन निर्वाह हो। चूंकि वे श्रमिकों पर अपना नियन्त्रण अनवरत रूप से बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील होते हैं इसलिए श्रमिक वर्ग से नेतृत्व के विकास को पसन्द नहीं करते। किन्तु ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम है। सभी बाहरी लोगों की इन थोड़े से व्यक्तियों के कार्यकलापों के कारण भर्त्सना करना स्पष्टतया अनुचित है। फिर हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि एक श्रमिक को जो श्रमिक संघ कार्यकलापों में भाग लेना चाहता है अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और जिन्हें आसानी से दूर नहीं किया जा सकता है।

परिस्थितियाँ बदल गई है लेकिन अब भी यह अनुभव किया जाता है कि श्रमिक आन्दोलन से बाहरी लोगों को पूर्णतया बहिष्कृत कर देने का उचित अवसर नहीं आया है। श्रमिकों और संघों के हितों के लिये उनका सम्बन्ध सहायक है और उसके श्रमिक वर्गों को कुछ सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। नियोजकों के सम्मुख बाहरी लोग बिना वशीकरण के भय के निडर होकर श्रमिकों के मामले का प्रतिनिधित्व कर सकते है। चूंकि उनमें से कुछ की बहुत से संघों में प्रभावशाली स्थिति होती है इसलिए वे विभिन्न संघों की क्रियाओं और नीतियों में अधिक अच्छा सामञ्जस्य स्थापित कर सकते है तथा संयुक्त मोर्चा बना सकते हैं। वे नियोजकों की शक्ति से घबड़ाते नहीं हैं क्योंकि वे उन पर निर्भर नहीं होते। उनमें से बहुत राजनैतिक दलों से सम्बद्ध होते हैं तथा सार्वजनिक जीवन में उनका सम्मान और प्रतिष्ठा होती है। वे वार्ता सम्पादन तथा प्रभावशीलता की कला में दक्ष होते हैं। इन्हें संगठन और सभाएँ

संगठित और प्रवर्धित करने का अनुभव होता है। बाहरी लोग यदि शासक दल से सम्बंधित हुए तो, सरकारी कार्यालयों में शीघ्र ही मामलों का निपटारा भी करवा सकते हैं। यहाँ तक कि श्रमिक नेता भी यह स्वीकार करते हैं कि बाहरी लोग उपयोगी सेवाएँ कर रहे हैं तथा उनके सबंध आन्दोलन के लिये हितकारी रहे हैं।

बाहरी नेतृत्व का प्रश्न फिर से विशेषकर सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल के बाद, महत्त्वपूर्ण हो गया है। अपने कर्मचारियों के संगठनों में सभी बाहरी लोगों को बहिष्कृत कर देने की सरकार की आयोजना थी। चूँकि यह नकारात्मक उपाय है इसलिए इससे स्थिति के अधिक सुधरने की संभावना नहीं है। इस संबंध में भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया था

केवल बाहरी लोगों के उन्मूलन से ही किसी नियोजक को औद्योगिक शांति स्थापित करने में सहायता नहीं मिलेगी। सर्वप्रथम कर्मचारियों को अपने हितैषी चुनने का अधिकार है। उन्हें नियोजक के आदेशानुसार विधान द्वारा अपने हितैषियों को चुनने से नहीं रोका जा सकता है। इसके अलावा संगठन की स्वतंत्रता पर अनुचित नियंत्रण के रूप में इसे समझा जा सकता है। फिर अभी वह समय भी नहीं आया है जब बाहरी लोगों को श्रमिक संघ आन्दोलन से अलग किया जा सके

सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारी अपने अधिकारियों के साथ समानता के स्तर पर अपने मामलों पर बात करने में भी समर्थ नहीं हैं और इसलिए वे उन श्रमिकों के लिये, जिनका प्रतिनिधित्व करते हैं न्याय दिला पाने में समर्थ नहीं होंगे विधान द्वारा बाहरी लोगों का उन्मूलन उन्हें उन्मूलित नहीं कर पायेगा।[1]

आन्तरिक नेतृत्व के अविर्भाव का प्रश्न आंशिक रूप से श्रमिक संघ रीतियों और प्रजातंत्रीय क्रियाओं में पर्याप्त प्रशिक्षण है तथा अंशतः नियोजकों की अभिवृत्ति में परिवर्तन है ताकि वे सामूहिक सौदाकारी और अन्य श्रमिक संघ कार्यकलापों में श्रमिकों के प्रत्यक्ष भाग लेने को इच्छित रूप में स्वीकार सकें। यह सब साधारण श्रमिकों के आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक स्तर के उन्नयन की बड़ी समस्या और श्रमिक संघों के दिन प्रतिदिन के कार्यों में उनका सहयोग प्राप्त करने से भी सम्बद्ध है।

वस्तुतः एक प्रभावशाली श्रमिक नेता को न केवल श्रम और उद्योग की समस्याओं से परिचित होना चाहिये बल्कि उन व्यक्तियों को भी जानना चाहिये जिनका वह नेतृत्व करता है। उसे उनके नज आशाओं मह वाकाक्षाओं कमजोरियों शक्तियों सीमाओं अभिवृत्तियों व्यवहारों और मूल्यों से पूर्णतया भिज्ञ होना चाहिये। उसे उनकी व्यावहारिक समस्याओं और उनके आर्थिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य को समझना चाहिये। नेताओं को श्रमिकों के स्थान पर अपने को रखकर

---

1 भारतीय राष्ट्रीय व्यवसाय संघ सभा १२ वाँ अधिवेशन पृ० १६१

उनकी समस्याओं को उनके ही दृष्टिकोण से देखना चाहिये। उसमें उनकी प्रति
क्रियाओं का आकलन करने तथा उन्हें सम्मान देने की क्षमता होनी चाहिये। सब
साधारण श्रमिकों पर योजनाएँ और नीतियाँ आरोपित नहीं की जानी चाहिये।
बल्कि उनके सहयोग से उन्हें प्रवर्तित और प्रतिपादित करना चाहिये। दलीय और
वर्गीय जातियों को एक ओर रखकर मामलों पर निष्पक्ष रूप से विचार करना चाहिये।
इन नेताओं को अपने अनुयायियों पर अनुशासन बनाये रखने की क्षमता होनी चाहिये और
जब उसे मालूम हो कि उन्होंने गलती की है तो उसे उनकी भर्त्सना करनी चाहिये।
एक सबसे बड़ी कठिनाई, जिसका सामना श्रमिक नेताओं को करना पड़ता है यहाँ
विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रायः के लिये उनके चुनाव के बाद नेताओं को अपनी
कुछ उलझन छोड़नी पड़ सकती हैं और गंभीर तथा उत्तरदायी रूप से व्यवहार करना
पड़ सकता है। उनके सहवर्ती श्रमिक उनसे बहुत कुछ आशा करते हैं। उनकी
उद्विग्नता की दशा से वे गलत अर्थ निकाल सकते हैं कि उनकी तेजी में कमी आ गई
है तथा वे अपने को बड़ा समझने लगे हैं और यहाँ तक कि उनके प्रबंध से मिल जाने
की संभावना पर वे उनकी भर्त्सना भी कर सकते हैं।

बाहरी लोगों की उपस्थिति एक ऐसा विषय है जिस पर श्रमिक संघवाद के
प्रारम्भ होने से ही वाद विवाद और विचार विमर्श होता रहा है। सरकार बाहरी
लोगों की उपस्थिति की अनिवार्यता को समझती थी और इसीलिए व्यवसाय संघ
अधिनियम १९२६ में व्यवस्था की गई कि कार्यकारिणी समिति के आधे सदस्य
बाहरी हो सकते हैं। जब रायल श्रमिक आयोग का मत था कि बाहरी लोगों की
संख्या एक तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिये ताकि श्रमिक संघों के क्रियाकरण में
श्रमिक अधिक रुचि ले सकें। बम्बई वस्त्र उद्योग जाँच समिति ने २० प्रतिशत की
वर्तमान सीमा को ही उचित समझा और किसी परिवर्तन का सुझाव नहीं दिया।
किन्तु व्यवसाय संघ विधेयक १९५० में आमूल परिवर्तन की प्रस्तावना की गई।
इसमें पूर्ण या आंशिक सरकारी कर्मचारियों के श्रमिक संघों की कार्यकारिणी समि
तियों में बाहरी लोगों के सदस्य होने पर रोक लगायी गई थी। अन्य संघों के विषय
में विधेयक में व्यवस्था की गई थी कि उनकी कार्यकारिणी समितियों में बाहरी लोगों
की संख्या चार या कुल संख्या की एक चौथाई जो भी कम हो, होगी। श्रमिक संघ
और श्रम संबंध विधेयकों में बाहरी लोगों और श्रमिक नेताओं को अधिक उत्तरदायी
बनाने के लिए भी धाराएँ निहित की गई थीं। यदि अनुचित कार्यवाहियों के लिए
श्रमिक न्यायालय की आज्ञा से किसी संघ की मान्यता रद्द करनी जाय तो संघ के
बाहरी पदाधिकारी तीन वर्ष के लिए पद भार संभालने में अयोग्य हो जाते थे।
यदि निर्णय को अस्वीकार करने और न पालन करने तथा अवैधानिक हड़ताल में
भाग लेने पर उन्हें दण्डित किया जा सकता था और जेल भेजा जा सकता था।
इसी प्रकार के अपराधों के लिये अपनी मजदूरी तथा वेतन की एक तिहाई के बरा

दन बोनस से भी हाथ धो सकते थे। अवधानिक हड़ताल के लिये धन देने वाले व्यक्तियों को श्रम सबंध विधेयक के अन्तर्गत ६ महीने की कद और जुर्माने से दण्डित किया जा सकता था।

वस्तुत इस समस्या के प्रति अधिक सकारात्मक नीति अपनानी चाहिये। हम श्रमिक आन्दोलन पर बाहरी लोगों के प्रभाव को केवल विधान अधिनियमित करके समाप्त नहीं कर सकते हैं। बाहरी लोगों की संख्या कम हो सकती है। किन्तु श्रमिक नेताओं की अपेक्षा उनमें अधिक शक्ति और प्रभाव होता है। वे मुख्य पदों पर होते हैं। वे नीतियों का प्रतिपादन वित्तों का नियन्त्रण तथा उनके दिन प्रतिदिन के कार्यों का निरीक्षण करते हैं। इसके अलावा वर्तमान समय में बाहरी नेतृत्व व्यक्तियों के छोटे समूह में ही सकेन्द्रित होता है। १९५८ में आगरा के श्रमिक संघ नेतृत्व के एक अध्ययन से पता चला कि आगरा में श्रमिक आन्दोलन का मुख्य नेतृत्व दस व्यक्तियों के हाथ में था। उनमें से सात बाहरी लोग थे। श्रमिक संघ क्षेत्र से उनका बहिष्करण आगरा के संघों को पूर्णतया पंगु बना देता। उन्होंने ५९ संघों की स्थापना की थी और इस प्रकार प्रति व्यक्ति आठ संघों से अधिक की माध्य संख्या आती है। कार्यकारिणी समिति की सदस्यता को मिलाकर ९ बाहरी लोग ६७ पदों का तथा कार्यकारिणी समिति की सदस्यता को छोड़कर ५८ पदों का कार्यभार सभाल रहे थे। उनके द्वारा सभाले गये पद भारों के विश्लेषण से आगरा श्रमिक संघ आन्दोलन पर उनके नियन्त्रण का अधिक स्पष्ट पता चलता जिसे निम्नलिखित सारणी द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

सारणी ६९

आगरा संघों में बाहरी लोगों द्वारा सभाले गए पद

सभाले गए पद	बाहरी लोगों की संख्या	संघों की संख्या जिनमें यह पद सभाले गए
अध्यक्ष	७	२७
उपाध्यक्ष	४	६
सचिव	४	११
संयुक्त सचिव	३	९
कोषाध्यक्ष	२	२
निष्पादक समिति सदस्यता	५	९

नेतृत्व साधारणतया कुछ ही लोगों के हाथ में केन्द्रित होता है। १९५५–५९

मे आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि कार्यकारिणी समिति के २५ सदस्यो म स ९ सदस्य १९४७ से उसके सदस्य चले आ रहे थे। व सभी राजनतिक नता थे जिन्होने सगठन के जन्म से ही उसके विकास के लिये सरक्षण दिया प्रयत्न किये और देखभाल की। आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा पर कुछ ही व्यक्तियो के प्रभुत्व का पता निम्नलिखित सारणी से चलेगा।

सारणी ७०

आसाम भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा की सदस्यता की अवधि

कार्यकारिणी समिति की सदस्यता का समय-से	सदस्यो की सख्या
१९४७	९
१९४८	४
१९५०	३
१९५१	१
१९५३	१
१९५५	७
योग	२५

यह भी सभव है कि बिना किसी पद का वास्तविक भार सभाले बाहरी लोग श्रमिक सघ की नीतियो पर नियत्रण रखें। वे पृष्ठ भूमि मे रहकर भी श्रमिक सघो को प्रभावित कर सकते हैं। वस्तुत यदि व पद भार नही सभालत या सघ के साथ प्रत्यक्ष सबध नही रखत तो उनक और अधिक अनुत्तरदायी हो जाने की सभावना है इसे सभी स्वीकार करते हैं कि श्रमिक-वग म स नतृत्व का विकास होना चाहिये और बाहरी लोगो की सख्या धीरे धीर कम कर देनी चाहिये। यह भी सच है कि बाहरी लोग श्रमिक सघो का उपयोग अपनी राजनतिक शक्ति बढान मे कर सकते है। किन्तु बाहरी नेतृत्व की समस्या को केवल कायकारिणी समितिया म उनकी शक्ति पर वधानिक नियत्रण आरोपित करके या उन्हे एकदम बहिष्कृत करके या श्रम सबध विधेयक म निहित जसी कि ही दाण्डिक व्यवस्थाओ को लागू करके नही सुलझाया जा सकता है।

वस्तुत समस्या की जड बहुत गहरी हैं। बाहरी लोग अब भी श्रमिक सघो को निर्देशित और प्रभावित कर रहे हैं क्योकि हमारे श्रमिक श्रमिक सघ आन्दोलन

की बागडोर सभालने मे समर्थ नही हैं। वे कितना अयोग्यताओ, कठिनाइयो पगुताओ और सीमाओ से पीडित है जिन्हे दूर करने की आवश्यकता है। जबतक उनकी अवस्थिति है बाहरी नेतृत्व समाप्त नहीं किया जा सकता। श्रमिको म शिक्षा के प्रसार तथा श्रमिक नेतृत्व म उन्हे प्रशिक्षण प्रदान कर समस्या को सुलझाया जा सकता है। श्रमिक सघ के कार्यों के लिये बलीकरण का भय अवश्यमेव दूर करना चाहिये। वैधानिक सरक्षण के अतिरिक्त इसके लिये नियोजको की अभिवृत्ति म भी परिवतन की आवश्यकता है। सबसे अधिक श्रमिक वग पर हमारा विश्वास होना चाहिये। विभिन्न प्रकार के नेताओ के बीच विभेद करने तथा अवाछनीय लोगो की अवहेलना करने म वे समर्थ होते है। १९३० मे बम्बई गिरनी कामगर सघ की गलत आम हडताल घोषित करने तथा गलत नीतियो के कारण सदस्यता एकदम कम हो गई। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक सगठन के विरुद्ध सस्पर्धी सघो की स्थापना के लिये किये गये अनेक प्रयत्न पूर्णतया विफल हो गये। इस तरह के बहुत से उदाहरण हैं। बाहरी लोगो का साहचर्य वस्तुत अमिश्रित बुराई नही है। जबतक वह समय नही आ जाता कि श्रमिको मे से ही नेतृत्व का उद्भव हो, बाहरी लोगो की उपस्थिति एक आवश्यक बुराई होगी जिसके साथ सामजस्य बिठाना ही होगा।

२७

व्यवसाय संघ विधान

प्रजातान्त्रिक समाज का एक प्रमुख लक्षण है किसी भी विधिसंगत उद्देश्य के लिये संगठन की स्वतन्त्रता/सार्वभौमिक रूप से संगठन बनाने के अधिकार को मान्यता दी जानी चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने १९४७ में "संगठन की स्वतन्त्रता तथा संगठन और सामूहिक सौदाकारी के अधिकार के संरक्षण" पर एक प्रस्ताव पारित किया था। तत्पश्चात १९४८ में संगठन की स्वतन्त्रता तथा संगठन बनाने के अधिकार को संरक्षण देने के लिये अनुबन्ध (Convention) अपनाया गया। इस अनुबन्ध के अन्तर्गत श्रमिकों और नियोजकों को संगठन की स्वतन्त्रता प्रदान की गई जो अपनी इच्छानुसार किसी भी संगठन में सम्मिलित हो सकते थे। इस अधिकार को सीमित करने या इसके विधिसंगत प्रयोग पर अड़चन डालने के लिये किसी भी सार्वजनिक अधिकारी को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। इसमें यह भी व्यवस्था है कि श्रमिक और नियोजक संगठनों का प्रशासकीय अधिकारी द्वारा निलम्बन या विघटन नहीं किया जा सकता है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संघों और प्रसंघों में सम्मिलित होने का भी अधिकार प्रदान किया गया है। 'संगठन और सामूहिक सौदाकारी अधिकार के सिद्धान्तों की प्रयुक्ति" के सम्बन्ध में १९४९ के अनुबन्ध में व्यवस्था की गई है कि श्रमिकों को उनके सेवायोजन के सम्बन्ध में संघ विरोधी भेदभाव के कार्यों के विरुद्ध पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिये। ऐसी सुरक्षा विशेषकर उन कार्यों के विरुद्ध जो (अ) सेवायोजन के अधीन श्रमिकों के लिये यह पूर्व शर्त रखें कि वे किसी विशेष संघ में सम्मिलित नहीं होंगे या श्रमिक संघ की सदस्यता से स्वत्व त्याग की घोषणा करेंगे और (ब) किसी श्रमिक के कार्य के घंटों के अलावा या नियोजक की सम्मति से कार्य के समय संघ के कार्यकलापों में भाग लेने या संघ की सदस्यता के कारण उसकी सेवा मुक्ति के लिये उत्तरदायी हों या उसके हितों को अन्यथा प्रतिकूल रूप से प्रभावित करें, दी जायगी। श्रमिक और नियोजक संगठनों को समुचित सुरक्षा प्रदान करनी चाहिये ताकि वे एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न कर सकें। हस्तक्षेप के कार्य वे कार्य होते हैं जिनका अभिप्राय नियोजकों के नियन्त्रण में श्रमिकों या श्रमिकों के नियन्त्रण में नियोजकों के संगठनों की स्थापना के लिये प्रयत्न करना अथवा वित्तीय या अन्य साधनों द्वारा श्रमिक संगठनों या नियोजक

संगठनों को नियोजकों या श्रमिकों के आधिपत्य में आने के लिये सहायता करता होता है।

स्वतंत्र संगठन के अधिकार की यह मूल कल्पना है कि व्यक्ति किसी संगठन में, यदि वे चाहें सम्मिलित न होने के लिये स्वतंत्र हैं अथवा भविष्य में किसी समय वे उसे छोड़ सकते हैं। इसकी यह भी मूल कल्पना है कि व्यक्तियों को प्रवर्तमान संगठनों के साथ साथ नये संगठन बनाने का अधिकार है तथा सस्पर्धी संगठन बनाने के ध्येय से वे किसी संगठन को छोड़ भी सकते हैं। किन्तु व्यवहार में सामाजिक दबाव या अन्य सीमाओं के कारण व्यक्तियों के लिये ऐसा करना शायद सम्भव न हो।

प्रत्येक राज्य के नागरिकों को विधान द्वारा संगठन की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है किन्तु विधिक अनुमोदन ही इस स्वतन्त्रता को यथार्थ और प्रभावपूर्ण नहीं बनाता। व्यक्तियों विशेषकर श्रमिकों के लिए सामाजिक और आर्थिक दबाव जिनके सम्मुख उन्हें रहना उनके लिये साधारणतया सुनिश्चित होता है वस्तुत घातक सिद्ध हो सकते हैं। श्रमिकों द्वारा हस्ताक्षरित पोषित संघ (Yellow dog) संविदा में वधित स्वतन्त्रता व्यावहारिक रूप से छीनी जा सकती है। इस अधिकार को प्रभावशाली ढंग से लागू करने तथा संगठन की स्वतन्त्रता को सीमित करने वाले नियोजकों और श्रमिक संघ के कार्यों को रोकने के लिये राज्य को सदैव प्रयत्न करना चाहिये। कुछ नियोजक और श्रमिक संघों की क्रियाएं इस अधिकार का अतिक्रमण करती है। व्यक्तियों को घूस देना, श्रमिक नेताओं को श्रमिकों से उनके घरों पर मिलने की अनुमति न देना तथा नियोजकों द्वारा श्रमिक संघ श्रमिकों का बहिष्करण करना आदि कुछ ऐसे तरीके हैं जिनके द्वारा इस स्वतन्त्रता का उल्लंघन किया जाता है। इसी प्रकार व्यक्तिगत श्रमिकों को किसी विशेष संघ में सम्मिलित होने के लिए बाध्य करने से स्वतंत्र संगठन के अधिकार का हनन होता है।

भारतीय संविधान में भी सभी नागरिकों के लिये इन मूलभूत अधिकारों की व्यवस्था की गई है। विधि के सामने सभी नागरिक बराबर हैं तथा सार्वजनिक सेवायोजन में उन्हें समान अवसर उपलब्ध है। संविधान में धर्म वंश जाति लिंग और जन्म स्थान के आधार पर विभेद करना वर्जित है। सभी नागरिकों को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता शान्तिपूर्ण ढंग से एकत्र होने की स्वतन्त्रता तथा संघ और संगठन बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। निश्चित रूप से ब्रिटिश शासन की अपेक्षा स्वतंत्र भारत में श्रमिक संघों के विकास के लिये अधिक अनुकूल परिस्थितियां है। श्रमिक संघों और उनकी सदस्यता की बढ़ती हुई संख्या से यह स्पष्ट है कि व्यक्तियों द्वारा इन अधिकारों का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है।

हमारे देश में श्रमिक संघ विकास के प्रारम्भिक काल में ही श्रमिक संघ विधान की आवश्यकता हो गई थी। आधुनिक श्रमिक संघवाद का उद्भव १९१८

में हुआ जब मद्रास श्रमिक संघ की स्थापना की गई। इस संघ के पीछे श्री बी० पी० वाडिया की शक्ति थी। १९२० में बकिंघम मिल ने श्री बी० पी० वाडिया के विरुद्ध श्रमिकों को हड़ताल करने के लिये उकसाने के कारण ७५,००० रुपये के हर्जाने का दावा करते हुए मुकदमा दायर किया। कम्पनी ने निषेधाज्ञा जारी करने के लिये भी प्रार्थना की जिसे न्यायालय ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। हर्जाना भुगतान करने का प्रश्न इसलिए नहीं पैदा हुआ क्योंकि न्यायालय के बाहर मामला तय कर लिया गया था किन्तु श्री वाडिया ने मद्रास श्रमिक संगठन से अपने को अलग कर लिया।

न्यायालय के निर्णय पर भारत और इंग्लैंड के श्रमिक संघियों को बहुत आश्चर्य हुआ। ब्रिटिश श्रमिक संघ सभा का एक शिष्ट मण्डल १९२१ में उस समय के भारत के लिये राज्य सचिव से मिला। उसने भारत में श्रमिक संघ विधान की आवश्यकता से सचिव को अवगत करने का प्रयत्न किया। राज्य के सचिव ने श्रमिक संघ विधान की आवश्यकता को स्वीकार किया और आश्वासन दिया कि इस सबंध में शीघ्र कार्यवाही की जायगी। १९२१ में श्री एन० एम० जोशी ने सपरिषद् महा शासक (Governor General in Council) से अभिस्तावना करते हुए धारा सभा में एक प्रस्ताव रखा कि श्रमिक संघों के पंजीकरण तथा श्रमिक संघियों और श्रमिक संघ अधिकारियों का प्रमाणिक श्रमिक संघ कार्यकलापों के लिये दीवानी और फौजदारी दायित्वों से सुरक्षा प्रदान करने हेतु भारतीय विधान मण्डल में शीघ्रातिशीघ्र आवश्यक विधान प्रस्तुत करने के लिये उन्हें आवश्यक कदम उठाने चाहिये।' भारत सरकार ने इस विषय पर कुछ संशोधित रूप में एक प्रस्ताव स्वीकार किया।

व्यवसाय संघ अधिनियम १९२६

१९२१ के इस प्रस्ताव के बावजूद व्यवसाय संघ अधिनियम १९२६ में ही पारित किया गया। भारत सरकार ने राज्य सरकारों की सलाह लेने के बाद व्यवसाय संघ विधेयक तयार किया तथा अगस्त १९२५ में विचारार्थ इसे धारा सभा के सम्मुख उपस्थित किया। व्यवसाय संघ अधिनियम १ जून १९२७ से लागू किया गया। जम्मू और काश्मीर राज्य को छोड़कर यह पूरे भारत पर लागू होता है। भारत में व्यवसाय संघ अधिनियम की आवश्यकता के बारे में विभिन्न मत थे। रॉयल श्रमिक आयोग का मत था कि व्यवसाय संघ अधिनियम काफी समय बाद पारित किया गया और यदि श्रमिक संघवाद को पहले ही वैधानिक मान्यता मिल गई होती तो इसका विकास अधिक गति से हुआ होता। अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत व्यवसाय संघों को कुछ अधिकार और दायित्व व्यवसाय संघ अधिनियम द्वारा सौंपे गये हैं। इस अधिनियम के बाद से श्रमिक संघवाद में विकास होता रहा है। इस पक्ष पर टिप्पणी करते हुए रॉयल श्रमिक आयोग ने कहा है कि 'अधिनियम द्वारा श्रमिक संघवाद को दिया गया उद्दीपन इसमें सन्निहित किन्हीं अधिकारों और दायित्वों से

उतना अधिक नहीं हुआ जितना परिनिर्णय पुस्तिका में व्यवसाय संघों की मान्यता से मिली उच्च प्रतिष्ठा के परिणामस्वरूप हुआ। १९२८ में रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकरण मना कर दिये जाने या पंजीकरण प्रमाणपत्र रद्द कर देने के विरुद्ध अपील करने की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिये अधिनियम में संशोधन किया गया। केन्द्रीय व्यवसाय संघों अर्थात् वे संघ जिनके कार्यकलाप एक प्रान्त तक सीमित नहीं हैं के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को अधिकार देने के लिये भारत सरकार (विधि अनुकूलन) आदेश १९३७ में पारित किया गया। अधिनियम की व्यवस्थाओं को लागू करने के लिये केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय व्यवसाय संघ विनियमन १९३८ को प्रख्यापित किया। अधिनियम को १९४२ में पुनः संशोधित किया गया किन्तु कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किये गये। १९४७ में भारतीय व्यवसाय संघ (संशोधन) अधिनियम द्वारा व्यवसाय संघ विधान में काफी परिवर्तन हुए। इसने (क) श्रमिक संघों की अनिवार्य मान्यता जो किन्हीं दी हुई शर्तों को पूरा करें तथा (ख) मान्य श्रमिक संघों और नियोजकों द्वारा अनुचित कार्यवाही के लिये दण्ड की व्यवस्था की। अधिनियम के क्रियान्वयन में किन्हीं कठिनाइयों को दूर करने और श्रमिक संघ सदस्यों के लिये न्यूनतम चन्दा निर्धारित करने हेतु इसे फिर १९६० में संशोधित किया गया।

व्यवसाय संघों की परिभाषा

अधिनियम में व्यवसाय संघ की परिभाषा इस प्रकार दी गई है— स्थायी या अस्थायी कोई संयोजन जिसे मूल रूप से कर्मचारियों और नियोजकों या कर्मचारियों और कर्मचारियों या नियोजकों और नियोजकों के बीच सम्बन्धों के नियमित करने या किसी व्यापार अथवा व्यवसाय के संचालन में निबन्धक शर्तों को आरोपित करने के उद्देश्य से गठित किया गया हो और जो दो या अधिक व्यवसाय संघों के किसी संघान को भी सम्मिलित करता हो। कर्मचारी शब्द के अन्तर्गत व्यवसाय या उद्योग में नियुक्त सभी व्यक्ति आ जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह उस नियोजक की नौकरी में होना चाहिये जिसके साथ व्यावसायिक विवाद उठ खड़ा हो। कर्मचारी शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थों में किया जा सकता है क्योंकि मुख्यतया लिपिक या शारीरिक श्रम करने वाले कर्मचारियों को ही इसके अन्तर्गत सम्मिलित करके इसे सीमित नहीं किया गया है। व्यक्ति का किसी व्यवसाय या उद्योग में अवश्य नियुक्त होना चाहिये। व्यवसाय संघ अधिनियम में पर्यवेक्षीय और अपर्यवेक्षीय पदों को सम्भालने वाले व्यक्तियों या अधिकारीय और लिपिक स्थितियों के बीच कोई विभेद नहीं किया गया है। 'नियोजक शब्द' की व्याख्या व्यवसाय संघ अधिनियम में नहीं की गई है।

ग्रेट ब्रिटेन के विधान पर यह अधिनियम आधारित है तथा नियोजक संगठनों के पंजीकरण की भी इसके अन्तर्गत व्यवस्था की गई है। भारतीय जूट मिल मालिक

संगठन जैसे ट्रेड यूनियन्स नियोजक संगठनों और संघों ने व्यवसाय संघ अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकरण कराया है।

साधारणतया व्यवसाय संघ शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थों में किया जाता है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए व्यवसाय संघ कर्मचारियों का एक संगठन है जिनका नियोजकों द्वारा अपने लाभ और हित के लिए शोषण किया जाता है। व्यवसाय संघ एक संगठन समझे जाते हैं जिनके माध्यम से श्रमिक सामूहिक क्रिया द्वारा अपने हितों की रक्षा करते हैं। श्रमिक संघ का अर्थ कदापि ऐसे संगठन से नहीं होता जो श्रमिकों के विरुद्ध नियोजकों के हितों की रक्षा करता हो। वस्तुतः नियोजकों को अपने हितों की रक्षा के लिए यदा-कदा ही राज्य की सहायता की आवश्यकता होती है। क्योंकि स्वयं में अकेले भी अपने हितों की रक्षा हेतु उनके पास पर्याप्त शक्ति होती है। किसी परिस्थिति या सम्माननीयता के बिना भी नियोजक सामूहिक क्रिया का आश्रय ले सकते हैं। इसलिए श्रमिक संगठनों के साथ नियोजक संगठनों को सम्बद्ध करना पूर्णतया भ्रामक है और इससे श्रमिक संघवाद के प्रति एक गलत दृष्टिकोण बन जाता है। श्रमिक संघ आन्दोलन समाज के शोषित और पतित वर्गों को उनका अधिकार दिलाने और वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रतीक है। श्रमिक संगठनों के उद्देश्य नियोजक संगठनों के उद्देश्यों से बिल्कुल भिन्न होते हैं अतः दोनों को एक ही वर्ग में नहीं रखा जाना चाहिए। यदि उन्हें एक साथ वर्गीकृत किया जाता है तो व्यवसाय संघ विचार की स्थिति भ्रामक और विकृत हो जाती है।

व्यवसाय संघ के उद्देश्य

अधिनियम में व्यवसाय संघ के मूल उद्देश्यों को भी स्पष्ट किया गया है। इनको कर्मचारियों और कर्मचारियों या कर्मचारियों और नियोजकों या नियोजकों और नियोजकों के बीच सम्बन्धों को नियमित अथवा किसी व्यापार या व्यवसाय के संचालन पर निबन्ध करने के रूप में व्याख्या की गई है। किन्तु व्यवसाय संघ अधिनियम में मूल शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि व्यवसाय संघों के अन्य गौण उद्देश्य भी हो सकते हैं। वस्तुतः पंजीकृत व्यवसाय संघों के उद्देश्यों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है किन्तु उनके द्वारा निश्चित व्यवसाय संघ उद्देश्यों के लिए ही व्यय करना चाहिए।

एक श्रमिक संघ के उद्देश्यों को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम जिसकी व्याख्या मुख्यतया आर्थिक उद्देश्यों के रूप में की जा सकती है। अर्थात् वे जिनका सम्बन्ध मजदूरी, काम के घंटे, जीवन और कार्य की अवस्थाओं के सुधार से है। दूसरे वर्ग में सहयोगात्मक उद्देश्य आते हैं जिसमें आपसी सहकारिता एवं विभिन्न हितलाभों का वितरण सम्मिलित है। सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्य तीसरे वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। साधारणतया इन तीनों प्रकार के उद्देश्यों को श्रमिक

सघ सविधान म समाविष्ट किया जाना है। अधिनियम प्रवग, अर्थात् उद्देश्यो, को सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करता है किन्तु श्रमिक सघो के अन्य उद्देश्यो की उसमे अव हेलना नही की गई है।

पजीकरण

अधिनियम के अन्तगत श्रमिक सघो के पजीकरण की व्यवस्था है। अधि नियम अनुनेय है तथा श्रमिक सघो के पजीकरण से सम्बद्ध व्यवस्था ऐच्छिक है। अपजीकृत श्रमिक सघो की वधिक स्थिति अप्रभावित रहती है। कोई सात या अधिक व्यक्ति श्रमिक सघ के रूप म अपने सगठन के पजीकरण के लिये प्रार्थना पत्र दे सकते हैं बशर्ते कि उनके नियमो म निम्नलिखित बात समाविष्ट और निहित हो (१) श्रमिक सघ का नाम (२) सम्पूर्ण उद्देश्य जिनके लिय इसकी स्थापना की गई हो (३) सम्पूर्ण उद्देश्य जिनके लिये श्रमिक सघ के सामान्य कोष का उपयोग किया जा सकता है और जो अधिनियम के अन्तगत अनुनेय हों (४) सदस्यो की सूची को धारण और श्रमिक सघ सदस्या तथा अधिकारियो द्वारा उस सूची के निरीक्षण के लिय पर्याप्त सुविधाएँ (५) सामान्य और मानदेय अथवा अस्थायी सदस्यो का प्रवश, (६) व शर्तें जिनके अन्तगत कोई सदस्य नियमो द्वारा सुनिश्चित किन्ही हितलाभो के लिय अधिकारी हो जायगा और जिनके अन्तगत सदस्यो पर कोई जुर्माना या दण्डदान आरोपित किया जा सकता है (७) वह प्रणाली जिसके द्वारा नियमो को सशोधित परिवर्तित या प्रतिसहारित किया जायगा (८) वह प्रणाली जिसके द्वारा कार्यकारणी सदस्यो और व्यवसाय के अन्य अधि कारियो को नियुक्त या विमुक्त किया जायगा (९) श्रमिक सघ के कोषो का सुर क्षित अभिरक्षण उनके लेखा का वार्षिक परीक्षण तथा श्रमिक सघ के सदस्यो और अधिकारियो द्वारा लेखा पुस्तिकाओ के निरीक्षण की पर्याप्त सुविधाएँ और (१०) वह प्रणाली जिसके द्वारा श्रमिक सघ को विघटित किया जा सकता हो। अधिनियम के १९६० के सशोधनानुसार नियमो को सदस्यो द्वारा दिये जाने वाले चदे को भी विहित करना चाहिये जो प्रतिमास प्रतिसदस्य २५ पसे से कम नही होना चाहिये।

रजिस्ट्रार के सतुष्ट हो जाने पर कि श्रमिक सघ अधिनियम मे उल्लिखित सभी शर्तों को पूरा करता है उसे पजीकृत करके उसका नाम निर्धारित रजिस्टर म लिख लिया जाता है। पजीकृत श्रमिक सघ का पजीकरण का एक प्रमाणपत्र दिया जाता है। रजिस्ट्रार को विशेष रूप से इस सबध म स्वय को सतुष्ट कर लेना चाहिये कि अधिनियम की व्यवस्थाओ के अनुसार श्रमिक सघ की कार्यकारिणी का सघठन किया गया है कि अनिवार्य विषयो के सबध म नियमो म व्यवस्था की गई है कि जिस नाम से पजीकरण का प्रस्ताव किया गया है वही नाम किसी वतमान श्रमिक सघ का तो नही है। वह अपने सतोष के लिये कि सघ वधानिक व्यवस्थाओ के

अनुरूप है, पंजीकरण के प्रार्थी से कोई और भी सूचना माँग सकता है। रजिस्ट्रार किसी ऐसे संघ के पंजीकरण के लिये मना नहीं कर सकता जिसका पंजीकरण के लिये प्रार्थनापत्र सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो। सिवाय पंजीकृत करने के उसके पास और कोई विकल्प नहीं होता है। यदि रजिस्ट्रार इस बात से संतुष्ट है कि संघ अधिनियम में निहित शर्तों को पूरा नहीं करता या उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया है तो पंजीकरण प्रमाणपत्र देने से मना किया जा सकता है या रद्द किया जा सकता है। असंतुष्ट श्रमिक संघ को रजिस्ट्रार के निर्णय के विरुद्ध अपील करने का अधिकार है।

एक पंजीकृत श्रमिक संघ अपने पंजीकृत नाम से नियमित निकाय हो जाता है। इसका अनुक्रम शाश्वत होता है तथा एक सामान्य मोहर होती है। इसके द्वारा चल अचल सम्पत्ति प्राप्त और अधिकृत की जा सकती है संविदा किये जा सकते हैं, मुकदमा चलाया जा सकता है और इस पर भी मुकदमे चलाये जा सकते हैं।

श्रमिक आन्दोलन क्षेत्र के कुछ नेताओं ने श्रमिक संघों के अनिवार्य पंजीकरण का पक्षपोषण किया। अनिवार्य पंजीकरण से इतना ही लाभ हुआ होता कि सम्भवतः श्रमिक संघों के अनुत्तरदायी व्यवहार पर रोक लग जाती तथा उनकी कार्यविधि उचित तरीके से सम्पादित हुई होती। दूसरों का मत था कि अनिवार्य पंजीकरण भारस्वरूप और महँगा सिद्ध होता। यह भी विश्वास किया जाता था कि पंजीकृत श्रमिक संघों को दिये गये अधिकारों के फलस्वरूप प्रत्येक वास्तविक श्रमिक संघ को स्वयमेव पंजीकरण कराने के लिये प्रेरणा और आकर्षण मिलेगा। पंजीकरण के लिये साधारण शर्तें पूरी करनी पड़ती थी तथा अधिनियम ने ऐसे किन्हीं दायित्वों का अनुबन्ध नहीं किया था जिन्हें उत्तरदायी संघ न स्वीकार करना चाहें। वस्तुतः नियोजक भी पंजीकृत संघों से बातचीत करने के अधिक इच्छुक होंगे। व सौदाकारी के लिये अपंजीकृत की अपेक्षा पंजीकृत संघों को प्राथमिकता देंगे। इसलिये यह आशा की गई थी कि अधिकांश संघ अपने को पंजीकृत करा लेंगे। जो पंजीकरण का प्रतिरोध नहीं करना चाहेगा क्योंकि ऐसी किसी क्रिया से संदेह और आलोचना का बढ़ावा मिलता। अधिनियम का मूल उद्देश्य श्रमिक संघों के सामाजिक और आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाना था और इस उद्देश्य में अधिनियम को पूरी सफलता मिली है। रॉयल श्रमिक आयोग का कहना है कि विशेषकर पंजीकृत संघों ने जनता और नियोजकों की दृष्टि में विशिष्ट स्थान पा लिया है और सम्पूर्ण आन्दोलन पर अधिक विश्वास प्रकट करने से अपंजीकृत संघ भी लाभान्वित हुये हैं।

१९२६ में अधिनियम पारित होने के बाद से श्रमिक संघों ने अधिकाधिक संख्या में इसके अन्तर्गत अपने को पंजीकृत कराया है। विवरणपत्र १ और २ से भारत में पंजीकृत श्रमिक संघों की प्रगति का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है।

१९२७–२८ म पजीकृत श्रमिक सघा की सख्या २९ थी जो १९३९–४० म बढकर ६६७ तथा १९४४–४५ म ८६५ हा गइ और उसके बाद पजीकृत श्रमिक सघो की सख्या मे काफी वृद्धि हुई है। उनकी सख्या वष प्रतिवष बढती गई है। १९५८–५९ म राजस्थान को छोडकर दश म पजीकृत श्रमिक सघो की सख्या १० २२८ थी। विवरण भेजने वाले पजीकृत श्रमिक सघा की गिरती हुइ मा य सदस्यता स स्पष्ट होता है कि अधिनियम के अ तगत छोटे छोट सघा का पजीकरण हो रहा ह।

प्रारम्भ म, पजीकरण की व्यवस्था हान पर भी बहुत कम श्रमिक सघो न अपन को पजीकृत कराया था। श्रमिक सघ अधिनियम क अन्तगत प्रत्यक पजीकृत श्रमिक सघ को सदस्या का रजिस्टर रखना होता ह तथा पदाधिकारिया के बार म रजिस्ट्रार को सूचना दनी हाती ह। यह आशका थी कि इसस नियाजक श्रमिक सघ काय कलापा म रुचि लन वाले श्रमिका क नाम जान जाएँग और उनका दली करण करेंगे। दलीकरण और भदभाव के भय स नता अधिनियम क अ तगत सघा को पजीकृत कराने क प्रति उदासीन रह। श्रमिक सघा का कुछ दायित्वा जस विवरण भजना रजिस्टर रखना लखो का परीक्षण करवाना का निर्वाह करना भी कठिन प्रतीत हुआ। उनक निणया को राजनतिक विचारधाराओ न भी प्रभावित किया। नतृत्व मुख्यतया बाहरी था। ये बाहरी लोग सक्रिय राजनतिक कायकता थ और जिनके काय कलापो का सरकार द्वारा अच्छी दृष्टि स नही दखा जाता था। फलत यह भय हुआ कि कही पजीकरण बाहरी लागा के काय-कलापा म बाधा और सघ के विरुद्ध अविश्वास और सदेह न पदा कर द। इन्ही सब कारणा स श्रमिक सघ नताओ न पजीकरण करान से आना कानी की।

किन्तु पजीकरण का हतात्साहित करन का सबस मुख्य कारण यह था कि नताओ के अनुसार पजीकरण द्वारा श्रमिक सघो को उपयुक्त अधिकार और लाभ प्रदान नहा किय गये थे। बहुत स श्रमिक सघा का यह विचार था कि पजीकृत श्रमिक सघा को दिय गय अधिकार किसी भी महत्व के नही थे। यहा तक कि अहमदाबाद वस्त्र उद्याग श्रमिक सगठन न भी कई वर्षो तक अपन का अधिनियम क अ तगत पजीकृत नहा कराया। पजीकरण द्वारा श्रमिक सघ का नियोजक स मा यता प्राप्त करन का अधिकार नही मिल जाता। इस सबध म एक पजीकृत श्रमिक सघ की स्थिति अपजीकृत सघ स श्रेष्ठ नही थी।

युद्धोपरा त तथा विशेषकर स्वतत्रता प्राप्ति क बाद परिस्थितिया म काफी परिवतन हा गया है। दलीकरण का भय और बाहरी नतृत्व क काय कलापा म प्रतिबध समाप्तप्राय ह। इसक अतिरिक्त स्वतत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि म सघो को पजीकरण द्वारा कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हुय है। औद्योगिक विवाद विधान के अ तगत औद्योगिक विवाद सुलझाने के लिये स्थापित तत्र का उपयोग

केवल पंजीकृत श्रमिक संघों द्वारा करने की सरकारी औद्योगिक सम्बन्ध नीति ने भी संघों का पंजीकरण के लिए प्रोत्साहित किया है। राजनैतिक नेताओं को श्रमिकों पर अपना नियंत्रण दृढ़ करने की महत्वाकांक्षा और कुछ नियोजकों द्वारा अपने नियंत्रण में श्रमिक संघों को सबल बनाने के प्रयासों से भी श्रमिक संघों के पंजीकरण को प्रोत्साहन मिला है। इसी प्रकार कुछ राज्यों में विवादों के दलों का प्रतिनिधित्व केवल पंजीकृत संघों के अधिकारियों द्वारा किया जाता है। उत्तरप्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ में यह व्यवस्था है कि जब तक पंजीकरण के बाद दो वर्ष का समय न बीत जाय संघ के किसी भी अधिकारी को विवाद के किसी दल को प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं होता। इन्हीं सब कारणों से १९४४–४५ और १९५१–५२ के बीच पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या में ४२५ प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई।

अधिनियम ने पंजीकृत श्रमिक संघों के लिये यह आवश्यक कर दिया है कि वे सामयिक रूप से रजिस्ट्रार को निर्धारित विवरण भेजें। अधिनियम के अन्तर्गत सूचना न देने या विवरणपत्र और प्रलेख न भेजने पर दण्ड की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार गलत सूचना भेजना भी दण्डनीय है। किन्तु यह शोचनीय है कि काफी संख्या में पंजीकृत श्रमिक संघ निर्धारित समय के भीतर, और यहाँ तक कि अवधि बढ़ा देने पर भी अधिनियम के अन्तर्गत निहित विवरण नहीं भेज पाते हैं। इस प्रकार १९४८–४९, १९४९–५०, १९५०–५१, १९५१–५२ तथा १९५८–५९ के वर्षों में क्रमशः ६१%, ६५%, ४७%, ३९% तथा ४१% संघों ने विवरण नहीं भेजे। विवरण न भेजने की स्थिति में कोई सुधार भी नहीं हुआ है। रजिस्टर पर लिखित संघों में से केवल ५० से ६० प्रतिशत श्रमिक संघ ही विवरण भेजते हैं। इस सम्बन्ध में नियोजक संघों की स्थिति और भी खराब है। पिछले कुछ वर्षों में पंजी पर लिखित नियोजक संघों में से ३० प्रतिशत से भी कम ने अपने विवरण भेजे थे। १९६० में संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रार या उसके द्वारा अधिकृत किसी अधिकारी को श्रमिक संघों द्वारा भेजी गई सूचना को सत्यापित करने के लिए उनके लेखों के निरीक्षण हेतु अधिक अधिकारों की व्यवस्था की गई थी। किन्तु फिर भी बहुत से श्रमिक संघों के विवरणों में त्रुटियाँ पाई गई और जिन्हें स्पष्टीकरण के लिए वापस संघों को भेजना पड़ा। विवरणों की सामान्य त्रुटियाँ निम्नलिखित हैं (१) उनमें तिथि नहीं पड़ी होती (२) उनके साथ नियमों की नवीनतम प्रतिलिपियाँ संलग्न नहीं की जाती (३) विवरणों में हस्ताक्षर नहीं किए जाते (४) लेखा का या तो परीक्षण नहीं कराया जाता या फिर परीक्षित लेखा में अशुद्धि के निशान लगे होते हैं तथा (५) सामान्य कोष और सदस्यता के प्रारम्भिक आँकड़े पिछले वर्ष के संवरण आँकड़ों से नहीं मिलते।

बढ़ हुए कार्य का सम्पादन करने की सरकारी तंत्र की असमर्थता, क्योंकि पंजी

करण की संख्या काफी घट गई है भी आंशिक रूप में इन तथ्य के लिये जिम्मेदार है कि लगभग ४०–४५ प्रतिशत श्रमिक संघ विवरण नहीं भेजते हैं। असंतोषपूर्ण ढंग से विवरण भेजने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि साधारण श्रमिक संघों द्वारा निर्धारित समय के भीतर उचित रूप में विवरण भेजने का महत्व नहीं समझा जाता है। बहुत से श्रमिक संघों के नेता विभिन्न वैधिक व्यवस्थाओं के आशय को सही और व्यापक रूप में नहीं समझते हैं। श्रमिक नेता सहयोगी भी नहीं हैं। चूंकि पूरे समय के लिये वेतनभोगी कर्मचारी नियुक्त नहीं होते इसलिये विवरणों का रखना और बनाकर भेजना आवश्यक नहीं समझा जाता है और उनकी उपेक्षा की जाती है। सही आंकड़ों की आवश्यकता और उनके महत्त्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता है। यदि श्रमिक नेता अपनी अभिवृत्ति बदल दें और श्रमिक संघ पर्याप्त कर्मचारी रखें तो विवरण भेजने की स्थिति में सुधार हो सकता है। सरकार को भी श्रम विभाग के कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि तथा वैधानिक और प्राविधिक विशेषज्ञों की नियुक्ति करनी चाहिये ताकि वे श्रमिक संघों को उनके दायित्वों के विभिन्न पक्षों पर मन्त्रणा दे सकें तथा उचित आंकड़ों की वांछनीयता और आवश्यकता उन्हें समझा सकें। उत्तरप्रदेश सरकार ने १९५४ के अंत में श्रमिक संघों के लिये एक विधि सलाहकार की नियुक्ति की थी। फलतः श्रमिक संघों ने विधि सलाहकार की सहायता लेना प्रारम्भ कर दिया और नवम्बर दिसम्बर १९५४ में ११ श्रमिक संघों ने इस सुविधा का लाभ उठाया। इसी प्रकार जाँच करने और श्रमिक संघों के नियमित निरीक्षण के लिये श्रमिक संघ निरीक्षकों की भी नियुक्ति की गई है। श्रमिक संघ निरीक्षकों ने १९५०–५१, १९५१–५२ तथा १९५२–५३ में क्रमशः २०, ७६, ७५ संघों की जाँच की। इन्हीं वर्षों में नैत्यिक निरीक्षण क्रमशः १२० २३४ तथा २०८ संघों का किया गया। १९५८ में निरीक्षक कर्मचारियों ने १५५ निरीक्षण तथा ५८३ जाँच सम्पादित कीं। नैत्यिक निरीक्षण के समय निरीक्षकों ने पदाधिकारियों और पंजीकृत श्रमिक संघों के अन्य सक्रिय सदस्यों को अभिलेख रखने और कार्यों का उचित रूप से सम्पादन करने के विषय में सलाह दी। साधारणतया जो न्यूनताएं अथवा कमियाँ मिलीं वे इस प्रकार थीं (१) अधिकारी गण लेखों को उचित तथा पूर्ण रूप से रखने की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं देते (२) व्यय की स्वीकृति के लिये उचित प्रक्रिया नहीं अपनायी जाती (३) कोषों को बैंक या डाकखाने में जमा नहीं किया जाता (४) पंजीकृत संविधानों की व्यवस्थाओं का हमेशा अनुसरण नहीं किया जाता तथा (५) बहुत से मामलों में व्यवसाय संघ विधान में निहित वैधानिक दायित्वों का भी पालन नहीं करते। श्रमिक संघों से कहा गया था कि वे इन त्रुटियों को दूर करें और अधिकांश मामलों में उन्हें दूर भी किया गया। कोषों के दुरुपयोग निर्वाचन की अनियमितताओं संघ के विघटन और समामेलन तथा नवीन पंजीकरणों से सम्बद्ध शिकायतों पर जाँच सम्पन्न

रगनया मदस्या और पदाधिकारिया द्वारा की गई। अनियमित चुनावा के बहुत से मामला म पजीकृत मविधान के अनुमार दुबारा चुनाव करने की सलाह दी गई। चूंकि श्रमिक सघा के निरीक्षण और निर्देशन सम्बन्धी सवाओं से पर्याप्त लाभ हुआ है इसलिए उत्तरप्रदेश सरकार ने इन्हें मशक्त बनाने की प्रस्तावना की थी। इसी तरह की योजनाएँ अन्य राज्यों में भी लागू की जानी चाहिए और उन्हें व्यवहार म लाना चाहिए।

बड़ी सख्या म श्रमिक सघा के पजीकरण का निरसन एक अन्य दुखद तथ्य है। १९५०-५१ म ३५०, ११७ तथा १०० सघा का पजीकरण क्रमश पश्चिमी बगाल बम्बई तथा उत्तरप्रदेश के राज्यो म वार्षिक विवरण न भेजने तथा अधिनियम की अन्य व्यवस्थाओं को न मानने के कारण रद्द कर दिया गया था। १९५८ म उत्तरप्रदेश के ९७१ सघा म से ६१ सघा ने वार्षिक विवरण न भेजने के कारण अपना पजीकरण खो दिया तथा दो सघा का पजीकरण रद्द कर दिया गया। इस स्थिति का निदान भी पहले दिये गये सुझावा द्वारा किया जा सकता है।

यद्यपि पजीकृत श्रमिक सघा की सख्या अनवरत रूप से बढ़ती रही है किन्तु अब भी काफी सख्या म श्रमिक सघ अपजीकृत है। अपजीकृत श्रमिक सघा के आंकड़े केवल बम्बई राज्य के लिए उपलब्ध है। सारणी ७१ द्वारा बम्बई म अपजीकृत श्रमिक सघा की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। सितम्बर १९४९ को समाप्त होने वाली अवधि म अपजीकृत सघा की सख्या २७८ अर्थात् कुल श्रमिक सघा का ४६%, थी तथा उनकी सदस्य सख्या ७७,७०४, अर्थात् कुल श्रमिक सघ सदस्यता का २२%, था। सितम्बर १९५० तथा १९५१ को समाप्त होने वाली अवधि म ये आंकड़े क्रमश २६९ सघ अर्थात् ४६% और १२६,५४२ सदस्य अर्थात् १६ प्रतिशत, तथा २३२ सघ, अर्थात् ३८ प्रतिशत और १,६५,८०४ सदस्य, अर्थात् २० प्रतिशत थे। इससे स्पष्ट है कि अब बड़ी सख्या म सघ अपजीकृत है।

सारणी ७१

बम्बई राज्य में पंजीकृत तथा अपंजीकृत श्रमिक संघ

वर्ष	पंजीकृत व्यवसाय संघ संख्या	पंजीकृत व्यवसाय संघ सदस्यता	अपंजीकृत व्यवसाय संघ संख्या	अपंजीकृत व्यवसाय संघ सदस्यता	संघ संख्या	कुल सदस्यता
दिसम्बर १९२७	१०	४५ ०७९	५८	४९ ५१५	६८	८४ ५९४
दिसम्बर १९२८	२९	१,५१ १६१	६०	६६ ७९१	८९	१ ९५ ९५२
दिसम्बर १९२९	३८	१ ५१ ३२८	५४	४२ ४०५	९२	१ ९३ ७३३
दिसम्बर १९३०	३५	८१,३१९	४१	४३ ९९४	८६	१ २५ ,१३
दिसम्बर १९३१	३०	६० ६१८	५६	३८,२९८	८६	९८ ८१६
दिसम्बर १९३२	३९	७० ०५८	५०	३७,१३१	८९	१ ०७,१८९
दिसम्बर १९३३	३८	६५,६३३	५२	४६ १०२	९०	१ ११ ७३५
दिसम्बर १९३४	३५	६७ ५८९	५३	४० १४७	८८	१ ०७,७३६
दिसम्बर १९३५	४४	९० ८५३	६४	१५ ३४८	१०८	२,०६ २०१
दिसम्बर १९३६	४३	७५ ०३४	५६	१३,१०७	९९	८८,१९१

	१	२	३	४	५	६	७
दिसम्बर	१९३७	५०	९१ ४६६	६४	१ ९२५	११४	१ ०३,४२१
दिसम्बर	१९३८	५७	१ १४,८००	९६	२६ ७९२	१५३	१ ४१,५९२
दिसम्बर	१९३९	७६	१ ५१ ७९०	१००	२९ ८०७	१७६	१ ८१ ५९७
दिसम्बर	१९४०	७३	१ ६२ ३७५	९५	२३ ०१५	१३२	१ ८४ ३९०
दिसम्बर	१९४१	८१	१ ५८ २५९	९०	२४ ७६१	१७१	१ ९३ ०२०
दिसम्बर	१९४२	८९	१ ५५ ७८२	१००	२९ ५७४	१८९	१ ८५,३४६
दिसम्बर	१९४३	९०	१ ८७ ८३८	१३२	४५ ८२७	२२२	२ ३३ ६६५
दिसम्बर	१९४४	९७	१ ९७ ६६५	१८०	८८ ८८९	२७७	२ ८६ २६४
दिसम्बर	१९४५	११४	२,४४ ८६८	१८८	८३ ७१६	३०२	३,२८ ५८४
दिसम्बर	१९४६	१५९	२,४८ ३९५	२२६	९८,६२९	३८५	३ ५३,३७०
दिसम्बर	१९४७	२५०	३ ७०,४४९	२८०	१,२२,४११	५३०	४,६८ ०७८
दिसम्बर	१९४८	३८९	४,४७,१८८	३२५	५२ ७०७	७१४	५,२९ ५९९
दिसम्बर	१९४९	४४२	५ २३ ९००	३७८	१,४२,७०२	८२०	५,७६ ९०२
दिसम्बर	१९५०	६५६	६,६३,४१३	३६१	१,२६,१५२	१०११	८,८९ ५७०
दिसम्बर	१९५१	७१५	६,४०,५७१	४३२	१,६३ ८०४	११४७	८,०४,३७५

अधिनियम के अन्तर्गत अपंजीकृत श्रमिक संघों को कोई अधिकार नहीं प्रदान किये गये हैं। एक अपंजीकृत श्रमिक संघ आवश्यक रूप से असंवैधानिक नहीं होता है। उसकी वैधानिकता उसके उद्देश्यों तथा नियमों विशेषकर व्यवसाय संयम के पालन पर निर्भर करती है। किन्तु श्रमिक संघों को पंजीकरण के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। यदि पंजीकृत श्रमिक संघों को प्रदान की गई विभिन्न सुविधाओं का व्यापक प्रचार किया जाय तो अपंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या और महत्त्व पर्याप्त रूप से कम हो सकता है। क्या अपंजीकृत श्रमिक संघों को वैधानिक संरक्षण प्रदान करना चाहिये और यदि हाँ तो किस सीमा तक? इस प्रश्न का उत्तर केवल देश के अपंजीकृत श्रमिक संघों के विशद अध्ययन के बाद ही सन्तोषपूर्ण ढंग से दिया जा सकता है।

पंजीकृत श्रमिक संघों के अधिकार तथा विशेषाधिकार

पंजीकृत श्रमिक संघों को अधिनियम द्वारा कुछ फौजदारी दायित्वों से निरापद किया गया है। *व्यवसाय संघ अधिनियम १९२६ से पूर्व श्रमिकों का नियोजकों* के साथ उनके द्वारा किये गये कार्य-संविदा को तोड़ने के लिए प्रेरित करने हेतु कोई समझौता अपराधिक षड्यन्त्र माना जाता था। अधिनियम में व्यवस्था की गई धारा १५ में निर्दिष्ट श्रमिक संघ के किसी एक उद्देश्यों के उन्नयन के उद्देश्य से सदस्यों के बीच किये गये किसी समझौते के सम्बन्ध में पंजीकृत श्रमिक संघ का कोई अधिकारी या सदस्य भारतीय दण्ड संहिता की धारा १२० ब की उपधारा (२) के अन्तर्गत दण्ड का भागी नहीं होता जबतक कि वह समझौता अपराध करने का समझौता न हो। अधिनियम ने हड़ताल घोषित करने तथा व्यावसायिक विवाद के सम्बन्ध में कुछ बातों के लिये अधिकार प्रदान किये हैं। किन्तु षड्यन्त्र के अलावा किन्हीं अन्य अपराधों के लिये अधिनियम में छूट नहीं दी गई है।

इसी प्रकार कुछ दीवानी क्रियाओं के लिये भी छूट दी गई है। अधिनियम में कहा गया है कि *किसी दीवानी न्यायालय में किसी पंजीकृत श्रमिक संघ या* उसके किसी अधिकारी या सदस्य के विरुद्ध व्यावसायिक विवाद के हेतु या उसको ध्यान में रखते हुये किसी सम्पादित क्रिया के संबंध में जिसके लिये श्रमिक संघ का *कोई सदस्य एक पक्ष के रूप में उत्तरदायी है कोई मुकदमा या अन्य वैधिक कार्य*वाही केवल इस आधार पर नहीं की जा सकेगी कि उस क्रिया से कुछ अन्य लोगों को सेवायोजन के संविदा को भंग करने की प्रेरणा मिली है या इसके द्वारा कुछ *अन्य लोगों की अपनी इच्छानुसार अपने श्रम या पूँजी को निवर्तित करने या व्यापार* व्यवसाय और सेवायोजन में हस्तक्षेप हुआ है।

'श्रमिक संघ कार्यकर्ता द्वारा—व्यावसायिक विवाद के हेतु और उसे ध्यान में रखते हुये किये गये किसी अवैध कार्य के लिये एक पंजीकृत श्रमिक संघ किसी

दीवानी न्यायालय में किसी मुकदमे या वैधिक कार्यवाही के लिये उत्तरदायी नहीं होगा जबतक यह सिद्ध नहीं किया जाता कि उस व्यक्ति ने श्रमिक संघ की कार्यकारिणी की अनभिज्ञता में या उसके द्वारा दिये गये लिखित आदेशों के विपरीत कार्य किया है। दीवानी दायित्व से मुक्ति केवल व्यावसायिक विवाद के सम्बन्ध में किये गये कार्यों के लिये, जिन्हें पंजीकृत श्रमिक संघ के सदस्य एक पक्ष के रूप में सम्बद्ध हैं, प्राप्त की जा सकती है। किन्तु इस संरक्षण के अन्तर्गत सेवायोजना संविदा के अलावा अन्य संविदा का भंग करने अथवा अपमानजनक लेख से सम्बद्ध प्रेरणात्मक क्रियाएँ नहीं आती हैं। अधिनियम संविदा भंग कराने के वैयक्तिक दायित्वों को प्रभावित नहीं करता है। उक्त संरक्षण केवल तभी मिलता है जब वह श्रमिक संघ के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहा हो अथवा वह सेवायोजन के संविदा को तोड़ने के लिये अन्यों को उत्प्रेरित कर रहा हो। अधिनियम के अन्तर्गत सदस्यों के स्वकार्यों के लिये छूट नहीं दी गई है और उन पर संविदा भंग करने के लिये मुकदमा चलाया जा सकता है। वस्तुतः श्रमिक संघ कोषों की रक्षा करना मुख्य उद्देश्य है।

अधिनियम के निर्माताओं को पर्याप्त सीमा तक ग्रेट ब्रिटेन के व्यवसाय संघ विधान से निर्देशन मिला। ग्रेट ब्रिटेन में व्यवसाय संघों ने दृढ़ संघर्ष के बाद थोड़ा थोड़ा करके अपने अधिकार प्राप्त किये थे। टैफ वेल (Tafe Vale) निर्णय के कारण, जिसमें हानि के लिये श्रमिक संघ को उत्तरदायी ठहराया गया था, दीवानी देयता का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो उठा था। फलतः ऐसी हानियों से भी श्रमिक संघों को बचाने के लिये १९०६ में अधिनियम का संशोधन किया गया था। तदनुसार वही व्यवस्थाएं भारतीय विधान में भी सम्मिलित कर ली गई।

पंजीकृत श्रमिक संघों की देयता और दायित्व

अधिनियम द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकारों के प्रतिकार स्वरूप पंजीकृत श्रमिक संघों के लिये कुछ दायित्वों की भी व्यवस्था की गई है। अधिनियम में उन उद्देश्यों की व्याख्या की गई है जिन पर श्रमिक संघ के सामान्य कोष का व्यय किया जा सकता है। ये उद्देश्य हैं —(१) प्रशासकीय और लेखा परीक्षण के व्यय का भुगतान करना, (२) वैधिक कार्यवाहियों के लिये व्यय करना, (३) श्रमिक संघ की ओर से अथवा उसके किसी सदस्य द्वारा व्यावसायिक विवादों के संचालन में व्यय करना, (४) व्यावसायिक विवादों के कारण सदस्यों को हुई हानि की क्षतिपूर्ति करना, (५) मृत्यु, वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटना अथवा बेरोजगारी के लिये आर्थिक सुविधाएँ देना, (६) शैक्षणिक, सामाजिक और धार्मिक लाभों की व्यवस्था करना, (७) पत्रिका के प्रकाशन पर व्यय करना, (८) श्रमिकों को सामान्य रूप से लाभ प्रदान करने के लिये व्यय करना। किन्तु यह व्यय उस समय तक प्राप्त सकल आय के २५%

से अधिक नहीं होना चाहिये तथा (९) सरकार द्वारा अधिसूचित अन्य उद्देश्यों के लिए व्यय करना।

नागरिक अथवा राजनैतिक उद्देश्यों के लिये श्रमिक संघों द्वारा सामान्य कोष से व्यय करने पर अधिनियम में प्रतिबन्ध लगाया गया है। यदि एक पंजीकृत श्रमिक संघ नागरिक या राजनैतिक उद्देश्यों के लिये धन व्यय करना चाहता है तो इसके लिए उसे पृथक रूप से वसूल किये गये चन्दे द्वारा पृथक कोष की स्थापना करनी चाहिये। इस कोष का उपयोग विधानसभा के निर्वाचन में या विधानसभा सदस्य के पोषण में अथवा राजनैतिक सभाओं के आयोजन और राजनैतिक साहित्य के वितरण में किया जा सकता है। इस कोष के लिये अंशदान तथा सदस्यता ऐच्छिक होगी। उन सदस्यों को जो राजनैतिक कोष में चन्दा नहीं देते श्रमिक संघों के किन्हीं लाभों से वंचित नहीं किया जा सकता है और न राजनैतिक कोष के प्रबन्ध और नियन्त्रण को छोड़कर उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय ही किया जा सकता है। श्रमिक संघ में प्रवेश पाने के लिये इस कोष में अंशदान देने की शर्त श्रमिकों के सम्मुख नहीं रखी जा सकती है।

इस प्रकार राजनैतिक कोष का संगठन निश्चित सविदे के सिद्धान्त पर किया जाता है और किसी भी इच्छुक सदस्य को राजनैतिक कोष में यदि वह वर्तमान है चन्दा देने की अनुमति दी जा सकती है। यहाँ भी अधिनियम के निर्माता ब्रिटिश व्यवसाय संघ विधान के विकास से जहाँ व्यवसाय संघों को राजनैतिक कोष संगठित करने की स्वतन्त्रता दी गई थी निर्देशित हुये थे। चूँकि राजनैतिक कार्य कलापों में संघ अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे थे इसलिए यह उचित ही था कि हमारे देश में भी श्रमिक संघों को यह अधिकार दिया जाता। अधिनियम में राजनैतिक धारा को सम्मिलित करना इसलिए भी बहुत अधिक आवश्यक था क्योंकि ऐसा न करने पर श्रमिक संघ संसार में क्षोभ पैदा हो जाता। श्रमिक संघों ने साधारणतया पृथक राजनैतिक कोष रखने की सुविधा का लाभ नहीं उठाया है। बहुत कम श्रमिक संघों ने राजनैतिक कोष की स्थापना की है। इस स्थिति के लिए श्रमिकों की निरक्षरता उनकी उदासीन अभिवृत्ति तथा उनमें राजनैतिक चेतना का अभाव को दोषी ठहराना चाहिये। फिर भी शिक्षा के प्रसार और बढ़ती हुई सजगता से यह आशा की जा सकती है कि अधिक से अधिक श्रमिक संघ एसे कोषों की स्थापना करेंगे और अन्तत लिखित सविदे के सिद्धान्त को अलिखित सविदे में परिवर्तित करने के लिये प्रयत्न करेंगे।

पंजीकृत श्रमिक संघों का आमदनी और व्यय तथा सम्पत्ति और देयता का निर्धारित रूप से लेखा परीक्षित एक सामान्य विवरणपत्र प्रतिवर्ष व्यवसाय संघों के रजिस्ट्रार को भेजना पड़ता है। उसी अवधि में हुए पदाधिकारियों में सभी परिवर्तनों का विवरण भी साथ में संविधान तथा नियमों की नवीनतम प्रतिलिपि संलग्न करके

प्रस्तुत करना पड़ता है। नियमों में किये गये प्रत्येक परिवर्तन की प्रतिलिपि भी १५ दिनों के भीतर रजिस्ट्रार को भेजनी होती है।

पदाधिकारी

अधिनियम में व्यवस्था है कि प्रत्येक पंजीकृत श्रमिक संघ के कुल अधिकारियों में से कम से कम आधे वे व्यक्ति होंगे जो किसी उद्योग में जिससे श्रमिक संघ सम्बद्ध है, वास्तविक रूप से संलग्न या नियुक्त हैं। इस धारा से किसी श्रमिक संघ या श्रमिक संघों को मुक्त करने का अधिकार समुचित सरकार को दिया गया है। श्रमिक संघों की कार्यकारिणी में बाहरी लोगों की उपस्थिति सदा से ही विवाद का विषय बनी रही है। नियोजकों ने इस आधार पर कि उनकी कार्यकारिणी में कुछ बाहरी लोग हैं संघों को मान्यता प्रदान करने से मना किया है। रायल श्रमिक आयोग ने भी अनुभव किया कि 'इस वांछनीयता को ध्यान में रखते हुए कि सदस्यों को संघ के कार्यों में सक्रिय भाग लेना चाहिये, हम समझते हैं कि दो तिहाई संख्या अधिक उचित न्यूनतम होगी।' व्यवसाय संघ विधेयक १९५० में बाहरी लोगों की संख्या कम करने तथा उनके कार्य कलापों पर रोक लगाने के लिए प्रस्तावना की गई थी।

अन्य व्यवस्थाएँ

(क) १५ वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति पंजीकृत श्रमिक संघ का सदस्य नहीं हो सकता। श्रमिक संघों के किसी पद के लिए न्यूनतम आयु १८ वर्ष रखी गई है। यह अधिक अच्छा होता यदि श्रमिक संघ के पद धारण के लिए आयु के अतिरिक्त कोई अन्य शर्त भी रखी गई होती। श्रमिक संघों के अधिकारी अधिक अच्छे और उत्तरदायी होते यदि उनके लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता या कुछ वर्षों की न्यूनतम श्रमिक संघ सदस्यता की शर्त निर्धारित की गई होती। (ख) प्रत्येक सदस्य को लेखा पुस्तकों और सदस्यता सूची देखने का अधिकार है। (ग) नाम में परिवर्तन, विघटन और समामेलन के लिए भी व्यवस्था है। दो या अधिक संघों का आपस में विलय हो सकता है यदि मत देने के अधिकारियों में कम से कम उनके आधे सदस्य इसके लिए इच्छुक हों और कम से कम ६० प्रतिशत प्रस्ताव के लिये मत देते हैं। गलत विवरण भेजने, देर से या विवरण न भेजने तथा श्रमिक संघ के संबंध में गलत सूचना देने पर दण्ड की व्यवस्था है। (घ) अधिनियम की व्यवस्थाओं को लागू करने के लिये सरकार को नियम बनाने का अधिकार है।

किन्तु अधिनियम में पंजीकृत श्रमिक संघों की मान्यता के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। पंजीकरण के कारण नियोजकों के सम्मुख श्रमिक संघों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इच्छा रहते भी श्रमिक संघों के पंजीकरण न कराने का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण था। यह अनुभव किया गया कि स्वस्थ औद्योगिक संबंध बनाए रखने के लिए तथा श्रमिक संघों के स्वस्थ विकास के लिए श्रमिक संघों की

मान्यता आवश्यक थी। यह स्पष्ट हो गया था कि नियोजक ऐच्छिक रूप से मान्यता नहीं प्रदान करेंगे। गया र अनि आयोग ने भी पहले श्रमिक संघों की मान्यता के प्रश्न पर विचार किया था। स्थान एच्छिक मान्यता का प्रातिक्ता न्न हए आशा व्यक्ति की थी कि भविष्य में अधिक से अधिक नियोजकों द्वारा ऐच्छिक मान्यता प्रदान की जायगी। किन्तु अनुभव इस आशा के विपरीत रहा और स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इस कारण अधिनियम द्वारा अनिवार्य मान्यता की आवश्यकता स्पष्ट होती गई और तदनुरूप विधान में परिवर्तन किया गया।

व्यवसाय संघ (संशोधन) अधिनियम १९४७

अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत श्रमिक संघों को जिनका पंजीकरण कम से कम मास पूर्व हो चुका हो और जिन्होंने नियोजकों से मान्यता के लिए प्रार्थना की हो अनिवार्य मान्यता की व्यवस्था करने हेतु व्यवसाय संघ अधिनियम में संशोधन करने के लिए नवम्बर १९४३ में एक विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत किया गया। केवल प्रतिनिधि श्रमिक संघ ही मान्यता प्राप्त कर सकते थे और स्थापित विधेयक में प्रतिनिधि स्वरूप तय करने के लिये त्रिदलीय मंडलों की स्थापना की व्यवस्था की गई थी। साम्प्रदायिक संघों को यह सुविधा उपलब्ध नहीं थी। १९४६ में पुनः इस प्रश्न पर विचार किया गया और व्यवसाय संघ अधिनियम १९२६ में संशोधन हेतु आगसभा में एक विधेयक पेश किया गया। संशोधन १९४७ में पारित हो गया। संशोधित अधिनियम में निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाले श्रमिक संघों के लिए अनिवार्य मान्यता की ही व्यवस्था नहीं की गई थी बल्कि मान्यता प्राप्त श्रमिक संघों और नियोजकों द्वारा अनुचित कार्यवाही करने पर दण्ड की भी व्यवस्था थी। किन्तु संशोधित अधिनियम अब तक लागू नहीं किया गया है।

अनिवार्य मान्यता

समझौते द्वारा मान्यता—जब एक नियोजक श्रमिक संघ को मान्यता देना स्वीकार कर लेता है तो वह इसके लिए संघ के साथ एक लिखित समझौता कर लेता है। नियोजक और श्रमिक संघ के अधिकारियों या उनके अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा हस्ताक्षर किये हुए समझौते की एक प्रति व्यवसाय संघों के रजिस्ट्रार के पास भेजनी पड़ती है। इस समझौते के निरसन के लिए कोई भी पक्ष रजिस्ट्रार को प्रार्थनापत्र दे सकता है। समझौता लागू रहने की स्थिति में श्रमिक संघ को एक मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ के सभी अधिकार उपलब्ध रहते हैं।

श्रम न्यायालय के आदेश द्वारा मान्यता—अधिनियम के अन्तर्गत श्रम न्यायालय की स्थापना हुई जिसमें उच्च न्यायालय अथवा जिला न्यायाधीश के पद की हैसियत के एक या अधिक व्यक्तियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक श्रम न्यायालय को साक्षियों को उपस्थित करने शपथ दिलाने साक्षियों की उपस्थिति आवश्यक

करने तथा अभिलेखों की खोज और उनके प्रस्तुतिकरण के लिए विवश करने के सम्बन्ध में दीवानी न्यायालय के समान सभी अधिकार दिये गये हैं।

एक पंजीकृत श्रमिक संघ, जिसे नियोजक को प्रार्थनापत्र देने के तीन महीने के अन्दर मान्यता नहीं मिल पाती श्रम न्यायालय को नियोजक द्वारा मान्यता दिलाने के लिए प्रार्थनापत्र दे सकता है। श्रम न्यायालय श्रमिक संघ से और भी सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। यदि श्रमिक संघ निर्धारित समय के भीतर माँगी गई सूचना नहीं भेजता तो उसका प्रार्थनापत्र रद्द किया जा सकता है। श्रम न्यायालय के सन्तुष्ट होने पर कि श्रमिक संघ मान्यता के लिए निर्धारित शर्तें पूरी करता है, मान्यता के लिये आज्ञा दी जा सकती है।

श्रम न्यायालय के आदेश द्वारा श्रमिक संघों के लिए मान्यता प्राप्त करने की निम्नलिखित मुख्य शर्तें हैं : (१) कि व्यवसाय संघ अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत है और उसके अधिनियम की सभी व्यवस्थाओं का पालन किया है, (२) कि उसके सभी साधारण सदस्य उसी उद्योग या उसके निकटवर्ती सम्बद्ध या एक दूसरे के साथ संयोजी उद्योगों के कर्मचारी हैं, (३) कि नियोजक द्वारा उसी उद्योग या उन उद्योगों में नियुक्त सभी कर्मचारियों का वह प्रतिनिधित्व करता है, (४) उपरिलिखित किसी भी वर्ग के कर्मचारियों की सदस्यता पर उसके नियमों में कोई रोक नहीं लगाई गई है, (५) कि उसके नियमों में हड़ताल घोषित करने की प्रक्रिया उल्लिखित है तथा (६) कि उसके नियमों में वर्ष में कम से कम ६ माह में एक बार कार्यकारिणी की बैठक बुलाने की व्यवस्था है।

श्रमिक संघ का प्रतिनिधि स्वरूप के निश्चय करने में श्रम न्यायालय का यह देखना होता है कि कुल कर्मचारियों की संख्या की तुलना में उन कर्मचारियों का अनुपात क्या है जो श्रमिक संघ के सदस्य हैं और जिन्होंने तीन महीने से अधिक समय तक नियमित रूप से अपना चन्दा दिया है तथा इसके लिए यदि कोई प्रतिशत निर्धारित किया गया है तो उससे वह कम है अथवा नहीं। केन्द्रीय सरकार ने इस उद्देश्य के लिए भारतीय व्यवसाय संघ मान्यता विनियमन १९४९ (प्रारूप) में निम्नलिखित प्रतिशत निश्चित किये हैं।

सारणी ७२

श्रमिकों की कुल संख्या	कुल कर्मचारियों की संख्या की तुलना में श्रमिक संघ की सदस्यता का न्यूनतम प्रतिशत
१००० तक	३३⅓
१०००–२५००	२५

१	२
२५००–५०००	२०
५०००–१० ०००	१५
१०,०००–२५ ०००	१२½
२५ ००० से अधिक	१०

एक नियोजक को एक से अधिक सघो को मा यता देने के लिय विवश नही किया जा सकता है तथा मान्यता दिये जाने वाले सघ को श्रम न्यायालय द्वारा घोषित प्रतिनिधि सघ होना चाहिये। सरकार ने किसी भी प्रतिष्ठान के केवल एक प्रतिनिधि सघ को ही मान्यता देने की नीति अपनायी है। १८ माच १९५३ को लोकसभा ने एक गर सरकारी विधेयक अस्वीकृत कर दिया जिसमे सभी पजीकृत श्रमिक सघो जिनकी सदस्यता सभी कमचारियो की पाच प्रतिशत हो की अनिवाय मान्यता की प्रस्तावना थी। श्रममत्री ने प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया था कि साधारणतया श्रमिक सघो की मान्यता ऐच्छिक रूप से होनी चाहिये। देश मे श्रमिक सघ विकास की वतमान स्थिति से सरकार इस निष्कष पर पहुची थी कि कोई अधिनियम पारित करके नियोजको को सघो को मान्यता देने के लिये विवश करना अविवेक होगा। किन्तु यदि सरकार को पता चला कि बहुत से प्रामाणिक श्रमिक सघो को, जिनकी ठोस सदस्यता है मान्यता नही प्रदान की गई है तो सरकार विचार करेगी कि किन परिस्थितियो मे उन श्रमिक सघो को मान्यता प्रदान की जाय। यह भी आशका की गई थी कि किसी ऐसे कदम से उद्योग मे सघो के बीच शाश्वत सस्पर्धा पदा हो जायगी। नियोजक एव सघ को दूसरे के विरुद्ध भड काने म समथ हो जाएँगे। श्रम मन्त्री ने यह भी पुष्टि की कि वतमान व्यवसाय सघ अधिनियम से श्रमिक सघ आन्दोलन क विकास म बाधा नही पहुँची है। साधारणतया नियोजक उपयुक्त श्रमिक सघो को मान्यता प्रदान करते हैं।

श्रमिक सघो को मान्यता देने का प्रश्न काफी लम्बे समय से वादविवाद का विषय रहा है। इस सदभ मे यह कहा गया है कि स्वस्थ प्रशासित और न्यूनतम सदस्यता वाले एक से अधिक सघो को मान्यता दी जा सकती है। न्यूनतम सदस्यता की समुचित सख्या निर्धारित करनी चाहिये। यदि एक से अधिक सघो को मान्यता की सुविधाएँ और अधिकार प्रदान किये जाय तो अन्तसघीय सस्पर्धा समाप्त हो सकती है। यदि केवल एक ही सघ को मान्यता प्रदान की जाती है तो दूसरे अमान्य सघ मान्य सघ की सदस्यता को फोडने के लिये प्रयत्न करेंगे। प्रशासकीय अधिकारियो के पास मान्य सघ के प्रतिनिधि स्वरूप को चुनौती देते हुये कई एक याचिकाएँ

प्रस्तुत की जाएँगी। इससे संघों के प्रतिनिधि स्वरूप के निश्चय करने के लिये साम यिक जाँच की आवश्यकता होगी। फलतः श्रमिकों के बीच कटुता पैदा हो जायगी और औद्योगिक शांति संकट में पड़ जायगी। नियोजकों के लिये 'फूट डालना और शासन करना' की संभावनाएँ बढ़ जायगी और श्रमिक संघ कार्यकर्ता सदस्यता के आँकड़े बढ़ा चढ़ाकर बताने का प्रयत्न करेंगे। सरकार द्वारा राजनैतिक आधार पर श्रमिक संघों में भेदभाव करने की संभावना भी पैदा हो जायेगी।

केवल बहुमत के निर्णय के माध्यम से ही प्रत्येक कार्य करने की वर्तमान प्रवृत्ति वस्तुतः दुर्भाग्यपूर्ण है। एक प्रतिष्ठान के सभी या अधिक से अधिक श्रमिकों को एक साथ ले चलने के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिये। किसी भी प्रकार के मत की पूर्ण अवहेलना नहीं की जानी चाहिये। उदाहरण के लिये यह व्यवस्था की जा सकती है कि प्रत्येक प्रस्ताव को श्रमिक प्रतिनिधियों के कम से कम दो-तिहाई से समर्थन प्राप्त होना चाहिये। सर्वसम्मति से निर्णय लेने के प्रयत्नों से श्रमिक संघों में एकता स्थापित की जा सकती है।

श्रमिक संघों की आन्तरिक व्यवस्था में प्रजातान्त्रिक नियमों का सधारण एवं महत्वपूर्ण शर्त है जिसे मान्यता प्रदान करने के लिए नहीं स्वीकार किया गया है। इस समय केवल ६ महीने में एक बार कार्यकारिणी की बैठक की शर्त रखी गई है। पदाधिकारियों के निर्वाचन, प्रगति की समालोचना के लिये वार्षिक अधिवेशन का आयोजन, नीति निर्धारण तथा इसी प्रकार के अन्य महत्वपूर्ण मामलों के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है। यह प्रस्ताव भी रखा गया है कि औद्योगिक विश्रान्ति काल में जो संघ हड़ताल की घोषणा नहीं करते उन्हें मान्यता प्रदान की जानी चाहिये। किन्तु इस प्रकार के कार्य से यथार्थ श्रमिक संघ आन्दोलन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। मान्य सिद्धान्त के रूप में श्रमिक विवादों के हल के लिए हड़ताल पहला कदम नहीं होना चाहिये किन्तु हड़ताल का आश्रय लेने के कारण एक संघ को मान्यता देने से वंचित कर देना वस्तुतः एक अविवेकी नीति है। इससे औद्योगिक सम्बन्ध सुधरने के बजाय और खराब हो जाएँगे।

मान्यता प्राप्त व्यवसाय संघों के अधिकार

सेवायोजन या असेवायोजन या सेवायोजन की शर्तों या सभी श्रमिकों या कुछ सदस्यों की स्थिति से सम्बद्ध मामलों के सम्बन्ध में मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ की कार्यकारिणी को नियोजक के साथ वार्तालाप करने का अधिकार मिल जाता है तथा नियोजक को कार्यकारिणी द्वारा भेजे गये पत्रों को प्राप्त करना पड़ता है उनका उत्तर देना होता है तथा उपरोक्त मामलों के लिये साक्षात्कार की अनुमति देनी होती है। उन मामलों के सम्बन्ध में जिन पर संघ की कार्यकारिणी के साथ पूर्व-आयोजित विचार विमर्श के फलस्वरूप नियोजक किसी निष्कर्ष पर पहुँच गया

है, उत्तर देने या साक्षात्कार के लिये अनुमति प्रदान करने के लिये वह बाध्य नहीं है बशर्ते कि उस निष्कर्ष को कार्यकारिणी को सूचित किये तीन माह से अधिक समय नहीं बीता है अथवा परिस्थितियाँ यथावत् हैं। इस सम्बन्ध में नियोजक और संघ के बीच हुये किसी विवाद को अन्तिम निर्णय के लिये रजिस्ट्रार के पास भेजना पड़ता है। मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ की कार्यकारिणी को अधिकार है कि वह उन स्थानों पर जहाँ उसके सदस्य कार्य करते हैं, सूचना या विज्ञप्ति को प्रदर्शित करे तथा इस उद्देश्य के लिये नियोजक को समुचित सुविधाएँ कार्यकारिणी को देनी होती हैं।

इस प्रकार मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ को विज्ञप्तियाँ प्रदर्शित करने तथा सेवायोजन, असेवायोजन या सभी श्रमिकों या अपने किन्हीं सदस्यों की स्थिति से सम्बद्ध समस्याओं के सम्बन्ध में पत्र भेजने तथा नियोजक से उत्तर प्राप्त करने का विशेषाधिकार उपलब्ध होता है। कार्यकारिणी साक्षात्कार की भी माँग कर सकती है। किन्तु यदि वे मामले पहले ही विचार विमर्श करने के बाद निर्णीत हो चुके हैं और उन पर पुनः विचार की माँग की जाती है तो नियोजक पत्र प्राप्ति की सूचना या उत्तर देने या साक्षात्कार की अनुमति प्रदान करने के लिये बाध्य नहीं है। ऐसी स्थिति में श्रमिक संघ के पास केवल यही निदान है कि वह प्रत्येक बार रजिस्ट्रार से ऐसे गत्यवरोध को हटाने के लिये प्रार्थना करे। ऐसा प्रतीत होता है कि पंजीकृत श्रमिक संघों को उन श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिये जो उनके सदस्य नहीं हैं प्रतिबंधित किया गया है। उनके हित व्यवसायगत हो सकते हैं किन्तु उस स्थिति में जबकि वे श्रमिक उसके सदस्य नहीं हों श्रमिक संघ से केवल मूक दिग्दर्शक रहने की आशा की जाती है। यह कुछ अधिक निबन्धक है तथा इस प्रकार उनकी मान्यता का महत्व काफी घट जाता है।

मान्यता का प्रत्याहरण

मान्यता के प्रत्याहरण के लिये रजिस्ट्रार अथवा नियोजक निम्नलिखित में से किसी आधार पर श्रम न्यायालय को प्रार्थनापत्र दे सकते हैं (१) कि श्रमिक संघ की कार्यकारिणी अथवा सदस्यों ने अनुचित कार्यप्रणाली का आश्रय लिया है। (२) कि श्रमिक संघ ने निर्धारित समय पर और निर्धारित विधि से कोई विवरण पत्र नहीं भेजा है। (३) कि श्रमिक संघ कर्मचारियों का प्रतिनिधि संगठन नहीं रहा है। प्रार्थनापत्र प्राप्त होने पर श्रम न्यायालय को श्रमिक संघ को कारण बताओ नोटिस देना पड़ता है कि किस कारण उसकी मान्यता का प्रत्याहरण न किया जाय। यदि न्यायालय सन्तुष्ट हो जाता है कि श्रमिक संघ मान्यता प्राप्त करने की शर्तों को अब पूरा नहीं करता तो वह मान्यता के प्रत्याहरण का आदेश दे सकता है।

पुनः मान्यता के लिये प्रार्थनापत्र

यदि एक श्रमिक संघ, जिसकी मान्यता प्रत्याहरित कर ली गई है का

पजीकरण चलता रहता है तो वह मान्यता के प्रत्याहरण के ६ महीने बाद पुन मान्यता के लिये प्रार्थनापत्र दे सकता है। उसके प्रार्थनापत्र को उसी तरह समझा जायगा जसे उसने प्रथम बार प्रार्थना की हो।

श्रमिक संघो की अनुचित कार्य-प्रणालियाँ

अधिनियम मे व्यवस्था की गई है कि मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ की ओर से निम्नलिखित कार्य प्रणालिया अनुचित समझी जाएँगी यथा—(१) श्रमिक संघ के यदि बहुसख्यक सदस्य अनियमित हडताल मे भाग लें। अनियमित हडताल का अर्थ अवधानिक हडताल अथवा श्रमिक संघ के नियमो के विरुद्ध घोषित हडताल से है। (२) श्रमिक संघ की कार्यकारिणी यदि अनियमित हडताल के लिये सलाह दे या सक्रिय रूप से सहायता प्रदान करे या उसे उकसाये तथा (३) श्रमिक संघ के किसी अधिकारी द्वारा यदि अधिनियम के अन्तर्गत या आवश्यक किसी विवरण म गलत सूचनाएँ प्रस्तुत की जाएँ।

विधान के निर्माताओ ने औद्योगिक शांति बनाये रखने पर बल दिया है क्योंकि वे इससे मनोग्रस्त थे। अनधिकृत हडतालें सरकारी सराधन तन्त्र की अनुचित, शिथिल और धीमी गति का परिणाम ही सकती है। श्रमिक संघो को चाहिये कि वे ऐसी अनियमित हडतालो का विरोध करें किन्तु साथ ही सरकारी तन्त्र को भी अपनी कार्यक्षमता बढानी चाहिये। इस आधार पर किसी श्रमिक संघ की मान्यता का प्रत्याहरण कर लेना बहुत ही कठोर दण्ड है। इसी प्रकार गलत सूचना विवरणों मे देने के लिये सबधित अधिकारी को दडित करना चाहिये जबतक कि यह सिद्ध नही हो जाता कि श्रमिक संघ के अभिलेखो के कूटकरण म अन्य अधिकारियो और कार्यकारिणी का भी हाथ था। यह अधिक अच्छा होता यदि श्रमिक संघो की ओर से की जान वाली अनुचित कार्य प्रणालियो की सूची म मान्यता प्राप्त श्रमिक संघो के अधिकारियो और सदस्यो द्वारा किसी विशेष संघ मे सम्मिलित होने के लिये श्रमिको के अभित्रासन को भी जोड दिया जाता। इसी प्रकार 'बन्द व्यापार' के सिद्धान्त को भी अनुचित श्रमिक कार्यप्रणाली माना जाना चाहिये था।

नियोजको की अनुचित कार्य प्रणालियाँ

अधिनियम मे कहा गया है कि नियोजको की ओर से निम्नलिखित कार्य प्रणालियाँ अनुचित समझी जाएँगी (१) अपने श्रमिको के संगठित होने, श्रमिक संघ के निर्माण करने सम्मिलित होने या सहायता करने के उनके अधिकार के प्रयोग तथा पारस्परिक सहायता या संरक्षण के उद्देश्य हेतु सामूहिक कार्य करने पर हस्तक्षेप करना रोक लगाना या बलप्रयोग करना, (२) किसी श्रमिक संघ के स्थापन या प्रशासन म हस्तक्षेप करना अथवा उसे वित्तीय अंशदान या अन्य सहायता प्रदान करना (३) सभी श्रमिको या किन्हीं श्रमिक-संघ-सदस्यो के सेवायोजन या

श्रमेवायोजन तथा श्रम की श्रवस्थाओं या सेवायोजन की शर्तों से सम्बद्ध मामलों की जाच या कार्यवाही मे साक्षी दने या दाग्गरागण करन के ग्राघार पर किसी श्रमिक को विमुक्त करना अथवा उसके विरुद्ध अन्यथा भेदभाव करना (४) मान्यता प्राप्त श्रमिक सघ के किसी अधिकारी को विमुक्त करना अथवा उसके विरुद्ध अन्यथा भेद भाव बरतना क्योंकि वह अधिकारी है तथा (५) मान्यता प्राप्त श्रमिक सघो के अधिकारों से सम्बद्ध व्यवस्थाओं का पालन न करना। नियोजकों को अनुचित श्रमिक कामप्रणाली अपनाने पर एक हजार रुपय तक का जुर्माना किया जा सकता है।

व्यवसाय सघ विधेयक १९५०

व्यवसाय सघ अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारो पर है जिनके द्वारा व्यवसाय सघो के रजिस्ट्रार की नियुक्ति की जाती है। अधिनियम के प्रशासन म कुछ कमियाँ दृष्टिगत हुइ हैं। १९४६ मे मुख्य श्रमायुक्त ने भारतीय श्रमिक सघान और अखिल भारतीय श्रमिक सघ सभा के प्रतिनिधि स्वरूप के विषय मे अपने प्रतिवेदन मे रजिस्ट्रार या उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा श्रमिक सघो के रजिस्टर अभिलेख तथा लेखा पुस्तिकाओं के सामयिक निरीक्षण की आवश्यकता पर बल दिया था। तदनुरूप इस विषय पर विचार किया गया और फरवरी १९५० म ससद के सम्मुख एक विधेयक विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। विधेयक मूलत एक समेकित उपाय था। इसके क्षेत्र से सेना तथा पुलिस बाहर रखी गई थी तथा सरकारी कमचारियो पर कुछ नियत्रण लगाने की प्रस्तावना की गई थी। विधेयक की मुख्य व्यवस्थाएँ निम्नलिखित थी —

(१) इसके द्वारा श्रम न्यायालय से मान्यता प्राप्ति के लिये निम्नलिखित आदेश की शर्तों म परिवतन करन का प्रयत्न किया गया था यथा (i) जहा मान्यता के लिये एक से अधिक सघ प्राथना करें सबसे अधिक सदस्यता वाले सघ को प्राथमिकता देनी चाहिये (ii) जनपद कमचारियो के श्रमिक सघ को यदि उसम पूर्ण तया जनपद कमचारी नहीं हैं या वह सघ किसी एसे श्रमिक सघो के सघान से सम्बद्ध है जिसम अन्य सघ भी जिनके सदस्य जनपद कमचारियो के अतिरिक्त और भी कमचारी हैं सम्बद्ध हैं मान्यता नही प्रदान की जायगी (iii) अस्पताल या शक्षणिक सस्थाओं के कमचारियो का श्रमिक सघ यदि उसमे पूर्णतया अस्पताल या शक्षणिक सस्थाओं के कमचारी जसा भी हो सदस्य नही हैं अनिवाय मान्यता के लिय अधिकारी नही होंगे और (iv) एक श्रमिक सघ को जिसमे आंशिक रूप से निरीक्षण कमचारी तथा अशत अन्य कमचारी हो अथवा कुछ रक्षा प्रहरी वग के कमचारी और कुछ अन्य वग के कमचारी हो श्रम न्यायालय से मान्यता नही दी जायगी।

(२) विधेयक म पजीकृत श्रमिक सघो के निरीक्षण के उद्देश्य से निरीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी। इसक द्वारा श्रमिक सघो को पजीकरण के लिये अधिमान्य शर्तों को भी बढ़ाने का प्रयास किया गया था।

(३) व्यवसाय संघ के नियमों में सदस्यों द्वारा देय चंदे की दर, व परिस्थितियाँ, जिनमें सदस्य का नाम सदस्य सूची में से हटा दिया जायगा, सदस्यों के विरुद्ध, जो बिना कार्यकारिणी के अनुमोदन के हड़ताल या तालाबंदी का आश्रय लेते हैं या जो संघ के नियमों का उल्लंघन करते हैं अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की प्रक्रिया तथा संघ के अधिकारियों के विरुद्ध जो संघ या अधिनियम के नियमों का उल्लंघन करते हैं कार्यवाही करने की प्रक्रिया का भी निर्दिष्ट किया जाना था।

(४) विधेयक में पंजीकृत श्रमिक संघों द्वारा सदस्य सूची रखने, प्रत्येक सदस्य द्वारा भुगतान किये गये चंदे का विवरण रजिस्टर में लिखने तथा निर्धारित रूप से लेखा पुस्तिकाओं और बैठक की कार्यवाही का पूरा ब्यौरा, रखने की व्यवस्था की गई थी।

(५) विधेयक के अनुसार उन संघों की कार्यकारिणी में जो पूर्ण या आंशिक रूप से जनपद कर्मचारियों के हों बाहरी लोग नहीं रखे जाते थे। अन्य संघों के विषय में बाहरी लोगों की संख्या कार्यकारिणी की कुल संख्या का एक तिहाई अथवा चार से अधिक नहीं जो भी कम हो, निर्धारित की गई थी। किसी श्रमिक संघ द्वारा अनुचित श्रमिक-कार्यप्रणाली अपनाने पर बाहरी पदाधिकारियों को तीन वर्ष के लिए श्रमिक संघ के किसी पद को धारण करने के अयोग्य कर दिया जाता था।

(६) विधेयक में संघों के पंजीकरण के निरसन की व्यवस्था की गई थी यदि वे अपने नियमों या अधिनियम की किन्हीं व्यवस्थाओं का भंग करने के दोषी हैं अथवा यदि वे किसी परिनिर्णय अध्यादेश अथवा समझौते को मानने में असफल होते हैं।

(७) जनपद कर्मचारियों के संघों पर कुछ प्रतिबंध लगाये गये थे। पूर्ण या आंशिक रूप से जनपद कर्मचारियों के संघों में बाहरी लोग पदाधिकारी नहीं हो सकते थे। ऐसे संघों के नियमों द्वारा अपने सभी सदस्यों पर किसी भी प्रकार के राजनैतिक कार्यकलापों में भाग लेने पर रोक लगायी जाती थी तथा दोषी सदस्यों के बहिष्कार की व्यवस्था की जाती थी। इस नियम के पालन न करने पर पंजीकरण का निरसन किया जा सकता था। सरकारी कर्मचारियों चाहे वे जनपद कर्मचारी हों अथवा नहीं, को राजनैतिक कोष की स्थापना की अनुमति नहीं दी जाती थी।

(८) कार्यकारिणी के सदस्यों या श्रमिक संघ के अधिकारियों के निर्वाचन के विवादों का श्रम न्यायालय द्वारा सुनवाई के लिए भी व्यवस्था की गई थी।

व्यवसाय संघ विधेयक को प्रवर समिति के सुपुर्द कर दिया गया था। चूंकि संसद के भंग होने से पहले इसे पारित नहीं किया जा सका इसलिए यह व्यपगत हो गया। नई संसद में सरकार ने इसे पुनः प्रस्तुत नहीं किया। इसमें श्रमिक संघों का पंजीकरण व्यवसाय संघ अधिनियम १९२६ द्वारा ही शासित होता रहा है।

श्रमिक संघ और श्रमिक विधान

श्रमिक वर्गों के हितों को रक्षित और प्रवर्तित करने के लिए राज्य ने बहुत से विधान पारित किये हैं। श्रमिकों के सामान्य हितों को प्रभावित करने वाले प्रश्नों को सामूहिक रूप से द्विदलीय या त्रिदलीय विचार विमर्श के माध्यम से हल करना सरकार की घोषित नीति है। इसलिए सरकार ने सहमत प्रमाण स्थापित करने तथा श्रम विधानों के प्रशासन और उन्हें लागू करने में श्रमिकों को अधिकाधिक सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है। इनमें से कुछ विधान श्रमिक संघ अधिकारियों को यह अधिकार भी प्रदान करते हैं कि वे व्यथित श्रमिकों के हितों का उपयुक्त अधिकारियों के समक्ष प्रतिनिधित्व करें।

केन्द्रीय सरकार के विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत स्थापित भिन्न भिन्न वैधानिक संस्थाओं में कर्मचारियों के प्रतिनिधित्व द्वारा इस उद्देश्य के लिए कैसे श्रमिकों का सहयोग और समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है—इसका यहाँ संक्षिप्त निरूपण किया गया है। वस्तुतः श्रम समस्याओं को सुलझाने में वार्तालाप और विचार विमर्श के प्रभाव पर श्रम मंत्रालय के विश्वास का यह प्रतीक है। वैधानिक संस्थाएँ जिनकी स्थापना की गई है प्रायः अपने स्वरूप में त्रिदलीय हैं जिनमें राज्य नियोजकों और कर्मचारियों के हितों का प्रतिनिधित्व किया जाता है। केन्द्रीय विधानों के अन्तर्गत प्रवर्तित संयुक्त विचार विमर्श तंत्र की ये एक अंग हैं। ऐसा सोचा जाता है कि कर्मचारियों के प्रतिनिधित्व का इन योजनाओं से श्रमिकों में रुचि पैदा होगी, कर्मचारियों और प्रबंधकों के बीच अधिक अच्छी समझदारी से औद्योगिक सद्भावना प्रवर्तित होगी, सामूहिक सौदाकारी सुदृढ़ होगी तथा विभिन्न वैधानिक व्यवस्थाओं को सफलता से कार्यान्वित किया जा सकेगा। अनिवार्य संयुक्त विचार विमर्श में नियोजक कर्मचारी अच्छे संबंधों की स्थापना के लिए एच्छिक संयुक्त तंत्र के विकसित और सशक्त होने तथा औद्योगिक विवादों को रोकने और सुलझाने की आशा की जाती है।

स्थापन विधान

फैक्ट्री अधिनियम १९४८ के अन्तर्गत फैक्ट्रियों के अन्दर कार्य की अवस्थाओं को विनियमित करने तथा नियोजकों द्वारा फैक्ट्री कर्मचारियों के लिए कुछ कल्याणकारी सुविधाएं प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। कैंटीन के प्रबंध में श्रमिकों के प्रतिनिधित्व की भी अधिनियम में व्यवस्था है। राज्य सरकार किसी फैक्ट्री या फैक्ट्रियों के वर्ग के लिए नियम बना सकती है कि उनमें नियुक्त श्रमिकों के प्रतिनिधियों या श्रमिकों के लिए कल्याणकारी व्यवस्थाओं के प्रबंध में सहयोग लिया जाय। श्रमिकों को मजदूरी सहित वार्षिक छुट्टी प्राप्त करने का अधिकार भी दिया गया है। कार्य की अनवरतता सुनिश्चित करने के लिए ऐसी छुट्टी की स्वीकृति फैक्ट्री के

अधिष्ठाता या प्रबंधक तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों के बीच समझौते के द्वारा विनियमित की जा सकती है।

रोपण श्रमिक अधिनियम १९५१ के अन्तर्गत श्रमिकों के कल्याण तथा रोपण उद्योग में काम की अवस्थाओं को विनियमित करने की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक बागान में जहाँ साधारणतया १५० श्रमिक काम करते हों, कैंटीन की स्थापना की जानी चाहिए। प्रत्येक नियोजक का यह भी कर्तव्य है कि बागानों में रहने वाले प्रत्येक श्रमिक और उसके परिवार के लिए आवश्यक आवास की व्यवस्था करे। आवास के विषय में विचार विमर्श करने के लिए सलाहकार मंडलों की स्थापना की व्यवस्था है जिसमें राज्य सरकार, नियोजकों और कर्मचारियों के प्रतिनिधि होते हैं।

खान अधिनियम १९५२ के अन्तर्गत जिसके द्वारा खान श्रमिकों की काम की अवस्थाओं को विनियमित किया जाता है खनन मंडलों और समितियों की स्थापना की व्यवस्था की गई है जिनको कार्य निर्दिष्ट मामलों पर अपना प्रतिवेदन देना या निर्णय करना होता है। एक खनन मंडल में अन्य हितों को प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिनिधियों के अलावा खानों के स्वामियों या उनके प्रतिनिधियों द्वारा नामांकित दो व्यक्ति तथा दो व्यक्ति खनकों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए होते हैं। खनकों के प्रतिनिधियों का नामांकन निर्धारित विधि से श्रमिक संघ या श्रमिक संघों द्वारा यदि उनकी कुल सदस्यता खनकों की संख्या का एक चौथाई है, किया जाता है। किन्तु यदि ऐसे बड़े संघ नहीं हैं तो एक या अधिक पंजीकृत श्रमिक संघ, जिनकी कुल सदस्यता एक हजार खनकों से कम नहीं है एक श्रमिक प्रतिनिधि का निर्धारित विधि से नामांकन करते हैं तथा दूसरे का नामांकन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जाता है। अन्य व्यक्तियों के अलावा खान में नियुक्त व्यक्तियों के हितों को प्रतिनिधित्व करने के लिए समिति में दो व्यक्ति और भी सम्मिलित किये जाते हैं। उनमें से एक का नामांकन सम्बद्ध खान के स्वामी, अभिकर्ता या प्रबंधक द्वारा किया जाता है तथा दूसरे का नामांकन खान में नियुक्त खनकों के ऐसे संगठनों जिन्हें सरकार द्वारा मान्यता दी गई है की सलाह पर केन्द्रीय सरकार करती है। दुर्घटनाओं की सूचनाएँ निर्धारित अधिकारियों को देनी होती हैं तथा साथ ही उसकी एक प्रतिलिपि उसी तिथि से दो महीने तक एक के लिये श्रमिक संघ अधिकारियों द्वारा निरीक्षण हेतु विशेष सूचना-पट्ट पर प्रदर्शित करनी होती है।

कोयले की खानों में सुरक्षा कोयला खान सुरक्षा (क्षेप्यभरण) अधिनियम १९२९ द्वारा प्रदान की गई है। सुरक्षा कार्यों के लिए व्यय इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से स्थापित कोयला खान क्षेप्यभरण कोष से लिया जाता है। अधिनियम के अन्तर्गत सदर्भित किन्हीं मामलों की जाँच के लिये एक जाँच समिति की भी स्थापना की जा सकती है। इस समिति में श्रमिकों के प्रतिनिधित्व की भी व्यवस्था की गई है क्योंकि कोयला खानों में नियुक्त श्रमिकों के हितों को प्रतिनिधित्व करने के लिए केन्द्रीय

सरकार द्वारा एक व्यक्ति का नामांकन किया जाता है। इस अधिनियम को निरसित करके कोयला खान (संरक्षण और सुरक्षा) अधिनियम १९५२ द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है जिसमें इसी प्रकार की व्यवस्थाएँ निहित हैं।

वाणिज्य जलयान से सम्बन्धित विभिन्न मामलों का विनियमन वाणिज्य जलयान अधिनियम १९५८ द्वारा किया जाता है। राष्ट्रीय हितों की सर्वोत्तम रूप से सेवा करने तथा भारतीय वाणिज्यिक समुद्रयान के निपुण संधारण के सुनिश्चयन और विकास को बढ़ाने के लिए अधिनियम में राष्ट्रीय जलयान मंडल तथा जलयान विकास कोष समिति की स्थापना के लिए व्यवस्था की गई है। मंडल में जहाज के स्वामियों और सामुद्रिकों के प्रतिनिधियों की संख्या समान होती है। गोदी श्रमिक (सेवायुक्ति विनियमन) अधिनियम १९४८ द्वारा गोदी श्रमिकों के रोजगार को विनियमित किया जाता है। अधिनियम के अन्तर्गत पैदा होने वाले मामलों पर सलाह के लिए सलाहकार समितियों की स्थापना की जाती है। इन समितियों में सरकार, गोदी श्रमिकों तथा नियोजकों को बराबर का प्रतिनिधित्व दिया गया है।

मजदूरी विधान

मजदूरी देय अधिनियम १९३६ से औद्योगिक श्रमिकों को मजदूरी भुगतान करने का विनियमन किया जाता है। इसमें व्यवस्था की गई है कि निर्धारित और अनुमोदित कटौतियों के बाद पूरी मजदूरी समय से भुगतान करनी चाहिए। मजदूरी से की गई कटौतियों से पैदा होने वाले दावों तथा मजदूरी का भुगतान देर से करने के मामलों का निबटारा इस उद्देश्य के लिए नियुक्त सरकार द्वारा उपयुक्त अधिकारी करते हैं। पंजीकृत श्रमिक संघ का कोई अधिकारी जिसे लिखित रूप में अधिकार दिया गया हो समुचित अधिकारी के सम्मुख अनधिकृत कटौतियों या मजदूरी का भुगतान देर में होने से खिन्न व्यक्तियों के मामलों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। यदि खिन्न श्रमिक एक ही न भुगतान करने वाले वर्ग से सम्बद्ध हैं तो मजदूरी के दावे के लिए एक ही प्रार्थनापत्र दिया जा सकता है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८ के द्वारा कुछ सेवायोजनों में जहाँ श्रमिकों के शोषण की सम्भावना है मजदूरी की न्यूनतम दर निर्धारित की जाती हैं। मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित और परिवर्तित करने हेतु सरकार को सलाह देने के लिये अधिनियम के अन्तर्गत समितियों उप समितियों तथा सलाहकार समितियों की स्थापना के लिये व्यवस्था की गई है। उपरिलिखित समितियों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये राज्य सरकारों द्वारा सलाहकार मंडलों की नियुक्ति की जाती है तथा राज्य सलाहकार मंडलों के कार्यकलापों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारों को न्यूनतम मजदूरी दरें निर्धारित और परिवर्तित करने के मामलों में सलाह देने के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा केन्द्रीय सलाह

कार मंडल की स्थापना की जाती है। इन विभिन्न समितियों, उप समितियों, सलाहकार समितियों तथा सलाहकार उप समितियों, राज्य सलाहकार मंडलों और केन्द्रीय सलाहकार मंडल में नियोजकों और श्रमिकों को समान रूप से प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। किन्तु प्रतिनिधियों का नामांकन राज्य द्वारा किया जाता है। ये सम्बद्ध नियोजकों अथवा श्रम संघों द्वारा निर्वाचित या नियुक्त नहीं किये जाते हैं। पंजीकृत श्रमिक संघ का कोई पदाधिकारी यदि उसे लिखित रूप से अधिकार दिया गया हो, समुचित अधिकारी के सम्मुख कर्मचारी जिसे अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की दर से कम भुगतान किया गया हो, के मामले का प्रतिनिधित्व कर सकता है। यदि अनुसूचित नियोजन में अनेक कर्मचारी हैं तो उनके सम्बन्ध में एक ही प्रार्थनापत्र दिया जा सकता है।

सामाजिक बीमा तथा कल्याण

कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम १९२३ के अन्तर्गत आने वाले कुछ वर्गों के नियोजकों को काम करते समय दुर्घटनाग्रस्त होने पर अपने श्रम कारियों को क्षतिपूरक भुगतान करना पड़ता है। नियोजक उस क्षति के सम्बन्ध में क्षतिपूरक भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होता है जिसके द्वारा सात दिनों से कम के लिए श्रमिक पंगु हो जाय। अधिनियम के अन्तर्गत पैदा होने वाले दावों का निर्णय करने के लिए सरकार ने कर्मचारी क्षतिपूर्ति आयुक्तों की नियुक्ति की है। लिखित रूप से अधिकृत पंजीकृत श्रमिक संघ का कोई अधिकारी क्षत कर्मचारी की ओर से आयुक्त के सम्मुख उपस्थित हो और उसके लिए प्रार्थनापत्र दे सकता है।

राज्य कर्मचारी बीमा अधिनियम १९४८ भारत का प्रथम व्यापक सामाजिक सुरक्षा विधान है। इसके अन्तर्गत सम्बद्ध व्यक्तियों के लिए बीमारी, प्रसूति, अशक्तता, आश्रित तथा चिकित्सा हितलाभों की व्यवस्था की गई है। अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित विभिन्न निकाय हैं : राज्य कर्मचारी बीमा निगम, उसकी स्थायी समिति, चिकित्सा हितलाभ परिषद्, क्षेत्रीय मंडल, स्थानीय समितियाँ, क्षेत्रीय तथा स्थानीय हितलाभ परिषदें। इन निकायों में नियोजकों के बराबर सम्बद्ध श्रमिकों के प्रतिनिधियों के नामांकन की व्यवस्था है। अधिनियम के अन्तर्गत पैदा होने वाले विवादों और प्रश्नों को सुलझाने के लिए राज्य बीमा न्यायालयों की स्थापना की गई है। लिखित रूप से अधिकृत पंजीकृत श्रमिक संघ का कोई पदाधिकारी श्रमिकों की ओर से न्यायालय में उपस्थित हो सकता है।

कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, १९५२ के द्वारा फैक्ट्रियों और प्रतिष्ठानों में कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि की स्थापना की व्यवस्था की गई है। भविष्य निधि का प्रबंध न्यासी मंडलों के हाथ में होता है। सरकार, कर्मचारी और नियोजकों, का मंडलों में समान संख्या में प्रतिनिधित्व होता है। प्रतिनिधियों का

नामाकित सम्बद्ध कर्मचारियों और नियोजकों अथवा उनके प्रतिनिधि संगठनों के साथ विचार विमर्श करने के बाद सरकार द्वारा किया जाना है। यह विधि दोनों केन्द्रीय मंडल और राज्य मंडलों के लिये लागू होती है।

कोयला खान भविष्य निधि तथा बोनस योजना अधिनियम १९४८ के अन्तर्गत कोयला खानों में नियुक्त व्यक्तियों के लिये भविष्य निधि और बोनस योजनाएँ बनाने की व्यवस्था है। त्रिदलीय न्यासि मंडल के द्वारा भविष्य निधि का प्रबन्ध किया जाता है जिसमें नियोजकों के प्रतिनिधियों की संख्या से श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संख्या कम नहीं होती है।

अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम १९४६ में अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि की स्थापना के लिये व्यवस्था की गई है ताकि अभ्रक खनन उद्योगों में नियुक्त श्रमिकों के लिये कल्याणकारी कार्यकलापों की वृद्धि के हेतु वित्त प्रदान किया जा सके। अधिनियम या निधि के प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी विषय पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देने के लिये दो सलाहकार समितियों एक मद्रास राज्य तथा दूसरी बिहार राज्य के लिये, की केन्द्रीय सरकार द्वारा संघटन की अधिनियम के अन्तर्गत व्यवस्था है। समिति के सदस्य नामांकित किये जाते हैं तथा अभ्रक खानों के मालिकों तथा अभ्रक खनन उद्योग में नियुक्त श्रमिकों का समान प्रतिनिधित्व देना होता है।

इसी प्रकार कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम १९४७ के अन्तर्गत कोयला खनन उद्योग में नियुक्त श्रमिकों के कल्याण को प्रवर्तित करने तथा वित्त प्रदान करने के लिये कोयला खान श्रमिक आवास तथा सामान्य कल्याण निधि की स्थापना की गई है। अधिनियम के प्रशासन से सम्बन्धित विषयों पर सरकार को सलाह देने के लिये केन्द्रीय सरकार को एक सलाहकार समिति की स्थापना करनी होती है। कोयला खान मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि बराबर संख्या में इस समिति के लिये नामांकित किये जाते हैं।

औद्योगिक सम्बन्ध

औद्योगिक सेवावृत्ति (स्थायी आदेश) अधिनियम १९४६ के अन्तर्गत प्रत्येक औद्योगिक संस्थान के नियोजक को अपनी सेवावृत्ति की शर्तों को स्पष्ट करना होता है। अधिनियम के साथ संलग्न अनुसूची में उल्लिखित विषयों के संदर्भ में स्थायी आदेशों में व्यवस्था की जाती है। उनमें बहुत से अन्य औद्योगिक मामलों के अलावा औद्योगिक संस्थानों में नियुक्त कर्मचारियों तथा श्रमिक संघ का नाम जिसमें वे सम्बद्ध हैं के विषय में निर्धारित विवरण निहित होते हैं। स्थायी आदेशों का प्रारूप प्रमाणित करने वाले अधिकारी को श्रमिक संघ के पास सूचनार्थ तथा उनका मत प्राप्त करने के लिये भेजना पड़ता है। यदि श्रमिक संघ

नहीं हैं तो उन्हें निर्धारित विधि से कर्मचारियों को भेजना होता है। श्रमिक संघों तथा कर्मचारियों के प्रतिनिधियों का अधिकार है कि वे आपत्तियाँ दाखिल करें और प्रमाणन अधिकारी को उन्हें सुनना पड़ता है। स्थायी आदेशों की अधिकृत प्रमाणित प्रतिलिपि श्रमिक संघों या कर्मचारियों के अन्य निर्धारित प्रतिनिधियों को भेजना होती है। प्रमाणन अधिकारी के आदेश से असन्तुष्ट व्यक्तियों को पुनर्विचार प्राधिकारी के पास अपील करने का अधिकार होता है जिसे कर्मचारियों की कठिनाइयाँ सुननी पड़ती हैं तथा परिवर्तित स्थायी आदेशों की प्रतिलिपि श्रमिक संघों या कर्मचारियों के निर्धारित प्रतिनिधियों को भेजनी होती है। सम्बद्ध कर्मचारियों और नियोजक के बीच समझौते के अलावा अन्तिम रूप से प्रमाणित स्थायी आदेशों को लागू होने की तिथि से ६ मास बीतने के पहले संशोधित नहीं किया जा सकता है। वर्तमान स्थायी आदेशों में संशोधनार्थ इसी प्रकार के अधिकार कर्मचारियों को देने के लिए औद्योगिक सेवायुक्ति (स्थायी आदेश) अधिनियम को औद्योगिक विवाद (संशोधन और विविध व्यवस्था) अधिनियम १९५६ द्वारा संशोधित किया गया था। मूल कानून में नियोजकों को ही यह अधिकार दिया गया था। समुचित सरकार के हस्तक्षेप के बिना स्थायी आदेशों के प्रयुक्तीकरण तथा विवेचन से अपने विभेदों को सुलझाने के लिए दलों द्वारा श्रम न्यायालय की सहायता लेने की व्यवस्था भी की गई थी।

औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ में अच्छे श्रम प्रबन्ध संबंधों के प्रवर्तन तथा औद्योगिक विवादों के सुलझाव और अनुसन्धान करने के लिए व्यवस्था की गई है। इस हेतु अधिनियम के अन्तर्गत समझौता अधिकारियों, समझौता मंडलों, जाँच समितियों, जाँच न्यायालयों, श्रम न्यायालयों, औद्योगिक न्यायाधिकरणों तथा राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों की उत्पत्ति की गई है। समुचित सरकार किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान में जहाँ साधारणतया १०० या अधिक कर्मचारी काम करते हों, कार्यसमिति की स्थापना के लिए आदेश दे सकती है। कार्यसमितियाँ नियोजक और कर्मचारियों के बीच सद्भावना और उनके संबंध बनाये रखने तथा सामान्य हित से सम्बद्ध मामलों के विभेदों को सुलझाने के लिए उत्तरदायी होती हैं। कार्यसमितियों में नियोजकों और प्रतिष्ठान में नियुक्त कर्मचारियों के बराबर बराबर प्रतिनिधि होते हैं। कर्मचारियों के प्रतिनिधि निर्धारित विधि से प्रतिष्ठान में नियुक्त कर्मचारियों में से तथा यदि उनका कोई श्रमिक संघ अधिनियम १९२६ के अन्तर्गत पंजीकृत श्रमिक संघ है तो उसकी सलाह से चुने जाते हैं। समुचित सरकार औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए समझौता मंडलों की भी स्थापना कर सकती है। एक मंडल में स्वतंत्र अध्यक्ष तथा दो या चार अन्य सदस्य होते हैं। ये सदस्य सम्बद्ध दलों के सुझाव पर समान संख्या में उनके पक्ष का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किये जाते हैं। यदि निर्धारित समय के भीतर कोई दल अपने प्रतिनिधियों की प्रस्तावना नहीं कर पाता

तो समुचित सरकार ऐसे व्यक्तियो की नियुक्ति करती है जो उस दल का प्रतिनिधित्व करने के उपयुक्त समझे जाते हैं। उपरिलिखित विधि से मडल मे रिक्त हुये स्थान भरे जाते हैं। जाच न्यायालयो श्रम न्यायालयो तथा न्यायाधिकरणो के साथ परामर्शक को सम्मिलित करने जो इन विवादो को उनके समक्ष होने वाली कार्यवाहियो मे सलाह दे सकें की व्यवस्था हेतु वाद मे औद्योगिक विवाद अधिनियम १६४७ को सशोधित किया गया था। सरकार न्यायाधिकरण के लिये दो व्यक्तियो या परामर्शको की नियुक्ति कर सकती है। एक न्यायालय श्रम न्यायालय न्यायाधिकरण या राष्ट्रीय न्यायाधिकरण भी एक या अधिक व्यक्तियो को, जिन्हें विचारणीय विषय का विशिष्ट ज्ञान हो परामर्शक या परामर्शको के रूप मे सलाह देने के लिये नियुक्त कर सकता है। किन्तु परामर्शको की सलाह मानने के लिये वे बाध्य नही होते हैं। फिर भी यह आशा की जाती है कि जाँच या अधिनिर्णय की कार्यवाहियो के साथ उनके सहयोग से उचित और शीघ्र निर्णय की गारटी हो जायगी तथा दोनो दलो का अधिनिर्णय के प्रति विश्वास बढ जायगा। पीठासीन अधिकारियो जो उद्योग की अवस्थाओ श्रम प्रबध सबधो की जटिलताओ तथा विवाद की विशिष्टताओ से परिचित नही होते, को परामर्शको द्वारा सहायता दी जाती है। यदि विवाद मे सम्बद्ध दल जो प्रत्येक पक्ष के बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हो ऐसा चाहते हैं तो समुचित सरकार को मडल या न्यायालय या न्यायाधिकरण को विवाद भेजना पडता है। विवाद के किसी भी दल का प्रतिनिधित्व किसी भी सराधन कार्यवाही या कार्यवाहियो की जाच न्यायालय मे वकील द्वारा नही की जा सकती है। किन्तु श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण के सम्मुख दूसरे दल की सहमति तथा श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण जैसा भी हो की अनुमति पर दलो का प्रतिनिधित्व वकीलो द्वारा किया जा सकता है। एक कर्मचारी जो विवाद मे एक पक्ष है का प्रतिनिधित्व अधिनियम के अन्तर्गत किसी कार्यवाही मे पजीकृत श्रमिक सघ जिसका कि वह सदस्य है, के किसी अधिकारी अथवा सघान के किसी अधिकारी द्वारा जिससे श्रमिक सघ सम्बधित है किया जा सकता है। यदि कर्मचारी किसी श्रमिक सघ का सदस्य नही है तो उसका प्रतिनिधित्व सम्बधित श्रमिक सघ के किसी यथाविधि अधिकृत अधिकारी अथवा उस उद्योग जिसमे वह नियुक्त है मे नियुक्त किसी अन्य कर्मचारी द्वारा किया जा सकता है।

श्रमिक सघ के सक्रिय कार्यकर्ताओ का बलीकरण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिये औद्योगिक विवाद अधिनियम १६४७ को सशोधित किया गया। इसके अनुसार किसी चल रहे विवाद की कार्यवाहियो मे सम्मिलित किसी रक्षित कर्मचारी के विरुद्ध नियोजक बिना प्राधिकारी की लिखित अनुमति के जिसके यहा कार्यवाही चल रही है, किसी प्रकार की कार्यवाही नही कर सकते है। एक रक्षित कर्मचारी वह कर्मचारी होता है जो पजीकृत श्रमिक सघ का एक अधिकारी होने के नाते सस्थान से

सम्बन्धित है तथा जिसे इस सवध म बनाये गये नियमो के अनुसार ऐसी मान्यता मिली है। प्रत्येक सस्थान मे रक्षित कमचारियो की सख्या कुल नियुक्त कमचारियो की सख्या का एक प्रतिशत होते हुये कम से कम पाँच तथा अधिक से अधिक सौ होती है। सस्थान से सम्बन्धित विभिन्न श्रमिक सघो के बीच रक्षित कमचारियों की सख्या विनिश्चित करने तथा वह विधि जिसके द्वारा उन्हे चुना जायगा और मान्यता दी जायगी के सम्बन्ध म सम्बद्ध सरकार को नियम बनाने होते हैं।

कायकारी पत्रकार (सेवा की शर्तें तथा विविध व्यवस्थाएँ) अधिनियम १९५५

कायकारी पत्रकारो के लिये मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित करने हेतु केन्द्रीय सरकार कायकारी पत्रकार (सेवा की शर्तें तथा विविध व्यवस्थाएँ) अधिनियम १९५५ के अन्तगत वेतन मडल का सघटन कर सकती है। मडल मे समाचार पत्र सस्थानो से सम्बद्ध नियोजको तथा कायकारी पत्रकारो का प्रतिनिधित्व करने के लिये समान सख्या म व्यक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा नामाकित किये जाते हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा मडल के अध्यक्ष के रूप म एक स्वतन्त्र व्यक्ति की भी नियुक्ति की जाती है। प्रत्येक कायकारी पत्रकार को मडल द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से किसी भी हालत म कम मजदूरी नही दी जाती है। कुछ सशोधनो के अधीन होते हुए औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ की व्यवस्थाएँ कायकारी पत्रकारो पर भी लागू होती है।

विविध

कुछ उद्योगो के विकास और विनियमन के लिये उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम १९५१ म पारित किया गया था। अधिनियम के अन्तगत सघटित केन्द्रीय सलाहकार परिषद् जो अधिनियम के प्रशासन म सम्बन्धित मामलो म केन्द्रीय सरकार को सलाह देती है मे औद्योगिक प्रतिष्ठानो के मालिको तथा उन अनुसूचित उद्योगो म नियुक्त व्यक्तियो को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाता है। कुछ नियोजित कार्यों को करने के लिये अनुसूचित उद्योगो म केन्द्रीय सरकार विकास परिषदो की भी स्थापना कर सकती है। इन विकास परिषदो म अन्य हितो का प्रतिनिधित्व होने के अतिरिक्त अनुसूचित उद्योगो के औद्योगिक प्रतिष्ठानो के मालिको और कमचारियो के भी प्रतिनिधि होते है।

१८

राज्य-नीति

भारत में ब्रिटिश सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों के विकास में बहुत सीमित रुचि ली। सरकार द्वारा रेलों का प्रारम्भ बहुत पहले किया गया था तथा बाद में डाक सेवाओं की व्यवस्था की गई। फिर भी केवल स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के काल में ही सार्वजनिक क्षेत्र काफी महत्त्वपूर्ण हो सका। योजनाबद्ध आर्थिक विकास के युग का श्रीगणेश होने तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना ऐसी कई योजनाएँ अपनाये जाने की शृंखला में प्रथम के रूप में लागू करने से संतुलित और तेज विकास की नींव डालने का सामरिक प्रयत्न किया गया था। मूल उद्देश्य सतत आर्थिक विकास के लिये ठोस आधार, अधिकाधिक सेवामुक्ति के लिये बढ़ते हुए अवसर तथा जन समूहों के लिये उन्नत जीवनस्तर तथा काम की अवस्थाओं की व्यवस्था करना है। समाज का समाजवादी स्वरूप योजनाबद्ध विकास का लक्ष्य हो गया। फलत १९५६ में एक नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। प्रस्ताव में कहा गया कि 'विशेषकर भारी उद्योगों तथा मशीन उद्योगों को विकसित करने, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तृत करने और वृहत् तथा बढ़ते हुये सहकारी क्षेत्र निर्माण के लिये आर्थिक विकास की दर को त्वरित करना तथा औद्योगीकरण को गतिशील करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी के माध्यम से अर्जनकारी सेवायुक्ति के बढ़ते हुये अवसरों तथा जनसमूहों के लिये उन्नत जीवनस्तर और काम की अवस्थाओं के हेतु आर्थिक आधार की व्यवस्था की जा सकती है। समान रूप से आय और धन की वर्तमान असमानताएँ कम करना तथा विभिन्न क्षेत्रों में कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में आर्थिक शक्ति के एकाधिकार और केन्द्रीयकरण को रोकना आवश्यक है। तदनुरूप राज्य नये औद्योगिक प्रतिष्ठानों को स्थापित करने तथा यातायात सुविधाओं का विकसित करने के लिये प्रगतिशील रूप से प्रत्यक्ष और प्रधान उत्तरदायित्व सभालेगा। राज्य बढ़ते हुए स्तर पर राज्य व्यापार का उपक्रम करेगा।' आगे यह भी कहा गया कि 'आधारभूत और युद्धावश्यक महत्त्व के सभी उद्योगों अथवा लोकोपयोगी सेवाओं को सार्वजनिक क्षेत्र में रहना चाहिये। अन्य उद्योगों जो आवश्यक हैं तथा जिनमें उस स्तर के विनियोग की आवश्यकता है जिसकी व्यवस्था वर्तमान परिस्थितियों में राज्य ही कर सकता है, को भी सार्वजनिक क्षेत्र में होना चाहिये। अत राज्य

को विस्तृत क्षेत्र में उद्योगों के भविष्यकालीन विकास के लिये प्रत्यक्ष जिम्मेदारी लेनी है।"

उद्योगों को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया था। प्रथम वर्ग में आवश्यक रूप से आधारभूत मुख्य तथा युद्धावश्यक सत्रह उद्योग आते हैं जिनके विकास की पूर्ण जिम्मेदारी राज्य ने स्वयं ली। किन्तु इसके लिये वह निजी साहसिकों से सहायता प्राप्त कर सकता है। दूसरे वर्ग में बारह उद्योग सम्मिलित किये गये। उन पर प्रगतिशील ढंग से राज्य का स्वामित्व होना था तथा सरकारी प्रयत्न से ही नये प्रतिष्ठानों की स्थापना की जानी थी। अन्य शेष उद्योग सरकार के नियन्त्रण के अधीन निजी क्षेत्र के लिये छोड़ दिये गये।

उपरोक्त नीति के परिप्रेक्ष्य में सार्वजनिक क्षेत्र का त्वरित विकास होता रहा है। 'निरपेक्ष और तुलनात्मक दोनों ही दृष्टि से निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक त्वरित गति से सार्वजनिक क्षेत्र के विकास की आशा की जाती है।'[१] परिणामस्वरूप "१९५०–५१ की तुलना में तृतीय योजना के अन्त तक सार्वजनिक क्षेत्र का अंशदान संगठित उत्पादन उद्योगों में दो प्रतिशत से भी कम से लगभग एक चौथाई तथा खनिज उत्पादन में दसवें हिस्से से भी कम से एक तिहाई से अधिक बढ़ जायेगा।[२]

इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर श्रम नीति में भी आमूल परिवर्तन होने थे। '१९१४ से १९४० की अवधि के अधिकांश भाग में सरकार की श्रमनीति उद्योग में श्रम के निष्क्रिय नियामक के रूप में रही। सभी संसदीय और सरकारी हस्तक्षेपों के अनिवार्यतः दो उद्देश्य थे—(१) औद्योगिक वातावरण की अतिघोर बुराइयों के विरुद्ध श्रमिकों के लिये न्यूनतम वैधानिक संरक्षण की व्यवस्था करना तथा (२) इसको निरापद करना कि श्रम और प्रबंध के झगड़े राज्य की सुरक्षा और शांति को खतरा न पैदा कर दें।[३] तथापि द्वितीय विश्वयुद्ध काल में अनिवार्य पंचनिर्णय के सिद्धान्त को लागू किया गया। राज्य ने श्रम संबंधों में अधिकाधिक हस्तक्षेप करना भी प्रारम्भ कर दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में श्रम विधानों की बाढ़ सी आ गई। उद्देश्य यही था कि श्रमिक वर्गों की स्थिति में चतुर्मुखी सुधार हो। फैक्टरी अधिनियम और खान अधिनियम में आमूल संशोधन किये गये। बहुत से कल्याणकारी विधानों को पारित किया गया तथा सामाजिक सुरक्षा लाभों के सम्बन्ध में राज्य कर्मचारी बीमा योजना तथा भविष्य निधि लाभों को लागू करके शुभारम्भ किया गया। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के द्वारा असंगठित श्रमिकों के शोषण को रोकने के लिये प्रयास किया गया। औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में औद्योगिक विवाद

१ तृतीय योजना पृ० ७
२ तृतीय योजना पृ० ११
३ इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० २४२

अधिनियम १९४७ द्वारा उन्हें नियमित करने के लिये राज्य को पर्याप्त अधिकार दिये गये। काम की शर्तों को पारिभाषित करने तथा अनुशासन बनाये रखने के उद्देश्य से औद्योगिक सेवावृत्ति स्थायी अधिनियम को पारित किया गया।

भारत में विकसित सार्वजनिक क्षेत्र के संदर्भ में इन सभी विषयों को परखना चाहिये। क्योंकि आर्थिक जीवन पर इनका अधिकाधिक प्रभाव पड़ना निश्चित है। 'जैसे-जैसे सार्वजनिक क्षेत्र का सापेक्ष भाग बढ़ता जायगा आर्थिक विकास में इसकी भूमिका और स्थिति और अधिक महत्त्वपूर्ण होती जायगी तथा राज्य की स्थिति सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था के निर्धारण और स्वरूप के निर्धारण करने में तब और भी सहायक हो जायगी।'[1] यह विचार कि प्रगतिशील श्रमनीति में राज्य को सबसे आगे होना पड़ेगा श्रम अनुसंधान समिति ने सुझाया था। उन्होंने लिखा था यदि अधिकतम सदस्यों के लिये अधिकतम लाभ प्राप्त करना है तो भारत में अधिकतम संख्या, जैसाकि अन्य देशों में भी है श्रमिक वर्गों की है और इसलिये यदि सामान्य व्यक्ति को उसका भावना देना है तो ऐसे आन्दोलन के निर्देशक के रूप में राज्य को विचाराधीन समस्याओं के विरुद्ध आक्रमक मोर्चा बनाना होगा।[2]

योजना में निहित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये योजना आयोग ने अपनी श्रम नीति निर्धारित की थी। योजना के लक्ष्यों का पूरा करने तथा साधारणतया आर्थिक प्रगति की उपलब्धि में श्रमिक मुख्य माध्यम है। देश में आर्थिक संगठन के सृजन में जो सामाजिक न्याय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये सर्वोत्तम होगा उसका सहयोग एक अनिवार्य तथ्य है। इस महत्त्वपूर्ण भूमिका के साथ कुछ अधिकार और दायित्व भी जुड़े हुये हैं।[3] तदनुरूप यह स्पष्ट किया गया कि 'श्रमिकों की खान, पहनने तथा रहने से सम्बद्ध अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त व्यवस्था करनी होगी ताकि वे अपने स्वास्थ्य और कार्यकुशलता को बनाये रख सकें   काम की अवस्थाएँ ऐसी होनी चाहिये जिसमें श्रमिकों के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सके तथा व्यावसायिक जोखिमों से उन्हें बचाया जा सके।'[4] यह भी कहा गया था कि श्रमिकों का भी अपना दायित्व समझना चाहिये। 'श्रमिकों की ओर से इस तथ्य को अच्छी तरह समझ जाना चाहिये कि अन्य विकसित आर्थिक व्यवस्था में उत्पादकता के ऊँचे स्तर की ठोस नींव के बिना वह अपने और समाज के लिये एक श्रेष्ठ जीवन का निर्माण नहीं कर सकते तथा इसके लिये उन्हें स्वयं महत्त्वपूर्ण योगदान देना है। समाज के लिये श्रेष्ठ जीवन स्तर के

१ तृतीय योजना, प० १४

२ प्रतिवेदन पृ० १०

३ प्रथम योजना पृ० ५७०

४ प्रथम योजना, पृ० ५७०

प्रवतन म श्रमिको की भूमिका मे ग्रत्यधिक नियमित उपस्थिति, अनुशासित व्यवहार तथा कतव्यो के निर्वाह मे सूक्ष्मतम सावधानी की स्वीकृति निहित है।"[१]

प्रथम योजना के दारान मजदूरी म सामान्य वृद्धि की कोई सभावना नहीं ग्राकी गई थी। "मजदूरी के सम्बध मे इस स्थिति पर काई भी वृद्धि देश की ग्रार्थिक स्थिरता को ग्रौर खतरे मे डाल देगी यदि यह उत्पादन के मूल्या मे प्रतिबिम्बित हुई ग्रौर परिणामस्वरूप वस्तुग्रो की कीमतें बढ गई। श्रमिको के लिये भी ऐसा कोई लाभ भ्रमात्मक सिद्ध होगा क्योंकि इसकी पूरी सभावना है कि उस लाभ का विलोप सामान्य कीमता के स्तर पर वृद्धि हो जान से जल्दी ही हो जायेगा ग्रौर इससे लम्बी ग्रवधि मे सेवायोजन की मात्रा मे भी बुरा प्रभाव पड सकता है। इसलिये मजदूरी म किसी ऐसी वृद्धि का परिहार करना चाहिये।"[२] फिर भी (१) ग्रसमानताएँ दूर करन के लिये ग्रथवा जहाँ वतमान दरें ग्रसाधारण रूप से कम हैं, तथा (२) युद्ध पूव वास्तविक मजदूरी को प्रतिस्थापित करने के लिये सयत्र के ग्राधुनिकीकरण ग्रथवा नवोनीकरण ग्रौर ग्रभिनवीकरण के परिणामस्वरूप वर्धित उत्पादकता के द्वारा निर्वाह मजदूरी के प्रति प्रथम कदम के रूप मे मजदूरी बढाई जा सकती है। यह सुझाव भी दिया गया था कि श्रमिको से इस स्थिति के प्रति सहमति की ग्राशा तभी की जा सकती है जब लाभो के वितरण पर भी नियन्त्रण लगाया जाय।'[३] विभिन्न उद्योगो ग्रौर व्यवसायो म कार्यभार के वैज्ञानिक निर्धारण तथा मजदूरी के प्रमाणीकरण की भी योजना मे व्यवस्था की गई थी।

प्रथम योजना ने वतमान सामाजिक सुरक्षा लाभो के ग्रलावा ग्रौर किसी सुविधा के लिये वादा नही किया। विभिन्न विधानो द्वारा सरक्षित काय की ग्रवस्थाग्रो को 'इस उद्देश्य के लिय पर्याप्त समझा गया था। इसलिये ग्रागे के पाच वर्षो मे ऐसे विधानो के क्रियान्वयन के लिये ग्रावश्यक प्रशासकीय उपायो पर बल देना चाहिये।"[४]

मानव शक्ति का प्रभावशाली उपयोग करने के उद्देश्य से यह सुझाव दिया गया था कि भर्ती की रीतियो म सुधार करना चाहिये तथा श्रमिको के प्राविधिक ग्रौर व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिये बढती हुई सुविधाग्रो की व्यवस्था की जानी चाहिये। सेवायोजन सगठन की सेवाग्रो को सुदृढ करना चाहिये। उद्योगो म प्रशिक्षण के कायक्रम कार्यान्वित किये जाने चाहिये। इस योजना का 'उद्देश्य पर्यवेक्षणीय कुशलता को तीन पृथक् कार्यक्रमो द्वारा उन्नत करना था—काय ग्रनुदेशन श्रमिको

१ प्रथम योजना, पृ० ५७१
२ प्रथम योजना पृ० ५८३
३ प्रथम योजना पृ० ५८३
४ प्रथम योजना पृ० ५८३

को उनके विशेष सकार्यों मे निर्देशन देकर कुशलता का विकास करना कार्य सम्बन्ध सेविवर्ग के प्रबंध को कुशलता का विकसित करना तथा कार्यरीति कार्य की रीतियों मे सुधार करने की कुशलता का विकास करना। [1] इसके लिये सामयिक रूप से प्राविधिक विशेषज्ञ की सहायता विदेशों से आमन्त्रित की जानी थी।

प्रथम योजना मे विहित नीति की पूर्ति के लिये औद्योगिक सबंधो और श्रमिक सघो की भूमिका के सीमित क्षेत्र मे श्रमनीति का विकास हमारे दृष्टिकोण से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

योजना मे निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच विभेद किया गया तथा दोनो के लिये भिन्न नीति का सुझाव दिया गया। नीति मे इस बात पर बल दिया गया कि "औद्योगिक सबध नियोजको और कर्मचारियो के बीच का ही विषय नहीं है तथा 'सामाजिक न्याय और सभी सदस्यो के हित के लिये सगठित समाज मे सभी वर्गों के हितो मे अनवरत समायोजन होना रहेगा और किसी वर्ग को उत्पादन मे हस्तक्षेप करने का कोई यथार्थ अवसर नहीं दिया जाना चाहिये जिससे समाज का जीवन अस्त-व्यस्त हो उठे। यहा तक कि जहा नियोजक और श्रमिक विरोधी शिविरो मे हो दलो के पारस्परिक सबधो के विस्तृत क्षेत्र मे उनके हितो की समानता आवश्यक रूप से स्पष्ट रहती है। [2] इसीलिये श्रमिकों के इस अधिकार को स्वीकार करते हुये कि वे अपने अधिकारो की प्रतिरक्षा तथा अपनी अवस्थाओ मे सुधार के लिये शातिपूर्ण सीधी कार्यवाही का आश्रय ले सकते हैं जब कि आर्थिक व्यवस्था प्रतिस्पर्धा निजी एकाधिकार अथवा निजी लाभो के आधार पर सगठित हो योजनाबद्ध उत्पादन के हित मे इस अधिकार को कम करने का प्रयास किया गया है। 'योजनाबद्ध उत्पादन और वितरण के लिये सगठित आर्थिक व्यवस्था जिसका उद्देश्य सामाजिक न्याय और जनसमूहो के लिये कल्याण की उपलब्धि हो केवल औद्योगिक शाति के वातावरण मे ही प्रभावशाली ढग से कार्य कर सकती है। भारत इस दिशा (औद्योगिक शातिपूर्ण वातावरण) की ओर गतिशील है। वर्तमान अवस्था मे वह आर्थिक और राजनैतिक सकटकाल से भी गुजर रहा है। इसलिये अगले पाच वर्षों के काल के सदर्भ मे देश के औद्योगिक सबधो का विनियमन इन्ही दो विचारो पर आधारित होना है तथा राज्य के लिये यह आवश्यक है कि वह वैधानिक अधिकारो से अपने को सज्जित कर ले ताकि अन्य उपायो द्वारा समझौता न होने पर वह विवादो को सुलझाने के लिये अधिनिर्णय या पचनिर्णय के लिये निर्देशित कर सके। [3] इस प्रकार यह स्पष्ट किया गया है कि अनिवार्य पचनिर्णय के सिद्धान्त को

१ प्रथम योजना पृ० ५६१

२ प्रथम योजना पृ० ५७२

३ प्रथम योजना, पृ० ५७३

अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि देश 'आर्थिक और राजनैतिक सकटकाल' से गुजर रहा है और इसलिये भी कि राज्य सभी वर्गों, विशेषकर विशेषाधिकारहीनों, के हितों की देखभाल करेगा तथा समाज के विभिन्न वर्गों के बीच न्याय की व्यवस्था करेगा।

लेकिन योजना आयोग ने औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिये सामूहिक मोलभावकारी की प्रभाविकता पर अपना विश्वास प्रकट किया। "राज्य का प्रयास होना चाहिये कि अधिकतम सीमा तक पारस्परिक समझौते, सामूहिक सौदाकारी तथा ऐच्छिक पंचनिर्णय को प्रोत्साहन मिले और फलस्वरूप औद्योगिक विवादों में अपने हस्तक्षेप तथा अपने विशिष्ट अधिकारों के प्रयोग के अवसरों को न्यूनतम कर देना चाहिये।' इसलिये विवादों के पारस्परिक निपटारे के लिये संयुक्त विचार विमर्श के प्रोत्साहन की व्यवस्था की गई थी। नियोजक व कर्मचारी के सम्बन्धों को साझेदारी के रूप में समझना है।' औद्योगिक शांति की कुंजी अन्ततः दोनों पक्षों के परिवर्तित दृष्टिकोण में निहित है तथा यह श्रमिक वर्ग और नियोजकों के नेतृत्व और साथ ही साथ सरकार का कर्तव्य होना चाहिये कि वे प्रजातंत्र की वास्तविक भावना के अनुकूल दलों के बीच नये सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रयत्न करें।"[१]

सार्वजनिक क्षेत्र को भिन्न स्तर पर रखा गया है। 'निजी प्रतिष्ठानों के एक श्रमिक की अपेक्षा सार्वजनिक प्रतिष्ठान के श्रमिक की स्थिति भिन्न है। उसे मालिक और सेवक की दोहरी भूमिका का निर्वाह करना होता है देश के नागरिक के रूप में वह मालिक है तथा प्रतिष्ठान के श्रमिक के रूप में सेवक।"[२] किन्तु 'जहाँ तक काम की अवस्थाओं और कल्याणकारी सुविधाओं का प्रश्न है, सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों को गति निर्धारक होना चाहिये तथा आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये।"[३] उनका प्रबन्ध उन लोगों के हाथ में होना चाहिये जिन्हें श्रमिकों की महत्वाकांक्षाओं के साथ सहानुभूति है। प्रगामी रूप से श्रमिकों का प्रतिष्ठान के विभिन्न मामलों में भाग लेना चाहिये तथा 'वातावरण ऐसा होना चाहिये कि श्रमिक स्वयं ही व्यवहार में साथ ही साथ सिद्धान्त में यह अनुभव करें कि वे प्रतिष्ठान में साझीदार हैं।' उसी प्रकार के निजी प्रतिष्ठानों के लिये उपलब्ध श्रमिक विधानों के लाभ सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के श्रमिकों को भी मिलने चाहिये और उन श्रमिक विधानों से छूट सिद्धान्ततः नहीं मिलनी चाहिये। इसी कारण यह कहा गया था कि 'जहां राज्य स्वयं ही नियोजक है प्रबन्ध और कर्मचारियों के बीच संबंध इस प्रकार से नियमित होने चाहिये जिसमें वे अविरल पारस्परिक सद्भावना और सफल सहयोग का उदा

१ प्रथम योजना पृ० ५७५
२ प्रथम योजना पृ० ५८०
३ प्रथम योजना पृ० ५८१

हरण प्रस्तुत कर सकें।"

इस संदर्भ में योजना में इस बात पर बल दिया गया था कि 'योजनाओं के निष्पादन में श्रमिक संघ और नियोजक संगठन यथार्थ और महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। भारत में योजनाओं के सफल क्रियान्वयन के लिये नियोजकों और श्रमिक संघों का सहयोग नितान्त आवश्यक है। योजना के निष्पादन के विभिन्न चरणों में उनका निकटवर्ती सहयोग प्राप्त करना चाहिये।'[1] इसलिये ऐसी नीति का सुझाव दिया गया जिसमें बिना किसी संकोच के पारस्परिक संबंधों के मूलभूत आधार के रूप में श्रमिकों के संघ बनाने संगठित होने तथा सामूहिक सौदाकारी करने के अधिकार को स्वीकार कर लिया जाय। श्रमिक संघों के प्रति अभिवृत्ति मात्र सहिष्णुता की नहीं होनी चाहिये। 'औद्योगिक पद्धति के अभिन्न अंग के रूप में उनका स्वागत करना चाहिये तथा उन्हें कार्य करने में सहायता देनी चाहिये।'[2]

सार्वजनिक क्षेत्र में भी श्रमिकों के संगठनों की आवश्यकता का अनुभव किया गया। स्वस्थ श्रमिक संघवाद के प्रोत्साहन तथा श्रमिकों के संगठन के अधिकार पर अनावश्यक नियंत्रण न लगाने की प्रस्तावना की गई थी। 'कर्मचारियों के हितों पर उचित रूप से विचार करने के लिये संगठित प्रतिनिधित्व आवश्यक है। कर्मचारियों की आवश्यकताओं के बढ़ाव और संरक्षण के लिये एक श्रमिक आन्दोलन सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि निजी प्रतिष्ठानों के लिये। औद्योगिक या वाणिज्यिक सरकारी प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों पर अन्य कर्मचारियों की तरह अपने श्रमिक संघ अधिकारों के प्रयोग में किसी तरह का नियंत्रण नहीं लगाना चाहिये।'[3]

एक शक्तिशाली और संयुक्त श्रमिक संघ आन्दोलन आवश्यक समझा गया। "सामूहिक सौदाकारी की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि जहां तक संभव हो उद्योग के विस्तीर्ण क्षेत्र के लिये एक ही सौदाकारी अभिकर्ता होना चाहिये।"[4] प्रतिनिधि स्वरूप प्राप्त करने के लिये जहां किसी संघ ने आवश्यक शक्ति नहीं जुटा पाई है तो वहां सबसे बड़े संघ को सभी संस्थानों के संबंध में जिनके बहुसंख्यक श्रमिक उसके सदस्य हों कार्य करने का अधिकार दिया जाना चाहिये। स्थानीय क्षेत्र के एक ही उद्योग में औद्योगिक संस्थानों के लिये पृथक संघ या निर्माण सशक्त और स्वस्थ श्रमिक संघों के विकास में अपकारी है तथा उनका अस्तित्व बहुत अपवादी परिस्थितियों में ही उचित हो सकता है जब कि एक उद्योग के सभी

१ प्रथम योजना, पृ० ५७५

२ प्रथम योजना, पृ० ५७३

३ प्रथम योजना, पृ० ५८१।

४ प्रथम योजना, पृ० ५७७।

व्यवसायो के लिये एक ही औद्योगिक सघ को प्राथमिकता दी जानी चाहिये, वेतन भोगी विशिष्ट कर्मचारियो के वर्गों के लिये अपने सघ बनाने की छूट दी जा सकती है बशर्ते कि उन कर्मचारियो का बहुमत ऐसा करने के पक्ष मे हो।"[१]

बाद की योजनाओं के लिये हमारी श्रमनीति के ये निर्देशन सिद्धान्त भी रहे हैं। 'श्रमनीति के सम्बन्ध में प्रथम पचवर्षीय योजना में जो कुछ कहा गया है। उसका अधिकाश भविष्य के लिये आधार रूप में समझना चाहिये।"[२] समाज के समाजवादी स्वरूप की नीति अपनाने से नीति में कुछ परिवर्तन करने की सभावना पैदा हो गई थी। 'एक मजदूरी नीति, जिसका उद्देश्य वर्धित वास्तविक मजदूरी की सरचना हो, को उद्विकसित करने की आवश्यकता है।"[३] यह स्वीकार किया गया था कि इस दिशा में सगत प्रयत्न नही किये गये हैं। चूकि वर्धित वास्तविक मजदूरी के उद्देश्य को वर्धित उत्पादकता के परिणाम के साथ जोडा जाना था, इसलिये 'परिणाम के अनुसार भुगतान लागू करने का सुझाव दिया गया था। इस सम्बन्ध में वेतन आयोग, वेतन गणना, तथा वेतन मडलो की कल्पना की गई थी। वर्तमान सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का और विस्तार किया जाना था। "इसलिये अभिनवीकरण, जहाँ इससे बेरोजगारी न पैदा हो के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिये तथा कार्य की अवस्थाओं को उन्नत करने और श्रमिको को लाभो में से पर्याप्त हिस्सा देने की गारटी के बाद उससे विचार विमर्श करके इसे लागू किया जाना चाहिये।"[४]

औद्योगिक सम्बन्धो के क्षेत्र में सामूहिक सौदाकारी तथा पारस्परिक समझौते पर हमेशा बल दिया गया। कार्यसमितियो को अधिक सफल बनाने के लिये सयुक्त विचार विमर्श तन्त्र को लागू किया जाना था। उनके क्षेत्र और उत्तरदायित्वो का सघो के क्षेत्र और उत्तरदायित्वो से स्पष्टतया सीमाकित किया जाना था। कार्यसमितियो को श्रमिक सघो के प्रतिस्पर्धी के रूप में कार्य नही करना था। वर्धित उत्पादकता को प्रवर्तित करना नियोजको का उनकी भूमिका की अधिक अच्छी जानकारी देने तथा श्रमिको की आत्माभिव्यक्ति की आकाक्षा को सतुष्ट करने के उद्देश्य से प्रबन्ध के साथ श्रमिको के साहचर्य का आवश्यक समझा गया था। यह भी अनुभव किया गया कि श्रम और प्रबन्ध के बीच सघर्ष का एक मुख्य स्रोत परिनिर्णयो और समझौतो को अपर्याप्त रूप से क्रियान्वित और लागू करना है।'[५] परिनिर्णयो और समझौतो को क्रियान्वित करने के लिये नियोजको को दडित करने हेतु पर्याप्त कठोर

---

१ प्रथम योजना पृ० ५७२–७८।
२ द्वितीय योजना पृ० ५७२।
३ द्वितीय योजना पृ० ५७८।
४ द्वितीय योजना, पृ० ५८१।
५ द्वितीय योजना, पृ० ५७५।

दण्डो का सुझाव दिया गया था—"अनुवतन के लिये एक समुचित न्यायाधिकरण का सघटन किया जाना चाहिये।' [1]

सावजनिक प्रतिष्ठानो के समक्ष रखे गये आदश के महत्व को हलका कर दिया गया है। सबसे अधिक महत्वपूण यह है कि क्रियान्वयन की रीति और उसकी व्यावहारिक मशा क्या है? औद्योगिक सबधो की नीति म जो कुछ सुझाव दिया गया था वह यह है कि 'सावजनिक नियोजक की ओर से किसी ऐसे प्रयास को, कि वह एक नियोजक के दायित्वो का परिहरण करे क्योंकि वह लाभ के लिये काय नही कर रहा है, हतोत्साहित करना चाहिये।"[2] प्रथम योजना के आदर्शों कि सावजनिक क्षेत्र को आदश स्थितियाँ प्रस्तुत करनी चाहिये, गति निर्धारित करनी चाहिये तथा एक आदश के रूप मे काय करना चाहिये, को चुपचाप ताक पर रख दिया गया। द्वितीय योजना म केवल यही कहा गया कि अतिम विश्लेषण मे सावजनिक क्षेत्र कमचारियो को कुल मिलाकर कम से कम किसी सेवावृत्ति म लगे अपने भाइयो के समान होना चाहिये तथा उन्ह सावजनिक क्षेत्र के कमचारी के रूप मे अपनी स्थिति तथा जो कुछ वे पदा करते है के प्रति वास्तविक गव का अनुभव करना चाहिये।"[3] किन्तु उपरोक्त स्थिति केवल एकपक्षीय है। सावजनिक क्षेत्र ने 'आदश नियोजक होने' के अपने पहले आदश को त्याग दिया है। और, फिर भी श्रमिको से आशा की जाती है कि वे सावजनिक क्षेत्र के कमचारी के रूप मे वास्तविक गव का अनुभव करे।

द्वितीय योजना म यह विचार व्यक्त किया गया है कि 'समाजवादी समाज की स्थापना के लिये पूव मान्यता औद्योगिक प्रजातन्त्र का सृजन है।' [4] "उत्पादन के लक्ष्यों की उपलब्धि तथा श्रम के हितो के सरक्षण दोनो के लिये ही एक सशक्त श्रमिक सघ आन्दोलन की आवश्यकता है।[5] किन्तु वतमान श्रमिक सघ आन्दोलन की न्यूनताओ को गिनाने के अलावा योजना बनाने वालो ने इन समस्याओ के हल पर' कोई प्रकाश नही डाला। हमे स्पष्ट और बहुचर्चित श्रमिक सघो का बाहुल्य राजनतिक सस्पर्धा समाधनो का अभाव तथा श्रमिक वर्गों के अनेकता की समस्याओ का खोजने के लिये द्वितीय योजना का सहारा लेने की आवश्यकता नही है। योजना म इन समस्याओ के लिये दोषी बाहरी नेताओ को ठहराया गया है जब कि दूसर हाथ से उनको सराहा भी गया है। देश के श्रमिक सघ आन्दोलन के विकास मे

१ द्वितीय योजना, पृ० ५७६।
२ द्वितीय योजना, पृ० ५७७।
३ द्वितीय योजना, पृ० ५७७–७८।
४ द्वितीय योजना, पृ० ५७२।
५ द्वितीय योजना, पृ० ५७२।

बाहरी लोगों ने प्रशंसनीय भूमिका निबाही है। उनके सहयोग के अभाव में आन्दोलन अपनी वर्तमान शक्ति और परिमाण को भी न पहुँच पाता।'[१] योजना में श्रमिक संघ दर्शन और रीतियों में श्रमिकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। यह भी अनुभव किया जाता है कि "श्रमिक संघ संगठना में, अब भी निष्ठावान श्रमिकों की आवश्यकता है तथा यदि श्रमिक संघ अपनी कार्यकारिणियों में ऐसे व्यक्तियों को चुनना चाहते हैं तो उनके अधिकार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।'[२] यह भी सुझाव दिया गया था कि इससे पहले कि श्रमिक संघ अपने को पंजीकृत करा सके उसे चार आने का न्यूनतम सदस्यता शुल्क निर्धारित करना चाहिए।

योजना में स्वीकार किया गया कि 'शक्तिशाली संघों के निर्माण के लिये उन्हें प्रतिनिधि संघ के रूप में मान्यता प्रदान करना एक महत्त्वपूर्ण कदम है।'[३] तथा यह सुझाव दिया गया कि राज्यों द्वारा संघों को मान्यता प्राप्त करने के लिये जहाँ वर्तमान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है[४] कुछ वधानिक व्यवस्थाएँ करनी चाहिए। यह ध्यान देने की बात है कि संघों की मान्यता जो महत्त्वपूर्ण विषय को राज्यों पर छोड़ दिया गया है। श्रम समवर्ती सूची में है और इस विषय पर केन्द्रीय विधान भी है जिसे लागू करने से समरूपता स्थापित हो सकती है तथा मान्यता भी जल्दी प्राप्त हो सकती है। केन्द्र चाहता है कि संघों के प्रतिनिधि स्वरूप के विषय को निर्णीत करने के लिये केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को स्वतंत्र छोड़ दिया जाय।

इस सुझाव को विभिन्न दिशाओं से और भी जटिल बना दिया गया है। ऐसा करते समय (मान्यता प्रदान करना) एक स्थानीय क्षेत्र के एक उद्योग में एक संघ के महत्त्व को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। यह भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है कि केवल संख्या के आधार पर ही एक संघ को मान्यता प्राप्त होगी किन्तु प्रभावशाली ढंग से कार्य करने के लिये उन्हें चाहिये कि वह सीधी कार्यवाही का आश्रय लेने से पूर्व विवादों को सुलझाने के लिये मान्य प्रक्रिया और तंत्र का प्रयोग अवश्य कर ले।[५] सर्वाधिक प्रतिनिधि संघ द्वारा श्रमिक संघ अधिनियम की सभी शर्तों को पूरा करते हुए मान्यता के लिये अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है। मान्यता किन्हीं अतिरिक्त शर्तों के अधीन है जिन्हें राज्य आरोपित कर सकता है। यह श्रमिक संघों के हड़ताल करने के अपने अधिकार को छोड़ देने की

१ द्वितीय योजना पृ० ५७२।
२ द्वितीय योजना, पृ० ५७२–७३।
३ द्वितीय योजना पृ० ५७३।
४ द्वितीय योजना पृ० ५७३।
५ द्वितीय योजना पृ० ५७३।

शत पर भी हो सकता है। वस्तुत इन परिस्थितियों के अंतर्गत स्वस्थ औद्योगिक सबधो का विकास करना कठिन हो सकता है।

इसी प्रकार द्वितीय योजना मे निहित नीति म भी सुझाव दिया गया है कि श्रमिक और नियोजक सगठनो को अपने स्व प्रवर्तित समुचित समोदनों के द्वारा कठोरतर अनुशासन बनाये रखना चाहिये। यह स्वीकार करते हुये कि विधान द्वारा अनुशासन आरोपित नही किया जा सकता है कहा गया है कि "श्रमिको म अनुशासनहीनता की स्थिति म कुछ उपायो, वैधानिक अथवा अन्य, के बारे म सोचना आवश्यक हो सकता है कि अवैधानिक हडतालो अथवा तालाबन्दियो को दडित करने के लिये वर्तमान व्यवस्थाएँ व्यवहार म अपर्याप्त सिद्ध हुई है। धीरे काम करो 'कलम मत उठाओ और हडताल म स्थिर रहो के उदाहरण सामने आते रहे हैं जिन्ह आर्थिक व्यवस्था के विस्तृत हितो की दृष्टि से अनदेखा नही किया जा सकता है। ऐसी स्थितिया गभीर है चूकि काम करने की क्षमता श्रमिको की केवल एक ही सम्पत्ति है इसलिये अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि श्रमिक वर्गों द्वारा उस क्षमता को कम करने की किसी भी प्रवृत्ति के विरुद्ध पहरेदारी करनी चाहिये।[1] राज्य श्रमिको और उनके सगठनो का अभिभावक हो गया है। तदनुसार यह आवश्यक है कि औद्योगिक अनुशासन के सम्पूर्ण प्रश्न को उसके विभिन्न पहलुओ मे परिप्रेक्ष्य मे जाचा जाय।[2] इस प्रकार राज्य श्रमिक सघो के कार्यों म हस्तक्षेप करने के लिये एक और भी हस्तक प्राप्त करना चाहता है।

श्रमनीति के सम्बन्ध मे तृतीय योजना म कुछ महत्वपूर्ण बातें कही गई हैं। यह अनुभव किया गया है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत निहित उपाय अनेक मामलो म प्रभावकारी सिद्ध नही हुये हैं। त्रिदलीय वेतन मडलो पर विश्वास पुन व्यक्त किया गया। किन्तु यह स्पष्ट किया गया कि औद्योगिक सघर्षो मे न तो उनकी सगठित शक्ति का प्रयोग और न ही विधान तथा राज्य का हस्तक्षेप श्रमिको की महत्त्वाकाक्षाओ की उपलब्धि म उनकी अधिक सहायता कर सकता है। उनके लाभ केवल अर्थ व्यवस्था की शक्ति और गतिशीलता से पैदा हो सकते हैं जिसका स्थायी आधार उत्पादकता का बढता हुआ स्तर ही है।[3] प्रत्येक दिशा म वैज्ञानीकरण का प्रयत्न उत्पादकता का वास्तविक आधार है श्रमिको के लिये बिना उत्पादकता मे स्थिर वृद्धि के उनके जीवनस्तर मे कोई भी प्रगति सभव नही है। क्योकि सामान्यतया किसी सकुचित सीमा के बाहर मजदूरी म कोई वृद्धि मूल्यो म वृद्धि के द्वारा अन्यथा भी निष्फल हो जायेगी। इसलिये श्रमिको को अपने हित मे

१ द्वितीय योजना, पृ० ५७८।
२ द्वितीय योजना पृ० ५७८।
३ तृतीय योजना, पृ० २६१।

तथा देश के विस्तृत हित में अभिनवीकरण की प्रगति का विरोध करने के बजाय आग्रह करना चाहिए।'[1] इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया कि उद्योग में भी अभिनवीकरण की आवश्यकता है। श्रमिक एक वर्ग के रूप में अभिनवीकरण या उन्नत उत्पादकता के विरोधी नहीं हैं। किन्तु इसे बिना किसी को कष्ट पहुँचाए करना चाहिए तथा बढ़ी हुई उत्पादकता से उपलब्ध लाभों का समान रूप से वितरित करना चाहिए। समाजवादी स्वरूप के सन्दर्भ में नियोजकों को भी कम लाभ स्वीकार करने के लिए तैयार होना चाहिए ताकि इस प्रकार अर्जित अतिरिक्त लाभों को श्रमिकों का भाग्य सुधारने तथा और विनियोग करने में प्रयुक्त किया जा सके। किन्तु सरकारी प्रतिनिधियों द्वारा निर्गमित केवल धर्मोपदेशों या डाँटकर कोई भी स्पष्ट नीति की घोषणा नहीं की गई। आय की असमानताएँ बढ़ती रही हैं। श्री अशोक मेहता ने अपने भाषण में स्वयं कहा था कि स्वतंत्रता से पूर्व के दिनों में आय की असमानताओं का अनुपात जबकि १ और ११० था वही अब १ और ३२० तक पहुँच गया है।

एक क्षमता संहिता का अनुमोदन भारतीय श्रमिक सभा द्वारा किया गया जो स्पष्ट रूप से श्रमिक सभा को यह सिद्धान्त मानने के लिए आदिष्ट करता है "कि वे समाज के विस्तृत हितों में उद्योग के सम्मुख अपनी माँग प्रस्तुत करते समय उत्पादन की स्पर्धी लागत को बनाये रखने की आवश्यकता को ध्यान में रखेंगे।"[2] इसका अर्थ यह हुआ कि मजदूरी बढ़ाने पर दबाव डालने के लिए संघों के अधिकारों पर गंभीर कटौती की गई है। प्रबन्ध और श्रम बरबादी और अकुशलता का परिहरण करेंगे तथा श्रम के समुचित संरक्षण के साथ उत्पादकता की आधुनिक विधियों को अपनाएँगे और उनका समर्थन करेंगे। ये 'समुचित संरक्षण' क्या होंगे तथा इन्हें कब लागू किया जायगा स्पष्ट नहीं है। प्रबन्ध यह सुनिश्चित करेगा कि वर्धित उत्पादकता से हुए लाभों में श्रमिकों को उनका उचित भाग मिले।'[3] ऐसा प्रतीत होता है कि यह श्रमिकों के लिए केवल सान्त्वना की बात है।

तृतीय योजना में आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी को निर्देशक सिद्धान्त के रूप में मान्यता देते हुए यह इच्छा व्यक्त की गई है कि "श्रमिक वर्ग के परिवार की खाद्याहार आवश्यकताओं को इस विषय पर उपलब्ध सर्वाधिक अधिकृत आँकड़ों के परिप्रेक्ष्य में पुनः जाँचा जा सकता है।"[4] और यदि द्वितीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन निम्न सरकारी कर्मचारियों के लिए निम्न खाद्याहार आवश्यकताओं का

१ तृतीय योजना पृ० २६२ स्टेट्समैन, नवम्बर १६, १९६१।

२ अमृत बाजार पत्रिका अक्तूबर ११, १९६१।

३ अमृत बाजार पत्रिका, अक्तूबर ११, १९६१।

४ तृतीय योजना, पृ० २५६।

निर्धारण किया जाता है, तो पूत के पाँव पालने वाली कहावत चरितार्थ होती है तथा ऐसा लगता है कि यह प्रश्न हमेशा विचारणीय बना रहेगा।

तृतीय योजना में आँसू पोंछने की दृष्टि से कुछ सांत्वना देने की भी बात कही गई है। राज्य कर्मचारी बीमा और भविष्य निधि लाभों को अधिक से अधिक कर्मचारियों के लिये उपलब्ध करना होगा। किन्तु सभी श्रमिकों को ये सुविधाएँ दे पाना अब भी एक आदर्श है। श्रमिक सुरक्षा और कल्याणकारी उपायों को अधिक प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिये अत्यधिक जागरूकता दिखानी होगी क्योंकि 'अभी तक जितने औद्योगिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण किये गये हैं उनसे यही मालूम हुआ है कि व्यावसायिक बीमारियों की संख्या बढ़ती जा रही है।'[1] औद्योगिक आवास के सम्बन्ध में एक नई नीति अब भी खोजनी है क्योंकि अनेक स्थानों पर स्थिति में सुधार होने के बजाय और बिगड़ गई है।

अनुशासन संहिता को जिसे १९५८ में स्वीकार किया गया था तृतीय योजना की अवधि में औद्योगिक सम्बन्धों की नीति का आधार माना गया है। पारस्परिक विचार विमर्शों को प्रोत्साहित करना होगा तथा प्रबन्ध में श्रमिकों द्वारा अधिकाधिक भाग लेने को सुनिश्चित करना पड़ेगा। सामूहिक सौदाकारी को वांछनीय समझा गया। तदनुरूप 'श्रमिकों और नियोजकों के बीच मतभेदों को सुलझाने के लिये ऐच्छिक पंचनिर्णय के सिद्धान्त को वृद्धोत्तर रूप में प्रयोग करने के हेतु उपाय खोजने होंगे।[2]

त्वरित औद्योगीकरण के लिये श्रमिक संघों के महत्व को भी तृतीय योजना में स्वीकार किया गया है। 'उन्हें देश के औद्योगिक और आर्थिक प्रशासन तन्त्र के एक आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा तथा उन्हें दायित्वों के निर्वाह के लिये जो इस स्थिति से सम्बद्ध है तैयार करना चाहिये। यह भी अनुभव किया गया है कि श्रमिक संघ नेतृत्व को प्रगामी रूप से श्रमिकों के वर्गों में से ही विकसित होना है तथा जैसे ही श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम में बढ़ोती होगी यह प्रक्रिया अत्यधिक गतिमान हो जायेगी।[3]

संघों की मान्यता की समस्या अनुशासन संहिता के एक अंग के रूप में सुलझानी है। इससे देश में सशक्त और स्वस्थ श्रमिक संघवाद के विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।'[4] मान्यता का आधार ६ मास के काल में कम से कम संस्थान के श्रमिकों के १५ प्रतिशत की अनवरत सदस्यता होगी। एक उद्योग या एक स्थानीय

१ तृतीय योजना, पृ० २५६।
२ तृतीय योजना पृ० २५४।
३ तृतीय योजना पृ० २५५।
४ तृतीय योजना, पृ० २५५।

क्षेत्र के प्रतिनिधि संघ घोषित होने के लिए एक संघ को २५ प्रतिशत सदस्यता का दावा करना चाहिए। जहाँ अनेक संघ हैं, वहाँ सबसे बड़े संघ को मान्यता दी जानी चाहिए। एक बार मान्यता प्रदान करने के बाद उसे दो वर्ष तक के लिए नहीं छीना जा सकता जब तक कि संघ ने अनुशासन संहिता का उल्लंघन न किया हो।

संक्षिप्त रूप में राज्य की नीति को निम्नलिखित मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया जा सकता है —

(१) वृद्धोत्तर मजदूरी स्तर, खतरों के विरुद्ध व्यवस्था (एक विशद सामाजिक सुरक्षा योजना का लक्ष्य है) अधिक अच्छी काम और सेवा की शर्तों तथा सुरक्षा और कल्याणकारी व्यवस्थाओं के रूप में श्रमिकों के लिए आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध करना।

(२) संयुक्त विचार विमर्श तथा श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजनाओं के माध्यम से श्रमिक वर्गों के स्तर को उन्नत करना।

(३) यह अनुभव करना कि श्रमिक संघवाद अनिवार्य है तथा श्रमिक संघों का सहयोग आवश्यक है। श्रमिक संघों का प्रभावशाली योगदान नहीं मिला क्योंकि आन्दोलन को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनमें से मुख्य समस्याएँ रही हैं—(i) संयुक्त सशक्त और स्थिर श्रमिक संघ आन्दोलन का अभाव, (ii) बाहरी लोगों की उपस्थिति तथा (iii) सर्वाधिक प्रतिनिधि संघ को मान्यता देने का प्रश्न।

(४) सामूहिक सौदाकारी तथा ऐच्छिक पंचनिर्णय को प्रोत्साहित करना। अनिवार्य पंचनिर्णय ने कुछ सन्तोषप्रद सुविधाएँ उपलब्ध हुई हैं और साथ ही साथ अनेक समस्याएँ भी पैदा हो गई हैं। 'इस पद्धति ने औद्योगिक अशान्ति के विकास को रोकने और श्रमिक वर्ग के लिए प्रगति के साधन उपलब्ध करने तथा सुरक्षा की भावना प्रदान करने, जो अन्यथा सम्भव न हुआ होता, में सहायता प्रदान की है। किन्तु साथ ही साथ वादशीलता की भावना में वृद्धि तथा वैधिक प्रक्रिया में विलम्ब के कारण व्यापक असन्तोष को बढ़ावा मिला है।"[1]

जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है श्रमिक वर्गों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है। वास्तविक मजदूरी का स्तर निम्न बना हुआ है।[2] बढ़ती हुई कीमतों के प्रभाव को समाप्त करने के लिए निर्वाह दर से महँगाई भत्ते का सिद्धान्त अरुचिकर है। इसी प्रकार सामाजिक सुरक्षा सुविधाओं के रूप में हितलाभों की स्थिति सन्तोषजनक होने से काफी दूर है। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने श्रमिकों के दृष्टिकोण को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है —

---

१ तृतीय योजना, पृ० २५०।

२ विस्तार के लिए अध्याय ३ देखें।

"प्रबंध में श्रमिकों के भाग लेने की बात केवल सिद्धान्त बनी हुई है जिसे सरकार ने गंभीरतापूर्वक नहीं लो। सार्वजनिक क्षेत्र एवं प्राइवेट नियोजक नहीं बन पाया है तथा द्वितीय योजना में व्यक्त विचारों का अभी तक उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। ऐसा लगता है कि त्रिदलीय वेतन मण्डलों तथा वेतन आयोगों की भी सिफारिशें सरकार के समक्ष अपना महत्व नहीं रखती हैं। त्रिदलीय संस्थाओं द्वारा लिये गये निर्णय अभी तो न्यायाधिकरणों द्वारा अनिवार्य निर्णयों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। ठेके के श्रम का उन्मूलन अब भी पूर्ण नहीं हुआ है। उचित मजदूरी प्राप्त करने का श्रमिकों का अधिकार अब भी अपूर्ण बना हुआ है।"[1]

सरकार ने समुचित विधान द्वारा नियोजकों और श्रमिकों के बीच संयुक्त विचार विमर्श योजनाओं को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया है। इस क्षेत्र में औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ तथा राज्य विधानों ने कार्यसमितियों तथा विभिन्न स्तरों पर अन्य संयुक्त विचार विमर्श संस्थाओं को स्थापित करने की व्यवस्था की है। औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार करने के अतिरिक्त इन उपायों से श्रमिकों और उनके सम्बन्धों के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया गया है।

वैधानिक दायित्वों को पूर्ण करने के उद्देश्य से एक बड़ी संख्या में कार्य समितियां तथा अन्य संयुक्त विचार विमर्श योजनाएँ कार्य कर रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि संख्या की दृष्टि से उन्हें सफलता मिली है। किन्तु उनके कार्यों और कार्यप्रणालियों से यह सिद्ध नहीं होता कि उनसे किसी भी रूप में वातावरण में सुधार हुआ हो। प्रबंधकों के दृष्टिकोण में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। 'इसमें नियोजकों एक वर्ग के रूप में के दृष्टिकोण में कोई प्रशंसनीय परिवर्तन नहीं हुआ। निस्सन्देह उन्होंने कभी अनिच्छा से और कभी उदारता दिखाने के लिए नये उपायों के समक्ष समर्थन किया है किन्तु उनके हृदय में अधिकांश रूप से कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ है।'[1] इन योजनाओं के असफल होने के अन्य कारण भी हैं यथा—हर संयुक्त विचार विमर्श योजनाओं के क्षेत्र की अस्पष्टता, श्रमिकों के प्रतिनिधि चुनने की दोषपूर्ण प्रणाली तथा संयुक्त विचार विमर्श और श्रमिक संघों के बीच सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या का अभाव। इस बात का पर्याप्त भय है कि कहीं श्रमिक संघ आन्दोलन को कुचलने के लिए कार्यसमितियों का उपयोग न किया जाय।

किन्तु प्रमुख कारण नियोजकों और प्रबंधकों की न झुकने वाली अभिवृत्ति है। 'वर्तमान समय में प्रबंध बहुत केन्द्रित, निरंकुश तथा वैयक्तिक है। यदि संयुक्त विचार विमर्श को सन्तोषपूर्ण ढंग से कार्य करना है तो प्रबंध के मध्य और निम्न वर्गों में अधिक अधिकारों के साथ कुछ विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।'[2] वास्तविक

१ वी० वी० गिरि लेबर प्राब्लम्स इन इण्डियन इंडस्ट्री पृ० १८९।

२ सी० सी० कुमार डवलपमेंट आफ इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया, पृ० ७६।

कारण इस तथ्य में निहित है कि जहाँ श्रमिकों या नियोजकों के हृदयों या दृष्टिकोणों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, कार्य समितियों का गठन एक वैधानिक दायित्व बना दिया गया है।"[1]

फिर भी यह उल्लेखनीय है कि उच्च स्तरों पर संयुक्त विचार-विमर्श कुछ सन्तोषजनक रहा है जहाँ सामान्यतया श्रमिक संघों के शीर्षस्थ नेताओं और नियोजकों तथा उनके प्रतिनिधियों के बीच विचार विमर्श हुये हैं। श्रमिक संघों के नेता, जो इन उच्चस्तरीय विचार विमर्शों में भाग लेते हैं, प्रायः सामाजिक और राजनैतिक ख्याति के होते हैं जिससे ध्यान आकर्षित करने में वे समर्थ रहते हैं। केवल जब उन निर्णयों को व्यवहार में लाना होता है तो वास्तविक कठिनाई पैदा होती है। जब तक नियोजकों की प्रवृत्ति में आमूल परिवर्तन नहीं होता और जब तक वे समुचित सीमन पर सामाजिक हितों और उद्देश्यों के लिये इच्छुक होकर उद्योग में कार्य करने के हेतु तैयार नहीं होते संयुक्त विचार विमर्श को सफलता नहीं मिल सकती है। समुचित शब्द का अर्थ उद्योग के नेताओं के अनुसार पारिभाषित 'समुचित' नहीं है बल्कि वह समुचित' जो देश के अनुसार समुचित हो।

इस सम्बन्ध में यह भी कह देना उचित होगा कि भारतीय श्रमिक सभा के सर्वसम्मत निर्णयों को आदर न करने की सरकार की होने की नीति तथा केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों में परिवर्तन कर देने से भी ऐसे विमर्शों का महत्त्व कम हो गया है।

प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की एक अन्य ऐसी योजना थी जो १९५८ के बाद से कुछ चुने हुये उद्योगों में सरकार द्वारा लागू की गई। स्थायी श्रम समिति के सत्रहवें अधिवेशन के समक्ष केन्द्रीय श्रममन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा ने कहा था— मैं विश्वास करता हूँ कि केवल प्रबन्ध और श्रमिकों के बीच वास्तविक साहचर्य से ही उद्योग में वास्तविक और अविरत प्रकार की शान्ति स्थापित की जा सकती है। श्रमिकों और प्रबन्धकों के बीच इन सम्बन्धों के माध्यम से हम जो कुछ उत्पन्न करना चाहते हैं वह केवल कटुता का उन्मूलन नहीं है बल्कि उद्योग के ऊँचा उठाने के लिए तथा देश की अर्थव्यवस्था को ऊँचे से ऊँचे स्तर पर ले जाने के लिये यथार्थ सहयोग है। मैंने इसे स्वयमेव स्वीकार कर लिया है कि इस देश में हमारे औद्योगिक संगठन की यह सार्वभौमिक विशेषता हो जायगी तथा मैं इसके लिये बहुत लम्बे समय की कल्पना नहीं कर रहा हूँ।"[2]

योजना ने नियोजकों तथा श्रमिक संघों के बीच कुछ मिश्रित प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने योजना का स्वागत किया तथा

---

१ सी० बी० कुमार डवलपमेंट आफ इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया, प० ७६।

२ वी० बी० कार्णिक द्वारा उद्धृत इण्डियन ट्रेड यूनियन्स पृ० १८४।

इसमें न्यासिता के आदर्श की पराकाष्ठा देखी जिसका प्रतिपादन गांधी जी ने किया था। फिर भी सभा ने कुछ शब्द चेतावनी के कहे। 'किन्तु इस प्रकार का भाग लेना वास्तविक और प्रभावशाली नहीं हो सकता जब तक कि उसका आधार पारस्परिक अधिकारों और दायित्वों के प्रति सम्मान न हो तथा श्रमिकों को शिक्षित करने और उन्हें उत्तरदायित्वों, जिनमें उन्हें हिस्सा लेना है के लिये सज्जित करने हेतु समुचित कदम न उठाये जाय।'[1]

योजना कार्यान्वित करने पर सन्तोषजनक नहीं रही। देश की आर्थिक प्रगति औद्योगिक शान्ति के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण श्रमिकों के भाग लेने की योजना की सफलता और त्वरित प्रगति पर विचार करते हुये[2] भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा को शिकायत करनी पड़ी कि दुर्भाग्यवश ऐसा सोचने के लिये यह संकेत मिले हैं कि प्रबन्धकों की ओर से योजना को उतना समर्थन नहीं मिला जितना मिलना चाहिये था। उदाहरणों की कमी नहीं है जब नियोजक ऐच्छिक रूप से श्रमिकों के साथ सहयोग करने के लिये इस सीमा तक आगे नहीं बढ़े कि उन्हें साधारण श्रमिक संघ कार्यों को करने की भी अनुमति दे सकें।[3] पूर्व अधिवेशन में भी भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा को कहना पड़ा कि 'ऐसे भी उदाहरण हैं कि श्रमिकों ने प्रस्तावित संयुक्त प्रबन्ध समितियों के लिये अपने प्रतिनिधियों के नाम प्रबन्धकों को भेजे किन्तु इस सम्बन्ध में प्रबन्ध की अभिवृत्ति उदासीनता और तटस्थता की थी। कुछ मामलों में ऐसी स्थिति पैदा करने की सीमा तक प्रबन्ध पहुँच गया जहाँ श्रमिकों के लिये अपना सहयोग दे पाना असम्भव था।'[4] अन्त १२वें वार्षिक अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने कहा 'प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग लेने की योजना, ऐसा प्रतीत होता है कोई प्रगति नहीं कर पाई है यद्यपि काफी समय पहले इसे कार्यान्वित किया गया था जहाँ भी शुभारम्भ हुआ है केवल सरचनात्मक सगठन की ही स्थापना हुई है जिसमें वास्तविक भाग लिये बिना केवल श्रमिकों के प्रतिनिधियों को प्रबन्धकों के प्रतिनिधियों के साथ स्थान प्रदान किया गया है।[5] तदनुरूप भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा का 'यह मत था कि यदि उन फैक्ट्रियों में इसका परीक्षण किया जाता है जहाँ औद्योगिक सबध सुखद नहीं है तो एक बहुत अच्छा उद्देश्य आवश्यक ही व्यर्थ हो जायेगा।[6]

---

१ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा ६वें अधिवेशन का प्रतिवेदन, प० १३।
२ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा ११वें अधिवेशन का प्रतिवेदन प० १२७।
३ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा ११ वें अधिवेशन, प० १८।
४ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा १० वें अधिवेशन प० ११।
५ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा १२ वें अधिवेशन प० ८-१०।
६ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा १२ वें अधिवेशन पृ० ३।

श्रमिकों के प्रबन्ध मे भाग लेने के सम्बन्ध म हिंद मजदूर सभा कभी भी बहुत इच्छुक नहीं रही और न उसन ऐसी योजनाओ को उन बुराइयो के निदान स्वरूप समझा जिनमे इस देश के श्रमिक वर्ग पीड़ित रहते हैं। 'निदेशक योजनाओ को कार्यान्वित न करने के पक्ष मे हिन्द मजदूर सभा ने अपना मत व्यक्त किया है तथा साथ ही साथ स्पष्ट कठिनाइयो और बाधाओ की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। देश के औद्योगिक सबंधों का सम्पूर्ण आधार कुल मिलाकर इतना ठोस नही है कि वह प्रबंध मे श्रमिकों के भाग लेने के सफल ऊपरी ढाचे को बर्दाश्त कर सके।'[1]

केवल कुछ इने गिने मामलो को छोड़कर योजना अधिकांश रूप से असफल रही है। उचित मजदूरी यथोचित काम और सेवा की अवस्थाओं स्थायी नौकरी, शिकायतों के लिये समुचित प्रक्रिया तथा सुखद औद्योगिक सम्बन्धों के अभाव मे ऐसी योजना कभी सफल नहीं हो सकती। कमजोर श्रमिक संघो पर बाहरी अभिकरणो के आधिपत्य का खतरा और भी बढ गया है। श्रमिक संगठन कमजोर होने से उन पर बाहरी लोगों का नियंत्रण होता है और श्रमिकों म प्रबन्ध के लिये प्रज्ञा भी बहुत सीमित होती है। अधिसंख्यक श्रमिकों म प्रशासकीय और तकनीकी ज्ञान का अभाव होता है। इसके अलावा भारतीय श्रमिक संघो की वित्तीय स्थिति बहुत खराब होती है जिससे वे वर्तमान समस्याओं के अध्ययन म सहायता के लिये विशेषज्ञों को भी नियुक्त कर पाने मे असमर्थ होते हैं।'[2] इन परिस्थितियों के अन्तर्गत दो म स एक परिणाम निश्चित है। या तो उन्हे प्रबन्ध मे सम्मिलित करके प्रभावकारी रूप स मूक बना दिया जायेगा अथवा यदि वे कठोर साबित हुये तो सर्वोत्तम अभिप्रायो के बावजूद वे प्रबन्ध के प्रति बाधक और दोषपूर्ण सिद्ध होंगे।'[3]

यहा यह बता देना अनुचित नही होगा कि प्रथम विश्वयुद्ध के काल म ऐसी योजनाएँ इंग्लैण्ड मे प्रारम्भ की गई थी और पर्याप्त सीमा तक उन्हे सफलता मिली थी। अन्तर्युद्ध की अवधि मे इन्हे पुनर्जीवित करने के अधिकांश प्रयत्न असफल रहे किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उन्हे सफलता मिली और हाल ही म उनका महत्व फिर समाप्त हो गया। यह विचारणीय है कि दोनो बार के पुनर्जीवन निश्चित रोजगार तथा मूल उद्देश्य की मान्यता अर्थात् युद्ध म विजय जिसे श्रमिकों और प्रबंधकों द्वारा समान रूप से स्वीकार किया गया और जिसने सभी अन्य विचारो को प्रत्यादिष्ट किया की भूमिका के साथ हुआ था। किन्तु जैसे ही सुरक्षा और सामान्य उद्देश्य की स्थिति समाप्त हुई मजदूरी दर पद्धति के आवश्यक आर्थिक संघर्ष ने

---

१ हिन्द मजदूर सभा ७ वें सम्मेलन की रिपोर्ट पृ० ६१।

२ वी० वी० गिरि लेबर प्राब्लम्स इन इण्डियन इडस्ट्री पृ० १६३।

३ वी० वी० गिरि वही, पृ० १६३।

अपना कुप्रभाव जमाना प्रारम्भ कर दिया और आन्दोलन की स्वतः प्रवर्तिता निष्प्राण होने लगी।'[1]

यदि इंग्लैण्ड में प्रौढ़ श्रमिक संघ आन्दोलन तथा लम्बे समय से स्थापित सामूहिक सौदाकारी की परम्पराओं के साथ योजना की सफलता के चिह्न दृष्टिगत नहीं हुए तो भारतीय परिस्थितियों के अन्तर्गत उसकी असफलता की बात एक पूर्व निश्चय थी।

श्रमिक संघों के महत्त्व को स्वीकार किये जाने के कारण यह सरलता से आशा की जा सकती थी कि श्रम नीति का निष्ठा के साथ क्रियान्वयन किया जायगा और सरकार भारत में मुक्त तथा स्वतन्त्र श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास को अनुमति देगी। किन्तु सरकार के आचरण से असंतोष के लिये काफी गुंजाइश रह जाती है। 'ऐसा अनुभव करने के कारण हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र के श्रमिक संघों के प्रति सरकार की अभिवृत्ति केवल हतोत्साह और उदासीनता की रही है। इस तथ्य के बावजूद कि स्वाधीनता १३ वर्ष पहले प्राप्त की गई थी साम्राज्यवादी दिनों की पुरानी अभिवृत्ति अब भी वर्तमान है जिसके अनुसार श्रमिक संघ आवश्यक रूप से विध्वंसी संगठन हैं जिन्हें सहना पड़ता है विघटित करना होता है तथा जिन पर निगरानी करनी होती है।'[2] भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा जिस पर कांग्रेस का प्रभुत्व है को भी कहना पड़ा कि 'जहां तक सरकार का सम्बन्ध है स्थिति स्पष्ट नहीं है। सरकार के प्रगामी तत्त्व औद्योगिक समस्याओं को समझने का यत्न कर रहे हैं और किसी सीमा तक सहायता भी प्रदान कर रहे हैं किन्तु बहुत से राज्यों में सरकार इसके बावजूद कि देश ने समाज के समाजवादी स्वरूप को स्वीकार किया है श्रमिक वर्ग की महत्त्वाकांक्षाओं को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखने की स्थिति में नहीं रही है। सार्वजनिक क्षेत्र के सेवायोजन प्रधान करने वाले विभाग अब भी अनुदार हैं।'[3] दोनों ही निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में अधिकारियों द्वारा प्रमुख श्रमिक संघ कार्यकर्ताओं का दलीकरण कोई नया तथ्य नहीं है तथा हर जगह सामान्य रूप से इसका अनुभव किया जाता है।[4] इस देश के औद्योगिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण होते जाने के कारण कुछ प्रवृत्तियां विशेषकर श्रमिक संघ के मार्चे पर के विरुद्ध पहरा देना ही पड़ेगा। वहां हमारे आर्थिक काम कलापों को राजनैतिक मन्तव्यों से दबने की सम्भावना हो सकती है। यहां तक कि समानता और न्याय पर आधारित और विशेष जागरूकता से पैदा होने वाली स्वाभाविक

१ समरवेल इंडस्ट्रियल पीस आफ अवर टाइम्स पृ० १२७।

२ हिन्द मजदूर सभा ५ वां सम्मेलन पृ० १७।

३ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ८वां प्रतिवेदन पृ० १५-१६।

४ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ६वां प्रतिवेदन, पृ० १५६।

मागों को राजनैतिक कार्यकलाप के रूप में व्याख्या करने की सम्भावना पैदा हो सकती है। साधारण चूक जैसे अनुपस्थिति, देर से आना और अनिपुणता को राजनैतिक अनुशासन के अधीन माना जा सकता है और इन सबसे सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक से अधिक पुलिस अधिकारी का विकास हो सकता है।"[1]

सरकार संगठन बनाने के अपने कर्मचारियों के अधिकारों पर अंकुश लगाने के लिये प्रयत्नशील है। सरकारी कर्मचारी व्यवहार नियमों के अन्तर्गत भावना यह है कि श्रमिक संघों में सम्मिलित होने के लिये जनपद कर्मचारियों पर रोक लगा दी जाय। सरकार सभी आवश्यक सेवाओं में विधान द्वारा हड़तालों पर रोक लगा देने के बारे में भी आलोचना कर रही थी। केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के संगठनों में बाहरी लोगों की सदस्यता पर भी रोक लगायी जानी थी।

हड़ताल के बाद अपनायी गई दमनकारी नीति से सरकार के द्वारा प्रतिपादित नीति से श्रमिकों का विश्वास हिल गया है। हड़ताल के बाद की अवधि में बहुत से निष्ठावान श्रमिकों को गम्भीर उत्पीडन का सामना करना पड़ा। उन निष्ठावान श्रमिकों के लिये स्थानान्तरण तथा अनुपयुक्त आधारों पर दण्डित करने की विडम्बना साधारण बात हो गयी थी।'[2] यदि यह सब निष्ठावान श्रमिकों के साथ हुआ तो जिन्होंने हड़ताल में भाग लिया उनके भाग्य की कल्पना की जा सकती है।

केन्द्रीय श्रम मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा को यह आश्वासन देना पड़ा कि कुछ समय तक सरकार का इरादा हड़तालों पर रोक लगाने का नहीं है। किन्तु उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया कि विचार विमर्श पंचनिर्णय अथवा यदि आवश्यक हुआ तो अनिवार्य पंचनिर्णय के द्वारा अपने कर्मचारियों के साथ विभेदों को दूर करने के लिये सरकार ने निश्चय कर लिया है। अपने कर्मचारियों के साथ सम्बन्धों को सुधारने के लिये सरकार के सुनिश्चित प्रयत्नों के अभाव में अनैतिकता का प्रादुर्भाव हो सकता है। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की कार्यकारिणी समिति को चेतावनी देनी पड़ी कि श्रमिक संघ आन्दोलन से विधान द्वारा केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों को निर्वासित कर देने मात्र से ही उन्हें हड़ताल करने से नहीं रोका जा सकेगा। यदि हड़ताल पर जाने के उनके अधिकार में कटौती की जाती है तो सरकार और उसके कर्मचारियों के बीच विभेदों को निबटाने के लिए विकल्प रूप में संतोषपूर्ण रीतियों को प्रवर्तित करने की आवश्यकता होगी। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के साथ ये विभेद बने रहने की ही सम्भावना नहीं है बल्कि उनका क्षेत्र भी विस्तृत हो सकता है। यदि सरकार और उनके जनपद कर्मचारियों के बीच सुखद

---

१ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ८वाँ प्रतिवेदन पृ० ३१-३२।

२ वही १२वाँ प्रतिवेदन पृ० १२४।

संबंध बनाये रखने के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष की अवहेलना की जाती है तो सरकारी कर्मचारियों के बीच अनतिकता अपने सभी कुप्रभावों के साथ प्रविष्ट हो जायेगी और तब अनैतिक कर्मचारियों की इतनी बड़ी सेना के साथ कोई भी सरकार अपने दायित्वों को पूरा करने की आशा नहीं कर सकती।"[1]

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र में श्रमिक संघों की भूमिका को लेकर पर्याप्त भ्रामक विचारधाराएँ हैं। यह एक अनिश्चित नीति है। यह भी कहा जा रहा है कि सरकार श्रमिक संघ आन्दोलन के एक वर्ग का जो सरकारी नीतियों का समर्थन करने के लिये तैयार हो पक्ष लेती रही है। श्रमिक संघ आन्दोलन के एक वर्ग को संरक्षण देने की सरकारी नीति का प्रादुर्भाव युद्धकाल में हुआ था जब भारत सरकार ने भारतीय श्रमिक संघों को न केवल मान्यता दी बल्कि उस संस्था को वित्तीय सहायता भी प्रदान की। राजनैतिक विभेदों पर आधारित श्रमिक संघ आन्दोलन का विभाजन तथा श्रमिक संघ संघों में से एक को सरकार द्वारा दी गई सहायता ही वे तथ्य थे जिन्होंने युद्ध के बाद की अवधि में विकास के स्वरूप को प्रभावित किया।[2]

भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की स्थापना कांग्रेस के सक्रिय सहयोग और सहायता से हुई थी। यह सुझाया जाता है कि अन्य वर्गों की ...ना करके सरकार की नीतियां और व्यवहार भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के संघों का समर्थन करते हैं। हिन्द मजदूर सभा का कहना है कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा पर सरकार का नियन्त्रण है तथा वह सरकारी नीतियों का अनुसेवी है।[3] ऐसे कई उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जहां भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के संघों को स्पष्ट रूप से अल्पसंख्यक होने के बावजूद भी प्राथमिकता दी गई है और जिसका परिणाम श्रमिकों और प्रबंधकों के बीच असुखद संबंधों में हुआ है। भिलाई के इस्पात कारखाने में सरकार के विभेदी रुख की हिन्द मजदूर सभा को शिकायत करनी पड़ी। सभी चालाकियों और प्रशासकीय कूटनीतियों से भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा से सम्बद्ध संघ को, जिसे भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सभा ने स्वीकार किया है ५३५ की सदस्यता पर हमारी २५०० की सदस्यता के विपरीत मान्यता दी गई। यह विधान की सभी व्यवस्थाओं तथा साथ ही साथ अनुशासन संहिता के विरुद्ध था।[4] हिन्द मजदूर सभा से सम्बद्ध संघ को फलतः उच्च न्यायालय में सरकारी निर्णय को चुनौती देनी पड़ी।

---

१ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा, १२वां प्रतिवेदन पृ० १६१।
२ सी० वी० कुमार पृ० ११६।
३ हिन्द मजदूर सभा ६वीं स्वागत समिति पृ० ८।
४ हिन्द मजदूर सभा ६वीं महासचिव की रिपोर्ट पृ० ३५।

टोर इसी प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण कहानी भारी विद्युत गयन, भारत की है। गयन की औद्योगिक शांति क्रमशः अनिश्चित रही है। यहाँ तक कि १९६२ के निर्वाचन दौर के समय हमारे प्रधानमंत्री का प्रबोधन भी गुत्थी को सुलझाने में समर्थ नहीं हो सका। श्रमिकों और पुलिस के बीच कुछ कम या अधिक युद्ध की सी स्थिति पैदा हो गई थी। "भारी विद्युत गयन में संकट के मुख्य कारणों में से एक प्रबन्ध और राज्य श्रम विभाग द्वारा भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के संघ को ऊँचा उठाने का प्रयास था। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के संघ पर श्रमिकों का विश्वास नहीं था और यह तथ्य प्रबन्ध को अच्छी तरह मालूम था। किन्तु फिर भी संभवतः राजनीतिक दबाव के कारण, प्रबन्ध भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के संघ को मान्यता दिये रहा।[1] यह गयन प्रारम्भ से ही श्रम संघर्षों का अखाड़ा रहा है तथा पिछले दो वर्षों में चार हड़ताल और सामूहिक भूख हड़ताल हो चुकी है। प्रबन्ध द्वारा उपलब्ध श्रम न्यायालय ने पिछली भी हड़ताल को गैर कानूनी, जो अप्रैल पूर्वार्द्ध में घटित हुई और जिसने सार्वजनिक क्षेत्र के एक प्रमुख प्रतिष्ठान पर गतिरोध का धब्बा लगा दिया।

ऐसी ही कहानी इस्पात नगर की भी है जहाँ साम्यवादी नियंत्रित संघ और श्रमिकों के बीच अनोखी स्थिति मजबूत बन रही थी। सरकार ने साम्यवादी प्रभाव से युक्त संघ का मुकाबला और इस क्षेत्र में भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की सहायता करने के लिए प्रत्येक संभव विधि का प्रयोग किया। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा का तो सभा विरोधी सरकार की नीति के विरुद्ध आम शिकायत है। "यहाँ भी इस्पात नगरी में हड़ताल विरोध विरोधी, लाठी प्रहार और निवारक निरोध अधिनियम का सर्वाधिक उदार उपयोग किया गया था।"[2] इस महत्त्वपूर्ण आरोप की अवहेलना कर सकते हैं क्योंकि यह अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा द्वारा लगाया गया है। किन्तु इसी प्रकार के आरोप हिन्द मजदूर सभा द्वारा भी लगाये गये हैं। श्रमिकों में फूट डालने तथा प्रबन्ध के हितों की रक्षा करने के लिए राज्य सरकार ने अनेक अवैध उपाय किये। कानून और व्यवस्था के नाम पर संघ के पदाधिकारियों को जिले से निष्कासित कर दिया गया। श्रमिकों को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया गया। औद्योगिक झगड़ा मिल के विवाद का अन्तिम न्यायनिर्णयन के लिये तभी सौंपा गया जब सब हिन्द मजदूर सभा में निकलकर भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा में सम्मिलित हो गया। इससे राज्य सरकार के उद्देश्यों और प्रमाणिकता पर और भी प्रकाश पड़ता है।"[3] भारत में निश्चित रूप से

---

१ स्टेट्स मैन फरवरी २० १९६२।

२ अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा एर्नाकुलम का सामान्य प्रतिवेदन, पृ०।

३ हिन्द मजदूर सभा ८वां सम्मेलन पृ० ६३।

काग्रेसी लोगो का यह विश्वास है कि अन्य सघो की अपेक्षा भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा के सघो को सरकार से अधिक प्रोत्साहन मिलता है। [1] 'श्रमिक सघो का अपनी ओर करने की उत्सुकता से प्रेरित होकर इसने श्रमिक सघो के नये सघान के गठन का प्रवर्तन किया तथा श्रमिक सघ मान्यता सौदाकारी अभिकर्ता के रूप मे श्रमिको के प्रतिनिधियो का चुनाव की प्रक्रिया आदि जैसे मामलो के सम्बन्ध मे अपनी नीति को रजित कर दिया। [2] महाराष्ट्र राज्य कोल्हापुर मे राज्य यातायात के कर्मचारियो को गिरफ्तार और बलीकृत किया गया जबकि वे हडताल मे भी सम्मिलित नही हुए थे। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा को सहायता देने के उद्देश्य से यह सब किया गया क्योकि वहा भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा सघ प्रतिनिधि सघ था।'[3]

यह तक दिया जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा तथा काग्रेस मे इसलिए इतना निकट का सबध है क्योकि उनकी मूल नीतिया एक हैं। "भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा ने अपने तथा काग्रेस के बीच विचारो और आदर्शों की एकरूपता पायी है। दोनो ही सत्य और अहिंसा तथा गाधीजी के अन्य सिद्धान्तो पर विश्वास करते हैं इसके अलावा काग्रेस एक सगठन था जिनके साथ वे पूर्णरूप से सम्बद्ध रहे हैं।"[4] इसी कारण भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा ने आम चुनाव मे काग्रेस के उम्मीदवारो को सामूहिक समर्थन देने की बात कही थी। यह सुझाव भी दिया जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा और काग्रेस मे सैद्धान्तिक सम्बन्धो की निकटता के कारण ही प्राय सरकारी सरक्षण का गलत आभास पैदा हो जाता है। किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि काग्रेस दल और सरकार के बीच अन्तर स्पष्ट व्याख्यायित होना चाहिये और बनाये रखना चाहिये। काग्रेस एक दल के रूप मे भले ही भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा का समर्थन करे किन्तु सरकार को विभिन्न श्रमिक सघो के बीच कठोर तटस्थता बरतनी चाहिये और सर्वाधिक प्रतिनिधि श्रमिक सघ से ही सद्व्यवहार करना चाहिये। ऐसा सोचने के कारण हैं कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा राज्य सहायता को प्राप्त करने मे समर्थ है। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा को अपनी स्थिति और शक्ति से विस्थापित करने के अखिल भारतीय श्रमिक सघ सभा के प्रयत्न इस प्रकार न केवल राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा की व्यवसाय सघ नीति पर आक्रमण समझे जाते

---

१ चार्ल्स मॉयर्स इडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० २८६।

२ सी० वी० कुमार डवलपमेंट आफ इडस्ट्रियल रेलेशन इन इण्डिया ओरियन्ट लागमेंस पृ० १४६।

३ एस० एम० जोशी हिन्द मजदूर सभा ६वाँ सम्मेलन, पृ० ४०।

४ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा ६वाँ अधिवेशन, पृ० २६।

है बल्कि सरकारी नीति पर भी निगम वह सम्बन्धित है, कुछ कम मात्रा में यही बात अन्य केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठनों की गतिविधियों के साथ लागू होता है। श्रम के मामलों के सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति इस दृष्टिकोण से भी परखनी चाहिये। एक ओर शासक दल के रूप में कांग्रेस दल सरकार की नीति को सूचित करता है, तथा भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित भी है जिसे वह अपनी श्रमशाखा समझती है। दूसरी ओर, संगठित श्रमिकों के बीच राजनीतिक समर्थन के लिये सरकार भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की ओर झुकती है तथा स्वभावतः श्रमिक संघों के सम्बन्ध में अपनी नीति (सरकार के रूप में अपने दायित्वों के अनुरूप) इस तरह से विकसित करती है जिससे औद्योगिक श्रमिकों के बीच भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की स्थिति सुदृढ़ बनी रहे।"[1]

यह भविष्य के लिये भी कुछ सत्य है। वर्तमान समय में श्रमिक संघ आन्दोलन की दुर्बलता को दूर करने के अलावा इससे अन्य राजनीतिक दलों को, यदि वे किसी राज्य में अधिकार में आते हैं इसी प्रकार की दुर्बलता को अपनाने का प्रोत्साहन मिलता है। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा के संघों को बढ़ावा देने के लिये केरल के साम्यवादी मंत्रिमण्डल के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की ओर शिकायत की थी। श्रमिक संघों पर राजनीतिक दबाव केवल उन्हें क्षीण और उस भूमिका के अनुपयुक्त बना सकता है जिसका कि उन्हें निर्वाह करना है।

हमारा सम्बन्ध इस खण्ड में यहां विचार करने का है कि सार्वजनिक क्षेत्र में उन नीतियों को सरकार ने क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया है अथवा नहीं। सूक्ष्म अध्ययन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कथनी और करनी के बीच काफी अन्तर रहा है। घोषित नीतियों के क्रियान्वयन का असर काफी सीमित की स्थिति रही है। यद्यपि सरकार ऐच्छिक पंचनिर्णय और सामूहिक सौदाकारी का पक्षपात करती है किन्तु फिर भी विवादों को पंचनिर्णय के लिये सौंपने हेतु अपना अधिकार बनाये रखना चाहती है। श्री गिरि जब श्रम मंत्री थे, नीति में परिवर्तन लाना चाहते थे और सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करना चाहते थे। किन्तु उन्हें प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा और नीति क्रियान्वित नहीं की जा सकी। श्री खण्डूभाई देसाई का विश्वास है कि "अब तक नीति समयानुकूल नहीं रहा। श्रमिकों और प्रबन्धकों को जंगल का कानून मानने के लिये स्वतन्त्र अनुमति नहीं दे सकता है। इसलिए अन्तिम आश्रय के रूप में विवादों को अधिनिर्णय के लिये सौंपने हेतु सरकार ने अधिकार लिये हैं।" इसी तरह के विचार बम्बई राज्य

[1] सी० बी० कुमार: डवलपमेंट आफ इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया, ओरियन्ट लांगमैन्स पृ० १२५–२६।

के श्रम मन्त्री श्री शान्तिलाल शाह तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के सन् १६५४ में आयोजित सम्मेलन में भारतीय शिष्टमंडल ने व्यक्त किये थे।

ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ राज्य विनियमन के अन्तर्गत निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विकास का नियोजन किया जाता है श्रम प्रबन्ध सम्बन्धों के क्षेत्र को पूर्णतया संयोग पर छोड़ देना स्पष्ट रूप से अव्यावहारिक होगा। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यद्यपि विवादों के ऐच्छिक निबटारे और सामूहिक सौदागरी को प्रत्येक तरह से प्रोत्साहन देना चाहिए राज्य को जहाँ भी आवश्यक तथा उपयुक्त हो हस्तक्षेप करने के लिए तैयार रहना चाहिए। हम विश्वास करते हैं कि श्रम प्रबन्ध के विवादों को सुलझाने के लिए जो पारस्परिक विचार विमर्श से नहीं सुलझते हैं सर्वोत्तम मार्ग हड़ताल या तालाबन्दी द्वारा शक्ति परीक्षा नहीं है बल्कि निष्पक्ष संस्था द्वारा निर्णय है। इसके अलावा योजनाकाल में हमारा देश श्रम प्रबन्ध के विवादों, जिन्हें अन्य रीतियों से सुलझाया जा सकता है के परिणामस्वरूप उत्पादन में हानि सहन के लिए समर्थ नहीं हो सकता है। इसी कारण इस विषय पर कानून यह है कि मेरे देश में जब विचार विमर्श, समाधान और ऐच्छिक पंचनिर्णय की प्रक्रिया असफल हो जाती है अनिवार्य अधिनिर्णय की व्यवस्था की गई है। ऐच्छिक विचार विमर्श और सामूहिक सौदागरी की पूर्व मान्यता संयुक्त श्रमिक संघ आन्दोलन और नियोजकों का ज्ञानाभिप्रेत दृष्टिकोण है जिसे विकसित करने में पश्चिम के प्रगतिशील देशों को कई वर्ष लग गये। एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था जो नियोजित लक्ष्यों को उपलब्ध करने के लिए प्रयत्नशील है श्रम प्रबन्ध सम्बन्धों में सन्निहित खतरों को राज्य की कार्यवाही से बाहर छोड़ देने में समर्थ नहीं हो सकती है। हम औद्योगीकरण की पूर्व अवस्था में पश्चिमी समाज के अनुभवों द्वारा लाभान्वित होना चाहते हैं तथा उसके द्वारा सृजित बुराइयों का जहाँ तक सम्भव हो परिहार करना चाहते हैं। हम नियोजित विकास चाहते हैं और श्रम प्रबन्ध सम्बन्धों का नियमन हमारी योजना का एक भाग भी है। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमने अपनी मान्यताओं में सावधानी से अधिशासन का परिहरण किया है तथा स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को सामाजिक दिशा के साथ जोड़ने का प्रयास किया है।[1]

उपरोक्त विवरण संक्षेप में सरकार की नीति की व्याख्या करता है। दृढ़ और सशक्त श्रमिक संघ आन्दोलन का अभाव, श्रमिक संगठनों के प्रति नियोजकों की शत्रुता, योजना की अवधि में हड़तालों का आश्रय लेने की अवाञ्छनीयता विशेषकर उस स्थिति में जब समाजवादी स्वरूप उद्देश्य है और दुर्बल वर्गों के हितों की देखभाल करने के लिए राज्य है, जैसे तर्क अनगिनत बार अनिवार्य पंचनिर्णय के सिद्धान्त का समर्थन करने के लिये दिये गये हैं। सरकारी वक्ता हाल ही में पारित किये गये

---

१ चार्ल्स मायर्स इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० २६१-६२

अनेक श्रम विधानों की चर्चा करते रहे हैं। किन्तु इस वर्ग ने श्रमिक संघवाद को कभी मान्यता नहीं दी। इस तथ्य की पुष्टि के लिए चार्ल्स मायर्स ने निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत किया है —

'यदि आपका उद्देश्य सशक्त श्रमिक संघ आन्दोलन का निर्माण करना और सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करना है तो आप अनिवार्य अधिनिर्णय के उपयोग के कम ही पक्षपाती होंगे। किन्तु यदि आपका उद्देश्य आर्थिक विकास और राजनैतिक स्थिरता है तब आपको अनुशासन बनाये रखने के उपाय अवश्य ही अपनाने होंगे। संभवतः जब बीस वर्षों में हम हड़तालों के लिए समय हो सकते हैं तो हम स्वतंत्र सामूहिक सौदाकारी के लिए भी प्रयत्न कर सकते हैं।' [1]

इसी प्रकार के विचार एक अन्य केन्द्रीय सरकार के अधिकारी द्वारा भी व्यक्त किये गये थे। 'सामूहिक सौदाकारी मेरे लिये एक बिलकुल विरुद्ध विचार है। वयस्क मताधिकार और विकसित प्रजातंत्रीय कल्याणकारी राज्य के पहले "हड़ताल करने के अधिकार और सेवा विमुक्ति और सेवायुक्त की स्वतंत्रता" का अर्थ अधिक था। किन्तु आज बीसवीं शती के भारत में हम उपभोक्ताओं द्वारा प्रतिनिधित्व जन हित के लिये श्रम और प्रबन्ध के कर्तव्यों और दायित्वों तथा "कार्य करने के अधिकार" के रूप में सोचना चाहिये। इसलिए राज्य को श्रम अथवा प्रबन्ध की शक्ति को जिसके द्वारा सेवायोजन की शर्तें साथ में मजदूरी और कामबन्दी का निर्धारण होता है और जो पश्चिमी विचारधारा का अंग है रोकने के लिए अवश्य अधिकार रखने चाहिये क्योंकि यह बहुत महँगा है और भारत उसके लिए अभी समय नहीं है जबकि आवश्यकता निर्बाध उत्पादन की है। अतः सरकार को, केवल छोटे विवादों को छोड़कर अधिकांशतः प्रत्येक विवाद में हस्तक्षेप करना चाहिये।' [2]

इन्हीं विचारों के अनुरूप श्रमिक संघों के विरुद्ध पूर्वाग्रह के साथ राज्य की नीति हमेशा निष्पादित की गई है। वस्तुतः उन्हें नियोजित अर्थव्यवस्था तथा समाज के लिए निरर्थक समझा गया है। प्रधानमन्त्री ने कहा था 'यद्यपि श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये श्रमिक संघों का होना आवश्यक है किन्तु साथ ही साथ देश के वृहत्तर हितों को भी देखना आवश्यक है। उद्योग की समस्याओं को सुलझाने के लिए लड़ाई झगड़ा में पड़ने या शक्ति और ताकत का प्रदर्शन करने के लिये प्रयत्न करने में मैं कोई बुद्धिमानी नहीं देखता हूँ। सभी समस्याएँ सौहार्द और सद्भावना के वातावरण में पारस्परिक विचार विमर्श द्वारा सुलझायी जानी चाहिए।' [3]

---

१ चार्ल्स मायर्स इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया, पृ० २२८-२९

२ चार्ल्स मायर्स (उद्धृत) इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया, पृ० २२९

३ वही पृ० २७८

किन्तु यह अनुभव नहीं किया जा रहा है कि अनिवार्य पंचनिर्णय द्वारा श्रमिक संघ आन्दोलन की जड़ पर ही प्रहार किया जाता है। वर्तमान समय में संगठनों को कुछ सामान्य आर्थिक समस्याओं जिन्हें बड़ी संख्या में लोग भुगतते हैं पर ही मर्कीद्रत होना पड़ेगा। हमारे देश में श्रमिकों के लिए मूल प्रश्न रोजगार की सुरक्षा उचित और निर्वाह मजदूरी खतरों के विरुद्ध पर्याप्त संरक्षण तथा न्याय और सेवा की अच्छी अवस्थाओं का है। इन समस्याओं की देखभाल करने के लिए श्रमिक संघों का संगठन किया जाता है और यदि राज्य के पास प्रायः ही हस्तक्षेप करने का अधिकार है तो संगठन का मूल आधार ही दुर्बल हो जाता है। श्री गिरि ने सम्पूर्ण समस्याओं को बड़े ही अच्छे ढंग से राष्ट्रीय श्रमिक सभा के सम्मुख १९५२ में रखी थी जब उन्होंने कहा अनिवार्य अधिनिर्णय ने श्रमिक संघ संगठन की नींव ही काट दी है यदि श्रमिक समझते हैं कि उनके हितों का सर्वोत्तम प्रवर्तन केवल संयोजन द्वारा होना है तो उनके बीच एकता और शक्ति स्थापित करने हेतु बंध पत्र भरने के लिए और अधिक उत्तेजना की आवश्यकता नहीं है। किन्तु अनिवार्य पंचनिर्णय देखता रहता है कि ऐसा कोई बंध पत्र न भरा जाए। इसकी स्थिति एक पुलिस कर्मचारी की तरह है जो असंतोष का सबका का निरीक्षण करता रहता है और जरा सी उत्तेजना पर दलों को न्यायालय में महँगी खुराक के लिए परमीट ले जाना है जहाँ पूर्ण संतोषप्रद न्याय भी नहीं मिलता। जैसे ही पुलिस कर्मचारी की पीठ फिरती है दलों के मुँह दोहरे निश्चय के साथ लाल हो उठते हैं और क्षादशीलता का पूर्व चक्र फिर से प्रारम्भ हो जाता है श्रमिक संघों को सशक्त और आत्मनिर्भर होने दीजिये और उन्हें सीखने दीजिये कि कैसे वे बिना पुलिस कर्मचारी की सहायता के अपना काम कर सकें। तब वे जानेंगे कि उन्हें अपने को किस प्रकार संगठित करना है और कैसे जो कुछ वे चाहते हैं अपनी स्वयं की शक्ति और सतर्कता से प्राप्त करना है। उनके लिए अत्यधिक आत्म-सम्मान प्राप्त करने का यह माध्यम भी होगा। यह सम्भव है कि जबतक दल सामूहिक सौदाकारी की प्रविधि न सीख जायँ कुछ अनावश्यक शक्ति परीक्षा हो किन्तु यह कब सम्भव है कि तैराक बिना गोता खाये ही तैरना सीख ले।[1]

सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करने तथा दोनों नियोजकों और श्रमिक संघों द्वारा पारस्परिक अधिकारों और दायित्वों को मान्यता देने के उद्देश्य से १९५८ में अनुशासन संहिता को आरम्भित किया गया था। संहिता को इस विश्वास पर कि यह सार्वजनिक क्षेत्र में भी लागू होगी सभी केन्द्रीय श्रमिक संघ संस्थाओं का समर्थन मिला। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि संहिता से औद्योगिक वातावरण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। हिंद मजदूर सभा का मत था कि नियोजकों तथा

१ चार्ल्स मायर्स इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० २७८

गया है। किन्तु इन सकारात्मक पक्षों को उचित महत्त्व नहीं दिया गया है।

इसका कारण नियोजकों की जड़ और न झुकने वाली प्रवृत्ति रही है। 'प्रवृत्ति यह रही है कि मामूली से वहाने को लेकर वे न्यायाधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध अपील करते हैं। प्रमुख संस्थानों में अनेक वकील नियुक्त किए जाते हैं जिनका मुख्य काम, बिना तथ्यों पर ध्यान दिये अनन्त मुकदमा लड़ना रहना है। स्वभावतः इससे श्रमिक आकुल और उत्पीड़ित होते हैं जो वित्तीय कठिनाइयों के कारण समुचित प्रतिनिधित्व के अभाव में उन पर मुकदमा चलाने में असमर्थ होते हैं। फलतः विक्षिप्तता का सृजन होना है और उनकी उत्पादक क्षमता को दुरुस्त बनाने के अलावा नियोजकों के प्रति उनका विश्वास भी हिल जाता है। एक बार ऐसा होने पर अनगिनत समस्याएँ उनके समक्ष उपस्थित हो जाती है और तब सामान्य स्थिति पुनः लाने के लिए कोई भी विचारणीय उपाय सहायता नहीं कर पाता है।'[1]

सौदाकारी अभिकर्त्ता के रूप में श्रमिक संघों को मान्यता तथा नियोजकों की अभिवृत्ति में आमूल परिवर्तन की मूल धारणा पर संहिता की सफलता आधारित है। किन्तु इन अभिधारणाओं को पूरा नहीं किया गया है। ऐसे आरोप हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र का व्यवहार भी उचित नहीं है। संघों को सामूहिक सौदाकारी अभिकर्त्ता के रूप में बिना समुचित मान्यता दिये संहिता के सफल होने की आशा नहीं की जा सकती है। जबतक इन मूल अभिधारणाओं को स्वीकार नहीं किया जाता संहिता के द्वारा एक ऐसी स्थिति बनी रहेगी जहाँ दोनों दल एक दूसरे के विरुद्ध बराबर अभियोग लगाते रहेंगे। सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों द्वारा संहिता के उल्लंघन करने, जिसके लिए वे उत्तरदायी हैं, के आरोप लगाते जाते हैं। राज्य की अभिवृत्ति ही गुनगुनी प्रतीत होती है। इसीलिए एक काफी बड़ा वर्ग निकट रूप से यह अनुभव करता है कि अनुशासन-संहिता एकपक्षीय अनिवार्यता हो गई है जिसका उपयोग किसी भी रूप में सरकार अथवा नियोजकों का बाध्य किये श्रमिकों और उनके संघों के विरुद्ध किया जाता है।

ऐसा अनुभव करने के लिये पर्याप्त आधार है। सरकार स्पष्ट रूप से श्रमिकों की कठिनाइयों, संहिता के अधिकारी या औद्योगिक शांति तथा उत्पादन की अनवरतता की अपेक्षा अपनी प्रतिष्ठा अधिक महत्त्वपूर्ण समझती है।'[2] भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की सामान्य परिषद् की कानपुर में नवम्बर १९५९ में आयोजित अपनी २५वीं बैठक में कहना पड़ा था कि 'परिषद् ऐसा अनुभव करती है कि नियोजकों द्वारा अनुशासन संहिता का उपयोग बिना अपने तत्सवादी दायित्वों का निर्वाह किये केवल श्रमिकों को संहिता के अन्तर्गत उनके दायित्वों का स्मरण

---

१ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ११वीं रिपोर्ट पृ० १६–१७

२ हिन्द मजदूर सभा ८वां सम्मेलन पृ० ९५।

करार के लिए किया जा रहा है। ऐसा विशेषकर संहिता की ऐच्छिक पंचनिर्णय की धारा को लेकर कहा जाता है जिसमें यह व्यवस्था की गई है कि दल सभी विवादों को वार्तालाप तथा उनके असफल होने पर ऐच्छिक पंचनिर्णय द्वारा सुलझाने के लिए बाध्य है। परिषद् भारत सरकार से अपील करती है कि वह अपने सौजन्य से यह सुनिश्चित कराये कि नियोजक चाहे वैधानिक रूप से अथवा अपने संगठनों के माध्यम से विशेषकर ऐच्छिक पंचनिर्णय की धारा को मानें ताकि अनिवार्य अधिनियम तथा सर्वोच्च न्यायालय में अपील और उससे जनित विलम्ब को दूर किया जा सके। परिषद् सरकार से यह भी अपील करती है कि वह विशेष रूप से अनुशासन संहिता के पंचनिर्णय सिद्धान्त को सार्वजनिक क्षेत्र के अपने कर्मचारियों के सभी विवादों को निपटारे हेतु स्वीकार करें तथा परिषद् राज्य सरकारों से भी अनुरोध करता है कि वे सभी दलों द्वारा संहिता की सभी व्यवस्थाओं का पालन करवाने हेतु आवश्यक कदम उठायें।[1]

वर्तमान स्थिति लगभग वही है जो अनुशासन संहिता लागू होने के पूर्व थी। राज्य जहां सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करना चाहता है वहीं हड़ताल करने के अधिकार पर कटौती करने में अपने अधिकार को भी नहीं छोड़ना चाहता। हड़ताल करने के अधिकार को तालाबन्दी घोषित करने के अधिकार के साथ समाहित करना गलत है। यदि एक सामाजिक न्याय प्राप्त करने का हथियार है तो दूसरा यथास्थिति बनाये रखने का माध्यम। यदि प्रथम वर्तमान स्वरूप के विरुद्ध जन समूहों के असंतोष और रोष की अभिव्यक्ति तथा उत्तेजित रूप में एक बड़ी संख्या में श्रमिकों के बलिदानों का प्रतीक है तो दूसरा सिर्फ नियोजकों के उत्तेजन या कठिनाई का प्रतिबिम्बन किये श्रमिकों के लिये ही कठिनाइयां पैदा करता है।

ऐसी स्थिति में सवाल बिल्कुल स्पष्ट है। राज्य नियोजित आर्थिक विकास और समाज के समाजवादी स्वरूप के नाम पर श्रमिक से श्रमिक विरुद्ध अधिकारों का ग्रहण कर सकता है। किस सीमा तक श्रमिक संघों को प्रोत्साहित या बर्दाश्त करना चाहिये क्या वे प्रगति के लिये बाधक हो सकते हैं? ये सभी महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं और जिन पर ही विचार करना है कि समुचित नीति क्या हो सकती है जो लम्बी अवधि में सहायक सिद्ध हो। तात्कालिक लाभ और समस्याओं में हमारी दृष्टि धूमिल नहीं पड़नी चाहिये। स्थिति को निम्नलिखित शब्दों द्वारा उचित रूप से स्पष्ट किया गया है —

फिर भी यह दुविधा विभिन्न भूमिकाओं को स्पष्ट करती है जिनका निर्वाह अल्प विकसित रूप में जो त्वरित औद्योगीकरण की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हैं श्रमिक आन्दोलन को करना पड़ता है। जब निजी उद्यमियों के उपक्रमों में आर्थिक विकास

---

१ चार्ल्स मायर्स इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० २२०–२१।

काफी धीमी गति में था। पर जैसाकि अनेक पश्चिमी देशों में १९वीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ, श्रमिक आंदोलन ने औद्योगीकरण के प्रत्युत्तर तथा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए स्वतंत्रता की विभिन्न मात्राओं के साथ प्रत्यक्ष आर्थिक कार्यवाही के उपयोग के प्रतिवाद आंदोलन के रूप में विकास किया। किन्तु जब भारत अन्य विकसित देशों में आर्थिक विकास के लिए सरकार को अधिक रुचि लेने हेतु विवश किया जाता है तो श्रमिक आंदोलन को एक वर्गीय समूह के रूप में स्वीकार करने की अपेक्षा सम्पूर्ण राष्ट्र के आर्थिक विकास के एक माध्यम के रूप में (सरकारी अधिकारियों तथा कुछ श्रमिक संघ नेताओं द्वारा) समझा जाता है। वस्तुतः भय यहीं यह है कि श्रमिक आंदोलन कभी अधिकेन्द्रित दशा की तरह श्रमिक मोर्चा न बन जाय।'[1]

हम दोहरे रूप से सावधान रहना है क्योंकि आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की यह अन्तर्निहित प्रवृत्ति है कि राज्य के अधिकार बढ़ते जाते हैं। मैं उस सबसे गंभीर खतरे की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ जिससे आज सभ्यता को खतरा है ... अन्य सभी खतरों की तरह जो उसे धमकी देते हैं इस सभ्यता ने ही जना है। इससे भी अधिक यह उसके गौरव में से एक है और यह राज्य है जैसाकि हम आज उसे जानते हैं।[2] हमारे समय में राज्य एक भीषण तंत्र हो गया है जो अपने सूक्ष्म साधनों तथा तंत्र की मात्रा द्वारा आश्चर्यजनक क्षमता रखता है तथा अद्भुत रूप में कार्य करता है। एक बार समाज के बीच इसकी स्थापना हो जाय फिर चाहे जो सामाजिक स्वरूप हो इसके भीषण हस्तक्षेप का कार्य प्रारम्भ करने और किसी भी भाग पर अपनी पराभूतिक शक्ति को प्रयोग करने के लिए मात्र बटन दबाना ही पर्याप्त है।[3] समकालीन राज्य सभ्यता की सब विख्यात उपज है तथा सरलता में दर्शनीय है और इससे समस्त अपनायी जाने वाली जन समूह की अभिवृत्ति को जब साद देखता है तो वह एक रुचिकर तथ्य होता है। वे उसे देखते हैं प्रशंसा करते हैं जानते हैं कि वह उनके अस्तित्व की रक्षा कर रहा है। जनसमूह राज्य में अनामक शक्ति देखते हैं और उसी की तरह स्वयं को अनामक अनुभव करते हैं वे विश्वास करते हैं कि राज्य उन्हीं का अपना है। मान लीजिए किसी देश के सार्वजनिक जीवन में कुछ कठिनाई संघर्ष या समस्या पैदा हो जाती है तो जनसमूह द्वारा यह माँग की जायगी कि राज्य अपने विपुल संसाधनों से तुरन्त हस्तक्षेप करे तथा उसका प्रत्यक्ष हल करे।

'यह सबसे गंभीर खतरा है जो आज सभ्यता को धमका रहा है। राज्य

---

१ चार्ल्स मायर्स इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया पृ० ३२०–२१।

२ ओर्टेगा वाई गैसेट दि रिवोल्ट आफ दि मासेज पृ० ८५।

३ वही।

हस्तक्षेप राज्य द्वारा सभी स्वाभाविक सामाजिक प्रयत्नों का मतलब जो आगे चलकर मानवीय इच्छाओं को दमन करता है घोषित करता है और नियन्त्रित करता है।

उस प्रवृत्ति का परिणाम घातक होगा। राज्य हस्तक्षेप द्वारा बार बार स्वाभाविक सामाजिक क्रिया का विखण्डन होगा, कोई नया बीज अंकुरित होने का समय नहीं होगा। समाज को राज्य के लिये और व्यक्ति को सरकारी तन्त्र के लिये जीना पड़ेगा।'[१]

हम, जिन्होंने प्रजातान्त्रिक नीतियों और आदर्शों पर अपना विश्वास प्रकट किया है अचानक और कठोर नीतियों को अपनाने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिये तथा व्यक्ति का विकास करने की शक्ति का परिपोषण करना चाहिये। 'वास्तविक स्वराज्य कुछ लोगों के द्वारा अधिकार हस्तगत कर लेने से नहीं बल्कि सभी के द्वारा क्षमता हस्तगत कर लेने से आयगा ताकि अधिकारों का दुरुपयोग हो तो उसे रोका जा सके। दूसरे शब्दों में स्वराज्य जनता को शिक्षा द्वारा उसकी क्षमता के प्रति जागरूक बना कर प्राप्त किया जा सकता है जिससे वह अधिकारों को नियमित और नियन्त्रित कर सके।'[२] यह महात्मा गांधी की सलाह थी। वह समाज रूप में राज्य की हमेशा बढ़ती हुई शक्ति से सशंकित रहे। "मैं राज्य की शक्ति में वृद्धि को सर्वाधिक भय से देखता हूँ क्योंकि यह प्रकट रूप में शोषण को कम करके यद्यपि भलाई करती है किन्तु व्यक्तित्व, जो सभी प्रगतियों का मूल है, के नाश द्वारा वह मानवता को सबसे अधिक क्षति पहुँचाती है। हम अनेक ऐसे मामले जानते हैं जहाँ लोगों ने न्यासिता को अपनाया है किन्तु कहीं भी राज्य वास्तविक रूप से निर्धनों के लिये नहीं जिया है।"[३] 'समाज अच्छे जीवन निर्वाह के लिये एक माध्यम के रूप में राज्य का निर्माण करता है बाद में राज्य समाज पर अधिकार कर लेता है और समाज को राज्य के लिए जीना प्रारम्भ करना होता है।

वस्तुतः हमारे देश में खतरा बहुत बड़ा है जहाँ लोग गरीबी और असमानता के गहरे गर्त में डूबे हुए हैं और जहाँ वे अपना उद्यम और उपक्रमण खो चुके हैं। ऐसी स्थिति में जो भी अधिक दान की प्रतिज्ञा करता है उसे ही जनता पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। हाल के वर्षों में राज्य हस्तक्षेप और नियन्त्रण सभी क्षेत्रों में औद्योगिक सबको मिलाकर बढ़ गया है।

---

१ ओर्टेगा वाई गैसेट दि रिवोल्ट ऑफ दि मासेज, पृ० ८७-८८।

२ हरिजन, १९२४, पृ० ३०१।

३ ओर्टेगा वाई गैसेट दि रिवोल्ट ऑफ दि मासेज, पृ० ८६।

१६

केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियो की हडताल

भारत के श्रमिक संघ आन्दोलन के इतिहास में केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियो द्वारा जुलाई १९६० में की गई हडताल एक महत्वपूर्ण विकास है। न केवल देश में बल्कि विदेशों में भी इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। इसने एक बार फिर सरकारी कर्मचारियों द्वारा हडताल करने के अधिकार बाहरी लोगो की भूमिका आदि के संबंध में वाद विवाद के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसका विश्लेषण देश में त्वरित गति से बढने और विकसित होते हुये सार्वजनिक क्षेत्र तथा फलस्वरूप श्रम नीति को आकार देने और प्रभावित करने की सरकार की भूमिका के परिप्रेक्ष्य में करना है।

विवाद का मुख्य कारण मूल्यो का बढता हुआ स्तर था जिसके परिणाम स्वरूप निर्वाह व्यय सूचकांक में भी वृद्धि हो रही थी। अन्य प्रश्न आवश्यकताओ पर आधारित न्यूनतम मजदूरी का था। इन प्रश्नो पर समाजवादी समाज के लिए योजना के परिप्रेक्ष्य में विचार करना था जिसमें वर्धित राष्ट्रीय आय का उपयोग निम्न आय वाले वर्गों को सुविधा पहुँचाने और उन्नत करने के लिए किया जाना निश्चित किया गया था। इन दोनो ही प्रश्नो पर द्वितीय वेतन आयोग का प्रतिवेदन सरकारी कर्मचारियो को संतोष नही दे सका।

आवश्यकताओ पर आधारित न्यूनतम मजदूरी के संबंध में वेतन आयोग ने भारतीय श्रमिक सभा द्वारा सर्वसम्मत पारित सिफारिशो को स्वीकार नही किया। वित्त मंत्रालय ने आयोग को लिखा था कि भारत सरकार भारतीय श्रमिक सभा की सिफारिशो को मानने के लिए वचनबद्ध नही है। इसलिए आयोग ने आवश्यकताओ पर आधारित न्यूनतम मजदूरी जो लगभग १२५ रुपये आंकी गई थी का अनुमोदन नही किया। आयोग ने बजाय इसके मात्र ८० रुपये की न्यूनतम मजदूरी की सिफारिश की। ऐसा करने के लिए आयोग ने साध्य भारतीय श्रमिक की साध्य पोषक तत्वो की आवश्यकता को कम कर दिया जो खाद्य और कृषि संगठन के डॉ० अक्रोयड द्वारा सुझाई तत्वो की स्वीकृत प्रमाप थी। आयोग की इन सिफारिशो ने सरकारी कर्मचारियो को बहुत असंतुष्ट कर दिया।

श्रमिको को बढती हुई कीमतों से संरक्षण प्रदान करने के लिए महँगाई भत्ता

देने के प्रश्न का भी सन्तोषजनक हल नहीं खोजा जा सका। प्रथम वेतन आयोग की सिफारिश की अवहेलना करते हुए वेतन आयोग ने केवल यही सुझाव दिया कि निर्वाह व्यय सूचकांक यदि १२ महीने की अवधि में लगातार १० अंकों से बढ़ा रहे (आधार १९४९–१००) तो कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में आयोग न तो कर्मचारियों की आवश्यकताओं पर आधारित न्यूनतम मजदूरी के विषय में आश्वासन दे सका और न ही उनके निम्न जीवन स्तर को बनाये रखने के बारे में जिसके लिए उसी ने सुझाव दिया था। उनकी टिप्पणी थी कि 'कीमतों की अस्थिरता की संभावना के बारे में प्रशिक्षित साक्षियों में एकमत का उल्लेख हमने पहले ही किया है।" और तब भी कीमतों के बढ़ते हुए स्तर के प्रति विश्वास होते हुए आयोग समस्या का कोई निश्चित निदान नहीं सुझा सका।

दूसरी ओर आयोग ने इस विषय पर एक विचित्र दृष्टिकोण अपनाया। आयोग का कहना है 'यद्यपि जनवरी १९४७ की तुलना में सरकारी नौकरी में प्रवेश करने वाले व्यक्ति के देय न्यूनतम वेतन में वास्तविक रूप से ६ प्रतिशत की हानि हुई है तथापि महँगाई भत्ते में वृद्धि वेतन क्रम में प्राप्त होने वाली बढ़ोतरी तथा उच्च पदों में उन्नति—जिसमें वेग प्रथम कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि के कारण हुआ—का सम्मिलित प्रभाव कुल माध्य में वृद्धि रहा है।' यह आश्चर्यजनक तथ्य है। न्यूनतम स्तर को बनाये रखने की अपेक्षा पदोन्नति और वेतन क्रम में बढ़ोतरी का उद्देश्य बिल्कुल ही भिन्न है।

भारत सरकार के भूतपूर्व श्रम मंत्री श्री वी० वी० गिरि द्वारा कीमतों और मजदूरी के बीच युक्त सह सम्बन्ध बनाये रखने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। उनका कहना था कि वे इस समय राज्यपाल के रूप में ५००० रुपये वेतन पाने की अपेक्षा १९३६ में मद्रास के मंत्री के रूप में ५०० रुपये वेतन पाकर अधिक सन्तुष्ट थे एक स्तर कर्मचारी ७७ रुपये की न्यूनतम मजदूरी से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ नहीं है। पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने भी कहा था कि निवाह मूल्य बढ़ गया है और इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि श्रमिक असंतुष्ट हैं और अपने वेतन में वृद्धि चाहते हैं। सरकार ने स्वयं ही कीमतों के बढ़ जाने के फलस्वरूप श्रमिकों की कठिनाइयों की ओर ध्यान दिया है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि अनेक उद्योगों में निवाह मूल्य सूचकांक के साथ महँगाई भत्ते में स्वमेव समायोजन के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। इसी कारण यह कहा जाता है कि केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की तुलना में औद्योगिक श्रमिक अच्छे हैं। फलत कर्मचारियों की माँगें अनुचित समझना किसी भी निष्पक्ष अवलोकन के लिये बहुत कठिन था। यहाँ तक कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के कमठ नेता श्री रामानुजम को कहना पड़ा कि इन माँगों में कोई

अनौचित्य नहीं है ।

कुछ छोटे मोटे अन्य मसले भी थे जिनका अनिवार्य रूप से सम्बन्ध वेतन आयोग की कुछ सिफारिशों के क्रियान्वयन की रीतियों और प्रणाली से था । आयोग ने अपना प्रतिवेदन नवम्बर १९५९ में प्रस्तुत कर दिया था और तब भी सरकार उसकी सिफारिशों पर किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच सकी । इसके अलावा वेतन आयोग की अनेक सिफारिशें जिनमें श्रमिकों के हितों में बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना थी तुरन्त क्रियान्वित कर दी गई यहां तक कि कुछ के सबंध में उदाहरणार्थ दो शनिवार पूरे कार्य के दिन कर दिये जायें, सरकार वेतन आयोग की सिफारिशों से भी आगे बढ़ गई । किन्तु उन सिफारिशों के सबंध में जिनसे श्रमिकों को लाभ होने की सम्भावना थी जैसे उदार निवृत्ति लाभ छुट्टियों के नियम यात्रा में छूट चिकित्सा और अन्य सुविधाओं की स्वीकृति आदि पर कोई निर्णय नहीं लिया गया यद्यपि इनमें से कुछ को भविष्य में स्वीकार किया गया । रेलवे कर्मचारियों को तो कुछ विशेषाधिकारों का छोड़ना पड़ रहा था जिनका वे बहुत दिनों से उपयोग कर रहे थे और जिन्हें उन्होंने एक प्रकार से सामूहिक सौदाकारी द्वारा प्राप्त किया था । इससे यह अनुभव किया जाने लगा कि सरकार अपने कर्मचारियों की समस्याओं के प्रति सहानुभूतिक नहीं है तथा वित्त की मेरी पट्टी भी मेरी की अस्थुक्ति द्वारा प्रति गामित है । धीरे धीरे यह अनुभूति प्रबल होती गई क्योंकि जो भी वह री सरकार ने प्रसन्न होकर अपने कर्मचारियों को दी थी उसे अप्रत्यक्ष रूप से कुछ सुविधाओं के प्रत्याहरण द्वारा अथवा उनकी कीमत बढ़ाकर छीन लिया गया ।

श्रमिक संघों के प्रतिनिधियों के साथ सरकार द्वारा वार्तालाप करने से इन्कार कर देना एक अन्य कारण था । सरकारी प्रतिनिधियों ने जड़ और कठोर अभिवृत्ति अपनाली थी । ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों ओर प्रतिष्ठा का प्रश्न अधिक महत्व पूर्ण था । किन्तु काफी सीमा तक दोष सरकारी प्रतिनिधियों का है । विशेषकर इसलिए क्योंकि श्रम मन्त्रालय एक तरह से विभिन्न भारतीय श्रमिक सभाओं में प्रवर्तित नीति का अनुसरण करने के लिए वचनबद्ध था । इसके अलावा वार्तालाप न करने के कई कारण भी दिए गये थे । प्रधानमंत्री ने संयुक्त संघर्ष परिषद् के प्रतिनिधियों से मिलने के लिए इन्कार कर दिया—सम्भवतः वे अनुभव करते थे कि किसी प्रकार का विचार विमर्श सम्भव नहीं है । बाद में श्रम मंत्री ने कुछ विलम्बित प्रयास किये थे । किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी क्योंकि उन्हें हल खोजने के लिए स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की अनुमति नहीं थी । 'संयुक्त संघर्ष परिषद् के नेताओं से मिलने के लिए प्रधानमंत्री की अस्वीकृति को समझना और अधिमूल्यित करना कठिन है, विशेष रूप से जब यह स्मरणीय है कि बाद में मंत्रिमंडल के प्रतिनिधि रूप में श्रम मंत्री ने न केवल उनसे बातचीत की बल्कि उन मांगों पर भी विचार विमर्श किया जो वेतन आयोग की सिफारिशों से परे थी । सम्भवतः प्रधानमंत्री के साथ भेंट से संयुक्त संघर्ष

परिषद् अधिक समझौते की अभिवृत्ति अपना नहीं होगी। मिलने और विचार विमर्श करने की उनकी अस्वीकृति न विपरीत प्रभाव डालकर उनके सदस्य को सीधी कार्यवाही द्वारा हल खोजने के लिए दृढ बना दिया।"[१]

यह अवश्य ध्यान म रखना चाहिए कि संयुक्त परिषद् ने प्रारम्भ म निम्न लिखित ६ माँगें प्रस्तुत की थी —

(१) प्रथम वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर महँगाई भत्ते का भुगतान।

(२) पन्द्रहवी श्रमिक सभा की सिफारिशों के अनुरूप राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी तथा श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के बीच समुचित मजदूरी भिन्नता की स्वीकृति।

(३) विवादों को सुलझाने के लिए दोनों दलों के बराबर प्रतिनिधियों तथा तटस्थ अध्यक्ष के साथ स्थायी मण्डल की स्थापना।

(४) वर्तमान सुविधाओं, अधिकारों और विशेषाधिकारों म कटौती न की जाय।

(५) (अ) किसी भी दल द्वारा निर्दिष्ट विवादों की मध्यस्थता के लिए प्रेषित करना तथा

(ब) तीन वर्ष म एक बार आयोजित जनमत द्वारा एक उद्योग या सरकारी विभाग म एक संघ या संघों को मान्यता प्रदान करना।

(६) (अ) कुछ नियमों की वापसी जिनके द्वारा सरकारी कर्मचारियों के श्रमिक संघ अधिकारों को नियन्त्रित किया जाता है।

(ब) उपरोक्त नियमों के अन्तर्गत निर्मुक्त व्यक्तियों के मामलों की तुरत जाँच करना।

(ग) विभाग द्वारा नौकरी की शर्तों का एकपक्षीयकरण करना।

(द) प्रतिरक्षा संस्थानों के अन्तर्गत काम करने वाले असैनिक कर्मचारियों को संविधान की धारा ३११ के अन्तर्गत संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार देना।

बाद म जब श्रम मंत्री के साथ वार्ता भंग हो गई तो हड़ताल टालने के लिए श्री फिरोज गाँधी ने अन्तिम क्षणों म प्रयास किया था। उन्होंने निम्नलिखित सुझाव दिये थे —

(१) १५वी श्रमिक सभा की सिफारिशों में दी गई आवश्यकताओं पर आधारित न्यूनतम मजदूरी को सिद्धान्त रूप म सरकार स्वीकार करे और यह आश्वासन दे कि प्रगामी रूप म उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किये जायेंगे।

(२) पाँच रुपये का अन्तःकालीन समायोजन (भविष्य निधि म जमा करने के

---

१ वी० वी० कार्णिक इण्डियन ट्रेड यूनियन्स ए सर्वे, पृ० २८१–८२

बजाय) का नकद किश्तों में भुगतान किया जाय।

(३) सरकार लिखित रूप से आश्वासन दे कि उस स्थिति में जब सूचकांक १२ माह की अवधि में १० अंकों से बढ़ा रहे तो कीमतों में वृद्धि के ५० प्रतिशत निष्फलन की व्यवस्था की जायगी। शेष ५० प्रतिशत के लिए अधिनिर्णय के बारे में सोचा जा सकता है।

संयुक्त संघर्ष परिषद् ने प्रथम दो सुझावों को तो स्वीकार कर लिया था किन्तु तीसरे को स्वीकार करने के प्रति उदासीन थी। उनका सुझाव था कि यदि १० अंकों की वृद्धि को आधार बनाया जाता है तो अवधि तीन मास की कर देनी चाहिये अथवा विकल्प स्वरूप उन्हें ६ से ६ महीने तक की १५ महीने की अवधि में ५ अंकों की वृद्धि स्वीकार है। यह ध्यान देने की बात है कि १९४९ आधार वर्ष से १० अंकों की वृद्धि का वास्तविक अर्थ आधार वर्ष १९३९ से ३६ अंकों की वृद्धि है। इससे हम ऐसे वार्तालाप में ५ अंक, १० अंक और ६ माह अथवा १२ माह के महत्त्व को आसानी से समझ सकते हैं। बाद में संयुक्त संघर्ष परिषद् ने यह भी सुझाव दिया कि यदि निर्वाह मूल्य ७ अंकों से (१९४९–१००) बढ़े तो महँगाई भत्ते के प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिये। सरकार महँगाई भत्ते की राशि अधिघोषित करे और अगर उसमें विवाद हो तो पंचनिर्णय के लिये निर्दिष्ट कर दिया जाय। किन्तु इन सुझावों को नहीं स्वीकार किया गया।

किन्तु कोई भी अनिवार्य रूप से इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि विवाद का विषय ऐसा नहीं था जिसे वार्तालाप अथवा सद्भावना से न हल किया जा सकता था। आवश्यक सद्भावना से विवाद सुलझाया जा सकता था और जिसके लिये पर्याप्त सीमा तक दायित्व सरकार का ही था। रीढ़ से टिके पेट वाले श्रमिक केवल यही चाहते थे कि उनका पहले से ही निम्न स्तर और अधिक न घटने पावे। किन्तु सरकार की अभिवृत्ति कठोर थी। वार्तालाप भंग हो जाने के उपरान्त श्री नन्दा ने घोषणा की थी कि उपक्रमण का अन्त हो गया। और फिर असहज दृढ़ता के साथ कहा 'कोई गलतफहमी में न रहे प्रथम और द्वितीय माँगों के लिये दरवाजा बन्द हैं।"

वार्तालाप न करने के लिये सरकार ने कई तर्क दिये थे। ये तर्क प्रधानमंत्री से लेकर कांग्रेस दल के निम्नतम सदस्य तक ने प्रस्तुत किये थे। उनमें से एक तर्क था कि वेतन आयोग की सिफारिशों को परिनिर्णय के समान समझना और उसी रूप में क्रियान्वित करना चाहिये। प्रधानमंत्री का कहना था कि यदि आयोग की उपपत्तियों में परिवर्तन या परिवर्द्धन किया जाता है तो इसका अर्थ होगा इतने अधिक श्रम की बरबादी। प्रधानमंत्री ने टिप्पणी की थी कि वेतन आयोग के मूल प्रस्तावों पर विचार करने का अर्थ होगा कि इस आयोग की नियुक्ति का उपयोग बहुत कम या बिलकुल ही नहीं था। यह ऐसे आयोगों की नींव पर ही कुठाराघात

होगा और यह भी सन्देहास्पद है यदि भविष्य में इन आयोगों में नियुक्ति के लिए कोई भी उत्तरदायी व्यक्ति तैयार हो। मात्र इसी कारण हमने सोचा था कि संयुक्त सलाहकार परिषद् की कार्यवाही अवांछनीय और हानिकारक थी।" प्रधानमन्त्री की इस टिप्पणी को पढ़कर खुशी होती है। जन स्मृति क्षीण होते हुए भी यह न भुला पायी होगी कि भारत सरकार के भूतपूर्व श्रम मन्त्री श्री वी० वी० गिरि ने सरकार द्वारा पंच परिनिर्णय अस्वीकार करने पर पद त्याग करने को प्राथमिकता दी थी। इसी प्रकार प्रधानमन्त्री ने न्यायाधीश दास की कुछ टिप्पणियों पर, जो कांग्रेस से सम्बंधित थी और जिन्हें मुद्रा मामले की जांच करते समय किया गया था, कुछ अप्रमुख टीका की थी।

यहाँ तक कि द्वितीय वेतन आयोग की सिफारिशों के सम्बन्ध में सरकार ने एकपक्षीय परिवर्तन भी किये थे। और तत्पश्चात् सरकारी प्रवक्ताओं द्वारा यह सुझाव देना कि आयोग की सिफारिशों को परिनिर्णय की तरह समझना चाहिए, वस्तुतः शोभा की बात नहीं थी। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के नेताओं ने भी इस स्थिति की असंगति की ओर ध्यान दिलाया था। श्री रामानुजम ने कहा था कि "सरकार ही प्रथम रूप से दोषी प्रतीत होती है ... इसने कुछ एक पक्षीय परिवर्तन कर दिए। स्वभावतः इससे कर्मचारियों को जो आयोग की सिफारिशों से सन्तुष्ट नहीं थे, इच्छित परिवर्तन के विषय में सोचने के लिये प्रोत्साहन मिला।" यही नहीं संयुक्त सलाहकार परिषद् की स्थापना पर ही प्रधानमन्त्री ने कठोर आपत्ति की थी और इसे वार्तालाप न करने के कारण स्वरूप तक दिया था। यहाँ तक कि जब संयुक्त सलाहकार परिषद् के सदस्यों से विचार-विमर्श किया जा रहा था तो यह कहा गया कि उनकी स्थिति संयुक्त सलाहकार परिषद् के सदस्य रूप में नहीं बल्कि व्यक्तिगत आधार पर ही है। सचमुच सरकार ने नया ही बाल की खाल वाला विभेद किया था।

सरकारी प्रवक्ताओं ने यह भी कहा था कि सरकार की भुगतान करने की क्षमता सीमित है और यदि कर्मचारियों की माँगें स्वीकार करली जाती हैं तो देश और योजनाओं के भविष्य पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। कर्मचारियों की न्यूनतम माँगों को पूरा करने का अतिरिक्त लागत की अनुमानित राशि ४४ करोड़ रुपये सुझायी गई थी। कुछ श्रमिक संघी प्रवक्ताओं ने इस राशि की सच्चाई पर ही सन्देह प्रकट किया था। फिर भी, उसके अलावा, सरकार ने यह नहीं स्पष्ट किया था कि व्यय किए गए धन से उसे कितना लाभ होगा। यह अनुमान लगाया गया है कि आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप एक माध्य सरकारी कर्मचारी या ३० दिन अतिरिक्त कार्य करते हुए २५० लाख कर्मचारियों ने ६४ करोड़ रुपये से अधिक के श्रम का सरकार और योजनाओं के प्रति अंशदान किया होता। यह भी कहा जा सकता है कि यदि हम कर अपवंचन, जो अनुमानतः लगभग २०० करोड़

रुपये हैं, तथा सार्वजनिक धन के अपव्यय को रोक सकें तो ४४ करोड़ रुपये से अधिक की ही बचत सम्भव हो सकती है।

राज्य और स्थानीय सरकारों के कर्मचारियों तथा केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के बीच असमानता बढ़ जाने की सम्भावना का एक अन्य तर्क प्रस्तुत किया गया था। किसी सीमा तक यह तर्क उचित हो सकता है। जिस प्रकार से शहरी मजदूरी से गाँव की मजदूरी प्रभावित करने की प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के वेतन के परिणामस्वरूप अन्य सरकारी कर्मचारियों के वेतन प्रभाव में वृद्धि हुई होती। किन्तु समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मजदूरी अथवा वेतन में असमानता एक जटिल प्रश्न है। इन भिन्नकों को किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिये। किन्तु जब हम आवश्यकताओं पर आधारित न्यूनतम मजदूरी पर विचार कर रहे हैं तो इन तर्कों का कोई अर्थ ही नहीं है। जैसी कि पंडित पंत ने आशंका की थी इससे निश्चित ही विशेषाधिकारी वर्ग की उत्पत्ति न हुई होती। और जबकि इस प्रकार का विशेषाधिकारी वर्ग पहले से ही विद्यमान था।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि वार्तालाप भंग हो गया था लेकिन उसके लिये ये कोई भी कारण उत्तरदायी नहीं थे। वह बढ़ती हुई कीमतों से श्रमिकों के जीवन स्तर को सुरक्षित करने का सरल सा प्रश्न था। इस सम्बन्ध में सरकार ने अपनी कमजोरी समझी थी और इसीलिए दोनों लोकों में सर्वोत्तम सुविधा प्राप्त करना चाहती थी।

यह भी सही है कि दोनों ही दल हड़ताल नहीं चाहते थे। यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि अन्तिम समय तक भी हड़ताल के प्रत्याहरण के लिये प्रयत्न किये जाते रहे। हड़ताल की तिथि १६ जून से हटाकर ११ जुलाई कर देना संयुक्त संघर्ष परिषद् द्वारा ऐसा कदम न उठाने की उनकी इच्छा का पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करता है। किन्तु इन प्रयत्नों के बावजूद हड़ताल हुई और जिसके लिये माँगों की गम्भीरता और हड़ताल के परिणामों के प्रति सरकार की धीमी जागरूकता उत्तरदायी रही है। यदि वार्तालाप पहले से ही प्रारम्भ कर दिया गया होता तो यह स्थिति पैदा न हुई होती।

हड़ताल के संगठन और संचालन की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं। सबसे उल्लेखनीय विशेषता श्रमिक संघ संगठनों के संयुक्त मोर्चे के रूप में संयुक्त संघर्ष परिषद् की स्थापना थी। संयुक्त संघर्ष परिषद् की स्थापना का सूत्रपात अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघ द्वारा किया गया था। श्रमिकों और जनमत को प्रतिगामित करने हेतु संयुक्त संघर्ष परिषद् ने विभिन्न केन्द्रों में स्थानीय संस्थाओं की स्थापना की थी। केवल भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा तथा उसके द्वारा नियन्त्रित संघों को छोड़कर और सभी अन्य श्रमिक संघ संगठन संयुक्त हो गये थे। तीन

शनिवारों को पूरे कार्य दिन करने के विरुद्ध पहले १२ फरवरी को एक प्रतिवाद हडताल भी की गई थी। अस्थायी रूप से संयुक्त संघर्ष परिषद् ने हडताल की तिथि जून १६ निश्चित की थी। इसी बीच संयुक्त संघर्ष परिषद् द्वारा मांग पत्र तैयार कर लेने के उपरान्त २५ मई १९५० को मांग दिवस भी मनाया गया था। हडताल के लिये मतदान आयोजित करने का परिणाम यह निकला था कि प्रचुर मात्रा में सरकारी कर्मचारी हडताल के पक्ष में थे। बाद में आगे और विचार विमर्श के लिये सुविधा प्रदान करने हेतु हडताल ११ जुलाई १९६० के लिये स्थगित कर दी गई थी। इसी बीच हडताल करने की सूचना भी सम्बन्धित अधिकारियों को दे दी गई थी। जब वार्तालाप भंग हो गया तो संयुक्त संघर्ष परिषद् ने हडताल की घोषणा कर दी। 'जैसाकि निश्चित किया गया था यह ११ जुलाई की आधी रात से प्रारम्भ हुई। डाक तथा तार विभाग में इसका सबसे अधिक विस्तृत प्रभाव पड़ा। कुछ क्षेत्रों में तो काम बिलकुल ही ठप्प हो गया था। रेलवे में बहुत आंशिक रूप से काम बन्द किया गया यद्यपि निर्माण शाखाओं में कुछ कम या अधिक पूर्ण हडताल थी। महालेखाकार के कार्यालयों और नागरिक उड्डयन विभाग में भी कर्मचारियों ने काफी अच्छी संख्या में हडताल में भाग लिया। कुछ आयुधागारों में भी हडताल मनाई गई। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि चार से पांच लाख के बीच, जो कुल संख्या के २० से २५ प्रतिशत के बीच थी, श्रमिकों ने हडताल में भाग लिया। हडताल पांच दिन तक चलती रही। फिर भी दूसरे और तीसरे दिन से ही इसमें क्षीणता आने लगी थी। अधिकृत रूप से संयुक्त संघर्ष परिषद् ने १६ की रात से हडताल समाप्त कर दी। कुल मिलाकर हडताल को अधिक सफलता नहीं मिली। सरकार के कार्य में भी गंभीरता से प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु सरकार और आम जनता को भी इसके कारण काफी असुविधा का सामना करना पड़ा।'[1]

हडताल की असफलता के कई कारण थे। सबसे महत्त्वपूर्ण कारण हडताल की धमकी का सामना करने के लिये सरकार द्वारा अपनायी गई विधियां थी।[2] सरकार ने पूरी तैयारी की थी और जब सरकार ने इसके विरोध में अपनी सारी शक्ति लगा दी तो हडताल का असफल हो जाना निश्चित था। संयुक्त संघर्ष परिषद् के नेताओं को यह बात अनुभव करनी चाहिए थी और इस प्रकार के असमान और भीषण संघर्ष में श्रमिकों को नहीं झोंक देना चाहिए था।[3]

समान रूप से दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि स्थानीय स्तर पर संयुक्त संघर्ष परिषद् ने ठोस तैयारी नहीं की थी। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है,

१ वी० बी० कार्निक इण्डियन ट्रेड यूनियन्स, ए सर्वे, पृ० २१४।
२ आगे के अनुच्छेदों में विश्लेषित
३ वी० बी० कार्निक इण्डियन ट्रेड यूनियन्स सर्वे, पृ० २५६।

श्रमिक संघ आन्दोलन के विभिन्न वर्ग एक सीमित उद्देश्य के लिए संयुक्त हुए थे। यह पर्याप्त महत्त्वपूर्ण था किन्तु शीघ्र ही अनुभव किया जाने लगा कि विभिन्न वर्ग भिन्न दिशाओं की ओर खींचातानी के लिए प्रयत्न कर रहे थे। वह भी प्रतीत हुआ है कि साम्यवादी नेतृत्व दोहरा खेल खेलने के लिए प्रयत्नशील था। "एक ओर उनका द्विपदीय नेतृत्व तथा सामान्य कार्यकर्त्ता स्थानीय संघर्ष परिषदों में सक्रिय थे तथा प्रजा समाजवादी दल के श्रमिक संघों नेताओं को समझौता न करने के लिए प्रेरित करने में उनका प्रमुख हाथ था। दूसरी ओर उनके अगली पंक्ति के नेताओं ने सुविधापूर्वक संयुक्त संघर्ष परिषद् से अपने को बाहर रखा और यह अच्छी तरह जानते हुए कि हड़ताल असफल होगी अपने कुछ संघों तथा सवर्गों को बचाने में व्यस्त रहे।' यह देखा गया कि साम्यवादी प्रभुत्व के अनेक संघों ने या तो हड़ताल में भाग नहीं लिया या फिर संयुक्त संघर्ष परिषद् द्वारा हड़ताल समाप्त करने के निश्चय के काफी पहले ही हड़ताल से अपने को अलग कर लिया।[1] भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा मांगों का सिद्धान्त रूप में समर्थन करते हुए प्रारम्भ से ही हड़ताल करने के विरुद्ध थी। इतना ही नहीं उसने सेवाओं को क्रियान्वित रखने के लिए स्वयं सेवकों आदि की भर्ती में सरकार की सक्रिय रूप से सहायता भी की।

इसी प्रकार संयुक्त संघर्ष परिषद् ने अपनी मांगों के औचित्य तथा अपनी स्थिति के बारे में जनता को अवगत कराने के लिए कोई नियोजित प्रयत्न नहीं किया। यद्यपि यह बिलकुल निश्चित है कि सरकार के अविरल और नियोजित प्रचार के सम्मुख इससे अधिक लाभ न हुआ होता। किन्तु फिर भी अधिकांश जनता अंधेरे में रही और सरकारी कर्मचारियों के निमित्त उसकी कोई सहानुभूति नहीं थी। यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रशासन सहायता के लिए लोगों ने अधिकाधिक संख्या में अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं।

सामूहिक रूप से नेताओं की गिरफ्तारी के कारण हड़ताल नेतृत्व विहीन हो गई और सामान्य कर्मचारियों को उनके स्वयं के साधनों के भरोसे छोड़ दिया गया। फिर भी निष्कर्ष आवश्यक रूप से यह प्रतीत होता है कि उसने (संयुक्त संघर्ष परिषद्) कुछ शक्तियों की गतिमयता दी कुछ समय बाद उन पर अपना नियंत्रण खो दिया और स्वयं ही उनके वेग में बह गई। कर्मचारियों को प्रतिगामित करने अथवा जनमत को शिक्षित करने के लिए कोई पर्याप्त तैयारी नहीं की थी। लोगों के एक बड़े समूह की हड़ताल के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। यहां तक कि श्रमिकों के बीच भी उसे समर्थन नहीं प्राप्त था। अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा, हिन्द मजदूर सभा तथा संयुक्त श्रमिक संघ सभा द्वारा आयोजित १४ जुलाई को आम हड़ताल की पूर्ण निष्फलता इस तथ्य का स्पष्ट साक्ष्य है।[2]

---

१ वी० बी० कार्निक इण्डियन ट्रेड यूनियन्स ए सर्वे, पृ० २५६।

२ वही, पृ० २५६।

हड़ताल के प्रति सरकार की नीति प्रारम्भ से ही बिलकुल स्पष्ट थी। सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह था कि प्रधानमन्त्री और अन्य सरकारी प्रवक्ताओं ने हड़ताल को 'श्रमिक संघ विवाद' समझा ही नहीं। इसे 'जानपदीय विद्रोह' समझा गया था जिसका सामान्य श्रमिक संघों के कार्यों से कोई सम्बन्ध ही नहीं था। प्रधानमन्त्री ने इस बात पर बल दिया था कि हड़ताल की सफलता का अर्थ होगा सरकार की समाप्ति। इसके बाद लोकसभा की बहस में हस्तक्षेप करते हुए प्रधानमंत्री ने बार-बार जोर दिया कि सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल एक राजनैतिक हड़ताल थी। उन्होंने कहा था कि "यदि इसके (हड़ताल की सफलता) बाद संसद चलती रही तो मन्त्रिवर्ग के स्थान पर कोई और बैठा होगा और हम लोग कहीं और होंगे।"

यह दुर्भाग्य की बात है कि एक साधारण विवाद को राजनैतिक ढंग दे दिया गया। इस प्रकार तो नियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रत्येक ऐसी क्रिया कुछ न कुछ राजनैतिक प्रतिक्रिया तो रखेगी ही। इसके अलावा संयुक्त संघर्ष परिषद् के सभी नेताओं ने दावा किया था कि हड़ताल विशुद्ध औद्योगिक विवाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रजा समाजवादी दल के अध्यक्ष श्री अशोक मेहता ने यह व्यक्त किया था कि सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल को "जानपदीय शक्ति का उन्मूलन करने के प्रयास रूप में" देखना तथ्य और प्रभाव दोनों ही रूपों में गलत है चूंकि सरकार के लिये राजनैतिक चुनौती के स्तम्भ से हड़ताल का प्रस्फुटन न होकर आर्थिक कठिनाइयों से हुआ है इसलिए सद्भावी व्यक्तियों को सरकार से प्रथम कदम उठाने के लिये ही कहना चाहिये।

हड़ताल से निबटने के लिये सरकार ने प्रत्येक सम्भव व्यवस्था की थी। राष्ट्रपति ने ८ जुलाई को एक अध्यादेश—'आवश्यक सेवा संधारण अध्यादेश'—का प्रख्यापन किया था जिसके द्वारा आवश्यक सेवाओं में हड़ताल के लिये प्रेरित करना या भाग लेना आर्थिक दण्ड अथवा कैद अथवा दोनों से ही दण्डनीय था। हड़ताल की स्थिति से निबटने के लिये मन्त्रिमंडल की एक उप-समिति बनाई गई थी। स्थिति का सामना करने के लिये सचिवों की भी एक समिति नियुक्त की गई थी। तदुपरान्त सरकार ने युद्धकालीन स्थिति के समान हड़ताल का सामना करने के लिये निश्चय किया। किसी भी आपत्कालीन स्थिति का सामना करने के लिये सेना, पुलिस, लोक सहायक सेवा तथा प्रादेशिक सेना को सज्जित किया गया। हड़तालियों का स्थान लेने के लिये एक बड़ी संख्या में स्वयं सेवकों की भर्ती की गई। दमन-चक्र खुला छोड़ दिया गया। बड़ी संख्या में गिरफ्तारियाँ की गईं। सभी प्रमुख नेताओं को बंदी बना लिया गया तथा सरकार ने उनसे जेल में साक्षात्कार करने तक की सुविधा प्रदान नहीं की। अस्थायी कर्मचारियों को सेवा निवृत्ति के नोटिस दिये गए, हजारों स्थायी कर्मचारियों को निलम्बित करने के आदेश दिये गये। हड़ताल का सामना करने के लिये विभागाध्यक्षों को अतिरिक्त अधिकार प्रदान किये गये। गिरफ्तारियों,

दोषसिद्धियो, निलम्बना, सेवा निवृत्तियो तथा हडताल मे भाग लेने वाले कर्मचारियो के विषय मे अनेक अनुमान लगाये गये हैं। एक अवस्था पर संयुक्त संघर्ष परिषद् ने अनुमान लगाया था कि लगभग १६००० कर्मचारी गिरफ्तार किये गये कुछ ५०,००० निलम्बित थे तथा कुछ हजार को सर्वेपन नौकरी से निकाल दिया गया। गृह मन्त्री श्री पंत ने ६ सितम्बर १९६० को लोकसभा मे निम्नलिखित सूचना दी थी —

	केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी	अन्य
गिरफ्तार किया गया	१७ ७८०	२ ५५६
छोड़ दिया गया	१७,७५६	२ ३५५
दोषी प्रमाणित हुए	१,६५०	२१७
दण्ड का परिहार किया गया	६१५	१
पदच्युत किया गया	१२४	
सेवा निवृत्त किया गया	२४४	
निलम्बित किया गया	८ ५६०	

बाद मे ६ मार्च, १९६१ को श्री बी० एन० दातार ने यह सूचना दी कि २७००० निलम्बित कर्मचारियो मे से २५ ८३७ को पुन पदारूढ किया गया, तथा पदच्युत अथवा नौकरी से निकाले गये २०६५ कर्मचारियो मे से १८३६ ने पुन काम पा लिया है। गृह मन्त्री ने बताया था कि कुल कर्मचारियो के पांचवे भाग से अधिक ने हडताल मे भाग नही लिया।

पुलिस की ज्यादतियो के अनेक मामले बताये गये थे। लाठी प्रहार, अश्रु गैस और गोली चलाने की अनेक घटनाएँ हुईं। यह भी सूचित किया गया था कि कुछ मामलो मे पुलिस कर्मचारियो के घरो मे घुस गई उनका सामान फेंक दिया तथा औरतो और बच्चो के साथ बुरा व्यवहार किया। हिंसा और तोड फोड की। इधर उधर कुछ घटनाएँ भी घटी। कई मामलो मे कठोर आर्थिक दण्ड दिया गया और जमानत के लिये काफी बडी धनराशियो की माग की गई।

सरकारी प्रचार तन्त्र को काफी प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया गया था तथा साधारण नागरिक की भावनाओ को छूने का प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया गया। प्रधानमन्त्री ने लद्दाख से लौटने पर अपने रेडियो भाषण मे कहा था अपने उन देशवासियों पर गर्व का अनुभव करके मैं वापस लौटा था और मैं आश्वस्त अनुभव करता था कि वे उनको दिये गये एक बडे काम के योग्य हैं। यदि निरन्तर सतर्कता स्वतन्त्रता का मूल्य है, जैसाकि वह है तो यहा सतर्कता निपुणता निश्चय और शान्त साहस था। यह एक तस्वीर थी। दूसरी तस्वीर बिल्कुल भिन्न प्रकार की थी। वह एक आम हड़ताल की धमकी थी मैं इन दोनो तस्वीरो को समाहित नही कर सका क्योंकि वे एक दूसरे के विरोधी थीं। एक ओर तो मृत्युपर्यंत तक असीम साहस था और दूसरी ओर

जानबूझकर या किसी परवशतावश एक ऐसा प्रयास था जिसका केवल परिणाम हमारी प्रतिरक्षा की कमजोरी अर्थ व्यवस्था की अस्तव्यस्तता तथा अंधकारमय भविष्य जिसके लिये हम मेहनत कर रहे है ही हो सकता था।" हड़ताल करने वाले कर्मचारियों तथा उनके नेताओं को यह निरूपित करने के लिये हर सम्भव प्रयत्न किया गया कि उनमें देश भक्ति का अभाव है जो देश की विषम परिस्थितियों में भी केवल अपनी छोटी समस्याओं में ही रुचि रखते हैं।

सरकार ने ८५ संघों की मान्यता छीन ली, जिन्होंने हड़ताल में भाग लिया था। देश के कुछ भागों में रेल मार्ग आदि की सुरक्षा के लिये जनता को विवश करते हुए आदेश भी निर्गमित किये गये थे।

श्रमिकों में फूट डालने और उनका नैतिक पतन करने के लिये सरकार ने अन्य अनेक रीतियां अपनायी थी। हड़ताल प्रारम्भ होने के कुछ समय पूर्व ही रेलवे मंडल और प्रतिरक्षा मंत्रालय ने कुछ निर्णय लिये थे। निष्ठावान कर्मचारियों को पुरस्कृत करने के कई रूप अपनाये गये थे, जैसे नकद धनराशि, घड़ियां आदि। इस तरह बम्बई निगम ने ६५००० रुपयों का भुगतान किया था। उसके अलावा निष्ठावान कर्मचारियों को विभागीय परीक्षाओं में ५ प्रतिशत अंक बोनस स्वरूप दिये गये थे तथा जो दोषी थे उनकी पदावनति कर दी गई और किसी विभागीय पदोन्नति परीक्षा में सम्मिलित होने से वंचित कर दिया गया।

हड़ताल का सामना करने के लिये सरकार द्वारा उठाये गये कदम तथा निमुक्त दमनकारी नीति भी आलोचना का विषय बन गई। अन्तर्राष्ट्रीय लोकसेवा लन्दन, के महासचिव को कहना पड़ा था कि "न्याय न्याय ही होता है चाहे उसकी मांग उस वर्ग द्वारा की गई हो जिसे आप सही अथवा गलत रूप में साम्यवादी के रूप में चिह्नित करते है। जब अनुदारता और अन्याय से एक विस्फोट का सृजन होता, जैसाकि एक १२ जुलाई १९६० को हुआ तो सभी भर्त्सनाएँ जो लोकसेवा श्रमिक संघों के विरुद्ध की जा सकती है विवर्ण होकर महत्वहीन हो जाती है यदि उन्हें नियोजक की भूमिका के रूप में सरकार की अनभिरुचि के विरुद्ध रखकर देखा जाये। जब ऐसा विस्फोट होता है तो प्रतिशोधात्मक कार्यवाही का आश्रय लेने की अपेक्षा और कुछ सरल है ही नहीं। प्रतिशोधात्मकता के लिये ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है एक बुरा अन्तःकरण ही पर्याप्त होता है। यह दुःखद से भी अधिक है कि हड़ताल के पूर्व, हड़ताल के समय और हड़ताल के बाद में भारतीय सरकार ने सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी सरकारों, जिन्होंने १९वीं शताब्दी के अन्त और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोपियन देशों में शासन किया, के पदचिह्नों का अनुसरण किया।'

श्री जयप्रकाश नारायण ने संघों की मान्यता के प्रत्यहरण की ओर निर्दिष्ट करते हुए कहा था "न तो यह उचित है और न ही बुद्धिमानी पूर्ण। व्यक्तियों का संघ बनाने और जब वार्तालाप भंग हो जाये तो हड़ताल करने का वैध अधिकार

है। हड़ताल संगठित और घोषित करके वे अपने यथार्थ अधिकार की सीमा के भीतर ही थे। इसलिए अपने सामान्य कर्त्तव्य का निर्वाह करने पर हड़ताल के संगठनकर्त्ताओं या नेताओं को बलीकृत नहीं करना चाहिये। यह तथ्य कि अंतिम क्षणों में हड़ताल अवधानिक घोषित कर दी गई थी मेरे विचार से सिवाय कठोर वधिक दृष्टिकोण के अलावा अन्य कोई अंतर नहीं पदा करता है।' श्री अशोक मेहता ने दुःखी होकर कहा था 'कब से भारतीय नेताओं ने 'बिना किसी शर्त के समर्पण' की भाषा अपना ली है? क्या दाँत तले तिनका रखने का आग्रह करके पारस्परिक अवबोध बढ़ना है? संघर्ष में जो शक्तिशाली निकला है उसे ही पहले मैत्री का प्रयास करना चाहिये।"

बिना किसी शर्त के हड़ताल वापस ले लेने के बाद सरकार ने आश्वासन दिया था कि वह प्रतिशोध नहीं लेगी और अपने कर्मचारियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होने का प्रयास करेगी। गृह मंत्री ने भी आश्वासन दिया था कि मात्र हड़ताल में भाग लेने के लिए किसी को दण्डित नहीं किया जायगा इस सम्बन्ध में सरकार ने विभागाध्यक्षों को पर्याप्त स्वविवेक के अनुसार कार्य करने की अनुमति दे दी। न सा उनसे यह भी आशा की गई कि वे कर्मचारियों का पूर्व रिकार्ड भी देखें। लेकिन यह एक अच्छा दृष्टान्त नहीं था। आचार्य जे० बी० कृपालानी को टिप्पणी करनी पड़ी थी कि जबतक सरकार किसी नये बड़े मानव साथ ही साथ राजनैतिक, समस्या के लिये मार्ग नहीं बना रही है इसकी स्थाति प्राप्त नीति में कुछ न कुछ आमूल परिवर्तन होने ही चाहिये। किसी भी तरह यदि सरकार विवाद के क्षेत्र को सीमित करने के लिये वास्तविक रूप से इच्छुक है तो इस वैयक्तिक हड़तालियों के दोष अथवा अन्यानता के बारे में निर्णय पूर्णतया विभागाध्यक्षों के हाथों में छोड़ देने के विचार के ठोसपन को पुनः गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिये।

सरकार की नीति में उन लोगों के लिये दण्ड की व्यवस्था की गई थी जो हिंसा, तोड़ फोड़ आदि के लिए दोषी पाये गये थे। इस सम्बन्ध में भी सरकार को एक उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिये था। श्री जयप्रकाश नारायण ने महत्त्वपूर्ण सलाह दी थी। उनका मत था कि बड़े पैमाने पर बहीकरण, जिसकी आयोजना की गई प्रतीत होती है ऐसे बीज बोयेगा जिसके फल आने वाले काफी समय तक देश में महामारी का सूत्रपात करेंगे। इसीलिए मैं एक ऐसी मानवीय नीति का समर्थन करता हूं जो प्रतिष्ठा या विभेद या प्रतिशोध की विचारधारा से प्रतिगामित न हो। यहाँ तक कि हिंसा और तोड़ फोड़ के सम्बन्ध में भी प्रत्येक विशिष्ट मामले का न्याय करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उसकी सावधानी से जाँच की जाय। मेरा यह भी सुझाव है कि हिंसा के लिये दोषी पाये जाने पर श्रमिकों को दण्डित करना चाहिये किन्तु अधिकारियों के हिंसात्मक कार्यों की भी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। यह गलत होगा कि एक पक्ष की हिंसा पर आँख मूद ली जाय और दूसरे

पक्ष को दण्डित किया जाय।'

कुछ प्रारम्भिक हिचकिचाहट के बाद हडताल मे भाग लेने वाले सघो को पुन मान्यता प्रदान कर दी गई थी। यह तो स्पष्टत गलत हुआ होता यदि सरकारी कर्मचारियो को अपने सगठनो के माध्यम से अपनी कठिनाइयो को प्रस्तुत करने के उनके अधिकार से वचित कर दिया जाता। इससे इस विचारधारा को भी बढावा मिला होता जो जनता के एक वर्ग मे व्याप्त है, कि सरकार भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ सभा को अपनी स्थिति सुदृढ बनाने के लिये प्रोत्साहन देने मे स्थिति का लाभ उठाने हेतु प्रयत्नशील है।

हडताल के परिणामो का मूल्याकन करना बहुत कठिन है। लेकिन एक बात तो बहुत स्पष्ट हो गई। काफी बडी सख्या मे सरकारी कर्मचारियो ने सरकार की उन नीतियो के विरुद्ध जिनका वह अनुसरण कर रही थी, अपना आक्रोश प्रकट किया। गृह मत्री ने लोकसभा मे स्वीकार किया था कि लगभग २० प्रतिशत सरकारी कर्मचारियो अनुमानत ५ लाख, ने हडताल मे भाग लिया था यदि अध्यादेश, दमनकारी प्रबल लहरे तथा सम्पूर्ण सरकारी तत्र के कार्यशील होने के बावजूद इतनी बडी सख्या मे सरकारी कर्मचारियो ने हडताल मे भाग लिया तो अनुमान स्पष्ट और सत्य हैं। श्री अशोक मेहता ने कहा था 'इसका कोई मतलब नही कि सरकार के कठोर उपायो के सम्मुख हडताल को किस सीमा तक सक्रिय समर्थन प्राप्त हुआ, यह तथ्य कि ऐसी हडताल हुई और एक सप्ताह तक देश मे यह प्रमुख सूचना का विषय रही, गभीरतापूर्वक ग्रहण करना चाहिये। यह काफी समय से व्याप्त असतोष का सूचकाक है। हडताल को कुचला जा सकता है किन्तु उसके द्वारा असतोष नही समाप्त होगा।'

हडताल का एक अच्छा प्रभाव यह पडा कि सरकारी तत्र सक्रिय हो उठा। अनेक निर्णय जिनको अन्यथा कई मास लग गये होते, तुरत ही लिये गये। मूल्यो की स्थिरता का प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया और इस विषय मे सरकार द्वारा, गभीर चिन्तन भी किया जा रहा है। राज्य सरकारो के कर्मचारियो के वेतन का प्रश्न भी सहानुभूति ढग से विचाराधीन है। सरकार ने २६ नगरो की पदोन्नति की और यह आश्वासन दिया कि वह निर्वाह मूल्य के कम से कम ५० प्रतिशत निष्फलन के लिये अवश्य प्रयत्न करेगी।

हडताल का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह रहा है कि अब कर्मचारियो भारतीय श्रमिक सभा के विमर्शो तथा हडताल या सीधी कार्यवाही की सभावना को समाप्त करने के लिये एक तत्र की स्थापना के परिप्रेक्ष्य मे सरकार की नीति पर गभीरता से सोचा जा रहा है। यहाँ पर बता देना आवश्यक है कि १५ वी श्रमिक सभा की सर्वसम्मत सिफारिशो के साथ किये गये व्यवहार ने एक बुरे दृष्टात की स्थापना कर दी है। सुविख्यात अर्थशास्त्री प्रो० डी० आर० गाडगिल ने कहा था—

यह एक बहुत गंभीर समस्या है क्योंकि इससे त्रिस्तरीय सभाओं का सम्पूर्ण विचार ही मूर्खतापूर्ण हो उठता है।" सरकार ने जिस तरह से हड़ताल का सामना किया उससे प्रेरित होकर निजी क्षेत्र ने भी इसी तरह के अधिकारों और विशेषाधिकारों की माँग शुरू कर दी है। अब जाकर यह स्वीकार किया गया है कि दो तरह की नीतियाँ, एक निजी क्षेत्र तथा दूसरी सार्वजनिक क्षेत्र के लिये नहीं रखी जा सकती हैं। सरकार को उन नीतियों, जिनका वह समर्थन करती है को क्रियान्वित भी करना है।

हड़ताल के कारणों और परिणामों के लिये एक उच्च शक्ति सम्पन्न जाँच की नियुक्ति की माँग की गई थी। सरकार ने इस उद्देश्य के लिये श्रम मंत्रालय के श्री मेहता को नियुक्त किया था। किन्तु न्यायिक जाँच करने की माँग को स्वीकार नहीं किया गया।

सर्वप्रथम सरकार ने अपने कर्मचारियों के हड़ताल करने के अधिकार पर रोक लगा देने के बारे में सोचा था। इसी प्रकार बाहरी लोगों की संख्या में कुछ नियंत्रण लगा देने की आयोजना थी। इस उद्देश्य से एक विधेयक भी प्रस्तुत किया जाना था। किन्तु श्रमिक संघ प्रतिनिधियों द्वारा इसका बड़ा विरोध किया गया। बाद में हड़तालों पर रोक लगाने का विचार त्याग दिया गया। श्रम मंत्रालय अब सरकारी कर्मचारियों की शिकायतों को निबटाने के लिये विटले परिषदों के अनुरूप एक तंत्र की स्थापना के लिये इच्छुक है। जबकि सरकार श्रमिकों को उनके हड़ताल करने के अधिकार से वंचित करना चाहती है तो उसे स्वयं पर भी कुछ नियंत्रण लगाना चाहिये और सभी मामूली विवादों को पंचनिर्णय द्वारा निबटाने के लिये सहमत होना चाहिये। यह भावना कि सरकारी तंत्र तबतक ठीक काम नहीं करता जबतक उसे करने के लिये विवश न कर दिया जाय अवश्य दूर की जानी चाहिये। हड़तालें तभी वीतराग बन सकती हैं जब हम ऐसे सवैधानिक मार्गों की व्यवस्था कर सकें जिसके माध्यम से कर्मचारी अपनी शिकायतों को दूर कर सकें।

२०

उपसहारात्मक अवलोकन

प्रजातन्त्र का आधार विस्तृत होना चाहिए। इसका स्वरूप केवल राजनैतिक ही नही होना चाहिए। राजनैतिक प्रजातन्त्र के साथ यह दायित्व भी जुडा रहता है कि उसका विस्तार सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रो मे भी हो—और सामाजिक तथा आर्थिक प्रजातन्त्र वह लक्ष्य है जिसे श्रमिक सघो ने अपने सम्मुख रखा है। किन्तु उन्होने उसके लिये जागरूक होकर कार्य नही किया है। श्रमिक सघो का मुख्य प्रयत्न यही होता है यहा तक कि कभी कभी दूसरे वर्गों की उपेक्षा करके, कि उनके सदस्यो का आर्थिक और सामाजिक जीवन उन्नत हो। लेकिन इन कार्यकलापो मे साधारणतया समाज को भी लाभ मिलता है। कुछ उनके कार्यकलाप, जैसे प्रगामी श्रम विधानो के लिये दबाव अधिक अच्छी कार्यकालिक सुविधाओ के प्रयत्न तथा पूर्ण सेवा योजन की माग प्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण समाज के लिए लाभकारी है। दमनकारी विधानो तथा सघ और सगठन बनाने की स्वतत्रता के अधिकार की निषिद्धि के विरुद्ध श्रमिक सघो के सघर्ष और वर्गों के बीच सामाजिक बाधाओ को चकनाचूर करने के उनके प्रयत्न से प्रजातन्त्र के विस्तार मे सहायता मिली है।

समाज की भलाई के लिये जो अच्छे कार्य श्रमिक सघ कर सकते हैं हमे उनकी भारत मे भी प्रशसा करनी चाहिए। श्रमिक सघवाद स्थायी हो गया है और भविष्य मे उसके और सशक्त होने की सभावना है। औद्योगीकरण तेजी से हो रहा है। हम नियोजित आर्थिक विकास के काल से गुजर रहे हैं। हमे पूरी तरह से सतर्क रहना चाहिए और औद्योगीकरण की बुराइया श्रमिको का शोषण तथा आर्थिक असमानताए जिन्होने पश्चिमी देशो को आक्रान्त कर दिया, को पनपने से रोकने के लिये सभी तरह से प्रयत्न करना चाहिए। अधिकेन्द्रीकरण की आधुनिक प्रवृत्ति पर स्वस्थ श्रमिक सघवाद का विकास एक प्रभावशाली रोक है। श्रमिको की सघ बनाने की स्वतत्रता की सम्पूर्णता से रक्षा करनी चाहिए। आलोचक स्वतत्रता के दुरुपयोग स्वरूप बडी सख्या मे हडतालो और श्रमिक सघो के अन्य कार्यकलापो का उदाहरण दे सकते हैं। फिर भी अधिकाश मामलो मे ऐसी क्रियाएँ स्वतन्त्रता का दुरुपयोग नहीं है बल्कि अस्वीकृति का स्वाभाविक परिणाम है। वस्तुत श्रमिको को आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रो मे स्वतन्त्रता न मिलने के कारण कुछ ऐसी क्रियाएँ हुई हैं। यह

कहना कि श्रमिक संघ कार्यकलापों में कुछ लोग पीड़ित होते हैं केवल सम्भावनात्मक हैं। प्रत्येक संघर्ष में वंचित करने हो हानि हैं और जिन्हें उन्हें न करना चाहिए।

प्रत्येक प्रजातान्त्रिक देश में राज्य ने यह अनुभव कर लिया है कि श्रमिक संघों की गति में वृद्धि प्रशंसनीय है। सामूहिक आन्दोलनों के प्रति ब्रिटिश सरकार की प्रतिरोधात्मक नीति में परिवर्तन हो गया है। उचित प्रकार से संगठित श्रमिक संघों की आवश्यकता के प्रति जागरूक लोकप्रिय सरकारें सजग है। श्रमिक अपने प्रति किये गये वर्षमान अन्यायों तथा असमानताओं को लेकर सजगी होते जा रहे हैं। वे समाज की आवश्यकता का अधिक गहराई से अनुभव करते हैं। वयस्कता में बढ़ी चेतना के रूप विकास के महत्त्व को सरकार अनुभव करती है। समान के समान वाली स्वरूप का नारा प्रचार इसी अनुभूति के कारण है कि नागरिक अब अपना अधिकार पाने के लिए प्रयत्नशील हैं। औद्योगिक सब। और श्रमिक संघवाद के बीच का निकट सम्बन्ध स्पष्ट है। यदि सशक्त स्थायी तथा सुसंचालित श्रमिक संघ नहीं हैं तो किसी भी सरकार के लिए स्वस्थ औद्योगिक संबंध बनाये रखना अति कठिन होगा। श्रमिकों के हितों की रक्षा करने उनके बीच अनुशासन बनाये रखने समझौता को कार्यान्वित करने के लिए सशक्त श्रमिक संघ की आवश्यकता होती है। औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए वर्धित औद्योगिक उत्पादन की योजना में श्रमिकों को उचित भूमिका प्रदान की थी। पंचवर्षीय योजनाओं में भी श्रमिक संघों की उचित भूमिका पर बल दिया गया है।

किन्तु नियोजकों ने ऐसा प्रतीत होता अभी तक इसका अनुभव नहीं किया है। बहुत ही कम ऐसे नियोजक हैं जिन्होंने श्रमिकों को उनका उचित प्रावधान दिया हो। अभी हाल ही में टाटा और श्रमिक संघ के बीच हुआ समझौता जिसके अनुसार प्रगामी रूप से संस्थान के प्रशासन में श्रमिकों को सहवर्तित किया जायगा सही दिशा में उठाया गया एक कदम है। किन्तु टाटा जैसे नियोजक अपवाद ही हैं। साधारण तथा नियोजक अब भी श्रमिक संघवाद को कुछ अत्यधिक अवांछनीय यहां तक कि समाज विरोधी और उनकी बढ़ती हुई मांगों को अपने प्रबन्धकीय परमाधिकारों में हस्तक्षेप समझते हैं। वे श्रमिक संघवाद की भर्त्सना करते हैं। फिर भी भारतीय नियोजकों के लिए यह यथोचित मान्य है कि वे श्रमिक संघवाद के विस्तार को अनिवार्य समझकर स्वीकार करें। उन्हें श्रमिक संघों की सहायता तक करनी चाहिए और इस प्रकार श्रमिकों के अनुग्रह को जीतना चाहिए। अच्छे औद्योगिक संबंध बनाये रखने के लिये एक उचित निर्देशित श्रम संगठन अमूल्य सिद्ध होगा। एक ओर सुसंगठित संघ तथा श्रमिकों और नियोक्ता के बीच संतोषजनक समायोजित संबंध और दूसरी ओर श्रमिक नियोजक और सरकार के बीच अच्छे संबंध से आधुनिक औद्योगिक पद्धति का सरल क्रियान्वयन सुनिश्चित हो सकेगा। यह विशेषकर हमारे जैसे अल्प विकसित देश के लिये महत्त्वपूर्ण है जहां अधिकांश श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं।

उनके लिए फैक्ट्री का कार्य श्रमसाध्य ऊबा देने वाला तथा कष्टप्रद हो सकता है जब तक कि वे उसके अभ्यस्त न हो जाएँ। ग्रामीण क्षेत्रों के श्रमिकों की समस्याएँ हल करने के लिये यह आवश्यक है कि उनके नेताओं से परामर्श की जाय और उनके साथ सहयोग किया जाय। औद्योगिक रूप से पिछड़े देशों में जहाँ कोई औद्योगिक परम्पराएँ नहीं हैं श्रमिक संघ संगठन और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। रॉयल श्रमिक आयोग ने कहा था कि "जबतक मानवीय सबंधों में सुधार करने के लिये प्रबल प्रयत्न नहीं किये जाते बड़े पैमाने पर औद्योगिक उद्यमों का विकास कठिन और संदिग्ध प्रतीत होता है।" बाद में श्री बटलर ने अपने प्रतिवेदन 'पूर्व में उद्योग की समस्याएँ' में अवलोकन किया था कि सम्भवतः भारतीय उद्योग के सम्मुख प्रमुख समस्या औद्योगिक संबंधों की थी और 'जबतक व्यावसायिक भावना के साथ एक सशक्त श्रमिक संघ आन्दोलन का विकास नहीं किया जाता तथा सामूहिक सौदाकारी को एक ठोस आधार नहीं प्रदान किया जाता औद्योगिक विवादों के सामयिक रूप से बने रहने की सम्भावना बनी रहेगी। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संगठन जैसे सशक्त श्रमिक संघों ने श्रमिकों का बहुत भला किया है। श्रमिकों के वेतन को आगे बढ़ाया गया है, उनके स्तर को ऊँचा उठाया गया है, और फिर भी उद्योग को किसी बड़े विवाद का सामना नहीं करना पड़ा। उद्योग में समाधान और पंचनिर्णय की पद्धति दृढ़ रूप से स्थापित हो गई है। नियोक्ताओं को अनुभव करना चाहिए कि सशक्त श्रमिक संघ अन्ततः उन्हीं के लाभ के लिए हैं। केवल श्रमिकों के सहयोग से ही उत्पादन और लाभ सम्भव है। स्वेच्छाचारी नियमों और मनमानी शासन करने वाले दिन अब समाप्त हो गये हैं।

फिर भी, श्रमिक संघवाद एक पक्षीय कार्य नहीं होना चाहिए और न ही इसे एकान्तिक रूप से किसी भी साधन और कीमत पर सदस्यों के हितों के संरक्षण और उन्नति तक ही सीमित रहना चाहिए। निःसन्देह यह उसका एक प्रमुख लक्ष्य बना रहेगा किन्तु साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि श्रमिक संघ अपने लिये नीति और आचरण संहिता का विकास करें तथा उसमें उन क्रियाओं का स्थान न दिया जाय जो समाज के हितों के विरुद्ध हों। कोई भी संघ, जो समाज विरोधी क्रियाएँ, जैसे, धीरे काम करना, उत्पादन को आमंत्रित करना तथा बिना वार्तालाप के हड़ताल घोषित करना अपनाता है तो उसकी कठोर भर्त्सना की जानी चाहिए। श्रमिक संघों को चाहिए कि वे अपने सदस्यों की सहायता करते हुए हमारी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के उन्नयन में योगदान दें तथा उद्योग सामयिक और आर्थिक दशाओं के विकास में देश की सहायता करें। श्रमिकों के हितों की केवल रक्षा ही नहीं की जानी चाहिए वरन् उन्हें आगे बढ़ाना चाहिए। श्रमिकों के साथ साथ सम्पूर्ण समाज की प्रगति करनी चाहिए। हमारे प्रधानमन्त्री के शब्दों में "ऐसे श्रमिक संघ संगठन संकीर्ण रूप से श्रमिकों के हितों के बारे में ही नहीं सोच सकते हैं। उन्हें सम्पूर्ण

समाज के विस्तीर्ण दृष्टिकोण से उनके विषय में विचार करना होगा। यह श्रमिकों के दृष्टिकोण से भी आवश्यक है। अन्तत भारत म प्रगति तभी की जा सकती है जब उसका आधार व्यापक हो तथा उसमें सामान्य स्तर ऊँचा उठाया जा सके। जब तक एक वर्ग दूसरे के मूल्य पर प्रगति के लिए प्रयत्नशील है तबतक किसी विशेष प्रगति की सभावना नही की जा सकती है।' श्री जयप्रकाश नारायण का भी विश्वास है कि श्रमिक संघवाद का एक पक्षीय नहीं होना चाहिए।

इसके लिये यह मान कर चलते हैं कि श्रमिक संघ उन चुनौतियों को स्वीकार करने म समर्थ हैं जो उसके समक्ष प्रस्तुत होती हैं। यहाँ तक कि श्रमिकों के हितो की रक्षा करने जैसे सीमित उद्देश्य को भी बिना उचित रूप से सगठित और अनुशासित श्रमिक संघों के नहीं प्राप्त किया जा सकता। किन्तु इच्छित लक्ष्य और वास्तविकता म भारी अन्तर है। हमारे श्रमिक संघ कमजोर हैं अस्थाई हैं उचित रूप से सगठित नहीं हैं तथा उनका आतरिक अनुशासन भी क्षीण है। श्रमिक संघ आन्दोलन को सशक्त और स्थायी बनाने के इस कार्य के लिये सबधित सभी व्यक्तियों को योगदान देना चाहिए। सरकार नियोजक श्रमिक संघों सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यकर्ता—प्रत्येक ही श्रमिक सघो के उचित विकास म सहायता कर सकते हैं।

श्रमिक सगठन के मार्ग मे सबसे बड़ी बाधा श्रमिको की अज्ञानता और निरक्षरता है। हमारे श्रमिक केवल पढ और लिख ही नहीं सकते बल्कि उनका ज्ञान भी, जो कुछ कमकार योजक अथवा मिस्त्री द्वारा बताया जाता है वहीं तक सीमित रहता है। वे सामूहिक कार्य, पारस्परिक सहायता और सद्भावना का अर्थ तक नही समझ पाते हैं। वे बहाव के साथ प्रवाहित तो हो जाते हैं किन्तु उसके साथ तरते नहीं। श्रमिक सघो के उचित विकास के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिकों की अज्ञानता दूर की जाय। शिक्षा का अर्थ केवल पढना लिखना और हिसाब लगाना ही नहीं है किन्तु इतना भी स्वय मे बहुत बडी उपलब्धि होगी। उन्हें आधुनिक समाज मे सगठित श्रमिकों के महत्त्व तथा सामाजिक हित के प्रवर्तन मे जिस भूमिका का वे निर्वाह कर सकते हैं मे महत्त्व का अनुभव करना चाहिये। उन्हें समाज के प्रति अपने दायित्वों और अधिकारों को समझना चाहिये। श्रमिकों को शिक्षा को उच्चतम प्राथमिकता देनी चाहिये तथा शिक्षा देने और दृष्टिकोण को विस्तृत बनाने के लिये प्रत्येक सभव उपाय को काम मे लाना चाहिये। श्रमिकों की अज्ञानता को दूर करने के लिये स्कूल प्रेस, रगमच, चलचित्र, सभी का उपयोग किया जा सकता है। तीनो ही—राज्य नियोजक और श्रमिक संघ श्रमिकों के ज्ञानोद्दीपन मे महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। नियोजक स्कूल खोल सकते हैं जहा श्रमिक और उनके बच्चे शिक्षा प्राप्त कर सकें। वस्तुत कुछ ज्ञानोद्दीप्ति नियोजकों ने पहले ही श्रमिक शिक्षा के लिये बहुत काफी किया है। नियोजक अपने श्रमिकों के बीच सेवायोजन स्थायीकरण तथा पदोन्नति के लिये कुछ न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता के निर्धारण द्वारा भी शिक्षा

को प्रोत्साहित कर सकते हैं। श्रमिक संघों को भी अपने स्कूल चलाने चाहिये तथा भाषण, वाद विवाद और गोष्ठियों का आयोजन करना चाहिये।

लेकिन मुख्य रूप से शिक्षा सरकार का ही उत्तरदायित्व है। अन्य अभिकरण सरकार के प्रयत्नों में सहायता कर सकते हैं अथवा पूरक हो सकते हैं। एक कल्याणकारी राज्य में किसी न्यूनतम स्तर तक शिक्षा प्रदान करने का दायित्व राज्य का होता है। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य अभी तक अधूरा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ६–११ वर्ष की आयु वाले वर्ग में ६३ प्रतिशत तथा ११–१४ वर्ष की आयु वाले वर्ग में २२.५ प्रतिशत लोगों में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये व्यवस्था की गई थी। तृतीय योजना के मुख्य उद्देश्यों में से एक उद्देश्य ६–११ वर्ष की आयु वाले सभी बच्चों के लिये शैक्षणिक सुविधाओं की व्यवस्था करना है तथा चौथी और पांचवी योजनाओं में इसी का विस्तार ११–१४ वर्ष की आयु वाले सम्पूर्ण वर्ग में किया जाना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में कुछ क्रियात्मक कठिनाइयां हैं। सभी तथ्यों पर विचार करते हुये यह अनुमान लगाया जाता है कि ६–११ वर्ष की आयु वाले वर्ग की कुल जनसंख्या के ७६% को ही तृतीय योजना के अंत तक शैक्षणिक सुविधाएँ प्राप्त हो पाएँगी। योजना में ११–१४ वर्ष की आयु वाले वर्ग में ५४ प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है। पिछले दस वर्षों की अवधि में ६–१४ वर्ष की आयु वाले वर्ग की कुल स्कूल संख्या के अनुपात में ३२ से ४६ प्रतिशत की वृद्धि हुई बतायी जाती है। इसके अलावा अच्छे स्कूलों की स्थापना और योग्य अध्यापकों की नियुक्ति द्वारा शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये भी सावधानी बरतनी चाहिये। किंतु स्कूलों को उन्नत बनाने और दरिद्र अध्यापकों का जीवन सुधारने के हेतु बहुत कम किया गया है। आवश्यक उपकरणों से रहित स्कूलों तथा असंतुष्ट अध्यापकों के माध्यम से शिक्षा उचित रूप से नहीं दी जा सकती है। यह समय आ गया है जब सरकार को इस सम्बन्ध में अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वाह करना चाहिये। किंतु श्रमिकों की शिक्षा उनकी अज्ञानता और निरक्षरता को उन्मूलित करना अत्यन्त आवश्यक है—उसमें देर नहीं होनी चाहिये। उनकी शिक्षा की समस्या पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिये। इधर हाल ही में श्रमिकों की शिक्षा के महत्त्व को समझा गया है। केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा मंडल जो एक स्वायत्त संस्था है के तत्वावधान में श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम १९५८ में प्रारम्भ किया गया था। चूंकि योजना के अंतर्गत श्रमिकों की संख्या बहुत सीमित है इसलिए समस्या की व्यापकता और महत्त्व को समझते हुये यह वाञ्छनीय है कि श्रमिक को शिक्षित करने के लिये विस्तीर्ण प्रयत्न किये जाँय।

श्रमिकों में शिक्षा और साक्षरता के प्रसार से बाहरी नेतृत्व की समस्या से हमें छुटकारा मिल जायेगा। श्रमिक वर्ग से ही नेताओं का विकास होने लगेगा। जबतक श्रमिकों में से ही नेतृत्व उपलब्ध न हो श्रमिक नेताओं को ही प्रशिक्षित

करने के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिये। प्राय यह देखा गया है कि श्रमिक सघो नेताओं के आचरण अनुत्तरदायी होते हैं। उनमे से अधिकाश विभिन्न श्रम विधानो की महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाओं तक से अजान रहते हैं। प्राय ही उनके कार्य वैयक्तिक भावनाओं से प्रतिग्रामित होते हैं। क्योंकि वे अज्ञानी होते हैं इसलिये उन्हें नही पता होता कि कैसे विभिन्न श्रमिक समस्याओं को सुलझाएँ और किस प्रकार नियोजको के साथ प्रभावशाली ढग से वार्तालाप करें। अत यह आवश्यक है कि श्रमिक सघ के नेताओं को उचित प्रशिक्षण दिया जाय। ग्रीष्म स्कूल और नवीकरण पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने अस्थायी शिविरों का सगठन करने तथा विशिष्ट सस्थाओं जैसे टाटा सामाजिक विज्ञान सस्था, काशी विद्यापीठ म प्रवेश लेने के लिये उन्हे प्रोत्सा हित करने से उनके प्रशिक्षण म सहायता की जा सकती है। वस्तुत श्रमिक नेताओं के प्रशिक्षण की आवश्यकता का अनुभव किया गया है तथा कुछ अखिल भारतीय श्रमिक सघ सस्थाओं द्वारा इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये कुछ प्रयत्न किये गये हैं। किन्तु वे भी स्वीकार करते हैं कि कुल मिलाकर श्रमिक नेताओं के प्रशिक्षण के सम्बन्ध म उनकी उपलब्धि सतोषजनक नही रही है। अपने सदस्य के लिये उन्हें अधिक से अधिक प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्रदान करने के लिये प्रयत्न करने चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय स्वतंत्र श्रमिक सघ प्रसघान ने कलकत्ता मे एशियन श्रमिक सघ विद्या लय की स्थापना की है। सरकार ने भी श्रमिक नेताओं के प्रशिक्षण म कुछ रुचि दिखाई है। किन्तु इस दिशा मे राज्य द्वारा किय गये प्रयत्नो पर न तो निभर रहना चाहिये और न ही उन्हे समर्थित करना चाहिये। श्रमिक नेताओं क प्रशिक्षण का कार्य एक बाहरी अभिकरण का न होकर स्वय श्रमिक सघो का है। फिर भी प्रशि क्षण योजनाओं के कार्यान्वयन में बिना किसी पक्षपात के राज्य विभिन्न श्रमिक सघो की सहायता कर सकता है।

इस सबध म यह कहा जा सकता है कि अभी तक मुकदमो के वग से नेतृत्व प्राप्त करने के लिय कोई गभीर और सगठित प्रयत्न नही किया गया है। देश म आधुनिक फैक्ट्री पद्धति के विकास के साथ इन मध्यस्थको का बहुत निकट का सबध रहा है। उन्हे प्रतिस्थापित करने के प्रयत्न निष्फल रहे है और आज भी श्रमिको पर उनका सशक्त नियन्त्रण है। जूट जैसे कुछ उद्योगो क श्रमिको पर इनका पर्याप्त प्रभाव है। इस वग मे से श्रमिक नेताओं के उद्भव की सभावना के विषय मे पूर्ण समन्वेषण नही किया गया है। मुकदमो म बहुत से गुण होने है जो एक सफल श्रमिक नेता के लिये आवश्यक है। वह श्रमिक वर्ग से होता है तथा उसे श्रमिको का विश्वास प्राप्त होता है। उसम सगठन की पर्याप्त क्षमता होती है और वह जानता है कि श्रमिको के साथ कैसा व्यवहार किया जाय। श्रमिको के साथ उसका घनिष्ट सबध रहता है तथा उसे उनके रीति रिवाजो की पूरी जानकारी होती है। वह श्रमिकों से उन्हीं की भाषा म बात करता है तथा बहुत से महत्त्वपूर्ण विषयो पर

यह उनका पथप्रदर्शक होना है। सक्षेप मे, वह इस कार्य के लिये प्रशसनीय रूप से उपयुक्त होता है। थोडी सी शिक्षा और प्रशिक्षण के द्वारा उसकी अर्तनिहित शक्तियो का विकास किया जा सकता है। अभी तक तो हमारे श्रमिक सघ नेताओ ने उन्हें केवल विरोधी बनाने का प्रयत्न किया है। किन्तु श्रमिक सघो के निमित्त उनकी सहानुभूति तथा भविष्य के लिये योग्य नेता प्राप्त करने के लिये वर्तमान नीति बदलनी ही चाहिये।

श्रमिक सघो का कार्य आशिक समय के लिये, आकस्मिक तथा अवैतनिक नही होना चाहिये। चूंकि श्रमिक सघ आदोलन का प्रारम्भ एक मानवीय आन्दोलन के रूप मे हुआ था इसलिए अधिकाश प्रारम्भिक कार्यकर्ताओ ने बिना किसी वेतन के कार्य किया। वह स्थिति न जाने कब की समाप्त हो गई है किन्तु आज भी अधिकतर श्रमिक सघ कार्यकर्ताओ को या तो कुछ नहीं दिया जाता अथवा बहुत थोडा नाम मात्र के लिये पारिश्रमिक दिया जाता है। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक सगठन जिसके लगभग २०० वैतनिक कर्मचारी हैं कुछ गुजरात और सौराष्ट्र के वस्त्र उद्योग सघो तथा कुछ और को छोडकर शेष सघो मे श्रमिक सघ प्रशासन चलाने के लिये पूर्ण समय के लिये वैतनिक कर्मचारी नही है। श्रमिक सघो की जिम्मेदारिया प्रतिदिन ही बढती जा रही हैं। श्रमिक सघ आन्दोलन उस अवस्था में पहुँच गया है जहा शक्ति के सग्रहन तथा सगठनात्मक विषयो पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये ताकि प्रत्येक सघ उचित रूप से कार्य कर सके तथा अपने सदस्यो को निजी लाभो के लिये सिद्धान्तो और नीतियो को छोडने से रोक सके तथा वर्गीय हितो की अपेक्षा राष्ट्रीय हितो की उपलब्धि के लिये प्रेरित कर सके। श्रमिक सघो के सम्मुख अनेक कार्य हैं। विस्तृत असमवेष्टित क्षेत्र हैं। यह सारे कार्य अवैतनिक कर्मचारियो द्वारा नही किये जा सकते हैं जिनके पास श्रमिक सघ कार्यकलापो के लिये बहुत कम समय रहता है। रॉयल श्रमिक आयोग ने पूरे समय के वैतनिक कर्मचारियों के मूल्य पर बल दिया था। आयोग ने कहा था—'आवश्यकता इस बात की है कि पूर्ण समय के लिये अधिकारी हो जो वास्तविक श्रमिक रहे हो। चूंकि यह आशा करना कि बिना किसी प्रतिकार के इतना भारी कार्य किया जा सकेगा असभव है इसलिए सघो द्वारा उन्हें वेतन दिया जाना चाहिये वेतन देने से उत्तरदायित्व की भावना बढ जाती है क्योकि तब अधिकारी सघ और उसके भाग्य पर निर्भर हो जाते है।'[1]

लेकिन यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि 'जहा पूरे समय के लिये वैतनिक सगठनकर्त्ता आवश्यक हैं, वही वे ऐसे व्यक्ति नही होने चाहिये जो व्यवसाय वृति के रूप मे उसे अपनाना चाहते हो। क्योकि जो बिना श्रमिक सघो के सामा

---

१ रायल श्रमिक आयोग का प्रतिवेदन।

जिक महत्त्व को समझें श्रमिक संघ कार्य करेंगे उनका स्पष्ट रूप से श्रमिक संघ प्रतिनिधियों के रूप में मूल्य कम हो जायेगा।'[1]

श्रमिक संघ मुख्यतया पूरे समय के लिये वैतनिक कर्मचारी इसलिए नहीं नियुक्त कर पाते हैं क्योंकि उनकी वित्तीय स्थिति बहुत खराब होती है। हम जानते हैं कि अधिकांश संघों की वर्तमान आय इतनी नहीं है कि वे ऐसे खर्चों को वहन कर सकें। किन्तु यदि संगठन अधिकारी मध्यम रूप से भी योग्य हैं तो वे संघ की आय को बढ़ाने में पर्याप्त सहयोग प्रदान कर सकते हैं। कुछ संघों ने जिन्होंने वैतनिक अधिकारी नियुक्त किये हैं इस कार्यप्रणाली को लाभकारी पाया है श्रमिक संघों को शक्तिशाली बनाने के लिये इसे व्यय करने ही होंगे। यदि छोटे संघ विलयन के द्वारा बड़े-बड़े संघ बना लें तो समस्या का हल संभव हो सकता है। छोटे औद्योगिक केन्द्रों में प्रत्येक व्यवसाय या उद्योग, जिनमें छोटी संख्या में श्रमिक कार्य करते हों वे पृथक संघों को मिलकर विभिन्न व्यवसायों और उद्योगों को सम्मिलित करते हुए सामान्य श्रमिक संघों का निर्माण करना चाहिये। प्रत्येक संघ को पूरे समय के लिये वैतनिक सचिव तथा उसकी सहायता के लिये अन्य पर्याप्त कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। संघ के सचिव को उचित वेतन और नौकरी की सुरक्षा का आश्वासन भी दिया जाना चाहिये। अवधि बीतने पर उसे दोबारा चुनाव लड़ना पड़ सकता है किन्तु सिवाय घोर दुर्व्यवहार अथवा कर्त्तव्य की अवहेलना के उसे पदच्युत नहीं किया जाना चाहिये। श्रमिक संघों को परम्पराओं का विकास करना चाहिये ताकि वर्ष प्रति वर्ष एक ही व्यक्ति संतोषजनक कार्य करते रहने पर कार्यालय में नियुक्त रहे। राजनैतिक शक्ति अथवा वैयक्तिक तथ्यों को दूर रखना चाहिये। जबतक सेवा की सुरक्षा की भावना नहीं पैदा की जायगी श्रमिक संघों को कुशल सचिव नहीं मिल सकते हैं।

जहां तक संभव हो श्रमिक संघों में बाहरी लोगों की संख्या कम से कम होनी चाहिए और उन्हें संघों में दायित्वपूर्ण पद तभी दिये जाने चाहिए जब श्रमिकों में से उपयुक्त व्यक्ति उपलब्ध न हों। निर्वाचित पदों में बहुत अधिक बाहरी लोगों के होने के कारण वैयक्तिक संघर्षों का सूत्रपात होता है जिससे श्रमिक संघ क्षीण हो जाते हैं। श्रमिक संघों को बाहरी सहायता और संरक्षण पर निर्भर रहते हुए धर्मार्थ संस्था के रूप में कार्य करने के बजाय व्यापारिक संस्था के समान कार्य करना चाहिए।

श्रमिक संघों को अपने कार्यकर्त्ताओं में कुछ प्राविधिक कर्मचारी भी रखने चाहिए। श्रमिक संघों के कार्य का स्वरूप बिलकुल बदल गया है। श्रमिक संघ अब वे संगठन नहीं हैं जिनका केवल उद्देश्य आंदोलन करना हो। उन्हें अब एक अधिक

१. सी० बी० कुमार डवलपमेंट ऑफ इंडस्ट्रियल रिलेशंस इन इण्डिया पृ० २१८।

रचनात्मक भूमिका का निर्वाह करना है। उनका कर्तव्य उद्योग मे श्रमिकों के हितो का प्रवर्तन करने के साथ ही साथ समाज के विस्तीर्ण हितो का प्रवर्तन करना भी है। संयुक्त विचार विमर्श की योजनाएँ पहले ही लागू कर दी गई है तथा भविष्य मे उनके बढने की सभावना है। अभिनवीकरण और वैज्ञानिक प्रबंध की समस्याएँ प्रत्येक स्थान पर लोगो का ध्यान आकर्षित कर रही है। उत्पादन की प्रविधि बदल रही है और वह अधिकाधिक केन्द्रीयकरण की ओर उन्मुख है। नई नई मशीनो का उत्पादन किया जा रहा है। इन सभी परिवर्तनो का प्रभाव श्रमिकों के जीवन पर पडता है। भूतकाल मे इन विकासो से श्रमिक सघो को कोई मतलब नही था। उनकी स्थिति नियोजको जो अपनी नीति चुनने के लिये पूर्ण स्वतंत्र थे, के अन्य क्षेत्र मे समझी जाती थी। श्रमिक सघ विरोध करते थे, प्रतिवाद करते थे, और प्रदर्शन करते थे किन्तु सघर्ष मे उन्हे साधारणतया हार ही मिलती थी। श्रमिको को पराजय से बचाने का सबसे उत्तम मार्ग यही है कि श्रमिक सघो का उन परिस्थितियो पर अत्यधिक नियंत्रण हो जिनमे श्रमिको को रहना और कार्य करना होता है। अधिकाधिक रूप मे श्रमिक सघ अब उन समस्याओ के साथ उलझते जा रहे है जिनके लिये पहले नियोजक ही उत्तरदायी समझे जाते थे। इसलिए उन्हे प्राविधिक परिवर्तनो के सभावित प्रभावो अथवा श्रमिको के कल्याण, सुरक्षा और स्वास्थ्य पर उत्पादन की प्रविधि मे परिवर्तनो से पडने वाले प्रभावो के सम्बन्ध मे अधिकृत रूप से कुछ कह सकने मे समर्थ होना चाहिए। इसी प्रकार सघो मे उत्पादन लागत, सभावी सेवायोजन लाभ और मजदूरी पर श्रमिको तथा नियोजको की औद्योगिक नीति के प्रभावोको आकने की क्षमता होनी चाहिए। अभिनवीकरण का अर्थ केवल कार्य मे वृद्धि ही नही है बल्कि उसका अर्थ प्रबन्ध का अभिनवीकरण भी है। लाभ प्रत्येक को होना चाहिए श्रमिको को कार्य के कम घटे तथा ऊँची मजदूरी के रूप मे तथा समाज को अच्छे तथा सस्ते माल के रूप मे इसी प्रकार श्रमिक सघ सुरक्षा के नियमन, दुर्घटनाओ की रोक थाम समय और गति के अध्ययन, तथा उत्पादकता बढाने के क्षेत्र मे सहायता कर सकते है। जस जैसे समय बीतता जायगा श्रमिको का उद्योग मे नियंत्रण बढता जायगा तथा वे प्रबंध के सभी स्तरो पर प्रगामी रूप से सहवर्तित होते जाएँगे। इसलिए उन्हे पहले से ही उस कार्य के लिये अपने को तैयार कर लेना चाहिए।

१९२८-२९ मे बम्बई हड़ताल समिति ने श्रमिक सघो के लिए विशेषज्ञो की तकनीकी सलाह की आवश्यकता पर बल दिया था। समिति ने कहा था "हम इससे सहमत है कि बम्बई के श्रमिक सघो के लिये एक विशेषज्ञो की प्राविधिक सलाह संस्था की आवश्यकता है। प्रमाणीकरण योजनाओ के उचित कार्यान्वयन के लिये वस्तुत इसकी सर्वाधिक आवश्यकता का प्रस्ताव है। यह स्पष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण है कि इस उद्देश्य के लिए पक्षपोषी अथवा आन्दोलनो के स्थान पर प्रामाणिक विशेषज्ञो को रखना चाहिए।' इसी तरह के विचार बम्बई वस्त्र उद्योग श्रमिक जाँच समिति

ने भी १६४१ मे व्यक्त किये थे। समिति न विचार व्यक्त किया था, "जहा तक स्वय सघो के अन्तवर्ती सगठन का प्रश्न है, समिति का यह मत है कि एक या दो अपवादो को छोडकर वस्त्र उद्योग के श्रमिक सघो म ऐसे अधिकारियो का बहुत अभाव है जो योग्यता और प्रशिक्षण के उस स्तर को पूरा करते हो जो उन देशो म अनिवाय समझा जाता है जहाँ श्रमिक सघ आन्दोलन सुविकसित है तथा प्रान्त मे वस्त्र उद्योग सघो के अधिकाश अधिकारी उस काय म प्रशिक्षित नही है जो उन्हे करना पडता है। तदनुरूप इसका यह मत है कि वस्त्र उद्योग के श्रमिक सघो को ऐसे व्यक्तियो की बढती हुई सख्या म सेवाएँ उपलब्ध करनी चाहिए जो उद्योग के प्राविधिक ज्ञान से भलीभाति परिचित हो।' बम्बई म श्रमिक सघो की सहायता हेतु प्राविधिक सलाहकार की नियुक्ति के बम्बई हडताल जाच समिति के सुझाव का इसने समथन किया था। जो १६४१ मे सही था वहा आज भी है। सापेक्ष रूप से अन्य उद्योगो की तुलना मे वस्त्र उद्योग के श्रमिक सघ अधिक अच्छी तरह सगठित है। यदि वस्त्र उद्योग के सघो म उचित प्रकार के अधिकारी उपलब्ध नही है तो अन्य श्रमिक सघो की स्थिति के बारे म आसानी से कल्पना की जा सकती है। अब वह समय आ गया है जबकि इस कमी को दूर किया जाय।

विभिन्न श्रमिक सघ सगठन अब अधिकाधिक रूप म अनुभव कर रहे है कि बदली हुई परिस्थितियो मे श्रमिक सघ नताओ के गुणो म पयाप्त वृद्धि की जानी चाहिए। हिन्द मजदूर सभा के ६वें सम्मेलन के समय अपन अध्यक्षीय भाषण म श्री देवेन सेन ने कहा था—"अनेक कमियो और भूतकाल की परम्पराओ के बावजूद भारत म श्रमिक सघ आन्दोलन एक नय चरण मे प्रवेश कर गया है जिसके लिए विभिन्न गुणो क नेतृत्व की आवश्यकता है। श्रमिक सघ श्रमिक के सम्मुख अब केवल यही सीखना नही रह गया है कि कसे सघ बनाएँ या हडताल का सचालन करें। अब इस क्षमता का विकास कम महत्व का नही है कि कसे वार्तालाप की जाय लख रखे जाय और कार्यालय चलाया जाय। न्यायाधिकरण के सम्मुख एक सफल प्रतिनिधित्व के लिए केवल श्रम विधानो की ही नही बल्कि सम्बद्ध उद्योग के आर्थिक और वित्तीय पक्षो के भी पूण ज्ञान की आवश्यकता है।

अखिल भारतीय श्रमिक सघ सभा ने भी ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता का अनुभव किया था। 'श्रमिक सघ सवर्गों को दोनो ही—निजी और सावजनिक क्षेत्र के उद्योगो के वित्तीय और प्राविधिक पक्षो का अध्ययन अवश्य करना चाहिए, क्योकि उसके बिना काय परिषदो व्यवसाय सघ समितियो अथवा राज्य विधानपरिषदो और ससद की समितियो जसे प्रजातान्त्रिक माध्यमो के द्वारा वे न तो बुद्धिमत्तापूर्ण सतकता बरत सकते हैं और न राज्य क्षेत्र के प्रबंध मे भाग ले सकते हैं।"[1]

---

1 एर्नाकुलम प्रतिवेदन, पृ० २०।

फोर्ड फाउण्डेशन के सहयोग से भारत सरकार ने जनवरी १९५७ में श्रमिकों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से श्रमिक शिक्षा की एक व्यापक योजना बनाने के लिए विशेषज्ञों के एक दल की नियुक्ति की थी, जिसे (१) श्रमिक संघ संगठन, प्रबंध, और वित्त की प्रविधियों और सिद्धान्तों में संघ प्रतिनिधियों की शिक्षा, (२) प्रबंध में दायित्वपूर्ण और प्रभावशाली ढंग से भाग लेने के लिए संघ प्रतिनिधियों की शिक्षा, (३) संघ के कार्यों में बुद्धिमानीपूर्ण ढंग से भाग लेने तथा निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का अच्छी तरह निर्वाह करने के लिये संघ सदस्यों की शिक्षा, तथा (४) श्रमिक शिक्षा के अन्य शैक्षणिक पक्षों पर अपने सुझाव देने थे।

दल ने (१) केन्द्रीय मंडल, क्षेत्रीय मंडलों तथा स्थानीय श्रमिक शिक्षा मंडलों की स्थापना (२) श्रमिक रूप से कार्यक्रमों और निर्देशन पाठ्यक्रमों का आयोजन, (३) प्रशिक्षण सामग्री की तैयारी, (४) व्यक्तियों और इच्छुक संस्थाओं को प्रोत्साहन तथा (५) आवश्यक वित्त की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में सुझाव दिये थे। कुछ छोटे छोटे परिवर्तनों के साथ इन सुझावों को भारतीय श्रमिक सभा के १५वें अधिवेशन में स्वीकार कर लिया गया था। सरकार नियोजक, श्रमिक और प्रमुख शिक्षाविदों के प्रतिनिधियों के साथ केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा मंडल की स्थापना कर दी गई है।

इस योजना के तीन चरण हैं। शिप स्तर पर 'अध्यापक प्रशासकों' को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है जिनका चुनाव खुली स्पर्धा द्वारा किया जाता है और जिन्हें ६ मास का प्रशिक्षण लेना होता है। 'अध्यापक प्रशासक" अपना प्रशिक्षण समाप्त करने के बाद क्षेत्रीय स्तर पर "श्रमिक अध्यापकों' को तीन मास का प्रशिक्षण देते हैं। श्रमिक अध्यापक' अपनी बारी में संघ स्तर पर मंडल के तत्वावधान के अन्तर्गत साधारण श्रमिकों की कक्षाएँ लेते हैं।

मंडल की अन्य योजनाओं में विभिन्न विषयों पर समुचित साहित्य पुस्तिकाओं आदि का प्रकाशन करना, श्रमिक संघों को आर्थिक सहायता देना, कार्य समितियों, संयुक्त प्रबन्ध परिषदों आदि के सदस्यों के प्रशिक्षण के लिए अल्पकालीन विशिष्ट पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना आदि सम्मिलित हैं। यह अनुमान लगाया जाता है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में लगभग १० लाख श्रमिक संघ स्तर पर श्रमिक शिक्षा कक्षाओं में सम्मिलित हो चुके होंगे।

लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि बाहरी संस्थाओं द्वारा प्रवर्तित ऐसी योजनाओं से जो भले ही अपने सीमित क्षेत्र में लाभदायक हों उचित भावना के साथ श्रमिक शिक्षा की समस्या को नहीं सुलझाया जा सकता है। अनुभव से पता चलता है कि यह वस्तुतः उस प्रकार का कार्यक्रम नहीं है जो प्रभावशाली ढंग से श्रमिक शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। वस्तुतः यह वह कार्य है जिसके लिये धर्म-प्रचारकों की तरह उत्सर्ग की भावना, श्रमिक आन्दोलन के प्रति आवेगन में ऐसी

करण तथा श्रमिकों के काय और जीवन की अवस्थाओं उनके मनोविज्ञान और श्रमिक आन्दोलन के क्रियाकरण के घनिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। जो तन्त्र स्थापित किया गया है अथवा आने वाले समय में स्थापित किया जायगा वह उपरोक्त से सज्जित नहीं होगा। पहले से ही अधिकारतन्त्रीय विचारधारा तथा अभिकरणों और अधिकारियों की कई कमियों के बनने पर अत्यधिक विश्वास की प्रवृति दिखलाई देती है।"[1]

श्रमिक शिक्षा की आवश्यकता अधिक प्रखरता से अनुभव की जा रही है। श्रमिक संघ आन्दोलन यथेष्ट रूप में विस्तीर्ण हो गया है तथा श्रमिक संघ के काय अत्यधिक विशिष्ट होते जा रहे हैं। इसके अलावा यह भावना भी है कि श्रमिक संघ आन्दोलन को आदर्शवादी युवकों के अभाव का सामना करना पड रहा है।

इन कमियों को दूर करने के लिये विभिन्न श्रमिक संघ संगठनों को अपनी स्वयं की योजनाएँ चलानी चाहिए तथा पर्याप्त संख्या में श्रमिकों को प्रशिक्षित करने हेतु साधन और माग खोजने चाहिए। बाहरी संस्थाओं द्वारा प्रवर्तित और वित्त प्रवधित योजनाओं से आत्म विश्वास और श्रमिक संघ आन्दोलन की स्वतन्त्रता का ह्रास हो सकता है। केन्द्रीय श्रमिक संघ संगठनों ने प्रशिक्षित वर्ग के महत्व का अनुभव किया है। किन्तु भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा को छोड़कर जो श्रमिकों को प्रशिक्षित करने के लिये अहमदाबाद बम्बई जमशेदपुर और इन्दौर में गहन कायक्रम चला रही है और जिसके सम्बद्ध संघों को भी कुछ प्रशिक्षण योजनाओं का श्रेय है, अन्य श्रमिक संघ संघान इस दिशा में कुछ अधिक कर पाने में समर्थ नहीं हुए हैं।

एशिया के श्रमिक संघ श्रमिकों का प्रजातान्त्रिक श्रमिक संघवाद के सिद्धान्तों और व्यवहारों में प्रशिक्षित करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र श्रमिक संघ प्रसंघान कलकत्ता में एशियन श्रमिक संघ विद्यालय का संचालन कर रहा है। इसके अतिरिक्त कोलम्बो योजना श्रमिक शिक्षा के संयुक्त राष्ट्रसंघ नेतृत्व कायक्रम तथा प्रबंध प्रशिक्षण परिषद् के उत्पादकता अध्ययन दलों के अन्तगत भी प्रशिक्षण सुविधाओं को उपलब्ध किया जा रहा है।

यदि श्रमिक संघों में योग्य तथा समर्थ पूरे समय के लिये वैतनिक कर्मचारी हों तो वे अधिक कुशलता के साथ काय कर सकते हैं। इसके अलावा उन्हें शिकायत तन्त्र का भी विकास करना चाहिए। श्रमिकों की व्यक्तिगत समस्याओं और व्यथाओं की ओर अभी तक समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। श्रमिक संघों ने प्राय उन्हीं सामान्य समस्याओं को लिया है जो संपूर्ण श्रमिक वर्ग से सम्बन्ध रखती है। यद्यपि मजदूरी, काय के घंटे, छुट्टी और बोनस आदि जैसे प्रश्नों पर उन्होंने विचार किया है

---

१ हिन्द मजदूर सभा ७वें सम्मेलन का प्रतिवेदन पृ० ४७।

किन्तु व्यक्तिगत व्यथाओ मे उन्होंने बहुत कम रुचि ली है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहा अधिकारियो द्वारा वैयक्तिक श्रमिको के साथ अन्याय किया गया है। वैयक्तिक अन्याय के एस सभी मामलो की श्रमिक सघ कर्मचारियो द्वारा अच्छी तरह से जाच की जानी चाहिए और यदि आवश्यक हो तो वैयक्तिक श्रमिको के मामलो का उनके द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाना चाहिए। इसी प्रकार श्रमिक सघो को वकीलो और चिकित्सको आदि की सेवाओ की भी व्यवस्था करनी चाहिए ताकि उनके सदस्य वे सभी सुविधाएँ प्राप्त कर सके जिनके लिए वे विभिन्न श्रम विधानो के अन्तर्गत अधिकारी है। सामाजिक सुरक्षा उपायो के सबध मे ऐसे अनेक लाभ है जो वैयक्तिक श्रमिको का तुरन्त मिलने चाहिए। श्रमिक सघ हमेशा श्रम विधानो के किसी भी उल्लघन पर सरकार का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं।

श्रमिक सघो को श्रमिको की निर्वाह परिस्थितियो मे वर्धित रूप से रुचि लेनी चाहिए। नि सदेह श्रमिको के जीवन-स्तर मे सुधार की आवश्यकता है और इस दिशा म किये गये प्रत्येक प्रयत्न का स्वागत करना चाहिए। साथ ही साथ एक स्वतन्त्र देश के उत्तरदायी नागरिक बनने म श्रमिको की सहायता भी की जानी चाहिए। जिस शहर अथवा स्थान मे वे रहते है वहा के सामाजिक और सास्कृतिक जीवन म सक्रिय रूप से रुचि लेने के लिए उन्हे प्रोत्साहित करना चाहिए। उन्हें अपने सास्कृतिक जीवन का विकास अवश्य करना चाहिए। तथा केवल राजनतिक महत्वहीन वग ही नही बने रहना चाहिए। जिला परिषदो, नगरपालिकाओ तथा नगर निगमो जसे विभिन्न स्थानीय निकायो के निर्वाचन म श्रमिको का निर्णयात्मक प्रभाव पडना चाहिए। सामाजिक और सास्कृतिक जीवन के विकास स श्रमिको मे देश के नागरिक के रूप मे अपनी भूमिका के प्रति भावना जागत होगी और उन्हे वग कुण्ठाओ से मुक्ति मिल जायगी। परिवर्तित परिस्थितियो मे अपनी भूमिका की महत्ता तथा अपने दायित्वो से वे परिचित हो जाएग। इस उद्देश्य के लिये श्रमिक सघ रग-मच चित्रपट सास्कृतिक केन्द्र, वाद विवाद, कक्ष नृत्य कायक्रम आदि का सुविधा पूवक उपयोग कर सकते है।

श्रमिक सघो के काय क्षेत्र को और अधिक विस्तृत करना चाहिए। उन्हे केवल हडताल समिति अथवा वतमान समय म 'पचनिर्णय समितियो' की सज्ञा दी जाती है। उनकी भत्सना की जाती है। और जो उनसे सम्बद्ध है उन्हे ऐसे व्यक्ति समझा जाता है जिनका मुख्य उद्देश्य अपने वैयक्तिक सामाजिक और राजनतिक हितो का वधन हो। एक साधारण श्रमिक की श्रमिक सघो के प्रति, जिनके साथ उसका नाम जोडा जाता है, बहुत कम रुचि होती है। वह उसके झण्डे के नीचे तभी आता है जब किसी सघष का सूत्रपात किया जाना हो अथवा जब उसे व्यक्तिगत सुविधाओ की आशा हो। सघष समाप्त होन क बाद सघ मे श्रमिको की रुचि निष्प्राण हो जाती है। श्रमिक सघ आन्दोलन की इस कमी का निदान श्रमिक सघ कायकलापो मे

विस्तार करके किया जा सकता है। श्रमिक संघों को चाहिए कि वे सदस्यों के लिए अपने को अत्यावश्यक बनाएँ। 'अत्यधिक सीमित क्षेत्र और बहुत कम कायकलापों के कारण अधिकांश संघ अवरुद्ध हैं। दोनों ही कारणों से कायकलापों के क्षेत्र को विस्तृत करना अत्यधिक वाञ्छनीय है क्योंकि प्रथम तो बहुत कुछ शेष है जिसे श्रमिक संघ कर सकते हैं तथा दूसरे नये कायकलापों के द्वारा अथवा उन्हें सूत्रित करके, जिसमें सदस्य भाग ले सकें आन्दोलन को सशक्त बनाया जा सकता है। उन कायकलापों में जिनमें श्रमिक संघ रुचि ले सकते हैं एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में, एक उद्योग से दूसरे उद्योग में यहाँ तक कि एक संघ से दूसरे संघ में भिन्नता हो सकती है। उदाहरण के लिये प्रौढ़ शिक्षा सहकारी आन्दोलन का विकास सहकारी भंडार चलाना और लाभकारी योजनाएँ प्रवर्तित करना ऐसे काय हैं जिनमें श्रमिक संघ रुचि ले सकते हैं। हमारे सभी श्रमिक संघों का जिनमें बड़ी संख्या में श्रमिक संयोजित हैं कम से कम इस योग्य अवश्य होना चाहिए कि वे सहकारी ढंग से अपने स्वयं के खाद्य वितरण और आवास के प्रश्नों को हल कर सकें।'[1]

प्रथानुसार अथवा नियमों के द्वारा सदस्यों के लिए उच्च स्तर के कार्य-कौशल को आवश्यक कर देना चाहिए। श्रमिकों की कुशलता तथा साथ ही औद्योगिक उत्पादन में भी वृद्धि होनी चाहिए। श्रमिक संघों को अपने सदस्यों के उत्तरदायी और अनुशासित आचरण पर बल देना चाहिए। देर में आना, अनुपस्थिति, निरीक्षण और अनुशासन कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जो उनके द्वारा सुलझायी जा सकती हैं। ठीक समय पर आने के लिये सदस्यों को निर्देश दिये जा सकते हैं और आभ्यासिक देर से आने वालों को प्रबोधित किया जा सकता है। यदि वे फिर भी नहीं मानते तो उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए। उनसे विशेष रूप से कहा जाना चाहिए कि वे बिना पूर्व सूचना के अनुपस्थित न हों। श्रमिक संघों को अपने सदस्यों के बीच अनुशासन बनाये रखना चाहिए तथा समझौतों और परिनिर्णयों के पालन का ध्यान रखना चाहिए। हमारे देश में प्रायः ही श्रमिक संघों ने श्रमिकों के अनुचित कार्यों, जिन्होंने समाज विरोधी उपायों का आश्रय लिया है अथवा फक्टरी के अन्दर अनुशासन भंग किया है के लिए संघर्ष किये हैं। इस प्रकार जब एक फक्टरी में दो आभ्यासिक अनुपस्थित रहने वालों और देर से आने वालों के विरुद्ध कार्यवाही की गई तो श्रमिक संघ ने श्रमिकों से हड़ताल कर देने के लिए कहा। ऐसी अभिवृत्ति से अन्ततः श्रमिकों के हितों को हानि पहुँचेगी अनुशासन और उच्च स्तर के कार्य-कौशल के कारण श्रमिक संघों के प्रति जनता में रुचि पैदा होगी और विश्वास बढ़ेगा।

संघों के कायकलापों को ग्रामीण क्षेत्रों में भी विस्तारित करना चाहिए। श्रमिक गाँवों से ही आते हैं जिनमें से अधिकांश अपने गाँवों से सम्बन्ध बनाये रखते

[1] अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा एर्नाकुलम का प्रतिवेदन, पृ० २०।

है। फिर भी श्रमिक संघों ने श्रमिकों के ग्रामीण जीवन में कोई रुचि नहीं ली है। वे उन श्रमिकों की, जो गांव से शहर में आते हैं और अपने को बिल्कुल नई तथा अनजानी परिस्थितियों में पाते हैं, कोई सहायता नहीं करते हैं। फलत श्रमिक परेशान हो जाते हैं और घबड़ा जाते है। परिवर्तित स्थितियों में अपने जीवन को ढाल पाना उनके लिये कठिन होता है। उन्हें कहीं से सहायता नहीं मिल पाती—यहां तक कि श्रमिक संघों से भी नहीं। चूंकि उनके साधन भी बहुत सीमित होते हैं इसलिए काफी संख्या में श्रमिक भ्रम टूट जाने पर और काफी परेशानी उठाकर वापस चले जाते है। इसी प्रकार गांवों की समस्याएँ पर्याप्त सीमा तक शहरों में श्रमिकों को प्रभावित किये रहती है। इसलिए श्रमिक संघों, को विशेषकर बड़े औद्योगिक केन्द्रों के, एक ग्रामीण अनुभाग स्थापित करना चाहिए जो ग्रामीण जीवन की उन समस्याओं और विकासों का अध्ययन कर सके जो शहरों में श्रमिकों को प्रभावित करते हैं। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग श्रमिक संगठन ने ग्रामीण अनुभाग की स्थापना करके उदाहरण प्रस्तुत किया है। अन्य संघों को चाहिए कि वे उसका अनुसरण करें।

उनकी सहायता से एक स्थायी औद्योगिक श्रम जीवी वर्ग, जो ग्रामीण प्रव्रजन तथा गाँवों के संबंधों से उन्मुक्त हो, की स्थापना की जा सकती है। ऐसे प्रयत्नों से उनकी शक्ति और कुशलता में वृद्धि होगी। ऐसी श्रमिकों की भी एक बड़ी संख्या है जो अभी तक किसी श्रमिक संघ में सम्मिलित नहीं हुए हैं। यहाँ तक कि परम्परागत संगठित उद्योगों, जैसे सूती वस्त्र, जूट और सीमेंट में भी श्रमिक संघता की मात्रा काफी कम है। एक बड़ी संख्या में श्रमिकों से अब भी संबंध स्थापित करते हैं तथा उन्हें सदस्य बनाना है। श्रमिक संघ कार्यकलापों को, विशेषकर उन क्षेत्रों के श्रमिकों के लिये जहां कोई यथानाम श्रमिक संगठन नहीं है, और संगठित उद्योगों में उन श्रमिकों के लिए जो अभी तक अलग रहे हैं विस्तारित करना है।

सर्वोपरि रूप से श्रमिक संघों अपने सदस्यों के लिये एक जीवित और महत्त्वपूर्ण संगठन होना चाहिये। श्रमिक संघों के कार्यों में अधिकाधिक विविधताएँ आती जा रही हैं तथा उनके आकार में भी वृद्धि होने की संभावना है। श्रमिक संघों की कुशलता प्रत्येक निम्न श्रेणी के साथ, जो नियंत्रण और निरीक्षण के लिये अपने से उच्चश्रेणी के अधीन रहेगी, प्राधिकारों के श्रेणीकरण अथवा उच्चोच्चपरम्परा पर निर्भर होगी। इस प्रकार प्रदान किये गये प्राधिकारों को जांच और संतुलन बनाये रखने की प्रणाली द्वारा उचित रूप से प्रयोग में लाना चाहिए। दूसरे शब्दों में श्रमिक संघ संगठनों को कुछ अधिकारियों अथवा शीर्ष्य नेताओं का ही संगठन नहीं होना चाहिए। नियंत्रण और दिशा निर्देशन में एक साध्य श्रमिक का भी हाथ होना चाहिये। उसे अनुभव करना चाहिए कि संघ उसके लिये है न कि वह संघ के लिये। उसे समझना चाहिये कि संगठन में उसका भी महत्त्व है और उसकी स्थिति ऐसी

नहीं है कि जो कुछ ऊपर से कहा जाये, वह उसका केवल समर्थन करे। श्रमिक संघों के केन्द्रीयकरण की मात्रा प्रबंध के केन्द्रीयकरण और सकेन्द्रण द्वारा निश्चित की जायगी। यदि इस सकेन्द्रण को बिना आंतरिक फूट के भली प्रकार कार्य करना है तो इसे वास्तविक प्रतिनिधि सरकार जो विभेदों और साथ ही साथ संस्थाओं को भी स्वीकार करें, द्वारा संवर्धित और परीक्षित किया जाना चाहिये। यदि श्रमिक संघों को ऐसे संगठन न होकर जो अपने स्वहितों के लिए व्यक्तियों का शोषण करते हैं स्वतन्त्र संगठन बने रहना है तो उन्हें संघ के अंतवर्ती प्रजातन्त्र की चौकसी करनी चाहिये और उसे बनाये रखना चाहिये।

श्रमिक संघों की उचित कार्यप्रणाली, व्यापक और स्थायी सदस्यता, पूरे समय के लिए वैतनिक कर्मचारियों तथा पर्याप्त कोषों पर निर्भर करती है। पारस्परिक संस्पर्धा को समाप्त करके संयुक्त श्रमिक संघ मोर्चे की स्थापना की जानी चाहिये। जिन्होंने श्रमसेवा करने का स्वेच्छा से निर्णय लिया है उन्हें श्रम शक्ति की समस्याओं के प्रति एकाग्र होकर ध्यान देना चाहिये तथा अपनी शक्ति का दलबन्दियों में ह्रास नहीं करना चाहिये और न ही श्रमिकों के हितों के स्थान पर वैयक्तिक लाभों के लिये प्रयत्न करना चाहिये। केवल उन्हीं योग्य व्यक्तियों को, जो सेवा की इच्छा से अनुप्राणित हैं और जो सर्वोत्तम भावना से प्रतिगामित हैं यह मार्ग चुनना चाहिये। उद्देश्य हेतु प्रत्येक के सहयोग, जो भी श्रमिकों के कल्याण में रुचि लेते हैं का स्वागत करना चाहिये। विश्वविद्यालयों शोध संगठनों तथा जन-कल्याण की भावना रखने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा भी उपयोगी सेवाएँ प्रदान की जा सकती हैं।

हमारे श्रमिक संघों को ऐसे क्रियाशील संगठनों जो हमेशा देश और श्रमिकों के कल्याण के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संघर्षरत रहें, में रूपान्तरित होना है। पाठकों के लिये यह सब अव्यवहार्य एवं स्वप्न सा प्रतीत हो सकता है जिसे वास्तविकता में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसे अभिलाषापूर्ण विचार भी समझा जा सकता है। किन्तु प्रत्येक संगठन को एक चुनौती का सामना करना पड़ता है और उसका सामना करने के लिये प्रत्येक संगठन में कुछ लोग होते हैं। लक्ष्य सामने है केवल उसकी उपलब्धि के लिये सतत् प्रयत्नों की आवश्यकता है। स्वतन्त्रता के लिये लड़ाई कभी समाप्त नहीं होती और न रणक्षेत्र शान्त ही होता है इसलिए संघर्ष बराबर करते रहना चाहिये।

३१

पश्च लेख

१९६२ म चीन के आक्रमण ने सम्पूर्ण देश को हिला दिया था । वधित और अविरल उत्पादन, सन्तुलित क्षमता तथा जन और ससाधनो का सर्वाधिक निपुण उपयोग समय की आवश्यकता थी । भारत सरकार ने नवम्बर १९६२ मे सभी नियोजक और श्रमिक सगठनो की एक सयुक्त बैठक बुलायी । बैठक की अध्यक्षता श्रम और सेवायोजन के मत्री श्री नदा न की । बैठक ने एक व्यापक प्रस्ताव पारित किया, जो अब औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव के नाम से प्रसिद्ध है और जिसमे औद्योगिक शान्ति, उत्पादन की बढोतरी कीमतो की स्थिरता और बचत के सम्बन्ध मे कुछ सिद्धान्त निरूपित किये गये थे ।

प्रस्ताव मे कहा गया था कि प्रबधकों तथा श्रमिको—दोनो ही को नियत्रित और सहनशील रहना चाहिये ताकि देश की प्रतिरक्षा के समर्थन मे उनके एकाग्र और सम्मिलित प्रयत्नो के मार्ग मे कोई बाधा न उपस्थित होने पाये ।

प्रस्ताव मे कहा गया था 'किसी भी परिस्थिति मे वस्तुओ के उत्पादन और सेवाओ म कमी अथवा व्याघात नही पदा होना चाहिये" नियोजको और श्रमिको दोनो ही को अपने आर्थिक हितो के सबध मे ऐच्छिक रोक लगानी चाहिये और समान रूप मे अत्यधिक त्याग करने के लिये भी तैयार रहना चाहिये । ऐच्छिक पच निर्णय का अधिकतम आश्रय लिया जाना चाहिये और जिसके लिये पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिये । औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ की प्रथम अनुसूची म उल्लिखित उद्योग तथा पट्रोलियम और रसायन जसे अन्य उद्योग जनोपयोगी सेवाएँ घोषित किये जा सकते हैं । सेवा निवृत्ति पदच्युत, बलीकरण तथा छँटनी के सबध म वयक्तिक कर्मचारियो की सभी शिकायतें पारस्परिक रूप से न सुलझने पर पच-निर्णय के माध्यम से सुलझायी जानी चाहिये । इस उद्देश्य के लिये यदि दल सहमत हो सराधन तत्र के कार्यालयो का पचनिर्णायको के रूप मे उपयोग किया जा सकता है । फिर भी जहा तक सभव हो सेवा निवृत्ति और पदच्युत का परिहरण किया जाना चाहिये । केन्द्र और राज्यो के श्रम प्रशासन को इस तरह व्यवस्थित करना चाहिये जिससे शिकायतो और विवादो को तुरन्त हल किया जा सके और सुखद औद्योगिक सबध बने रहें ।

प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया गया कि जन तंत्र और सामग्री के पूरे और श्रेष्ठ उपयोग के सुनिश्चयन के लिये सभी बाधाओं को दूर किया जाना चाहिये। निष्क्रिय मशीन और क्षमता नहीं होनी चाहिये और न ही उनका दुरुपयोग किया जाना चाहिये। उत्पादन कार्यों में प्रबन्ध को अधिकतम मितव्ययिता बरतनी चाहिये।

प्रस्ताव में संस्थानों से अनुरोध किया गया कि वे जहाँ भी हो पारस्परिक समझौते द्वारा अतिरिक्त पालियाँ अतिरिक्त घंटा अथवा इतवार और छुट्टियों में काम करें। अनुपस्थिति और श्रम पलायन को निरुत्साहित करना चाहिये तथा राष्ट्र के कर्तव्य के प्रति उपेक्षा, लापरवाही से काम करना, सम्पत्ति को क्षति पहुँचाना और नियमित काम में हस्तक्षेप करना अथवा बाधा डालने की निन्दा करनी चाहिये। इसी प्रकार प्रबंधकों की ओर से की गई कोई भूल, जो प्रतिरक्षा प्रयत्नों में बाधा डाले, की भर्त्सना की जानी चाहिये और तुरन्त उसका निराकरण करना चाहिये। प्राविधिक और कुशल कर्मचारियों को जिनकी कमी है प्रतिरक्षा से सम्बद्ध आपत्कालीन कार्यों में लगा देना चाहिये। निःशिक्षा तथा अन्य प्रशिक्षण व्यवस्था के माध्यम से उनकी पूर्ति करने के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिये। किन्तु उत्पादन अभियानों का सूत्रपात करते हुए श्रमिक वर्गों के स्वास्थ्य की अवहेलना नहीं की जानी चाहिये। श्रमिकों के अतिरिक्त प्रयत्नों से उद्योग को होने वाले लाभ उपभोक्ता और/अथवा प्रतिरक्षा प्रयत्नों को उपलब्ध किए जाने चाहिये।

औद्योगिक उत्पादनों और आवश्यक वस्तुओं की कीमतें न बढ़ें तथा श्रमिक वर्गों को आवश्यक वस्तुएँ सहकारी भण्डारों के द्वारा उचित मूल्यों पर मिलती रहें के लिये सर्वाधिक प्रयत्न किये जाने चाहिये।

प्रतिरक्षा प्रयत्नों के लिये अधिकाधिक बचत को प्रोत्साहित करने, सुविधाओं की व्यवस्था करने तथा श्रमिकों को प्रत्येक मास एक दिन की मजदूरी राष्ट्रीय प्रतिरक्षा कोष और/अथवा प्रतिरक्षा बाण्डों में विनियोजित करने के लिये प्रेरित करने हेतु भी प्रस्ताव में कहा गया था। प्रतिरक्षा आवश्यकताओं के प्रति प्रबन्ध ने भी उदारतापूर्वक अंशदान देने की सहमति प्रकट की थी।

चीनी आक्रमण के प्रति श्रमिकों का सहयोग स्वाभाविक और उदार था। हड़ताल के निर्णय स्थगित कर दिये गये और जो हड़ताल पहले से ही चल रही थी उन्हें समाप्त कर दिया गया। श्रमिकों के वर्गों ने अतिरिक्त समय और रविवार को काम करने तथा मजदूरी को प्रतिरक्षा कोष में देने का निश्चय किया। अपने सदस्यों से अनुरोध करते हुए विभिन्न श्रमिक संघों ने प्रस्ताव पारित किये कि वे देश की प्रतिरक्षा के लिये दक्षता और मेहनत से काम करें। इलाहाबाद नगर-निगम के महतरों ने जाड़े के लिये मिली उन्हें नई ऊनी सदरियों को जवानों को दे दिया। प्रतिरक्षा प्रयत्नों के लिये श्रमिक वर्गों ने निःशुल्क श्रम, रक्त, धन और स्वर्ण-दान

दिया। श्री नन्दा ने श्रमिक वर्ग के प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी। "आपद्‌कालीन स्थिति में श्रमिक वर्ग की अपने दायित्वों के प्रति निष्ठा के परिणामस्वरूप कार्य कर दिनों की हानि जो संकटकाल के एक मास पूर्व ४००,००० थी घटकर नवम्बर में ७०,००० रह गई। दिसम्बर में यह १६,००० थी यद्यपि जनवरी में कुछ थोड़ी वृद्धि हो गई जब कार्य कर दिनों की हानि की संख्या २१,००० थी। श्री नन्दा ने कहा कि श्रमिकों के अतिरिक्त प्रयत्नों के कारण कई स्थानों पर उत्पादन बढ़ गया था। श्री नन्दा ने कहा कि श्रमिकों ने न केवल अच्छा और अधिक कार्य किया बल्कि मास की एक दिन की मजदूरी का भी अंशदान दिया। उन्होंने 'त्याग की अतिशय इच्छा दिखाई।"[१]

उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से केन्द्र में आपद्‌कालीन उत्पादन समिति की स्थापना की गई थी। बाद में ऐसी समितियों का गठन राज्यों में भी किया गया। तत्पश्चात् यह घोषणा की गई थी कि उद्यम स्तर पर पहले ही ४६२ आपद्‌-कालीन उत्पादन समितियों की स्थापना की जा चुकी थी।"[२]

किन्तु बहुत शीघ्र औद्योगिक शांति सम्मेलन की भावना के अनुरूप न चलने और न स्वीकार करने के लिये नियोजकों के विरुद्ध शिकायतें की जाने लगीं। केन्द्रीय क्रियान्वयन और मूल्यांकन मंडल द्वारा तैयार किये गये स्मृति पत्र में नियोजकों की 'श्रमिकों की छँटनी, सेवा निवृत्ति और पदच्युति के संबंध में अपने दायित्वों का निर्वाह न करने के कारण" भर्त्सना की गयी। उनकी ओर से ऐच्छिक पंचनिर्णय के सम्बन्ध में की गई चूकें अधिक अधिघोषित थीं ऐसी भी शिकायतें सामने आई कि श्रमिकों ने भी प्रस्ताव को भंग करते हुए हड़ताल का आश्रय लिया किन्तु प्रारम्भ में उन्होंने अधिकांशतः प्रस्ताव का पालन किया था।

सरकारी अभिवृत्ति की भी श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने आलोचना की। भारतीय रेलवे राष्ट्रीय संघान के अध्यक्ष श्री वसावदा ने आरोप लगाया कि नियोजक के रूप में सरकार ने प्रस्ताव की भावना के अनुकूल कार्य नहीं किया।[३] भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की कार्यकारिणी ने अनुभव किया कि सरकार की भूमिका हतोत्साहित करने वाली बनी हुई है।[४] यह एक सामान्य शिकायत है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों ने साधारणतया प्रस्ताव का आदर नहीं किया है। यहां तक कि संसद में श्री नन्दा ने अपराध अंगीकार करते हुए कहा कि उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति-ष्ठानों द्वारा अनुशासन संहिता को स्वीकार किये जाने के प्रयत्न में परेशानी का ही

१ स्टेटसमैन, जून २६, १९६३।
२ वही अक्तूबर १०, १९६३।
३ स्टेटसमैन, जून १, १९६३।
४ वही अक्तूबर २४, १९६३।

सामना करना पड़ा। फिर भी उनका विचार था कि परिस्थितियों में सुधार हुआ है। यह निश्चित करने के लिये कि सार्वजनिक क्षेत्र अच्छे परिणाम दिखाये श्री नन्दा ने नियुक्ति करने वाले मन्त्रालयों के प्रभारी सहयोगियों के साथ श्रेणीबद्ध विचार विमर्श किये।

किन्तु औद्योगिक शान्ति सम्मेलन की चमक जल्दी ही धूमिल पड़ गई। श्रमिक भी शीघ्र ही भ्रम निवारित हो गये। उन्होंने अनिवार्य जमा-योजना जिसे चीनी आक्रमण के समय लागू किया गया था का विरोध किया। अनिवार्य जमा योजना के विरुद्ध प्रतिवाद करने के लिये प्रदर्शनों का आयोजन किया गया और प्रस्ताव पारित किये गये। श्री नन्दा ने स्वीकार किया कि अनिवार्य जमा-योजना चूंकि प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक शांति प्रस्ताव के साथ सम्बद्ध नहीं है इसलिये श्रमिक उसके विरुद्ध अभियान चलाने के लिये स्वतन्त्र हैं। किन्तु उन्होंने आगाह किया कि अभियान चलाने का यह अर्थ नहीं है कि काम बन्द कर दिया जाय। अन्ततः श्रमिकों के लिये अनिवार्य जमा-योजना को वापस ले लिया गया।

बढ़ते हुए असन्तोष का मुख्य कारण यह था कि कीमतें स्थिर रूप से बढ़ रही थीं और फलस्वरूप श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी कम होती जा रही थी। कीमतों को स्थिर बनाये रखने और उचित मूल्य पर श्रमिकों को आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध करते रहने के लिये औद्योगिक शांति प्रस्ताव में व्यवस्था की गई थी। किन्तु कीमतें बढ़ना प्रारम्भ हो गईं। हाल ही के महीनों में २५ से ३० प्रतिशत तक कीमतें बढ़ जाने के विभिन्न अनुमान लगाये गये हैं। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की कार्यकारिणी समिति के अनेक प्रतिनिधियों ने अधिकारीय मूल्य सूचकांक के संकलन की रीति पर आश्चर्य प्रगट किया था क्योंकि मुश्किल से ही उसका बाजार में प्रवर्तमान कीमतों से कोई संबंध होता था। केन्द्रीय श्रममन्त्री ने व्यापारियों द्वारा कीमतों पर नियन्त्रण रखने का आश्वासन दिये जाने के बावजूद कीमतों की वृद्धि पर चिन्ता व्यक्त की थी। उन्होंने अनुभव किया था कि अनुचित लाभ कमाने पर नियन्त्रण रखने के लिये दल को स्वयं संगठित होना चाहिये।

आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के सुनिश्चयन के लिये औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव के अन्तर्गत गठित त्रिदलीय स्थायी समिति ने ५ अगस्त, १९६३ को संकल्प किया था कि सभी औद्योगिक संस्थानों को, जिसमें ३०० या अधिक श्रमिक नियुक्त हों, सहकारी भण्डारों या उचित मूल्य की दुकानों को चार सप्ताह के भीतर स्थापित करना चाहिये। यह अनुमान लगाया गया था कि इस प्रकार १५०० उचित मूल्य की दुकानें खुलेंगी। बाद में लक्ष्य प्राप्ति की तिथि को और आगे बढ़ा दिया गया। किन्तु १९६३ के अन्त तक केवल एक तिहाई से थोड़ा अधिक लक्ष्य ही पूरा किया जा सका। मानो हतबुद्ध होकर श्री नन्दा ने धमकी दे डाली कि यदि इन भण्डारों को नहीं खोला जाता है तो ऐसे भण्डारों की स्थापना को सुनिश्चित करने के लिये

वैधानिक व्यवस्थाएँ प्रस्थापित की जाएँगी । यदि आवश्यक हुआ तो अध्यादेश निर्गमित किया जायेगा । यदि संसद का अधिवेशन हुआ तो ऐसे भण्डारों की स्थापना हेतु नियोजकों को विवश करने के लिए विधेयक पारित किया जायगा ।'[1] ऐसे अनिवार्य सहयोग की सफलता के बारे में गंभीर संदेह हो सकते हैं । जबतक नियमित पूर्ति का आश्वासन नहीं दिया जाता, जबतक योजना के चलते रहने की गारंटी नहीं दी जाती अर्थात् कठिनाई के दिनों में ही यह रिक्त-पूर्ति का साधन नहीं है, इससे केवल श्रम संघों में विरोध ही पैदा हो सकते हैं ।

उसी समय श्रमिक वर्गों की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति से इस भावना को बल भी मिला कि आपत्कालीन स्थिति का नियोजक अनुचित लाभ उठा रहे हैं और श्रमिकों के उचित दावों तथा हितों का बलिदान किया जा रहा है । संसद में बहस में भाग लेते हुए कांग्रेस के श्री काशीनाथ पाण्डेय ने आरोप लगाया था कि नियोजकों ने श्रमिकों को अभित्रासित और उत्पीड़न करने के लिए राष्ट्रीय आपत्कालीन स्थिति का अनुचित लाभ उठाया है । उन्होंने श्रममंत्री से आदेश निर्गमित करने के लिए कहा था कि जहाँ तक संभव हो आपत्कालीन समय में कर्मचारियों की छँटनी न की जाय ।

इन सभी प्रस्ताव की मूल बातें धूमिल पड़ते रहने से विभिन्न श्रमिक संघ संगठनों द्वारा औद्योगिक शांति प्रस्ताव के पुनर्विलोकन की माँग की गई थी । भारतीय श्रमिक सभा में अखिल भारतीय श्रमिक संघ के प्रवक्ता श्री डांगे ने कहा था कि बढ़ती हुई कीमतों और गिरती हुई वास्तविक मजदूरी के कारण में हड़तालों का होना निश्चित है और इस कारण उनका संगठन प्रस्ताव के उस अंश से, जिसमें कहा गया है कि श्रमिक किसी भी परिस्थितियों में हड़ताल न करें, बाध्य नहीं है । फिर भी, उन्होंने प्रतिरक्षा और विकास के हित में हड़तालों पर नियंत्रण बनाये रखने का आश्वासन दिया । किन्तु यदि एक बार हड़ताल घोषित की गई तो 'हम श्रमिकों का अकेला नहीं छोड़ेंगे ।' हिंद मजदूर सभा ने भी औद्योगिक शांति प्रस्ताव के पुनर्विलोकन की माँग की थी । सभा का कहना था कि केवल श्रमिकों ने ही प्रस्ताव को अक्षरशः और भावना से पालन किया है किन्तु सरकार और नियोजक अपने दायित्वों के पालन में असफल रहे हैं । इससे श्रमिकों का उत्साह ठंडा पड़ गया और प्रतिरक्षा प्रयत्नों के लिए समाधनों को अभिगमित करने की गति पर बुरा प्रभाव पड़ा । भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने सरकार से अपील की थी कि वह औद्योगिक शांति प्रस्ताव को एक जीवित शक्ति बनाये रखने के लिए भारत प्रतिरक्षा के अन्तर्गत प्रभावशाली कदम उठाये ।

आपत्कालीन स्थिति की तीव्रता भी कुछ कुंठित हो गई । औद्योगिक संघर्ष

---

1 स्टेट्समैन, जनवरी १०, १९६४ ।

का वातावरण दूषित होना प्रारम्भ हो गया है। श्रमिकों ने अपने शोषण के विरुद्ध प्रतिवाद करना प्रारम्भ कर दिया है। फलत साम्यवादी दल लाखो हस्ताक्षर करवाने मे सफल हो गया जिन्हे इसके नेता ने ससद में प्रस्तुत किया। दल को एक बहुत बड़े प्रदर्शन का आयोजन करने मे भी सफलता मिली थी। 'जीवित रहने के लिये अधिकार दिवस समिति' जिसमे हिन्द मजदूर सभा और राष्ट्रीय मार्क्सवादी सगठन के प्रतिनिधि सम्मिलित थे ने दिल्ली मे बढ़ती हुई कीमतो के विरुद्ध एक बहुत बड़े प्रतिवाद का सगठन किया था जिसमे लगभग ६००० श्रमिको ने ससद भवन के बाहर बढ़ते हुए निर्वाह मूल्यो के अनुपात मे मजदूरी बढ़ाने के लिये प्रदर्शन के साथ 'जीवित रहने के लिये अधिकार दिवस' को मनाया था।[1]

हड़ताल और विवाद पुन दृष्टिगत होने लगे। समाजवादी नियन्त्रित हिन्द मजदूर पचायत द्वारा बढ़ती हुई कीमतो और ह्रासोन्मुखी वास्तविक मजदूरी तथा अनिवार्य जमा योजना के विरुद्ध बम्बई बद हड़ताल का आयोजन सबसे अधिक उल्लेखनीय था। बम्बई नगर निगम के श्रमिको ने अन्य मागो के अलावा अपने महगाई भत्ते मे २५ प्रतिशत वृद्धि की मांग करते हुए हड़ताल घोषित की थी। हड़-ताल दस दिन तक चलती रही और उसे हिन्द मजदूर सभा तथा सयुक्त श्रमिक सघ सभा का समर्थन प्राप्त था। बाद मे बम्बई राज्य परिवहन कर्मचारी टैक्सी चलाने वाले, बन्दरगाह और गोदी श्रमिक भी हड़ताल मे सम्मिलित हो गये थे। हड़ताल मे लगभग ३० ००० नगर निगम श्रमिक, १७ ००० टैक्सी चलाने वाले २१ ००० बम्बई राज्य परिवहन कर्मचारियों तथा ३५ ००० बन्दरगाह और गोदी श्रमिक शामिल थे। इस प्रकार कुल लगभग ९० ००० श्रमिक हड़ताल से प्रभावित हुए थे। सरकार ने यथावत इन सेवाओ को आवश्यक और तदनुरूप हड़ताल को अवैधानिक घोषित करके स्थिति का सामना करने का प्रयत्न किया। भारत प्रतिरक्षा नियमो के अन्तर्गत हड़तालो पर रोक लगा दी गई। निरोधक उपाय के रूप मे लगभग १३ ००० व्यक्तियो को गिरफ्तार कर लिया गया। बम्बई नगर निगम के आयुक्त ने यदि श्रमिक काम पर नही आते तो सेवानिवृत्ति की धमकी दे डाली टैक्सी चलाने वालो का उनके लाइसेंस रद्द कर देने की धमकी दी गई। इन सबका प्रत्युत्तर समाजवादी नियन्त्रित श्रमिक सघो ने २० अगस्त १९६३ को बम्बई बद प्रतिवाद हड़ताल आयोजित करके दिया। इस हड़ताल का सूत्रपात बम्बई मजदूर सघर्ष समिति ने किया था जिसमे समाजवादी, प्रजा समाजवादी तथा जनसघ दल और सयुक्त श्रमिक सघ सभा सम्मिलित थे। बाद मे अखिल भारतीय श्रमिक सघ सभा ने भी प्रतिवाद हड़ताल का समर्थन करने का निश्चय किया था। बम्बई मजदूर सघर्ष समिति के आह्वान पर लगभग १० लाख फैक्ट्री श्रमिको, दुकान कर्मचारियो और कार्यालयो मे कार्य करने

---

१ स्टेटसमैन, दिसम्बर १८, १९६३।

वालो ने प्रतीक सामान्य हडताल में भाग लिया था और जिससे बम्बई का औद्योगिक और वाणिज्यक जीवन निष्क्रिय हो गया। अस्पतालो, अग्निशामक दल, समाचारपत्र संस्थानो, राज्य दुग्ध-पूर्ति योजना गोदियो की आवश्यक सेवाओ तथा औद्योगिक इकाइया के महत्त्वपूर्ण अधिष्ठानो को हडताल से मुक्त कर दिया गया था। बावजूद भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के दावे के कि हडताल असफल रही और महाराष्ट्र सरकार का वक्तव्य कि नगर की स्थिति सामान्य थी, हडताल को सफलता मिली।

हडताल रोकने और बाद म समझौता कराने के लिए प्रयत्न किये गये थे। समाजवादी दल के अध्यक्ष श्री राजनारायणसिंह ने वार्तालाप का श्रीगणेश किया। किन्तु सरकार द्वारा वार्तालाप प्रारम्भ होने से पूर्व हडताल को बिना शर्त समाप्त कर देने पर बल देने के कारण कोई सफलता नही मिल पाई। मन्त्रीगण भारत प्रतिरक्षा नियमो के अन्तर्गत हडताल से कानून और व्यवस्था की समस्या के अनुरूप विशुद्धतया निबटना चाहते थे। श्री राजनारायण ने बताया था कि महाराष्ट्र सरकार ने उन्हे संघर्ष समिति के अध्यक्ष श्री मधुलिमये से जेल म बात करने तथा केन्द्रीय प्रतिरक्षा मन्त्री का सन्देश देने के लिये अनुमति नही दी थी। हडताल समाप्त हो गई थी किन्तु संघ के नेताओ ने दावा किया था कि हडताल वापस ले ली गई है क्योंकि प्रतिरक्षा मन्त्री ने आश्वासन दिया था कि यदि हडताल वापस ले ली जाती है तो वह श्रमिको के साथ न्याय किया जाय इसकी जिम्मेदारी लेने को तैयार हैं। दूसरी ओर महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री श्री कन्नवर ने दावा किया था कि 'हडताल पूर्ण विफलता म समाप्त हो गई।' नगरपालिका मजदूर संघ, जिसने हडताल प्रवर्तित की थी, की मान्यता श्रमिक संघो की मान्यता को नियमित करने वाले किन्ही नियमो और विनियमो का उल्लघन करने के कारण छीन ली गई।

वस्तुत हडताल अनेक अन्दोलनो जिन्हे बाद मे श्रमिक संघो द्वारा आयोजित किया गया की अगवानी थी। अम्बाला म सैनिक अभियान्त्रिक सेवा कर्मचारियो ने वाय अभियन्ता की श्रमविरोधी नीति तथा अनिवार्य जमा योजना के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। नागरिक प्रतिरक्षा सेवा मे असन्तोष फैलाने के लिये दो महिलाओ को भारत प्रतिरक्षा नियमो के अन्तर्गत बन्द कर दिया गया। रेलवे कर्मचारियो ने भी प्रदर्शन किये। कलकत्ता के गोदी श्रमिको ने हडताल करने की धमकी दी थी। जनपदीय कर्मचारियो द्वारा हडताल की धमकी दिये जाने पर उत्तरप्रदेश के राज्यपाल ने कानपुर शहर म आपत्कालीन स्थिति घोषित कर दी। अशोक होटल के कर्मचारियो ने हडताल की घोषणा की। जून के प्रारम्भ म मरमगोवा बन्दरगाह गोदी और परिवहन श्रमिक संघ ने हडताल घोषित कर दी। ११ दिन के बाद समझौता हो जाने पर हडताल समाप्त कर दी गई। दिसम्बर १९६३ म पूर्वीय रेलवे अधिकारियो को अपनी लिलवाह (हावडा) की यान शालाओ (Carriage of wagon Workshops) और संग्रहागारो (Store D pots) मे तालाबन्दी को

घोषणा करनी पड़ी जिससे १०,००० से अधिक श्रमिक प्रभावित हुए। एक तत्काल हड़ताल (lightening Strike) ने १४ दिसम्बर १९६३ को लगभग ३०,००० श्रमिकों को नियुक्त करने वाली १६ सूती मिलों में काम ठप्प कर दिया। इस हड़ताल का आयोजन पुलिस द्वारा कुछ श्रमिकों पर गोली चलाये जाने के विरोध में किया गया था। जनवरी १९६४ में रिजर्व बैंक के एक वर्ग के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। जय इंजीनियरिंग के लगभग ६००० श्रमिक दिसम्बर १९६३ में ही हड़ताल पर थे। दिल्ली के श्रमिकों ने मजदूरी में २५ प्रतिशत की वृद्धि आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में २५ प्रतिशत की कमी, वर्तमान त्रुटिपूर्ण मूल्य सूचकांक में संशोधन तथा नियोजकों द्वारा अनुशासन संहिता के क्रियान्वयन की माँग करते हुए जनवरी १९६४ में एक वृहद् अखिल भारतीय माँग दिवस का आयोजन किया। उत्तरप्रदेश के सरकारी कर्मचारियों ने द्वितीय वेतन आयोग की माँग की।

स्पष्टतया इन घटनाओं से श्री गुलजारीलाल नन्दा प्रसन्न नहीं थे। जुलाई १९६३ में आयोजित भारतीय श्रमिक सभा में औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव का क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए श्री नन्दा को एक त्रिदलीय समिति के गठन का अधिकार दिया गया था। श्रममंत्री ने नियोजकों और श्रमिकों से आपत्कालीन स्थिति के प्रारम्भिक दिनों की भावना जिसके अन्तर्गत औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव स्वीकार किया गया था, को उसी रूप में बनाये रखने तथा औद्योगिक सम्बन्धों के शान्त वातावरण में वर्तमान गतिरोधों को पार करने के लिए अपील की। बाद में श्री नन्दा ने दिसम्बर १९६३ में आयोजित स्थायी श्रम समिति की बैठक में चेतावनी दी कि देश की औद्योगिक शान्ति को किसी प्रकार से भंग करने के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जायगी। उन्होंने स्थायी समिति को बताया कि सरकार उद्योग में शान्ति बनाये रखने की आवश्यकता को बहुत गम्भीरता से समझती है। श्री नन्दा ने टिप्पणी की कि यद्यपि अनुशासन संहिता और शान्ति प्रस्ताव सन्तोषपूर्ण ढंग से कार्य करते रहे हैं किन्तु उनकी भावना नीचे के वर्गों तक नहीं पहुँच पाई है। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि कोई भी शिथिलता पाई गई तो उससे निबटने के लिए समुचित कार्यवाही की जायेगी। सरकार किसी भी छोटी या बड़ी हड़ताल को एक चुनौती समझेगी और उसे उसी रूप में स्वीकार कर आवश्यक कदम उठाये जाएंगे। फिर भी उन्होंने इस बात पर बल दिया कि श्रमिकों की कठिनाइयाँ सुनी जाँय और उन्हें दूर करने के लिए प्रत्येक प्रयत्न किये जाँय। क्रियान्वयन और मूल्यांकन समिति की बैठक में भी उन्होंने इसी प्रकार के विचार प्रगट किये थे। उन्होंने सुझाव दिया था कि दोषी संघों को सम्बन्धित संघानों से असम्बद्ध कर दिया जाय।

सार्वजनिक क्षेत्र में बिगड़ते हुए औद्योगिक सम्बन्ध विशेष रूप से चिन्ता का कारण बने हुए थे। यह पता चला कि राउरकेला इस्पात कारखाने के श्रमिकों ने 'धीरे काम करो' की नीति अपना ली। भिलाई में श्रमिक संघों ने शीघ्र ही कठि

[illegible] को दूर करने की माँग की थी। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के १९६३ के अधिवेशन में अनेक सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों से आये प्रतिनिधियों ने अधिकारियों द्वारा श्रमिकों के साथ किये गये व्यवहार की आलोचना की। उनमें से एक प्रतिनिधि ने तो उनकी बुरी तरह से भर्त्सना की और कहा कि अधिकारी अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा से भी बड़े शत्रु हैं। एक प्रतिनिधि ने यह भी सुझाव दिया कि अधिकारियों को भारत प्रतिरक्षा नियमों के अन्तर्गत लाने के लिए एक विशेष अध्यादेश की आवश्यकता हो सकती है। भारत सरकार साधारणतया फूट डालने वाली नीति का अनुसरण करती है और जब भी सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में हड़तालें घटित हुई हैं, सरकार ने प्राय कठोर वधिक तथा कानून और व्यवस्था की रीति अपनायी है। हड़ताल अवैधानिक घोषित कर दी जाती है, पुलिस शक्ति का उपयोग किया जाता है, संघों की मान्यता छीन ली जाती है, तथा श्रमिक संघ के नेताओं को गिरफ्तार करके उनके सदस्यों को अपने भाग्य और साधनों के भरोसे छोड़ दिया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में श्रमिकों को गलत निर्देश भी दिया जा सकता है। श्रमिकों से, जो पुनः काम पर आने के लिए तैयार हैं, क्षमा याचना के प्रार्थना-पत्रों के लिए आग्रह करना शोभनीय नहीं है। इसी प्रकार वार्तालाप प्रारम्भ करने से पूर्व साधारणतया बिना शर्त के हड़ताल वापस लेने की माँग की जाती है। श्रमिकों के प्रतिनिधि यह माँग करते रहे हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों को किसी विशेषाधिकार अथवा श्रमिक नियमों की व्यवस्थाओं से मुक्ति का दावा नहीं करना चाहिए। श्री नन्दा ने कुछ श्रमिक संघों के चोटी के नेताओं तथा प्रबन्ध और बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल की राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों, जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान स्थित हैं और जहाँ औद्योगिक संबंधों का वातावरण दूषित हो गया था, [illegible] श्रेणीबद्ध उच्चाधिकार भावनाएँ की थी। उन्होंने कहा था कि श्रमिकों की कठिनाइयों की तुरन्त जाँच करनी चाहिए और उन्हें दूर करना चाहिए। साथ ही साथ उन्होंने श्रमिकों को भी सलाह दी थी कि वे अनुशासन संहिता का पालन करें और किसी भी हालत में कामबन्दी या धीरे काम करो जैसी विधियाँ न अपनाएँ। श्री नन्दा ने अनुभव किया था कि राष्ट्रीय सरकार की विशिष्ट भावना और नीति को प्रतिबिम्बित करने तथा श्रम और प्रबन्ध के बीच अधिकाधिक समन्वय और सहयोग को विकसित करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र से स्वस्थ परम्पराओं द्वारा की आशा की जाती थी। उन्होंने सरकारी प्रतिष्ठानों के प्रभावी अधिकारियों के निपुण और अधिकारवादी दृष्टिकोण को अनुत्साहित किया। अच्छे श्रम प्रबन्ध संबंधों को सुनिश्चित करने हेतु केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय ने हाल ही में केवल सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों के लिए श्री आर० एल० मेहता की 'श्रमिक सलाहकार' के रूप में नियुक्ति की है।

इसी बीच केन्द्रीय सरकार ने अपने कर्मचारियों के लिये संयुक्त विचार विमर्श

और अनिवार्य पचनिर्णय की व्यवस्था हेतु विभिन्न प्रकार के परिषदों की स्थापना के अपने निर्णय की घोषणा की। ये परिषदें राष्ट्रीय क्षेत्रीय और विभागीय अथवा कार्यालय स्तर पर काम करेंगी। संयुक्त परिषदों की यह त्रिस्तरीय योजना और उसका कार्यक्षेत्र वर्तमान सुविधाओं जैसे कर्मचारी परिषदों तथा नौकरी की शर्तों के सम्बन्ध में प्रतिनिधित्व करने के अवसरों को प्रतिस्थापित करने के स्थान पर पूरक होगी। तन्त्र जो असवैधानिक आधार पर स्थापित किया जायेगा के अन्तर्गत उच्च सेवाओं पुलिस और रेलवे सुरक्षा दल में कार्य करने वाले लोगों को छोड़कर औद्योगिक और अनौद्योगिक स्थायी ननपन्शेय कर्मचारी आयेंगे। योजना के लाभ उन्हीं कर्मचारी संगठनों का उपलब्ध होंगे जो हड़तालों का सहारा त्याग करें। केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल के बाद हड़तालों पर संवैधानिक रोक लगाने की जो आयोजना की गई थी उसे त्याग दिया गया। योजना में इस बात की व्यवस्था की गई है कि संयुक्त परिषद के सदस्य केन्द्रीय सरकार के सेवा निवृत्त अथवा सम्मान पूर्वक सेवा निवृत्त कर्मचारियों के अतिरिक्त और कोई न हो सके। परिषद के अधिकारीय पक्ष को निर्णय लेने का अधिकार होगा इसलिए सभी समझौते केवल उन्हें छोड़कर जिनके सम्बन्ध में सरकार अपने आरक्षित अधिकारों का प्रयोग करे क्रियान्वित होने जायेंगे। अनिवार्य पचनिर्णय को कर्मचारियों की एक श्रेणी या वर्ग के वेतन भत्ते काम के साप्ताहिक घंटे तथा छुट्टी तक ही सीमित रखा गया है। वैयक्तिक मामले पचनिर्णय के अधीन नहीं आयेंगे। सरकार ने पचनिर्णय की अस्वीकृति हेतु जहां यह जनहित के विरुद्ध हो अपने लिए अधिकार आरक्षित कर रखे हैं। किन्तु ऐसे मामलों में सरकार को कारण अभिलिखित करने होंगे और जिन्हें संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया जायगा। पचनिर्णय मंडलों की सिफारिशें संसद के अधिभावी अधिकारों के अधीन होते हुए दोनों दलों को मान्य होंगी। साधारणतया मंडल की सिफारिशों पर सरकार द्वारा किये गये आदेश पांच वर्ष तक के लिये लागू रहेंगे।

भारतीय रेलवे राष्ट्रीय संघ की कार्यकारिणी समिति ने योजना की तीव्र आलोचना की। समिति के अनुसार योजना औद्योगिक विवाद अधिनियम की व्यवस्थाओं के विरुद्ध थी। समिति ने सरकार के इस निर्णय कि योजना में केवल उन्हीं संघों को भाग लेने दिया जाय जो हड़तालों का सहारा त्याग कर की सर्वाधिक आलोचना की थी और यह मत व्यक्त किया कि जबतक सभी विवादों की वार्तालाप द्वारा और उसके असफल होने पर पचनिर्णय के माध्यम से सुलझाने की व्यवस्था नहीं की जाती तबतक श्रमिकों से हड़ताल न करने के लिए कहना व्यर्थ है। श्रमिकों से हड़तालों को सशपथ त्याग करने के लिए कहने से पूर्व सरकार को कम से कम सभी औद्योगिक मामलों के सम्बन्ध में जैसाकि औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत है पचनिर्णय की व्यवस्था करनी चाहिये थी और बाध्य रूप से पंचनिर्णयों को स्वीकार करने के लिए इच्छुक होना चाहिये था।" प्रस्ताव में आगे कहा

गया "केवल तीन ही मामलों—वेतन और भत्ते, छुट्टी तथा काम के घंटे—के सम्बन्ध में पंचनिर्णय की प्रस्तावना करने से योजना आलोच्य दरार छोड़ जाती है तथा हड़तालों को मशपथ त्याग करने की पूर्व शर्त का अर्थ वस्तुतः श्रमिकों को विवादों के अन्य मामलों के सम्बन्ध में प्रशासन की दया पर छोड़ देना है। जब सरकार किसी प्रश्न पर विमति की स्थिति में अपनी विवेक शक्ति से पंचनिर्णय के लिए निर्दिष्ट करने से मना कर सकती है तो उसी प्रश्न पर श्रमिकों का भी हड़ताल करने का अधिकार होना चाहिए।" यहां तक कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की कार्यकारिणी समिति भी नई योजना के पक्ष में नहीं थी। श्री नेहरू के भाषण और केन्द्रीय गृहमंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा द्वारा योजना के स्पष्टीकरण के बाद भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के नेताओं ने योजना की आलोचना करते हुए प्रस्ताव पारित नहीं किया यद्यपि उनके मत योजना के विरुद्ध थे।[1]

संविधान की धारा ३११ को संशोधित करने के सरकारी प्रस्ताव की भी श्रमिक संघ के नेताओं ने तीक्ष्ण आलोचना की है। सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया था कि भारतीय रलवे स्थापना संहिता के नियम १४८ (३) और १४६ (३) जिनके अन्तर्गत अधिकारियों को स्थायी कर्मचारियों की नौकरी नोटिस देकर अथवा उसके स्थान पर वेतन देकर समाप्त करने का अधिकार दिया गया है, असंवैधानिक थे। निर्णय देते हुए न्यायाधीश श्री गजेन्द्रगडकर ने विचार प्रगट किया था कि "धारा ३११ (२) का अभिप्राय सार्वजनिक कर्मचारियों को सुरक्षा की भावना प्रदान करना है जो मौलिक रूप से स्थायी पद के लिये नियुक्त किये जाते हैं। आधुनिक प्रजातन्त्रीय राज्य में सार्वजनिक प्रशासन की कुशलता और भ्रष्टता इतने महत्त्व की है कि उच्च अधिकारियों की मनमौजी कार्यवाहियों के विरुद्ध जानपदीय कर्मचारियों को पर्याप्त संरक्षण प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है। निष्कपट सीधे और दक्ष जानपदीय स्थायी कर्मचारियों के सम्बन्ध में यह यहां तक कि राज्य के दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि वे सुरक्षा की भावना से ओतप्रोत रहें और वही केवल उन्हें स्वतन्त्र और वास्तविक रूप से कुशल बना सकती है। हमारे मत में स्थायी रलवे कर्मचारियों के सर के ऊपर नियम १४८ (३) और १४६ (३) के रूप में दमोक्लस की लटकती हुई तलवार निश्चित रूप से ऐसे सार्वजनिक कर्मचारियों के मस्तिष्क में असुरक्षा की भावना पैदा करेगी और समुचित अधिकारियों को बहुत अधिक शक्ति प्रदान करेगी जिसका अनुमानतः दुरुपयोग भी किया जा सकता है।

इस निर्णय के परिप्रेक्ष्य में संविधान की धारा ३११ को संशोधित करने की आकांक्षा और सरकारी कर्मचारियों को किन्हीं संरक्षणों से जिनका वे लाभ उठाते रहे हैं वंचित कर देना तीव्र आलोचना के लिये मार्ग प्रशस्त करता है।

---

१ स्टेट्समैन, नवम्बर २, १९६३।

श्रमिक संघ आन्दोलन में अब और अधिक फूट पड़ गई है। यह आशा की जाती थी कि चीनी आक्रमण के परिणामस्वरूप विभिन्न श्रमिक संघ संगठन एक दूसरे के निकट आयेंगे और एक श्रमिक संघ संस्था का गठन करेंगे। अनेकों महत्वपूर्ण औद्योगिक इकाइयों में अनेक श्रमिक संघ विद्यमान है। राउरकेला में पांच श्रमिक संघ हैं। स्टेट्समैन के प्रतिनिधि ने एक फैक्ट्री में ६ संघों जो पृथक राजनैतिक दलों के प्रति निष्ठावान् थे और प्रत्येक मान्यता के लिये कलह कर रहे थे, की स्थिति का पता लगाया था।

भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा तथा अन्य असाम्यवादी संघों के प्रतिनिधि भी अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा की तीव्र आलोचना करते रहे हैं। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने केन्द्रीय सरकार से अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा की मान्यता समाप्त कर देने तथा उसके प्रतिनिधियों को श्रमिक सम्मेलनों में आमंत्रित न करने के लिये अनुरोध किया था। सभा यह भी चाहती थी कि सरकार केवल एक ही संगठन को, जिसके उद्देश्य राष्ट्रीय उद्देश्यों के विपरीत न हो मान्यता दे। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने धमकी भी दी थी कि यदि अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया गया तो वह भारतीय श्रमिक सभा का बहिष्कार करेगी। किन्तु श्री नन्दा के कहने पर धमकी कार्यरूप में परिणत नहीं की गई।

अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा ने श्रमिक संघ एकता की स्थापना हेतु अपील की थी किन्तु उसका अन्य वर्गों पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरी ओर सभी अन्य वर्गों ने अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा की चीनी आक्रमण के प्रति कोष्ण अभिवृत्ति के कारण निन्दा की थी। साम्यवादी दल पर वैधानिक रूप से प्रतिबंध लगा देने की माँग की गई थी। इसके बावजूद अखिल भारतीय श्रमिक संघ सभा और साम्यवादी दल ने बढ़ती हुई कीमतों के विरुद्ध सफलतापूर्वक हस्ताक्षर अभियान का संगठन किया था।

प्रजा समाजवादी, समाजवादी तथा अन्य विरोधी दलों द्वारा नियन्त्रित असाम्यवादी वर्ग भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के तीव्र आलोचक हैं तथा उन्होंने साधारणतया संयुक्त प्रतिवाद आयोजित किये हैं। बम्बई बंद हड़ताल इसका एक उदाहरण है। प्रजा समाजवादी दल के अध्यक्ष श्री एस० एम० जोशी ने भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की 'दमनकारी और श्रम विरोधी नीति' के लिये उसकी आलोचना की और आरोप लगाया कि वह श्रमिक वर्ग का विघटन कर रही है। उन्होंने सभा के नेतृत्व को अनेकों स्थानों पर श्रमिक संघ आन्दोलन को कुचलने में पुलिस और प्रबंध की सहायता करने का दोषी ठहराया था।[1]

---

1 स्टेटसमैन, दिसम्बर १६, १९६३।

समाजवादी दल द्वारा हिन्द मजदूर पंचायत का गठन किये जाने से श्रमिक संघ आन्दोलन में और फूट पड़ गई है। एक असुखद विकास यह रहा है कि साम्प्रदायिक आधार पर संघों के निर्माण की भावना जोर पकड़ रही है। शिरोमणी अकाली दल (संत वर्ग) ने भी अपनी श्रम शाखा का संगठन किया है और उसका नाम अकाली सामा य श्रमिक संघ रखा है। भारतीय मजदूर संघ ने कार्यकलाप भी आँखों में गड़ते हैं। ऐसा अनुमान है कि प्रधानमन्त्री ने जनसंघ द्वारा संचालित श्रमिक संघीय कार्यकलापों, जो निकृष्ट प्रकार की राष्ट्रीयता को उद्वेलित करना चाहते हैं, से सावधान रहने के लिये भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा से कहा।

अन्तवर्ती मतभेदों से भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा भी पीड़ित है। इन मतभेदों में वृद्धि ही होती जा रही है। बम्बई में आम चुनाव के समय भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा से सम्बद्ध संघों के ३१ श्रमिक नेताओं ने श्री कृष्णा मेनन की प्रत्याशिता का विरोध किया था और आचार्य कृपालानी को अपना सहयोग देने की प्रतिज्ञा की थी। एकता और सामंजस्य के अभाव में सभा की दिल्ली शाखा को विघटित करना पड़ा था। पंजाब में जहाँ भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा ने सरकार के कर प्रस्तावों की आलोचना की थी, सरकार और सभा के बीच मनमुटाव बढ़ गया था। श्री गुलाबसिंह मुख्य संसद सचिव, ने सभा से अपना प्रस्ताव वापस लेने के लिये कहा। उनका कहना था कि "भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा का नेतृत्व अपनी स्थिति को अनुशासनहीनता की कार्यवाही थी और जो कांग्रेस, जिसकी भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा एक शाखा है, के हितों में बाधक थी, के गंभीर परिणामों से अवगत था।"[१] पंजाब की मन्त्रिमण्डलीय शाखा ने सभा के कार्यकर्ताओं के बीच हस्ताक्षर आन्दोलन प्रारम्भ किया था और अन्ततः प्रस्ताव को निरस्त करवा दिया। भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के अधीक्षक ने कहा था कि "मन्त्रिमण्डलीय शाखा ने बहुत अधिक दबाव डाला था और चेतावनी देने के बाद भी कि उनकी कार्यवाही अवधानिक और नियमों के विरुद्ध होगी, उन्होंने बैठक आयोजित की थी।' उन्होंने पंजाब भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की सामान्य परिषद् की बैठक बुलाने और सभी तथ्य उसके सामने प्रस्तुत करने के बारे में सोचा था।

चित्तरंजन में भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा द्वारा नियमित प्रतिनिधि श्रमिक संघ और फैक्ट्री के प्रबन्धकों के बीच बोनस भुगतान के प्रश्न पर हुए समझौते का विरोध करने के लिए सभा और कांग्रेस के कुछ विगत कार्यकर्ता संयुक्त संघर्ष समिति में सम्मिलित हो गये थे जिसका गठन जनसंघियों और साम्यवादियों द्वारा किया गया था।[२] जमशेदपुर में भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा के विगत वर्ग के

---

१ स्टेटसमैन, जून ९, १९६३।
२ स्टेटसमैन, सितम्बर २५, १९६३।

लोगों ने टाटा श्रमिक संघ के कार्यालय के सम्मुख प्रदर्शन किया था तब बिहार के मुख्यमंत्री श्री के० बी० सहाय भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की समन्वय समिति की बैठक जो टाटा श्रमिक संघ से सम्बन्धित थी को सम्बोधित करने संघ के कार्यालय में पहुंचे थे।

मध्यप्रदेश की भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा की फूट ने एक बार फिर गम्भीर रूप धारण कर लिया था। इन्दौर की नगर कांग्रेस समिति ने सभा के दो विरोधी नेताओं श्री रामसिंह वर्मा और श्री गंगाराम तिवारी का कारण बताओ नोटिस देने का निश्चय किया था। उनसे उनकी कार्यवाहियों के लिए स्पष्टीकरण मांगा गया था जो संगठन की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचा रही थी कि क्यों नहीं उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाय? बाद में भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ सभा द्वारा नियन्त्रित इन्दौर मिल मजदूर संघ के विरोधी वर्ग के ६ व्यक्तियों को पुलिस ने इन्दौर सूती मिल में दंगा और प्रदर्शन करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया। जिला अधिकारियों ने तदुपरान्त इन्दौर में धारा १४४ लागू कर दी थी।

औद्योगिक सबंधों की बिगड़ती हुई स्थिति के लिये श्रमिक संघों की सस्पर्धा भी उत्तरदायी है। खानों में श्रमिक सबंधों पर प्रकाश डालते हुए श्री खटाऊ ने कहा था कि 'इस दुःखद स्थिति का मूल कारण संघ के नेताओं की अनुत्तरदायी अभिवृत्ति और आचरण है और जिनके प्रभावित झगड़ों में हमेशा पड़े रहने से न केवल कोयले के उत्पादन में गम्भीर बाधा पड़ी है बल्कि कोयला क्षेत्र और उसकी बस्ती की भी शांति भंग हो गई। पंजाब में १९६०–६१ के लिए श्रमिक संघ अधिनियम के क्रियाकरण के पुनर्वलोकन से पता चला कि अन्तसंघीय सस्पर्धा औद्योगिक संघर्षों का मूल कारण बनी हुई थी। त्रिदलीय सम्मेलन में बोलते हुए भारतीय खनन संगठन के श्री आर० एम० रान्ट ने कहा था कि अन्तसंघीय सस्पर्धा जो नियोजकों को आकुल करती स्थिति में डाल देती है कोयले की खानों में असुरक्षित स्थिति के लिए उत्तरदायी थी। जुलाई १९६३ में आयोजित भारतीय श्रमिक सभा में श्री टाटा ने भी अन्तसंघीय सस्पर्धा तथा संघों की बहुसंख्या जिसमें औद्योगिक विवाद पैदा होने के बारे में कहा था। सार्वजनिक क्षेत्र में अन्तसंघीय सस्पर्धा के परिणामस्वरूप बिगड़ते हुये औद्योगिक सबंधों के मामले भी अभिसूचित किये गये थे। लगभग २००० नगरपालिका के मेहतरों द्वारा हड़ताल कर देने से अप्रैल १९६२ में जयपुर शहर की सड़कें २२ दिन तक गंदी पड़ी रहीं। नगरपालिका परिषद् में जनसंघ का नियंत्रण था और जिसने नगरपालिका के निर्वाचनों में कांग्रेस को हराया था। साधारणतया यह विश्वास किया जाता था कि नगरपालिका के कार्यों से सम्बद्ध जनसंघ के प्रशासन को बदनाम करने के लिए कुछ कांग्रेसी नेताओं ने मेहतरों की हड़ताल करवायी थी।

---

१ स्टेट्समैन अप्रैल १७, १९६२।

स्थानीय स्वशासन के मंत्री ने स्वीकार किया था कि न तो मेहतरो ने हड़ताल की वैधिक नोटिस दिया था और न ही लिखित रूप से कोई मांगें प्रस्तुत की थी।"

प्रायः हिंसा का आश्रय लिया जाना एक असुखद विकास है। लगभग प्रत्येक ही महत्त्वपूर्ण हड़ताल मे शक्ति, अभित्रासन और बल प्रयोग की बात सुनी जाती है। भूख हड़तालें भी बहुत सामान्य हो गई हैं और कभी-कभी तो सामूहिक भूख हड़तालें भी आयोजित की जाती हैं। साधारणतया हड़ताल के बाद श्रमिक संघ नेताओं द्वारा भूख हड़तालें की जाती है। केन्द्रीय श्रममंत्री श्री नन्दा ने संसद मे कहा था कि औद्योगिक विवादो को सुलझाने के लिए भूख हड़तालो को हतोत्साहित करना चाहिये। यह अधिक अच्छा होगा यदि अन्य सभी विधियाँ असफल हो जाने पर भूख हड़ताल की अपेक्षा हड़ताल का आश्रय लिया जाय। राज्यो के श्रममन्त्री भूख हड़तालो पर रोक लगा देने के लिए अनुशासन संहिता को संशोधित करने के पक्ष मे थे। श्री नन्दा ने भारतीय श्रमिक सभा के २०वें अधिवेशन मे घोषित किया था कि "सरकार किसी भी तरह की भूख हड़तालो पर ध्यान नही देगी।"

श्रमिक संघ श्रमिको के लिए सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णय विशिष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण रहे है। इनका उन विवरणो के संदर्भ मे मूल्यांकन करना चाहिये जैसा कि कुछ समय पूर्व उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभान गुप्त ने दिया था। श्री गुप्त ने कहा था कि एक औद्योगिक प्रतिष्ठान के कर्मचारियो की तरह सरकारी कर्मचारी कार्य नही कर सकते और यदि वे श्रमिक संघ कार्यकलापो मे विरत रहते हैं तो उनके साथ कठोरता से व्यवहार किया जायगा।[1] सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार सरकारी कर्मचारियो के आचरण नियमो की धारा ४ अ को, जहा तक वह सरकारी कर्मचारियो पर किसी भी प्रदर्शन मे भाग लेने के लिए रोक लगाती है संगठन और अभिव्यक्ति के मूलभूत अधिकारो का अतिक्रमण मानते हुए अधिकार बाह्य घोषित किया था। इसी प्रकार केन्द्रीय जनपदीय सेवा आचरण नियमो की धारा ४ ब, जो सार्वजनिक कर्मचारियो पर किसी ऐसे सेवा संगठन मे सम्मिलित होने अथवा सदस्य बने रहने पर जिसे सरकार द्वारा मान्यता नही दी गई रोक लगाती है को संविधान मे प्रत्याभूत संगठन के मूलभूत अधिकारो का अतिक्रमण करने के कारण अवधानिक घोषित किया गया था।

---

[1] स्टेटसमैन मई ३, १९६३।

परिशिष्ट १

उद्योग में अनुशासन संहिता

१७ और १८ नवम्बर १९५७ को नई दिल्ली में आयोजित स्थाई श्रम समिति के १६वें सत्र में अनुशासन संहिता को निरूपित किया गया था जो निम्न प्रकार से है :—

उद्योग में अनुशासन बनाये रखने के लिए—(१) विधानों और समझौतों (जिनमें सभी स्तरों पर समय समय पर हुए द्विपक्षीय और त्रिदलीय समझौते भी सम्मिलित हैं) द्वारा परिभाषित नियोजकों और श्रमिकों के अधिकारों और दायित्वों को एक दूसरे के द्वारा यथार्थ रूप से मान्यता देनी चाहिये तथा (२) ऐसी मान्यता के परिणामस्वरूप प्रत्येक दल को अपने दायित्वों का उचित और इच्छुक ढंग से निर्वाह करना चाहिए।

स्पष्टीकरण—उद्योग में अनुशासन तथा प्रबंध में श्रमिकों के भाग लेने के संबंध में नियुक्त भारतीय श्रमिक सम्मेलन की उप समिति उस दल के निर्धारण या निश्चयन में, जिस पर संहिता का दायित्व पड़ेगा पैदा होने वाली कठिनाइयों को सुलझाने के लिए प्रक्रिया को निश्चित करेगी।

केन्द्रीय और राज्य सरकारें अपनी ओर से श्रम विधानों के प्रशासन के लिए उनके द्वारा संघटित तंत्र में किसी प्रकार के दोषों को जाँचने और उन्हें ठीक करने हेतु व्यवस्था करेंगी।

प्रबन्ध और संघ सहमत हैं—(१) कि किसी भी औद्योगिक विषय के संबंध में एक पक्षीय कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए तथा विवादों को समुचित स्तर पर सुलझा लेना चाहिए।

(२) कि विवादों को सुलझाने के लिये वर्तमान तंत्र का अधिकतम तत्परता से उपयोग किया जाना चाहिए।

(३) कि बिना नोटिस दिये हड़ताल या तालाबंदी नहीं की जानी चाहिए।

(४) कि प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों पर अपने विश्वास की अभिपुष्टि करते हुए वे भविष्य में सभी विभेदों, विवादों और व्यथाओं को पारस्परिक विचार विमर्श समाधान और ऐच्छिक पंचनिर्णय द्वारा सुलझाने के लिए स्वयमेव बाध्य हैं।

(५) कि कोई भी दल (अ) बल प्रयोग (ब) अभित्रासन (स) बलीकरण अथवा (द) मन्दगति का आश्रय नहीं लेगा।

(६) कि वे (अ) वाद प्रियता (ब) बैठ जाना या हड़ताल पर बने रहना तथा (स) तालाबन्दी का परिहरण करेंगे।

(७) कि वे सभी स्तरों पर अपने प्रतिनिधियों तथा श्रमिकों और स्वयं के बीच रचनात्मक सहयोग का प्रवर्तन करेंगे तथा परस्पर किये गये समझौतों की भावना से प्रतिगमित होंगे।

(८) कि वे पारस्परिक सहमति के आधार पर परिवेदना तन्त्र की स्थापना करेंगे जिससे समझौते में कथित त्वरित और पूर्ण अनुसन्धान सुनिश्चित होगा।

(९) कि वे परिवेदना तन्त्र की विभिन्न अवस्थाओं का पालन करेंगे तथा ऐसी कोई स्वेच्छिक कार्यवाही नहीं करेंगे जो इस प्रक्रिया को उपमार्गित करें तथा

(१०) कि वे प्रबंध के सेवि वर्ग तथा श्रमिकों को एक दूसरे के प्रति उनके दायित्वों के संबंध में शिक्षित करेंगे।

प्रबन्ध की सम्मति है कि—(१) सहमति अथवा अन्यथा निश्चय के बिना कार्यभार न बढ़ाया जाय,

(२) किसी भी अनुचित श्रमिक आचरण जैसे (अ) संघ के सदस्य बने रहने अथवा उसमें सम्मिलित होने के कर्मचारियों के अधिकार में हस्तक्षेप करना (ब) श्रमिक संघों में मान्य कार्यकलापों के लिये किसी कर्मचारी के विरुद्ध बल प्रयोग अवरोधन अथवा भेदभाव बरतना तथा (स) किसी कर्मचारी का बलीकरण करना अथवा किसी भी रूप में अधिकारों का दुरुपयोग करना, को प्रोत्साहित अथवा समर्थित न किया जाय।

(३) (अ) कठिनाइयों को सुलझाने तथा (ब) समझौतों परिनिर्णयों निर्णयों और आदेशों को क्रियान्वित करने के लिए तुरन्त कार्यवाही की जाय।

(४) प्रतिष्ठान में प्रमुख स्थानों में इस संहिता की व्यवस्थाओं को स्थानीय भाषा में लिखकर प्रदर्शित किया जाय।

(५) न्यायसंगत त्वरित पदच्युति तथा वे पदच्युतियाँ, जो चेतावनी, ताड़ना, विलम्बन अथवा अनुशासनात्मक कार्यवाही के किसी अन्य रूप के बाद हों की कार्यवाहियों के बीच विभेद किया जाय और इस बात की व्यवस्था की जाय कि सामान्य परिवेदना तन्त्र के माध्यम से इन सभी अनुशासनात्मक कार्यवाहियों की अपील की जा सके तथा

(६) उन मामलों में अपने अधिकारियों और सदस्यों के विरुद्ध समुचित अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाय जहाँ जाँच से यह पता चले कि वे श्रमिकों द्वारा व्यग्रतापूर्ण कार्यवाही के लिए जिसमें अनुशासन भंग हुआ है, जिम्मेदार थे।

संघ/संघों की सम्मति है कि— (१) किसी प्रकार की शारीरिक विवाध्यता का प्रयोग न किया जाय।

(२) ऐसे प्रदर्शनों की अनुमति न दी जाय जो शांतिपूर्ण न हों और न ही

प्रदर्शनों में हुड़दंग को प्रश्रय दिया जाय।

(३) कि उनके सदस्य काम के समय में अन्य कर्मचारियों या संघ के किसी काय को करने के लिए न तो कहेंगे और न करने के लिए ... करेंगे जबतक कि विधान समझौता अथवा अभ्यास द्वारा ऐसी व्यवस्था न हो।

(४) अनुचित श्रमिक आचरण जैसे (अ) वक्तव्य की अवहेलना करना (ब) लापरवाही से काय करना (स) सम्पत्ति को हानि पहुँचाना (द) नियम के काय में हस्तक्षेप करना अथवा बाधा डालना तथा (य) अवज्ञा करना को निरुत्साहित किया जाय।

(५) दरिनिर्णयों समझौता समनिया और निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए तुरन्त कार्यवाही की जाय।

(६) सब कार्यालयों के प्रमुख स्थानों में इस संहिता की व्यवस्थाओं को स्थानीय भाषा/भाषाओं में लिखकर प्रदर्शित किया जाय तथा

(७) इस संहिता की भावना के विरुद्ध पदाधिकारियों अथवा सदस्यों द्वारा कार्यवाही करने पर उसे अनुमोदित किया जाय तथा उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाय।



परिशिष्ट २

अंतसंघीय सामजस्य सहिता १९५८

अतसघीय मधुर सबधो को बनाये रखने के लिए चार प्रमुख केन्द्रीय श्रमिक सगठनो ने भारतीय श्रमिक सम्मेलन के बाद नैनीताल में हुई एक बैठक में निम्नलिखित आचरण सहिता पर अपनी सहमति प्रकट की थी।

हर उद्योग या सस्थान के प्रत्येक कर्मचारी को अपनी रुचि के सघ में सम्मिलित होने की स्वतत्रता और अधिकार होगा। इस सबध में किसी प्रकार का बल प्रयोग नही किया जायेगा।

सघों की दोहरी सदस्यता नहीं होगी। प्रतिनिधि सघो के सबध में यह सहमति प्रकट की गई थी कि इस सिद्धान्त की और भी जाँच की आवश्यकता है।

श्रमिक सघो के प्रजातात्रिक कार्यों के लिए आदर और पारस्परिक स्वीकृति प्रदान की जायगी।

किसी भी सगठन द्वारा श्रमिकों की अज्ञानता और पिछड़ेपन का अनुचित लाभ नहीं उठाया जायगा और न ही कोई सगठन अत्यधिक अथवा ज्यादती की माँगें प्रस्तुत करेगा।

अतसघीय व्यवहारों में किसी प्रकार की हिंसा, बलप्रयोग, अभित्रासन अथवा वैयक्तिक द्वेष का प्रश्रय नहीं दिया जायगा।

सहिता को क्रियान्वित करने के लिए चारों सगठनो के प्रतिनिधियों तथा एक स्वतत्र अध्यक्ष के साथ समिति का गठन किया जाना चाहिए।

श्रमिक सघो के पदाधिकारियों तथा कार्यकारिणी समितियों के नियमित और प्रजातात्रिक निर्वाचन होने चाहिये।

परिशिष्ट ३

परिवेदन प्रक्रिया के लिये मार्गदर्शक सिद्धान्त

औद्योगिक सस्थानो म दिन प्रतिदिन की परिवेदनाओ के निवारण हेतु वतमान श्रमिक विधाना मे सुपरिभाषित और पर्याप्त प्रक्रिया की व्यवस्था नही की गई है। औद्योगिक सेवायोजन (स्थायी आदेश) केन्द्रीय नियम १९४६ की अनुसूची १ म दिये गये आदेश स्थायी आदेशो के वाक्याश १५ म कहा गया है कि सेवा योजन जिसमे नियोजक अथवा उसके अभिकर्ता की ओर से किये गये अनुचित व्यव हार तथा गलत बलाद्ग्रहण भी सम्मिलित हैं से पदा होने वाली सभी शिकायतें प्रबधक अथवा इसके लिये निर्दिष्ट अन्य व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत की जाएँगी तथा नियोजकों से अपील करने का अधिकार होगा।

किन्तु कुछ औद्योगिक सस्थानो म पारस्परिक सहमति द्वारा विस्तृत परिवेदना प्रक्रियाओ को सूचित किया गया है। वस्तुत सतोषजनक परिवदना प्रक्रिया क अभाव मे दिन प्रतिदिन की परिवेदनाओ को इकट्ठा होने दिया जाता है और जिसका परिणाम यह होता है कि सचित असतोष कभी कभार अनुशासनहीनता हडतालो आदि के रूप म प्रकट होता रहता है। इसीलिये परिवदन प्रक्रिया के मार्गदर्शक सिद्धान्तो को निरूपित करने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि यह अनुभव किया जाता है कि प्रत्येक औद्यो गिक सस्थान म इन सभी सिद्धान्तो को लागू कर पाना सभव नही हो सकता है किन्तु फिर भी सभी सस्थानो को जहा तक अधिक स अधिक सभव हो इन सिद्धान्तो की पुष्टि के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

एक या अधिक वयक्तिक श्रमिको को उनके मजदूरी भुगतान अधिसमय छुट्टी, पदोन्नति वरीयता काय नियोजन काय की अवस्थाएँ और सेवा समझौता की व्याख्या निष्कासन तथा पदच्युति से सबधित प्रभावित करने वाली सभी शिकायतो को परिवेदनाओ के अन्तगत रखा गया है।

जहा विवाद के प्रश्नो की सामान्य प्रयोज्यता अथवा पर्याप्त महत्ता है, वहाँ वे इस प्रक्रिया के क्षेत्र मे नही आएँगे।

एक परिवेदन प्रक्रिया म निम्नलिखित सिद्धान्तो को ध्यान मे रखना चाहिये

वतमान विधानो के साथ समनुरूपता परिवेदन प्रक्रिया उस एकीकृत योजना का एक अग है जिसका उद्देश्य श्रमिको और नियोजको के बीच सतोषजनक सबधो को प्रवर्तित करना है। वतमान वधानिक व्यवस्थाओ के पूरक रूप मे इस प्रक्रिया को

स्थापित करना चाहिये ताकि, जहाँ क्रियात्मक हो, विधान द्वारा पहले से ही व्यवस्थित ऐसे ही तंत्र का उपयोग किया जा सके।

श्रमिक द्वारा आदेश प्राप्त किये जाने पर व्यथा की स्थिति में परिवेदना तंत्र का उपयोग किया जा सकता है। किन्तु परिवेदना तंत्र के पूर्ण निःशेष होने तक आदेश के क्रियान्वयन को रोके नहीं रखना चाहिये। जहाँ भी सम्भव हो आदेश देने और उस पर कार्यवाही करने की तिथि के बीच के समय में ही परिवेदना प्रक्रिया को समाप्त करने के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिये।

तंत्र को सरल और सत्वर बनाने की आवश्यकता

(अ) जहाँ तक सम्भव हो परिवेदना को निम्नतम स्तर पर ही सुलझा लेना चाहिये।

(ब) साधारणतया दो से अधिक स्तरों तक किसी विषय को नहीं लेना चाहिये अर्थात् सामान्य तौर पर केवल एक ही अपील होनी चाहिये।

(स) विभिन्न प्रकार की परिवेदनाओं को समुचित अधिकारियों के पास भेजना चाहिये।

(द) एक परिवेदना का शीघ्रातिशीघ्र निवारित करना चाहिये और उसके लिये नियोजकों को श्रमिकों की सलाह पर आवश्यक समय की सीमा निर्धारित कर देनी चाहिये।

प्राधिकारियों की नियुक्ति—श्रमिकों को यह अवश्य ज्ञात होना चाहिये कि वह किन प्राधिकारियों में पहुँच करती है और इसलिये प्रबन्ध के लिये यह अनिवार्य होना चाहिये कि विभिन्न स्तरों पर सवेदित प्राधिकारियों की नियुक्ति करें।

यह लाभदायक हो सकता है यदि परिवेदनाओं को वैयक्तिक सबंधों तथा सेवायोजन की अवस्थाओं के कारणस्वरूप उत्पत्ति के आधार पर विभाजित किया जाय। प्रथम के सम्बन्ध में परिवेदना को सर्वप्रथम प्रबंधीय वर्ग के प्राधिकारी जो उस अधिकारी के तुरन्त ऊपर हो जिसके विरुद्ध शिकायत की गई है द्वारा विचारना चाहिये। उसके बाद शिकायत को परिवेदना समिति, जिसमें प्रबंध और श्रमिकों के प्रतिनिधि होते हैं के पास भेजा जा सकता है। समिति की रचना और आकार का निर्णय इकाई स्तर पर किया जाना चाहिये। (नीचे देखें)

अन्य परिवेदनाओं को सर्वप्रथम प्रबंध द्वारा नियुक्त प्राधिकारी को विचारना चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें परिवेदना समिति को सदर्भित किया जा सकता है।

जहाँ परिवेदना सर्वप्रथम विचारार्थ परिवेदना समिति के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है उन मामलों में अपील शीर्ष प्रबन्ध को की जानी चाहिये।

परिवेदना समिति की रचना

उस स्थिति में जब संघ मान्यता प्राप्त हो—प्रबन्ध के दो प्रतिनिधि तथा सम

श्रोर उस विभाग, जिसमे सम्बद्ध श्रमिक कार्य करता हो, के विभागीय सघ का एक प्रतिनिधि ।

उस स्थिति मे जब सघ मान्यता प्राप्त न हो अथवा कोई सघ न हो बल्कि काय समिति हो—प्रबन्ध मे दो प्रतिनिधि तथा काय समिति मे श्रमिक से सम्बद्ध विभाग का प्रतिनिधि तथा काय—समिति का सचिव अथवा उपाध्यक्ष (यह उस स्थिति मे होगा जब काय समिति का सचिव श्रमिक के विभाग का प्रतिनिधि भी हो) ।

यह सुझाव दिया जाता है कि प्रबध के विषय म उनके प्रतिनिधि विभागाध्यक्ष तथा वह अधिकारी जिसने प्रथम स्थिति मे परिवेदना पर विचार किया है, होने चाहिये अथवा वयक्तिक अधिकारी को सलाहकार के रूप म काय करना चाहिये ।

परिवेदना समिति का आकार अधिकतम रूप से चार से छ तक सीमित होना चाहिये अन्यथा वह दुवह हो जाती है ।



परिशिष्ट ४

कार्यक्षमता तथा कल्याण सहिता का प्रारूप १९५९

मान्यता देते हुये (अ) कि लोगो का जीवन स्तर ऊँचा उठाने और अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने के लिये अत्यधिक उत्पादन और वर्धित उत्पादकता आवश्यक है (ब) कि उद्योग की कार्यक्षमता बढाने के लिये नियोजक श्रमिक और सरकार को सम्मिलित प्रयत्न करने चाहिये तथा (स) कि जहा उचित वातावरण जिसमे उद्योग दक्षता से कार्य कर सके पैदा करने का दायित्व सरकार का है किन्तु संयत्र स्तर पर श्रम और प्रबन्ध के बीच सहयोग ही केवल एक ऐसा तथ्य है जिससे संयत्र की कार्यक्षमता और श्रमिको का कल्याण प्रभावित होता है।

प्रबन्ध और संघ सहमत हैं—(१) कि वे अनुशासन सहिता का कडाई से पालन करेंगे तथा मधुर वातावरण बनाये रखने के लिये अपनी शक्ति भर सभी कुछ करेंगे जिससे उत्पादन निर्बाध रूप से बढ सके।

(२) कि वे न्यायालयो के समक्ष विचाराधीन पडे सभी मामलो का तुरन्त पुनर्वलोकन करेंगे और उनमे से अधिक से अधिक सभव मामलो को पारस्परिक समझौते के लिये वापस ले लेंगे।

(३) कि वे समुचित उद्दीपित भुगतान योजनाओ को सूचित करेंगे जो श्रमिको के हितो और स्वास्थ्य की रक्षा करते हुये उत्पादन के अधिसीमन मे सहायता देंगी।

(४) कि वे जहा भी सभव होगा सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की उप-समितिया के रूप मे अथवा स्वतन्त्र रूप से सयुक्त उत्पादन समितिया की स्थापना करेंगे तथा

(५) कि वे अविलम्ब एक सुझाव योजना लागू करेंगे जिसके अन्तर्गत अपव्यय रोकने और उत्पादन मे सुधार करने के लिये श्रमिको द्वारा दिये गये सुझावो पर सावधानीपूर्वक विचार किया जायगा और उन्हे उचित रूप से परितुष्ट भी किया जायेगा।

प्रबन्ध की सम्मति है—(१) कि औद्योगिक प्रतिष्ठान के हितो के अनुरूप वे अपने कर्मचारियो को उचित मजदूरी देंगे तथा सेवा निवृत्ति के बाद आर्थिक सुरक्षा के लिये व्यवस्था करेंगे।

(२) कि वे कर्मचारियो की वैधानिक नीति तथा उस नीति के क्रियान्वयन मे भेदभाव के परिहरण द्वारा श्रमिको के लिये उचित पदोन्नति के अवसरो की व्यवस्था करेंगे।

(३) कि वे (अ) सुरक्षित और स्वस्थ काम की अवस्थाओं (ब) काम के स्थान पर उचित कल्याण-कारी सुविधाओं तथा (स) जहाँ भी सभव होगा समुचित आवास और/अथवा यातायात सुविधाओं की व्यवस्था करेंगे।

(४) कि वे यत्र और उपकरण को काम करने के लिए अच्छी स्थिति मे बनाये रखेंगे और घिसे हुये यत्र और उपकरणो को शीघ्रातिशीघ्र प्रतिस्थापित करेंगे।

(५) कि वे स्वतत्र रूप से अथवा अन्य प्रतिष्ठानो के प्रबन्ध के सहयोग से सभी श्रमिको निरीक्षको मध्य प्रबन्ध के सेविवर्ग के लिये प्रशिक्षण और सभान्य आश्रय वशवा के लिये शिक्षा की सुविधाओ की व्यवस्था करेंगे तथा

(६) कि व अपव्यय तथा अदक्षता को परिहरित करने तथा श्रमिको मे उद्यम के प्रति अपनत्व की भावना पदा करने के लिये प्रबन्ध-तन्त्र को युक्ति सगत बनायेंगे।

सघ/सघो की समति है—(१) कि व प्रतिवाद की उन रीतियो का आश्रय नही लेंगे जिनसे उत्पादन म कमी अथवा हानि हो।

(२) कि उत्पादन की क्षमता म अन्तसघीय सस्पर्धा को हस्तक्षेप नही करने दिया जायगा और इस हेतु वे अन्तसघीय आचरण सहिता का कडाई से पालन करेंगे।

(३) कि वे श्रमिको की अनुपस्थिति और पराणावत को कम करने के लिये अपनी शक्ति भर सभी कुछ करेंगे।

(४) कि वे, जहाँ भी सभव होगा श्रमिको को उनके अधिकारो और दायित्वो तथा उत्पादन को लेकर उनके सबधो के विषय म शिक्षित करने के लिय समुचित कदम उठाएँग।

(५) कि वे अर्थ-यवस्था के वृहत्तर हितो के परिप्रेक्ष्य म उत्पादन की प्रति स्पर्धात्मक लागत को बनाय रखने की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुये उद्योग के समक्ष केवल उचित माँग ही प्रस्तुत करेंगे। तथा

(६) कि वे भारतीय श्रमिक सम्मेलन के १५वें सत्र म सबोदित शर्तों के अधीन यन्त्रीकरण की योजनाओ का सक्रिय रूप से समथन करेंगे और उन रीतियो का सुझाएँगे जिनके द्वारा अतिरिक्त श्रमिको को अधिक दक्ष उत्पादन म लगाया जा सके।

विवरण १

भारत म पजीकृत व्यवसाय सघा की प्रगति

वर्ष	पजीकृत सघो की सख्या	विवरण भेजने वाले पजीकृत सघा की सख्या	विवरण भेजने वाले सघा की कुल सदस्यता
१९२७–२८	२९	२८	१००,६१९
१९२८–२९	७५	६५	१८१,०७७
१९२९–३०	१०४	९०	२४२,३५५
१९३०–३१	११९	१०६	२१९,११५
१९३१–३२	१३१	१२१	२३५,६९३
१९३२–३३	१७०	१४७	२३७,३६९
१९३३–३४	१९१	१६०	२०८,०७१
१९३४–३५	२१३	१८३	२८४,९१८
१९३५–३६	२४१	२०५	२६८,३२६
१९३६–३७	२७१	२२८	२६१,०४७
१९३७–३८	४२०	३४३	३९०,११२
१९३८–३९	५६२	३९४	३९९,१५९
१९३९–४०	६६७	४५०	५११,१३८
१९४०–४१	७२७	४८३	५१३,८३२
१९४१–४२	७४७	४५५	५७३,५२०
१९४२–४३	६९३	४८९	६८५,२९९
१९४३–४४	७६१	५६३	७८०,९६७
१९४४–४५	८६५	५७४	८८९,३८८
१९४५–४६	१०८७	५८५	८६४,०३१
१९४६–४७	१२२५	९९८	१३३१,९६२
१९४७–४८	२७६६	१६२०	१६६२,९२९
१९४८–४९	३१५०	१९४८	१९६०,१०७
१९४९–५०	३५२२	१९१९	१८२१,१३२
१९५०–५१	३७६६	२००२	१७५६,९७१
१९५१–५२	४६२३	२५५६	१९९६,३११

१	२	३	४
१९५२–५३	४९३४	२७१८	२०९९,००३
१९५३–५४	६०२९	३२९५	२११२,६९१
१९५४–५५	६६५८	३५४५	२१७० ४५०
१९५५–५६	८०९५	४००६	२२७४ ७३२
१९५६–५७	८५५४	४३९९	२३७६ ७६२
१९५७–५८	१००४५	५५७०	३०१५,०५२
१९५८–५९*	१०२२८	६०४०	३६४७,१४८
१९५९–६०	१०८११	६५८८	३९२३,०००**
१९६०–६१	१११७५	६८२९	३७८२ ०००***

टिप्पणी —१९५०–५१ तक के आकडे भाग अ और कुछ भाग स' राज्यो से सम्बन्धित है। १९५१–५२ स बाद के आकडे जम्मू और कश्मीर को छोडकर सम्पूर्ण भारतीय सघ ■ सम्बन्धित है।

* राजस्थान राज्य का छाडकर

** दा नियोजक सघा, जिनम २५ मिल और २९ कम्पनी सूचित की गई थी की सदस्यता का छोडकर।

*** दा नियोजक सघा जिनम २८ मिल और २९ कम्पनी सूचित की गइ थी, की सदस्यता को छाडकर।

विवरण २

भारतीय राज्यो म पजीकृत व्यवसाय सघ

केन्द्रीय व्यवसाय सघ

वर्ष	पजीकृत व्यवसाय सघो की सख्या	विवरण भेजने वाले सघो की सख्या	सदस्यता
१९३९	३२	२४	९७,१५२
१९४०	४२	२३	१,२२,१५०
१९४१	४६	३३	१,२७,९७३
१९४२	२५	२३	१,४०,२०५
१९४३	२७	२६	१,६८,५४०
१९४४	३०	२८	१,५४,८०३
१९४५	३१	३०	१,६१,७७७
१९४६	३२	२६	१,२८,७४४
१९४७	७६	३६	१,७६,७४२
१९४८	१०९	६७	३,१४,१८१
१९४९	१०८	८८	४,७४,३५३
१९५०	५६	४१	१,५३,९३६
१९५१	११२	७४	३,२५,०९८
१९५२	१३०	८८	४,३२,६११
१९५३	१२८	७२	४,१५ ७०३
१९५४	१६९	८९	२,४१,९४८
१९५५	१५८	१०४	१,७८,५०८
१९५६			
१९५७	१७३	१०२	१,८७,२९५

श्रमिक श्रौर नियोजक केन्द्रीय व्यवसाय सघ

वर्ष	पजी पर श्रमिक सघ	विवरण भेजने वाले	विवरण भेजने वाले सघो की सदस्यता	पजी पर	नियोजक सघ विवरण भेजने वाले	विवरण भेजने वाले सघों की सदस्यता
१९५७–५८	१२६	७९	१,८०,८०३	२	१	६९

१	२	३	४	५	६	७
१९५८–५९	२१३	१२२	२,६८,९६६	३	–	–
१९५९–६०*	१४२	९०	१,८६,१९३	१	१	२५

* ऐसे कई सघ थे जिनका वर्गीकरण उपलब्ध नहीं हैं।

राज्य सघ

राज्य	वर्ष	पजीकृत व्यवसाय सघो की सख्या	विवरण भेजने वाले सघो की सख्या	सदस्यता
आन्ध्र	१९५३–५४	१६७	१०९	३१ २३२
	१९५४–५५	१८४	१३०	३५ ९७०
आसाम	१९३९	३	—	—
	१९४०	११	३	९८२
	१९४१	६	६	१,४७६
	१९४२	५	५	१ ५०२
	१९४३	५	५	१,९४८
	१९४४	७	७	१ ५८०
	१९४५	९	९	२,४८६
	१९४६	१९	१२	३,६८०
	१९४७	३६	२५	१३ ५१८
	१९४८	८०	४३	४६,७०६
	१९४९	७१	४३	१ ०७ ७२५
	१९५०	६७	३९	१,१८,१८८
	१९५१	६०	३५	१,१२,७३६
	१९५२	६४	४१	९७,६५४
	१९५३	९३	६१	१,२९,२१६
	१९५४	१०२	७९	१,४९,७९८
	१९५५	१२४	७४	१,७८,१०७
बिहार	१९२८	—	—	२५,२०३
	१९२९	२	२	४१,६८२
	१९३०	३	—	—

१	२	३	४	५
	१९३१	३	१	३६
	१९३२	३	१	१,३७८
	१९३३	४	४	२,३९७
	१९३४	४	४	५,०५२
	१९३५	५	५	७,८५९
	१९३६	५	५	१५,०२९
	१९३७	[illegible]	६	१६,६८५
	१९३८	१०	६	५,७१०
	१९३९	१८	१०	२३,९९२
	१९४०	२७	११	१३,५९६
	१९४१	३४	२०	२९,९२५
	१९४२	२८	१६	१०,३३७
	१९४३	४१	११	१८,७३८
	१९४४	४९	२०	२१,९४७
	१९४५	४९	३१	७३,४२८
	१९४६	५३	३१	५०,२०३
	१९४७	१११	४७	३५,५८५
	१९४८	२३८	१०४	१,२३,१३७
	१९४९	३१५	१४१	१,४८,२३४
	१९५०	३९२	१९७	१ ८३,०६०
	१९५१	६५४	२१५	१,६४,००७
	१९५२	५०६	२७१	२,३२,६०८
	१९५३	४११	२८०	२,३२,९४५
	१९५४	४३४	३३८	२,६३ ५३९
	१९५५	५९२	२४८	२ ६२,१००
बम्बई	१९३७	४२	३९	५२,८५२
	१९३८	५०	६४	७६ ०७२
	१९३९	५२	६०	५०,९९७
	'९४०	७२	५६	१ ०५,७९९
	१९४१	७०	५७	१,२१,८८६
	१९४२	७६	५९	१,२०,१५२

१	२	३	४	५
	१९४३	७७	६९	१,३०,६८८
	१९४४	८२	७०	१,४९,३५९
	१९४५	९३	७९	१,७२,६७९
	१९४६	१०४	७८	१,८२ ९४३
	१९४७	१९८	१२६	२,६७,००९
	१९४८	३०६	२४६	३,१६ ६२२
	१९४९	४१०	२९५	४,२१ १२८
	१९५०	४६०	३६०	४,१७,६४२
	१९५१	५९७	३७०	३,५२,१९१
	१९५२	५२१	३८२	३,१६,९१५
	१९५३	६७३	४२२	४०१,०७७
	१९५४	७६५	४६१	४,०१,५९४
	१९५५	८६९	४९३	३,६७,४२७
केन्द्रीय प्रान्त और बरार (मध्य प्रदेश)	१९२८	—	—	२,१७३
	१९२९	३	४	२ ५१४
	१९३०	७	७	३,४९९
	१९३१	७	७	४ ८३१
	१९३२	१०	१०	६ ७८८
	१९३३	११	११	७ ८०५
	१९३४	१२	१२	८,९६८
	१९३५	१५	१५	१०,२६०
	१९३६	१७	१४	१०,८१५
	१९३७	१६	११	६ १३३
	१९३८	२७	२६	८,९२८
	१९३९	३५	३०	१३ ३७७
	१९४०	४१	३१	११,५६०
	१९४१	५२	३८	१७ २६१

१	२	३	४	५
	१९४२	५५	३८	२३,९८४
	१९४३	४९	३५	२९,४३०
	१९४४	४८	२९	१४,८८८
	१९४५	५३	२७	१३,७४८
	१९४६	४५	३२	१७,७७९
	१९४७	६६	४८	२०,१४९
	१९४८	६४	५४	४०,१९८
	१९४९	८८	६०	३३,५९०
	१९५०	१०९	७४	४८,४३६
	१९५१	९८	६०	३९ ३३२
	१९५२	१११	६७	६०,१२१
	१९५३	११८	६२	४१,४६७
	१९५४	१४४	६५	३३,१३३
	१९५५	१५६	१०१	६६,००१
मद्रास	१९२८	—	—	९,५५७
	१९२९	१०	१०	१६,६१३
	१९३०	१२	१२	४५,३४६
	१९३१	१७	१६	३६,८७६
	१९३२	२३	२२	४२,४०२
	१९३३	३४	३२	४८,०५४
	१९३४	३८	२५	२१,७०८
	१९३५	३२	२८	२४,८८९
	१९३६	३२	२५	२२,२०४
	१९३७	४३	२७	१९,०१०
	१९३८	५४	४१	४९,३७२
	१९३९	८७	६६	४९,३७६
	१९४०	११०	८३	७१,०९२
	१९४१	१२४	८०	५३,६२७
	१९४२	१३७	७६	४२,२९४
	१९४३	१४३	८६	४९,४५१
	१९४४	१७४	९९	६४,५६७

१	२	३	४	५
	१९४५	१५४	१४१	८८ २७०
	१९४६	२३२	१८०	१ २७ ४१४
	१९४७	३६८	२७३	१,८७ १८९
	१९४८	५१२	३४६	२ ४२ ६२८
	१९४९	५९७	२९६	१ ५० १८०
	१९५०	५५०	१८२	१ १६ ५६९
	१९५१	७४९	२६०	१ ३८ ५०७
	१९५२	६१९	३५७	१,६३ २६४
	१९५३	६५८	३२०	१,३१ ९१४
	१९५४	५३४	३२८	१,३८ ९९८
	१९५५	६१२	४००	१ ५६ ३२८
उड़ीसा	१९३७	१	१	१८
	१९३८	२	२	३७४
	१९३९	२	२	३२३
	१९४०	३	३	५३५
	१९४१	३	३	३५९
	१९४२	३	३	६५३
	१९४३	४	४	१ ४९४
	१९४४	७	५	१ १४८
	१९४५	४	४	१ ४९४
	१९४६	७	५	१ १४८
	१९४७	४२	३१	८ ७६६
	१९४८	५४	२५	५ ६३४
	१९४९	७२	२७	१३ ४०७
	१९५०	८३	३१	२३ २६८
	१९५१	४४	२६	१६ ०९७
	१९५२	१०४	३२	१९ २०९
	१९५३	५२	५२	३२ ३२५
	१९५४	८१	६२	३१ २०९
	१९५५	९५	६५	३२ ९१९
पूर्वी पंजाब	१९४८	७	७	७६०

१	२	३	४	५
	१९४९	८	[illegible]	२,८६६
	१९५०	४१	३९	१४,४००
	१९५१	५४	५१	१०,३१४
	१९५२	१०६	६९	१२,१०८
	१९५३	१३९	८२	२०,६१८
	१९५४	१६८	८६	१७,४२४
	१९५५	२१६	९१	१८,४९५
उत्तर प्रदेश	१९२८	—	—	३,११९
	१९२९	४	४	१२,१७९
	१९३०	५	५	१२,७३८
	१९३१	६	६	१२,८४३
	१९३२	६	६	९,८९५
	१९३३	६	५	९,८२३
	१९३४	५	४	७,८११
	१९३५	८	७	८,९७८
	१९३६	१०	१०	१०,३१०
	१९३७	१०	१०	१०,०८१
	१९३८	१८	१६	२३,४१४
	१९३९	३५	२३	११,७५९
	१९४०	४३	३४	१५,८११
	१९४१	४०	२९	१४,८०७
	१९४२	४२	२५	१७,४९३
	१९४३	२८	२७	२० ९६७
	१९४४	३१	३१	३२ ९४४
	१९४५	३४	३४	३६,७३४
	१९४६	७०	४३	३५,६२६
	१९४७	१९९	११३	९०,९१९
	१९४८	२८२	२०९	१,२७,६८२
	१९४९	३५९	२९२	१,३८,४०३
	१९५०	५२८	३३४	२,१८,०६७
	१९५१	५२८	३६५	१,१७,५८४

१	२	३	४	५
	१९४२	५५७	४०४	१,६५ २१२
	१९४३	५६७	४२८	१,७० ५८२
	१९४४	७२०	४६६	१ ४२ ४९६
	१९४५	६५१	५४७	१ ६१ ५५०
पश्चिमी	१९४७	५६९	२५९	४ ८८,६९७
बगाल	१९४८	८२६	४८३	४ १८ ९०६
	१९४९	१०४९	५३४	४ ३८,८८३
	१९५०	११५५	५४५	४,८९,१५८
	१९५१	८२७	४५२	१ ३९,४८८
	१९५२	९२१	४६९	३,२४,७३०
	१९५३	११६३	५५४	३ २६,६३१
	१९५४	१४३६	६८०	४ ०० ८१४
	१९५५	१३८१	५६७	३ ६१,१७६
		भाग 'ब' राज्य		
हैदराबाद	१९४९	११०	४०	३६,९७५
	१९५०	८१	४५	२५ २६४
	१९५१	६०	६०	१८ ३०५
	१९५२	१९५	५०	१६,०२७
	१९५३	५५	४१	१६ ४७३
	१९५४	२७६	५७	२२,३९९
	१९५५	३१३	६३	२३,४७३
मध्य	१९४९	२२	१४	१९ १६१
भारत	१९५०	२१	१४	१८ ४७६
	१९५१	३१	२७	९,१८०
	१९५२	३८	३३	१३ ६२८
	१९५३	४९	४०	१५,७६५
	१९५४	६२	३४	१४ ९००
	१९५५	६९	४४	१८ १५५
मसूर	१९४९	८९	६७	५४,९०५
	१९५०	३४	३३	३३,७०६

१	२	३	४	५
	१९५१	३२	३२	३०,६६९
	१९५२	३३	३३	२६,२२५
	१९५३	—	—	—
	१९५४	३५	३३	३६,०७५
	१९५५	५५	५५	४८,४०५
	१९५६	—	—	—
	१९५७	२२३	२२३	१,१३,६२४
पप्सू	१९५३	६	६	४,८३३
	१९५४	१०	६	२,२३९
	१९५५	१४	१०	३,०३२
त्रावनकोर	१९४९	अनुपलब्ध	५६	२२,८५०
कोचीन	१९५०	५६	५६	३२,५४८
	१९५१	३५	३५	१२,०४१
	१९५२	५५५	१००	५५,५०४
	१९५३	५६८	६७	५०,०३२
	१९५४	६४५	१३७	८५,१२५
	१९५५	७६९	१८५	१,४१,५३०
सौराष्ट्र	१९४९	अनुपलब्ध	३३	१०,१२१
	१९५०	२८	२९	११,४०८
	१९५१	३३	३३	१८,८८७
	१९५२	५५	४६	१३,७६३
	१९५३	६४	४७	१३ ७४१
	१९५४	९१	५७	१२ ८६९
	१९५५	१२२	९२	१८,२२८
राजस्थान	१९४८	—	—	—
	१९५०	३५	१६	१२,१२७
	१९५१	२६	२३	१७,५२१
	१९५२	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध
	१९५३	३३	३३	८,४४५
	१९५४	८५	३६	७,८८८
	१९५५	११६	१२	१२,५४०

१	२	३	४	५
		भाग 'स' राज्य		
अजमेर	१९३०	१	१	१ ७४५
और	१९३१	२	२	१ ७७९
मेरवाड	१९३२	२	१	३४
	१९३३	२	१	३४
	१९३४	१	१	५९
	१९३५	१	१	१९३
	१९३६	१	१	२९९
	१९३७	३	३	८४५
	१९३८	३	२	३०४
	१९३९	२	२	३०२
	१९४०	३	३	३,४९९
	१९४१	३	४	२८१
	१९४२	१	१	२३८
	१९४३	३	३	४ ७९४
	१९४४	३	३	१,०४७
	१९४५	३	३	९४६
	१९४६	४	४	३ १५९
	१९४७	८	८	५ १८४
	१९४८	११	११	६ ०३१
	१९४९	१६	१५	५ ५३२
	१९५०	१५	१५	५ ६४८
	१९५१	१८	१७	६ ४६२
	१९५२	२०	१९	५ ४६६
	१९५३	१५	१५	६ १४३
	१९५४	१८	१४	६,०१०
	१९५५	१९	१८	७,३६७
दिल्ली	१९३०	२	२	२ ६७६
	१९३१	३	२	४,०४३
	१९३२	४	२	३,४८२

१	२	३	४	५
	१९३३	१०	८	११,७४९
	१९३४	१०	९	१०,५८१
	१९३५	१२	१०	७,७०२
	१९३६	१४	१३	८ २५९
	१९३७	१५	१४	१०,६०८
	१९३८	१८	१७	१५,३१०
	१९३९	२३	२२	२१,४९२
	१९४०	२७	२६	२४,३७६
	१९४१	२९	२८	२४,१८९
	१९४२	२९	२०	२१,५४६
	१९४३	३०	२३	१६,८९५
	१९४४	३२	२४	२४,७१२
	१९४५	४०	१९	३०,५०४
	१९४६	४७	२५	३४,१७३
	१९४७	५२	३२	४३,२०४
	१९४८	४७	३२	२०,४४४
	१९४९	५९	४८	२५,४८६
	१९५०	६०	५९	३१,४१२
	१९५१	८७	६८	८०,३६४
	१९५२	११७	८५	३१ ००९
	१९५३	९३	९०	४० १७२
	१९५४	१३४	११५	६०,१६४
	१९५५	१९१	१६८	६७,१९६
कुर्ग	१९४९	१	१	३२०
	१९५०	३	३	४९७
	१९५१	२	२	५६४
	१९५२	१	१	३१५
	१९५३	३	३	८१९
	१९५४	५	५	२,०४२
	१९५५	—	—	—
भोपाल	१९५०	५	३	७९७

१	२	३	४	५
	१९५१	७	५	१,२२७
	१९५२	५	५	१ ५७२
	१९५३	१२	१२	३,६३४
	१९५४	२१	१६	४,३९९
	१९५५	१९	१९	६ ८७०
कच्छ	१९५२	१	१	४१९
	१९५३	१	१	४१९
	१९५४	१	१	४१९
	१९५५	१	१	५१४
हिमाचल	१९५३	२	२	३३२
प्रदेश	१९५४	६	२	३५१
	१९५५	६	२	३४१
त्रिपुरा	१९५३	६	३	१ ६४६
	१९५४	११	११	२ ८५०
	१९५५	२२	१२	६ ०६७
विन्ध्य	१९५३	—	—	—
प्रदेश	१९५४	८	८	१,९८२
	१९५५	६	५	१ १४१

टिप्पणी —भारतीय व्यवसाय सघ अधिनियम कुछ भाग ब' और स राज्यो मे लागू नही होता था जिन्हे पहले भारतीय रियासत कहा जाता था। उनमे से बहुतो के भारतीय अधिनियम के आधार पर अपने विधान थे। १ अप्रल १९५१ से भारतीय अधिनियम जम्मू और काश्मीर को छोडकर भारत के सभी राज्यो म लागू कर दिया गया है।

विवरण ३

१९५६ में राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् श्रमिकों के पंजीकृत राज्य व्यवसाय संघ

राज्य	वर्ष	पंजीकृत व्यवसाय संघों की संख्या	विवरण भेजने वाले संघों की संख्या	विवरण भेजने वाले संघों की सदस्यता
आंध्र	१९५६-५७	५४८	१२९	८२,०००
	१९५७-५८	५६५	१९३	१,०६,०००
	१९५८-५९	५७८	२६७	१,५८,०००
	१९५९-६०	५४८	१८१	७६,०००
	१९६०-६१	६००	१६२	१,२५,०००
आसाम	१९५६-५७	१४६	५४	१,७५,०००
	१९५७-५८	१ ६	४०	७३,०००
	१९५८-५९	१०७	८९	२,४८,०००
	१९५९-६०	१५७	७९	२०७,०००
	१९६०-६१	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध
बिहार	१९५६-५७	५	८६	३,०९,०००
	१९५७-५८	५	४०६	,१८,०००
	१९५८-५९	५६५	४२८	,७१,०००
	१९५९-६०	६०८	४७४	३,७७,०००
	१९६०-६१(?)	६९२	४८८	३,५१,०००
बम्बई	१९५६-५७	४५०६	८४८	४,८०,०००
	१९५७-५८	१६५८	१०२०	६,०१ ०००
	१९५८-५९	१७२४	१०२३	६ १३ ०००
	१९५९-६०	१८२१	११५३	८,१८ ०००
	१९६०-६१	२०१८	१,०५५	९ ४८,०००
केरल	१९५६-५७	५८४	५७७	२ ४१,०००
	१९५७-५८	७७३	८०३	३,५५ ०००
	१९५८-५९	९५ ८	९०८	३,७४,०००
	१९५९-६०	४६५०	८६९	३ २१ ०००
	१९६०-६१	८१७५	८३७	२ ५६,०००

१	२	३	४	५
मध्यप्रदेश	१९५६-५७	२४७	६४	२६,०००
	१९५७-५८	२८३	९२	४५ ०००
	१९५८-५९	३१३	८४	६२ ०००
	१९५९-६०	३९२	११४	५५ ०००
	१९६०-६१(१)	३३७	९३	५१ ०००
मद्रास	१९५६-५७	७१९	५१८	२ २५ ०००
	१९५७-५८	८०४	६५८	३ १५ ०००
	१९५८-५९	९४३	७४६	३ ८४ ०००
	१९५९-६०	९९३	७९६	३,७९ ०००
	१९६०-६१	११०७	८६१	४ ०७ ०००
मैसूर	१९५६-५७	२२३	२२३	१ १८ ०००
	१९५७-५८	४०८	२०१	१ ०८ ०००
	१९५८-५९	४०३	१८८	१ ०९ ०००
	१९५९-६०	४५०	१८५	१ ०४ ०००
	१९६०-६१	४४२	१८५	९० ०००
उड़ीसा	१९५६-५७	११६	७३	४८ ०००
	१९५७-५८	११९	७५	७१ ०००
	१९५८-५९	१०८	६०	४५ ०००
	१९५९-६०	१२०	७३	५५ ४१५
	१९६०-६१	१०३	५९	५३ ०००
पंजाब	१९५६-५७	३७९	१४२	३७ ०००
	१९५७-५८	३९०	२१३	६१ ०००
	१९५८-५९	४५४	२७४	५७ ०००
	१९५९-६०	५६७	१७८	४४ ०००
	१९६०-६१	५५०	२४८	६३ ०००
राजस्थान	१९५६-५७	२२०	१०६	२३ ०००
	१९५७-५८	२१२	११२	२८ ०००
	१९५८-५९	अनुपलब्ध	१४०	४० ०००
	१९५९-६०	१२५	१२५	३७ ०००
	१९६०-६१	१८६	१६४	४२,०००

१	२	३	४	५
उत्तरप्रदेश	१९५६–५७	८८१	६२०	२,७७,०००
	१९५७–५८	९३२	५६५	२,५६,०००
	१९५८–५९	९५५	६५२	२४३,०००
	१९५९–६०	१०२९	८२६	२,८४,०००
	१९६०–६१	१००५	८३३	३,२६,०००
पश्चिमी	१९५६–५७	२०३३	४०९	१,७८,०००
बंगाल	१९५७–५८	२३००	७८०	४,७१,०००
	१९५८–५९	१९७३	८६७	७,३३,०००
	१९५९–६०	१८५०	११३४	९,१७,०००
	१९६०–६१	१९८७	१३२५	९,८४,०००
अंडमान	१९५६–५७	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध
और निको	१९५७–५८	९	९	४,०००
बार द्वीप	१९५८–५९	९	९	३,०००
समूह	१९५९–६०	७	७	२,०००
	१९६०–६१	१२	९	२,०००
दिल्ली	१९५६–५७	२५४	२०६	१,४१,०००
	१९५७–५८	२६८	२१३	१८७,०००
	१९५८–५९	३०२	२३३	२,१६,०००
	१९५९–६०	३०८	२६४	२,२४,०००
	१९६०–६१	३१४	२५४	२,१०,०००
हिमाचल	१९५७–५८	९	३	४८९
प्रदेश	१९५८–५९	१२	१२	३,०००
	१९५९–६०	१२	१२	३,०००
	१९६०–६१	१३	१३	२,०००
त्रिपुरा	१९५६–५७	२६	१५	६,०००
	१९५७–५८	२०	१७	७,०००
	१९५८–५९	२७	१६	८,०००
	१९५९–६०	३०	१५	७,०००
	१९६०–६१	३७	१२	७,०००

टिप्पणी —(१) विवरण भेजने वाले नियोजक-संघों की संख्या सम्मिलित है।

(२) राज्यों के पुनर्गठन के पूर्व की अवधि के कुछ राज्यों के आंकड़ों से इन आंकड़ों की तुलना नहीं की जा सकती है क्योंकि पुनर्गठन के कारण उनकी सीमाओं में परिवर्तन हो गया है।

(३) १६५६–६० में बम्बई राज्य को विभक्त कर दिया गया था।

विवरण ४

सदस्य संख्या के अनुसार विवरण भेजने वाले पंजीकृत व्यवसाय संघों का प्रतिशत वितरण

	सदस्यता वर्ग									
	५० से कम		५०–९९		१००–२९९		३००–४९९		५००–९९९	
वर्ष	संघ	सदस्यता	संघ	सदस्यता	संघ	सदस्यता	संघ	सदस्यता	संघ	सदस्यता
१९३०	२	२९	४	३०२	२०	६,१०६	११	४,३०३	२२	१४,८०२
१९३१	१०	३१८	५	३२७	२६	४,७८६	१७	६,४१९	१५	११,०९३
१९३२	८	२८२	१२	७२६	३१	६,५५३	१५	५ ८८१	२३	१५,९५३
१९३३	१९	४९७	१७	१ १०५	३४	६,८७२	१९	७,३४२	२०	१२,६१७
१९३४	२२	५८३	२०	१,२९४	३८	७,३९३	१९	७,११८	२५	१७,५५५
१९३५	२०	४९८	२९	२,०५२	४१	९,७१७	१७	६,५९१	२२	१४ ३६६
१९३६	२४	६६८	२३	१,६६४	६०	११,७८३	३०	११,५६४	२८	१६,३५९
१९३७	२५	६०७	२५	१,७०७	७५	१५,०९२	२९	११,०८१	३०	१९,३१५
१९३८	४६	३१२	३४	२,५६४	१०८	२०,२५०	४८	१८,९३१	५०	३४,१७३
१९३९	५३	१,४७५	३३	२,५०५	१२१	२३,०५०	५०	१०,५०६	६५	४५,८९८
१९४०	७२	१,९१३	३४	२,६३७	१४३	२६ ८१२	५२	२०,५४९	६३	४३,०२७
१९४१	८१	२,०३२	४३	३,२९६	१४८	२७,९७१	५२	२०,३०९	७१	४८,६६४
१९४२	७२	२,१८१	३३	२,३७२	१४९	२७,६४६	५८	१८,५०८	५९	४२,६६२

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१९४३	५४	१,५२१	४१	३ १३५	१४६	२७,४५८	५२	२०,२१८	८७	५८ ६३७
१९४४	४९	१ ४७९	४९	३ ६५०	१४०	२६,४३४	९०	३४ ७९८	१०१	७०,८४०
१९४५	४४	१ ३११	५४	४,००६	१४७	२७ ४७९	८४	३३ ३५४	९४	६४,०३४
१९४६	५५	१ ५१७	६८	४,९५२	१४७	२६ ६३५	६१	२३ ७२४	१०८	७५ ७२७
१९४७	७१	२ ३०५	९६	७,११०	२७४	५२ ६३८	१४६	५६ ७६३	१९१	१ ३३ ४८४
१९४८	१६२	५ २९८	२१४	१५ ११७	४९२	९० १९४	१८०	६० ००६	२६७	१ ८२ २६८
१९४९	२०१	६ ४०१	२७३	१९ ६९१	५५७	९७ ९२४	१९४	७२ ८८१	२८९	२ ०७ ८२४
१९५०	२५०	७७९९	२९०	२० ८२०	५९०	१ ०६ ३४३	२०९	८१ ६२६	२७७	२ ०१ ८९९
१९५१	३०३	९ ४७४	३३४	२३ ९२३	६१७	१ ११ ७००	२०८	८१ ६२८	२५४	१ ७९ ३६०
१९५२	३५८	१ ११९	३९१	२७ ७१०	७२२	१ २८ २०७	२३९	९३ ०३१	२८१	१ ९८ ३६५
१९५३	४६८	१५ ३८३	४६५	३३ ३१३	८०३	१ ४२ ९४०	२७८	१ ०८ ००७	३१९	२ २८ ८७५
१९५४	६१७	१८ ७९५	६२०	४३,११०	९९३	१ ७८ २७९	३३५	१ ३० २६१	३६६	२ ७७ ६५३
१९५५	६६८	२१ २३८	७३८	४६ १५३	१ ००९	१ ८९ ६४६	३१०	१ २४,४५२	३५०	२ २४ ४०१
१९५६										
१९५७	९७८	३० ९१८	७३६	५४ ४०५	१ ४९२	२ ४० १२०	३७५	१ ४१ ६६२	४०६	३ १० ५७२
१९५८	१ १९७	३५ ५७०	१ ०७४	७६ २३२	१ ५४८	२ ७२ २६७	४८९	१ ८९ ००६	५१९	३,६५ ६६०
१९५९	१ ०५१	३१ ३०९	९१९	६६ ३५३	१ ३९६	२ ४२,१३९	४४८	१,७३ ५३३	४५७	३,१२,४८५

विवरण ४

सदस्य संख्या के अनुसार विवरण भेजने वाले पंजीकृत व्यवसाय संघों का प्रतिशत वितरण

	सदस्यता वर्ग									
	१०००—१९९९		२०००—४९९९		५०००—९९९९		१०००—१९९९९		२००००—से अधिक	
वर्ष	संघ	सदस्यता	संघ	सदस्यता	संघ	सदस्यता	संघ	सदस्यता	संघ	सदस्यता
१९३०	१२	१८,४९१	७	१८,३०३	५	३३,६६६	४	५१,२९०	३	९५,९९३
१९३१	१४	१९,००९	८	२२,९००	५	३२,२७८	२	२८,८६२	४	९३,१९३
१९३२	१०	१६,१८९	१४	४४,३५८	१	५,६३०	४	६२,२८६	३	७९,९३५
१९३३	१८	२३,३६४	११	३६,७७६	२	११,८२६	५	७६,७११	२	५९,२२९
१९३४	१७	२२,९४५	१०	२८,३४२	२	११,३५९	६	९०,८३३	१	२०,६६९
१९३५	१७	२५ ०४२	१७	५३,५९७	२	१३,७०४	५	७०,५८७	३	८८,७६४
१९३६	११	१९,१९८	१७	५०,४०६	८	६१ २५०	१	१५,९७७	३	७९,४६७
१९३७	११	१४,३१६	२०	५७,३३१	१०	७०,४२७	२	३५,९३४	१	३५ २२७
१९३८	२०	२७,५५२	२२	६६,५५६	१३	९२,११८	३	४६,९९१	३	७९,६४३
१९३९	३०	४१ २६९	२६	७९,९४४	९	६३,९४८	६	९८,०७२	१	२३,४९४
१९४०	३३	४६,८०५	२७	७३,७६९	१५	१,००,८३४	९	१,४४ ८८७	२	४९ ९०५
१९४१	३५	४६,७१९	३१	९९,००१	१०	७१,५८०	११	१,५७,२६७	१	३७०००
१९४२	३८	५०,९९३	३०	९५,०८५	१०	७१,२८४	१३	१,९३,८८०	३	६९,१०९

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१८४३	४३	५६,१५६	३३	६८,६८२	१४	६६,२७६	१६	२,३३,३३५	३	८३,८८१
१८४४	६३	८५,१३३	३६	१,०८,१८४	१७	१,१७ ६८१	१३	१,८१,४७८	५	१,५१,२६०
१८४५	६४	८८,०७२	५२	१,५४,६७८	१६	१,१३,८३८	६	१ २३,५७०	६	२ ७८,७४६
१८४६	५५	७६,५२३	५३	१,५६,०८३	१६	१,११,६३६	१६	२,३३ ५६६	५	१ ५३,३३५
१८४७	१२०	१,४४,६८३	७२	२,०५,२६०	२२	१,५६,५३३	१०	१ ३१,८६८	११	४,४१,८५८
१८४८	१६६	२,३०,४८०	८३	२,३७,३०५	२६	१,८०,६४४	१३	१,८८,६५३	१७	४ ५६ ६०४
१८४९	१७१	२,३५ ०६३	६६	३,०२,४६४	२६	२,०२,१०८	१७	२ २४,१०६	१८	५,६३,६३५
१८५०	१४५	२,०१,१८६	६२	२,८५,००८	३२	२,१७ ०३८	१६	२ ५३ ६६३	१५	४ ६१,४१७
१८५१	१५४	२,०८,२३४	६८	२,०३,४२७	३३	२ २६,०७६	१४	१,६३,३३७	१७	५,१६ ८१०
१८५२	१६१	२,१६,७२३	७५	२,२६ ६३१	३४	२ ४३,१६२	१५	२,१०,६४२	१४	४ ६१ ३११
१८५३	१८६	२,५५,६६३	८७	२,५२ ०६१	४०	२ ८३ ६४५	१३	१,८२,६१०	१७	५ ६२ ६०५
१८५४	१६८	२,७०,३४१	१०२	३,०८,५६६	३६	२,५५,३६८	११	१,५४,०३६	१४	५,७५ ५५६
१८५५	१६६	२,७६,२१३	१२७	३,४४,२६४	३२	२,६४ ६६४	११	१,६६,२४५	१३	५,४२ ७६४
१८५६										
१८५७	२२४	२,६६,१७०	१३०	४,१६,६४७	३०	२ ०२ ६३४	१२	१,५८,२८३	१६	५ १६ ०५१
१८५८	२७२	३,७८,६२५	१४३	४,३४,५३८	२८	१ ६० २१३	३३	४ ३३ ४३८	१६	५ ३१ ५६४
१८५९	२२४	३,०४,७६२	१२६	३,७६,३६६	३६	२ ५४ ३०३	२८	४,०१,८८२	२०	८,६१ ८५७

विवरण ५

काम बंदी में परिणत भारत में औद्योगिक विवाद

वर्ष	कामबंदी की संख्या	सन्निहित श्रमिकों की संख्या	व्यय गये काम दिन	कारणों के आधार पर विवादों का वर्गीकरण: वेतन तथा भत्ता	बोनस	वैयक्तिक	अवकाश और घंटे	अन्य नियम अज्ञात कारण भी सम्मिलित हैं	छटनी	परिणाम के आधार पर विवादों का वर्गीकरण: सफल	असफल	आंशिक रूप से सफल	प्रगति में	अनिश्चित और अज्ञात
१९२१	३९६	६ ०० ३५१	६९ ८४ ४२६	१६७	७५	६८	११	७५	—	९२	२११	८७	६	—
१९२२	२७८	४,२५,४३४	२६,७२ ७२७	१२७	३२	५०	१९	५०	—	३४	२१५	२८	४	—
१९२३	२१३	३ ०१ ०४४	५०,५१ ७०४	९५	१४	५४	९	४१	—	३४	१५९	१९	१	—
१९२४	१३३	३,१२ ४६२	८७,३०,९१८	५३	७	३२	३४	३७	—	२३	८८	२१	१	—
१९२५	१३४	२ ७० ४२३	१,२५ ७८ १२९	६५	६	३५	—	२८	—	१७	८९	२७	१	—
१९२६	१२८	१ ८६ ८११	१० ९७ ४०८	६०	४	३१	११	२२	—	१२	१०४	१२	-	—
१९२७	१२९	१,३१,६५५	२०,१९,९७०	६१	—	३६	५	२७	—	१५	८९	२२	३	—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१९२८	२०३	५०६८५१	३१६५७५०५	१०९	१	५५	६	४३	—	२७	१२८	४१	७	—
१९२९	१५१	२३१०४९	१,२११६५६९१	५५	२	५५	३	२७	—	३१	८०	२७	३	—
१९३०	१४८	१९६१०१	२२६१७३१	६९	४	२५	७	३५	—	३६	८९	२२	१	—
१९३१	१६६	२०२००८	२५०८१२३	६९	२	३९	२०	३६	—	२३	९९	४२	२	—
१९३२	११८	१२८०९९	१९२२५२७	६८	३	३१	२	१५	—	१५	७५	२७	३	—
१९३३	१४६	१६४९३८	२१६०९६१	९५	२	१९	५	२५	—	२०	९६	२३	७	—
१९३४	१५९	२२०८०८	४७४५५५९	१०७	१	२५	६	२१	—	३२	१००	२५	२	—
१९३५	१५५	१,१४२१७	९०५४५७	९१	२	२१	१०	२१	—	२५	८७	२८	४	—
१९३६	१५७	१६९०२९	५३५८०६२	९६	१	२४	६	३०	—	३१	७६	५३	७	—
१९३७	३७९	६५७८०१	८९८२२५७	२३५	४	७३	१२	५६	—	५१	१९८	११७	१३	—
१९३८	३९९	४०१०७५	९१,९८७०८	२०९	३	९२	२१	७५	—	५१	२०६	१३०	१२	—
१९३९	५०६	४०८०७५	४८९२७९५	२२२	२	७४	१२	८६	—	६३	१८५	१५५	१५	—
१९४०	३२२	४५२५,९	७५७७२८१	२०२	९	५४	१०	५७	—	८६	११०	८०		—
१९४१	५५९	२९१०५४	[illegible]२०५०३	२१८	९	५५	१५	६२	—	७५	१६८	१११	५	—
१९४२	६९४	७७२६५३	५७७९९६५	३५९	७९	६३	७	६८	—	११७	३७८	१६९	३० ×	—
१९४३	७१६	५२५०८८	२३४२२८७	३५२	५५	५३	१५	२५२	—	१३८	३१५	२१०	५५ ×	—
१९४४	६५८	५५००१५	३५४७३०६	३७२	५५	८२	३५	११८	—	११९	२९७	१७५	६२ ×	—
१९४५	८२०	७४७५३०	४०,५५४९९	३५६	११०	१४५	५६	१५७	—	१३४	३७०	१५५	२५	१३५

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१९४६	१,६२९	१९,६१,९४८	१,२७,१७,७६२	६०४	७९	२८०	१३०	५३४	—	२७८	६९६	२७४	२९	३१७
१९४७	१,८११	१८,४०,७८४	१,६४,६२,६६६	५७४	१९५	३५९	९४	५८२	—	३१०	७००	२९८	६१	४१६
१९४८	१,२५९	१०,५९,१२०	७८ ३७,१७३	३८३	११२	३६३	११०	२७९	—	२३४	५२८	१४३	२१	३०५
१९४९	९२०	६,०५,४५७	६६,०० ३९५	२७७	५२	२१७	८४	२३५	—	११२	३५९	११९	२४	१६०
१९५०	८१४	७,१९,८८३	१,२८ ०६,७०४	२२३	७३	१८६	६७	२६५	—	१२९	३३८	८२	१८	२४७
१९५१	१,०७१	६,९१,३२१	३८,१८ ९२८	३०१	७०	३०१	८४	३१५	—	१५०	४३१	१४५	२७	३३१
१९५२	९६३	८,०९,२४२	३३,३६ ९६१	२८३	९४	३२६	७२	१८८	—	१९९	३८४	११८	१३	२४९
१९५३	७७२	४,६६,६०७	३३ ८२ ८०७	२०१	७६	२७६	३५	१८४	—	१२२	२८६	९६	२२	२४६
१९५४	८४०	४,७७,१३८	३३,७२,६३०	२४०	५४	२९६	८०	१३१	—	११७	२६१	८३	—	२३१
१९५५	१,१६६	५,२७,७६७	५६ ९७,८४८	२७६	१९५	३६७	५८	२२८	—	२११	२९१	८६	—	४४६
१९५६	१,२०३	७,१५ १३०	६९,९२,०४०	३१२	९७	३३३	६३	२९३	१०५	२९६	४६५	१३८	—	२७७
१९५७	१,६३०	८,८९,३७१	६४,२९,३१९	४६०	२११	४३२	७८	४००	४९	४७९	५२०	२३४	३१	३५५
१९५८	१,५२४	९,२८,५६६	७७,९७,५८५	४६६	१७३	४४३	४७	३३१	५६	४७०	४०९	२३२	—	३४६
१९५९	१,५३१	६,९३,६१६	५६,३३ १४८	४०५	१५३	३८२	५५	४४४	५३	३२९	४४८	१९५	—	४१६
१९६०	१,५८३	९,८६,२६८	६५,३६,५१७	५५८	१५८	३३०	३६	३८०	३९	४५४	४१९	१५६	—	३४८
१९६१	१,३५७	५,११,८६०	४९,१८,७५५											
१९६२(अ)	१,५०२	६,१७,८४८	४८,००,९२१											

टिप्पणी —(१) १९५६ और १९५७ के बीच एक विभाजन रेखा है। १९५६ तक के आंकड़े भाग 'क' और कुछ भाग 'ख' राज्यों से सबधित हैं। १९५७ के बाद से आंकड़े अखिल भारतीय आधार पर हैं इसलिये इन दो अवधियों के आंकड़े तुलनीय नहीं हैं।

(२) × इन आंकड़ों में वे विवाद भी सम्मिलित हैं जिनके परिणाम अनिश्चित थे। ऐसे विवादों की संख्या १९४२ में १७ तथा १९४३ और १९४४ में ४९ थी।

(३) ×× अनुपलब्ध होने के कारण गुजरात के आंकड़े सम्मिलित नहीं हैं।

(४) कारणों और परिणामों के आधार पर औद्योगिक विवादों के वर्गीकरण का योग हमेशा उस वर्ष के विवादों की संख्या के योग से नहीं मिलेगा क्योंकि कुछ संघों की सूचना उपलब्ध नहीं थी।
